

# आधुनिक हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद

(१९०१-१९२० ई०)

## Romanticism in Modern Hindi Poetry

( 1901-1920 )

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

की

पी० एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कुमारी नईमा ख़ाँन

निर्देशक

डा० रवीन्द्रनाथ राय 'भ्रमर'

प्राध्यापक हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़



T886

T 886



12 FEB 1970



# आधुनिक हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद

(१६०१-१९२० ई०)

सारांश

T 886

नईमांखान  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़

पाराश

जैसा कि प्रबन्ध के विषय से ही स्पष्ट है उस में बीसवीं शताब्दी के  
 आरम्भिक दो दशकों (१९०१ - १९२०) की हिन्दी कविता का अध्ययन  
 स्वच्छन्दतावाद की दृष्टि से किया गया है। आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास  
 में विवेच्य काल की द्विवेदी - युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य महावीर  
 प्रसाद द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। वे एक उच्च कौटि के गद्य - लेखक  
 और सम्पादक भी थे ही साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व में कवि और आचार्य  
 के दो परस्पर - विरोधी आयात भी समन्वित थे। विवेच्य-युग आचार्य द्विवेदी  
 के व्यक्तित्व से प्रभावित रहा है। वस्तुतः उसे द्विवेदी - युग की संज्ञा देना  
 समुचित है। द्विवेदी - युग की कविता के द्वारा जिस काव्य का बोध होता है  
 उसे सामान्य रूप से इतिहासात्मक, नीरस और पुनरुत्थानवादी समझा जाता है।  
 आचार्य द्विवेदी के प्रभाव में रह कर काव्य रचना करने वाले कवियों के सन्दर्भ  
 में यह धारणा किसी सीमा तक उचित भी प्रतीत होती है। किन्तु विवेच्य -  
 युग में कवियों का एक ऐसा वर्ग भी रहा है जो आचार्य द्विवेदी के प्रभाव और  
 उनके मण्डल से मुक्त रह कर काव्य - रचना करता रहा है। आचार्य पं० रामचन्द्र  
 शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ में इन कवियों का मूल्यांकन 'स्वच्छन्द पारा'<sup>स्वच्छन्द</sup>  
 के अन्तर्गत किया है। स्वच्छन्द पारा का अर्थ स्वतन्त्र - पारा भी हो सकता है।  
 किन्तु यह एक सार्थक सन्दर्भ है। शुक्ल जी ने कवियों की जिस पारा के  
 सम्बन्ध में स्वच्छन्द विशेषण का प्रयोग किया है उनके काव्य में स्वच्छन्दतावादी  
 प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। आचार्य शुक्ल महीदय इस स्थिति से अनभिज्ञ नहीं थे।  
 उन्होंने प्रस्तुत सन्दर्भ में अँग्रेजी के रोमान्टिसिज्म शब्द का भी उपयोग यथास्थान  
 किया है। विवेच्य युग की इस स्वच्छन्द पारा के कवियों में पं० बीधर पाठक  
 एवं पं० राम नीरस त्रिपाठी अग्रणी हैं। अन्य कवियों में रूप नारायण पाण्डेय,  
 मुकुटधर पाण्डेय, मन्नन द्विवेदी, गजपुरी एवं सुमित्रानन्दन पन्त आदि आते हैं।  
 आयावाद के स्तम्भ बाबू कर्णेश्वर प्रसाद ने भी इसी युग के उत्तर चरण में  
 काव्य रचना प्रारम्भ की थी। निराला जी की 'बूली की कली' भी विवेच्य  
 युग के उत्तरार्ध की कृति है। आयावाद के कवियों की तत्कालीन कृतियों में  
 स्वच्छन्दतावादी काव्य - प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

द्विवेच्य युग के द्विवेदी-मण्डल के कवियों में कविवर ज्यौध्या सिंह उपाध्याय हरिवंश तथा बाबू मैथिलीशरण गुप्त चिरस्मरणीय हैं। सनेही जी और नाथ राम शर्मा और जैसे कवि इसी युग की विभूति रहे हैं। इन कवियों के कौ काव्य की एकदम प्रतिश्रियावादी, पुनरुत्थानवादी जफा मुराण पंथी नहीं कहा जा सकता। इन में तत्कालीन सामाजिक चेतना की एक सहर दिखलाई पड़ती है। सामाजिक कुरीतियों और पराधीनता की भावना से यह कवि भीड़ित हैं। इनके काव्य में एक ओर तो समाज की निरर्थक कठिणों को तोड़ने और दूसरी ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता के आव्हान की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। बीसवीं शताब्दी के बुद्धिवाद का प्रभाव इन कवियों पर है। हमने यथास्थान इनके काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के अनुशीलन का प्रयत्न किया है। उपर्युक्त स्वच्छन्द चारा के कवियों की तुलना में ये कवि शुष्क नीरस एवं कृत्रिम प्रधान काव्य रचना करते दिखलाई पड़ते हैं। इनके कृतित्व में उन कवियों जैसी कल्पना शीलता एवं अनुमति की सघनता नहीं है किन्तु एतने मात्र से ही उन्हें बख्शीकार नहीं किया जा सकता। जहाँ तक कठिणों को तोड़ने का प्रश्न है, मुक्ति चेतना का सन्दर्भ है और सुधारवादी प्रयत्नों का प्रश्न है द्विवेदी मण्डल के ये कवि पूर्ण स्वच्छन्दतावादी हैं। माणा शैली के क्षेत्र में तो उन्होंने ज्यौ स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया है। सही बोली को काव्य मंच पर प्रतिष्ठित करने का सर्वाधिक श्रेय हरिवंश जी और गुप्त जी को दिया जा सकता है।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में विषय से सम्बद्ध सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। स्वच्छन्दतावाद क्या है? उसकी मूल प्रवृत्तियाँ क्या हैं? औंजी के रोमान्टिसिज्म और हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में परस्पर विभेद और समानता की रैतार्ये कौन सी हैं। वापुनिक हिन्दी कविता विकास - इतिहास के किन सौपानों से होकर गुजरी है। प्रथम अध्याय में हमने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। औंजी साहित्य में बटुठारखी शताब्दी ६० में स्वच्छन्दतावाद का अभ्युदय हुआ था जिसने अपना एक युग और इतिहास बनाया। उसके प्रधान स्तम्भों में गै, बायान, शैली, कीटख, बईसवरी जाते हैं। इन कवियों ने समग्र रूप

वे पुरातन पंथी रुढ़ियों सामन्ती जीवन मूल्यों और साहित्य की बमिखात परम्पराओं के प्रति विद्रोह करते हुए उन्मुक्त चिन्तन स्वच्छन्द प्रेम और उदारमानवतावादी दृष्टिकोण को प्रज्वलित और प्रोत्साहन दिया है। इन प्रवृत्तियों के वाधार पर क्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। वाधुनिक हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का अभ्युदय बीसवीं शताब्दी ई० के साथ होता है। यैसा कि हमने प्रथम अध्याय में स्पष्ट किया है, क्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य और हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में देश - कालगत एवं परिस्थितिवन्ध अन्तर है। यह ठीक है कि हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद की तरह क्रेजी के उपर्युक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों और उनके काव्य के अध्ययन एवं अनुशीलन के साथ साथ किन्तु हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवि अिन्न प्रकार की सामाजिक - राजनीतिक परिस्थितियों की उपज थे। उनकी समस्याएँ भिन्न रही हैं और जीवन मूल्यों तथा सामाजिक वाद्यों की दृष्टि से उनका सन्दर्भ भिन्न रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के सुधारवादी धान्दोलनों और राष्ट्रीय नवजागरण की भावना ने हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद को एक भिन्न - भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया। तत्कालीन कवि समाज की निजीव रुढ़ियों एवं कुरीतियों से झूकते झिझकाई पड़ते हैं। देश की पराधीनता के प्रति उनके मन में गहरा वाश्रोह है। जिस सीमा तक वे रुढ़ियों को बरखीकार करना चाहते हैं, पराधीनता की बेड़ियों को उतार फेंकना चाहते हैं उसी सीमा तक वे समाज में कतिपय उच्च वाद्यों की स्थापना चाहते हैं। उन में एक उदारमानवतावादी चेतना है। वे जाति पांति, कुवा छूत की भावना को समाप्त करना चाहते हैं। नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की भाँति उनकाप्रिय विषय है। इस प्रकार विवेच्य कालीन कवियों का रचनागत परिवेश एकदम बदला हुआ झिल्लाई पड़ता है। भाषा, शब्द, व्यक्तित्व वादि सौत्रों में भी वे नवीनता और मौलिकता के पट्टाचर हैं।

वाधुनिक हिन्दी कविता का विकास विद्रोह और संघर्ष की भूमिका में हुआ है। इस विकास इतिहास को सुविधा की दृष्टि से लौह नार लुठ्ठी में विभक्त किया जा सकता है जिन्हें क्रमशः भारतीय-युग, द्विवेदी-युग, छायावादयुग एवं छायावादोत्तर युग की संज्ञा दी जा सकती है। अन्तिम युग के अन्तर्गत

प्राति-वाद, प्रयोगवाद और नई कविता कादि की धारों सामाहित हैं। भारतेन्दु युग रीतिकाल की निर्जीव परम्पराओं, सामन्ती जीवन मूल्यों, सामाजिक अन्याय, शोषण एवं पराधीनता से विद्रोह करता हुआ आया। उसे अपने लक्ष्य में थोड़ी सफलता भी मिली। द्विवेदी-युग की कविता ने भारतेन्दु-युग की कवी-कुवी रुढ़िवादिता एवं पुरातनप्रियता से विद्रोह किया। सामाजिक सुधारों और स्वाधीनता की पैतना की उसने और अधिक स्पष्ट स्वर में मुखरित किया। हिन्दी कविता का आधुनिक युग सच्चे अर्थ में द्विवेदी - युग से आरम्भ होता है। भाव, भाषा, रैती आदि की दृष्टि से वास्तविक प्रान्ति वस्तुतः द्विवेदी - युग में हुई। छायावाद - युग के कवियों ने द्विवेदी युग की उत्तिवृत्तात्मकता उपदेशात्मकता और पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों से विद्रोह किया। द्विवेदी युग में ही "स्वच्छन्द धारा" के कवि रचना के एक नूतन पंथ का संकेत दे चुके थे। छायावाद ने उसका अनुसरण किया और उसे प्रशस्त बनाया। प्रगतिवाद का अधिभाव समष्टिगत साम्यवादी दलन की पृष्ठभूमि में हुआ। प्रयोगवाद ने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को मान्यता प्रदान करते हुये रचना शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोगों का अपना लक्ष्य माना। नई कविता और बाद की अन्य काव्यधाराओं ने प्रयोगशीलता की पावना और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की और अधिक विकसित किया है। प्रथम अध्याय में हमने आधुनिक हिन्दी कविता के इस विकास - इतिहास का भी एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। क्योंकि विवेच्य कालीन काव्य का अध्ययन करने के लिये उसकी पूर्वापर गतिविधियों का सम्यक् विवेचन अपेक्षित है।

प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में विवेच्य कालीन काव्य की पृष्ठभूमि और तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अनुशीलन किया गया है। ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के अनुशीलन के स्तिमे बिना विवेच्य कालीन काव्य की नई दिशाओं और उपलब्धियों का बोध सम्भव न था। अतस्य हमने उत्तर रीति काल एवं भारतेन्दु युग की काव्यगत प्रवृत्तियों का संक्षिप्त अध्ययन किया है। रीतिकाल के उत्तरार्ध में बड़े दरबारों का युग समाप्त हो रहा था। छोटे सामन्त वीरे वीरे उनका स्थान ग्रहण कर रहे थे। नई उमर ने याली विदेशी शक्ति की, भारतीय

संस्कृति और साहित्य से कोई मतलब नहीं था। अतएव तत्कालीन काव्य एवं कला को उन विघटित होते हुये छोटे छोटे घरबारों ही में बाध लेना पड़ा। कैवल्य और बिहारी आदि कवियों की अपेक्षा उपर रीति काल के कवियों के काव्य में जन-जीवन का चित्रण अधिक गहराई से मिलता है। उनके काव्य में सामाजिकता की भावना एवं अनुभूति की गहराई है। कैवल्य और बिहारी की अपेक्षा देव और घनानन्द के काव्य में सामाजिकता और नये युग के बोध की मात्रा अधिक परिलक्षित है। उन के काव्य में सामाजिक लक्ष्यों एवं कुरीतियों का विरोध पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उनकी भाषा भी कैवल्य और बिहारी से भिन्न है। उन्होंने भाषा की समतल विप्रायिनी प्रवृत्ति को छोड़ कर सरस शुद्ध और समीप भाषा में अपने हृदय की सख्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। उनके काव्य की यह स्वाभाविकता उन्हें भारतेन्दु-युगीन कवियों की भाषा के अधिक निकट कर देती है। अतः इन कवियों में रीति कालीन संकुचित दृष्टिकोण से बाहर निकलने की छटपटाहट का अभाव मिलता है। इन के काव्य में साधारण जीवन की कलक है। भाषा और शब्दों की दृष्टि से भी उपर रीति कालीन काव्य और भारतेन्दु-युगीन काव्य में विशेष अन्तर नहीं है। भारतेन्दु-युग काव्य का नवजागरण काल रहा है। इस काल के कवियों ने परवर्ती विवेकी-युग के कवियों की नई दिशा प्रदान की है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने विलासी जीवन से हटकर काव्य को लोक जीवन के राजपथ पर खड़ा किया। इस प्रकार उन्होंने विवेच्य काल के स्वच्छन्दतावादी कवियों का पथ प्रशस्त किया। इस युग का समस्त काव्य समाजीपयोगी रहा है। अतः यह कहना बिल्कुल ठीक है कि हिन्दी कविता का "माव - कल्प" भारतेन्दुयुग की देन है।

विवेच्य युग का काव्य अपने समसामयिक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों के बीच की सृष्टि है। भारतीय और पश्चात्य सभ्यता के टकराव से हमारी सीढ़ें हुई पैतना उदङ्गु लीगई है। इस नवजागरण से देश की प्राचीन परम्पराओं और निष्ठा को एक धक्का लगा। सम्पूर्ण देश नवीन विकास की लहर से प्रभावित हुये बिना न रह सका। देश के राष्ट्रीय एवं सामाजिक

जीवन में उभरत पुष्प होने लगी। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रगति पर राजनीतिक, धार्मिक, एवं वाणिक परिस्थितियों का विस्तृत प्रभाव पड़ा। राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित हो कर कवियों ने अपने काव्य में अतीत का अवलम्ब ग्रहण किया। पुराने महापुरुषों और पौराणिक देवी - देवताओं का नये मानवीय रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार के चित्रण के माध्यम से विवेच्य कवियों ने देश के लोगों को नया विश्वास और नया गौरव प्रदान किया। उनके प्रयत्नों के बल पर हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन फूला फला। राष्ट्रीयता की भावना का सुत्रपात मारतेन्दु युग में ही हो गया था परन्तु विवेच्य - युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इसका विस्तार किया। राष्ट्रीय चेतना का प्रसार स्वर सब से पहले राम नरेश त्रिपाठी के काव्य में मिलता है। त्रिपाठी जी का विश्वास था कि वाणिक पतन ही समस्त दुर्गों एवं विषमताओं का कारण है विवेच्य युग के अन्य कवियों ने भी स्वाधीनता की भावना को बल प्रदान किया। उन्होंने पराधीनता के साथ साथ सामाजिक दुरीतियों एवं रुढ़ियों आदि का तीव्र विरोध किया। उनके उदारवादी दृष्टिकोण से साहित्य में सहिष्णुता और नव जीवन का उदय हुआ। रुढ़िवादिता पीछे छूट चली और नवीन परम्पराओं का अभ्युदय होता गया। विवेच्य काल के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जीवन को एक व्यापक और गतिशील परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया। अनुभूति की ईमानदारी और कल्पनाशील दृष्टि ने उनके काव्य को युग जीवन से सम्पृक्त किया। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में एक नये युग का सुत्रपात हुआ।

**विषय - वस्तु और भाव - भूमि के परिवर्तनों के साथ काव्य का शिल्प बदल जाता है। विवेच्य युग के कवियों ने पुरानी भाषा, शैली, शब्द एवं वर्तकार आदि के स्थान पर नई भाषा शैली और नये अक्षरों के प्रयोग का प्रयत्न किया किन्तु उनके काव्य में कला की अपेक्षा सामाजिक चेतना का स्वर प्रधान रहा है। नवयुग की नई चेतना और नवीन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उन्होंने यथासम्भव नवीन किन्तु सत्य शिल्प का अवलम्बन ग्रहण किया है। नूतन शिल्प विषयक सम्पूर्ण चेतना उनके काव्य में नवीन विषय वस्तु और नये दृष्टिकोण की सहाय - समर्थ माध्यम होकर आई है।**



प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में विवेच्य युग की काव्य सम्बन्धी चारणावर्ग एवं मान्यतावर्ग पर विचार किया गया है साहित्य सर्वैय युग-जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। जीवन के स्वरूप एवं वाक्यी प्रत्येक युग के साथ बदलते रहते हैं। साहित्य उस परिवर्तन से प्रभावित होता है। उस तथ्य साहित्य के स्वरूप और वाद्यों में भी परिवर्तन होता रहता है। युग के अनुसार बदलते वाली साहित्य - दृष्टि और चेतना बीसवीं शताब्दी के स्वच्छन्द कवियों के काव्य में उपलब्ध होती है। काव्य-दृष्टि सम्बन्धी नवीनता उन्हें द्विवेदी - मण्डल की शुष्कता, नीरसता एवं वादविवादिता से जला कर देती है। भारतेन्दु युगीन कवियों की काव्य सम्बन्धी मान्यतावर्ग अधिकांश में संस्कृत काव्य-शास्त्र पर आधारित रही है। विवेच्य युग के द्विवेदी मण्डल के कवियों पर भी प्राचीन काव्य शास्त्र का प्रभाव अधिक दिताई पड़ता है। हरिद्वीप जी ने अंग्रेजी और उर्दू साहित्य के प्रभाववश काव्य-मान्यता में घोलघाल के शब्दों और मुहावरों के प्रयोग पर कुछ बल दिया है। गुप्त जी ने काला की अमित्राक्षर छन्द प्रवृत्ति के महत्व को स्वीकार किया है। लोचन प्रसाद पाण्डेय ने अंग्रेजी के सानेट की काव्य धारा की परम्परा को अपने काव्य में अपनाया है। स्वच्छन्द धारा के कवि पं० बीपर पाठक ने अंग्रेजी काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को हिन्दी काव्य में लाने का व्यापक प्रयत्न किया है। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य पर लोक-साहित्य का गहरा प्रभाव है। उनके कुछ काव्य 'पथिक' में वायुनिक जनवादी चेतना परिलक्षित है। विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवि अधिक आत्म विश्वासी हैं। वे अंग्रेजी साहित्य एवं सम्यता से वातन्त्रित नहीं हुये। उसके श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण करने का उन्होंने प्रयत्न किया उनकी यह विशेषता उन्हें द्विवेदी मण्डल के कवि पारंपार्य सम्यता एवं साहित्य से परहेज करते हुये दिलाई देते हैं। उनमें स्वच्छन्द धारा के कवियों की तुलनाई नई चेतना का अभाव सा है। वे प्राचीनता का अनुसरण करते रहे हैं। स्वच्छन्दता-वादी कवि पुराने सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के साथ नये मूल्यों और नई स्थापनाओं की छवि करते हुये चले हैं। इन कवियों के काव्य में अतीत का विक्रम जहर है परन्तु उन्होंने संस्कृत काव्य शास्त्र के वाद्यों को नवीन रूप में ढालने का प्रयत्न किया है। अपनी नवीन चेतना द्वारा उन्होंने मावी हिन्दी काव्य के तथ्य पथ प्रशस्त किया है। अधिकांश आलोचकों ने द्विवेदी मण्डल के कवियों और

स्वच्छन्दतावादी कवियों को एक ही दृष्टि है वाक्य का प्रयत्न किया है। द्विवेदी मण्डल के कवि नैतिकतावादी हैं। वे कवीत का वाक्य लीजते हैं और उन में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों की प्रधानता है। द्विवेदी मण्डल के बाहर के कवि पश्चिम के वैज्ञानिक प्रचार एवं प्रसार से प्रभावित हैं। उन कवियों ने भी अपने काव्य में कवीत की उद्देश्यता उद्घोषित नहीं की है लेकिन चेतना ही उनके काव्य का मूलधार रहा है। उनका वाक्य कवित्व एवं कविताद पर आधारित है। हिन्दी काव्य में उदार स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का आरम्भ उन कवियों के पद्यत्वों के परिणाम स्वरूप ही सम्भव हो सका। ये कवि काव्य में सामाजिकता के पक्षपाती रहे हैं। एकदम उपयोगितावादी कविता प्रचार बन जाती है और कला की दृष्टि से दुर्लभ हो जाती है। उन कवियों के यहाँ इस तथ्य के प्रति संतुष्टता का भाव दिखाई पड़ता है। इसीलिए उनका काव्य न तो कला विहीन है और न सामाजिकता से हीन। उन कवियों ने पवित्रतावादी दृष्टिकोण को अपने काव्य में आरोपित नहीं किया है। स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रधान दृष्टिकोण यही रहा है कि मानव बनिपाय रूप से जनकों कृतियों का प्रीति है।

चौथे अध्याय में विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य की विषय-वस्तु का अध्ययन किया गया है। विवेच्य युग के कवियों ने अपनी पूर्व परम्पराओं को एक पक्ष नहीं बहला बल्कि उन्हें नये कथों और नये सम्बन्धों में प्रस्तुत किया है। पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों पर इस युग के कई कवियों ने रचनाएँ की हैं। उनकी कृतियों की विषय-वस्तु पौराणिक है लेकिन नययुग की चेतना से सम्पृक्त है। हरिवंश जी का 'प्रिय प्रवास' उसका सजग प्रमाण है। इस में देवत्व के स्थान पर मनुष्यत्व प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। हमारे साहित्य में मानवतावादी धारणा का अम्युदय विवेच्य युग में स्वच्छन्दतावादी वाग्वोलन के अन्तर्गत ही हुआ। रामनरेश मिश्राजी, बीधर पाठक, मैथिली हरण गुप्त आदि विवेच्य युग के कवियों के काव्य में यह भावना पूरी तरह विद्यमान है।

विवेच्य युग के कवियों के रान और कृष्ण वादी मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित हैं। युग की नई सामाजिक और बौद्धिक चेतना ने इस काल के कवियों को जागरूक और स्वायत्तादी दृष्टि प्रदान की है। इसी कारण विवेच्य कालीन काव्य में युगीन समस्याओं का चित्रण ईमानदारी विस्तार एवं गहराई के साथ देखने को मिलता है। स्वच्छन्द कवियों के काव्य ग्रन्थों में देश के सम्पूर्ण नवजागरण की कलक देखने को मिल सकती है। नारी इस युग के समस्त साहित्य का मूल अंग बन कर चित्रित हुई है। नवजागरण से प्रभावित लोगों का विश्वास रहा है कि नारी-जीवन के सुधार के बिना इस देश का सुधार असम्भव है। स्वच्छन्द चारा के कवियों ने नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य 'पथिक' 'मिलन' उसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कवियों के काव्य में प्रकृति प्रेम स्वदेश प्रेम का रूप लेता दिखलाई पड़ता है। उनकी कृतियों में स्वदेश प्रेम की भावना का व्यापक प्रसार है। इस भावना ने राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति को भी जन्म दिया है।

प्रेम और सौन्दर्य की भावना भी विवेच्य युग के काव्य में एक नये रूप में अंकित है। इन विषयों का वर्णन परम्परा से उल्टा दृष्ट कर किया गया है। प्रेम को एक एक व्यापक एवं उदात्त भाव भूमि पर चित्रित किया गया है। प्रसाद जी की 'प्रेम पथिक' त्रिपाठी जी की 'मिलन' और 'पथिक' तथा प्रसाद जी की 'ग्रन्थि' इस दृष्टि से उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। इन में स्वच्छन्द एवं उदात्त प्रेम देखने को मिलता है। इन काव्यों में चित्रित प्रेम और सौन्दर्य में मानवीय गरिमा अधिक है। इन कवियों ने प्रेम को नया अर्थ-गौरव और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। प्रेम को नायक - नायिकाओं के संकीर्ण धर्म से निकाल कर मानवता की विस्तृत भाव भूमि पर उठा दिया है। सामाजिकता और मानव मूल्यों की दृष्टि से इन कवियों का काव्य अधिक सशक्त एवं उदार है। विवेच्यकाल के स्वच्छन्द कवियों के काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों की भी प्रज्वलितता है। व्यक्तिवादी दृष्टि का वारम्भ वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद के साथ हुआ। विवेच्य युग के काव्य में वैयक्तिक स्वाधीनता पर आधारित मूल्य शिल्प की नई प्रवृत्तियाँ प्रशस्त प्रस्फुटित हुई हैं जिनके कारण कायावाद का अन्त्य हुआ।

प्रबन्ध के पाँचवें अध्याय में स्वच्छन्दतावादी काव्य के कला पक्ष का अध्ययन किया गया है। काव्य में हुये नये प्रयोगों के आधार पर उसके विभिन्न रूपों, भाषा, छन्द, कर्तार आदि विषयों की विवेचना की गई है। प्रस्तुत सन्दर्भ में हमने स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक शक्तियों एवं उसकी शिल्पगत प्रवृत्तियों पर विशेष धन दिया है। विवेच्य काल के कवियों ने भाव, भाषा, शिल्प तथा छन्द आदि की दिशा में कुछ अतिरिक्त प्रयोगों के साथ वाधुनिक दृष्टिकोण को लेकर कुछ महाकाव्यों की भी रचना की गई है। हरिवंश की का "प्रिय-प्रवास" तथा गुप्त जी का "साकेत" इसके प्रमाण हैं। युग के नवीन मूल्यों और नवीन दृष्टि का प्रभाव इन महाकाव्यों पर परिलक्षित है। इन कृतियों में उपलब्ध भाषा शिल्पगत परिवर्तन भी महत्वपूर्ण है। "प्रिय-प्रवास" में यह तब वाधुनिक काव्य शिल्प की कसक मिलती है। "साकेत" के गीतों में भाषा एवं अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से वाधुनिकता परिलक्षित है। विवेच्य काल में सण्ड काव्य, वाख्यानक गीति, मुक्तक, गीति काव्य तथा प्रगीतों की रचना भी नये युग के प्रभाव से की गई। त्रिपाठी जी के सण्ड काव्य पौराणिक कथाओं पर आधारित नहीं है। उन्होंने नवीन कथाओं की उद्भावनाओं की हैं। वाख्यानक गीत और काव्य के वाधुनिक रूप हैं। गुप्त जी का "विस्तृत पट" और क "रंग में रंग" इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गीति काव्य में विवेच्य काल की स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का सूत्र प्रसार हुआ है। व्यक्तिगत अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति गीति काव्य के द्वारा ही सम्भव हो सकी। काव्य में व्यक्ति का प्रवेश गीति काव्य के माध्यम से ही हुआ है। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। बीर पाल, रामनरेश त्रिपाठी तथा मुकुट धर पाण्डेय आदि ने कुछ सफल लोक प्रिय प्रगीतों की रचना भी की है। इन प्रगीतों के माध्यम से हिन्दी कविता की व्यञ्जक शैली का विस्तार हुआ है। सड़ी बोली इन कवियों की नई समझ भाषा है जिसके योग से नये छन्दों की उद्भावना हुई है। सड़ी बोली ने लोक भाषा के रूप में सामान्य जनता तक अपने अस्तित्व को प्रकट किया। विवेच्य काल के कवियों ने सामान्य जनता तक अपने भावों को इसी भाषा के माध्यम से पहुँचाया। स्वच्छन्दतावादी काव्य की नवीन प्रवृत्तियों, सृजन की क्षमता सड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य किसी

भाषा में नहीं रही है। स्वच्छन्दतावादी विषय वस्तु के स्थापन में सही बोली के अनुकूल योगदान दिया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य पारा में इन्हीं और वर्तकारों की दिशा में भी नई जमीन तैयार है। बहुत से नये इन्हीं का इस युग में कविताएँ हुआ जिसका परिष्कार एवं समुचित विकास छायावादी काव्य में सम्भव हो सका। विवेच्य कालीन काव्य में नवीन विषयों के वर्णन के लिये रौला, लावनी, जैसे लोक प्रचलित इन्हीं का प्रयोग किया गया। पं० श्रीधर पाठक ने अपने "भारत गीत" में लावनी, रौला, एवं कलती आदि इन्हीं को अपनाया है। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने राष्ट्र के जन जीवन में प्रचलित लोक इन्हीं का प्रयोग अधिक प्रयत्नरूप सफल है। राम नरेश त्रिपाठी के काव्य में भी लोक इन्हीं के प्रयोग की यह प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। परवर्ती छायावादी गीति काव्य का विकास अधिकांश में लोक इन्हीं के आधार पर ही हुआ है। विवेच्य काल में लोक इन्हीं की और छन्दसुख होने की यह प्रवृत्ति महत्वपूर्ण रही है। छन्द पारम्परिक छन्द इन्हीं के स्थान पर सही बोली की प्रकृति के अनुकूल पढ़ने वाली हिन्दी इन्हीं का विकास हुआ है। इस प्रवृत्ति के मूल में विवेच्य कालीन कवियों की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि प्रधान रही है। उन्होंने उस दिशा में भी बड़े परम्परा से विद्रोह किया। जो नये छन्द इस युग में प्रयुक्त हुये परवर्ती हिन्दी काव्य में उनका अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। नये इन्हीं के आविष्कार और उपयोग की भावना में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की फलक मिलती है। विवेच्य युग के कवियों के सम्मुख नयी सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रसार की भावना प्रमुख थी। भाषा के क्षेत्र में एक प्रकार का संघर्ष चल रहा था। ऐसी स्थिति में काव्य की उत्पत्ति की और कवियों का ध्यान कम गया। फिर भी उनके काव्य में नवीन उत्प्रेक्षाओं नवीन अप्रस्तुत विधान एवं सादृश्य योजना देने की मिलती है। जिन से ताजगी का सहसास होता है।

प्रबन्ध के छठे अध्याय में हमने विवेच्य काल की कुछ काव्य कृतियों का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। विवेच्य काल के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य को तीन पारानों में बाँट दिया गया है। (१) - द्वितीय मण्डल के कवि नैतिकतावादी दृष्टि, (२) - द्वितीय मण्डल के बाहर के कवि (स्वच्छन्दतावादी दृष्टि, (३) - छाया

द्विवेदी मण्डल के कवियों में स्वदेश प्रेम राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार की भावना उतनी तीव्र और नहीं है कि उन्हें स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ रखा जा सकता है। इन कवियों की वास्तविकता का दृष्टि मूलतः पुनरुत्थापनावादी है परन्तु उन्होंने तत्कालीन जीवन और समाज का साक्षात्कार किया है। उनकी कृतियों में वर्तमान के स्वर मुखरित हुये हैं और भविष्य का संदेश है। उनकी कृतियों में आधुनिक जीवन की भावनाएँ यत्र तत्र दिखलाई पड़ती हैं। स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता के स्वरों के साथ ही साथ कलसाद का गम्भीर स्वर भी मुखरित हुआ है। आधुनिक बुद्धिवाद के बीच हमें हरिवोध जी के "प्रिय प्रवास" में दिखलाई पड़ते हैं। "प्रियप्रवास" के कृष्ण का व्यक्तित्व कैरीचरित्र नहीं एक वादही महापुरुष के रूप में चित्रित है। परम्परावादी काव्य प्रवृत्तियाँ विविध युग में पैदा की मिलती हैं परन्तु स्वच्छन्द कवियों ने इन छद्म परम्पराओं का जड़ से हिला दिया। उस प्रक्रिया में काव्य की नई प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होकर सामने आईं जिनकी भावना द्विवेदी मण्डल के कवियों में भी दिखलाई पड़ती है। हरिवोध जी का "प्रिय प्रवास" खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। राधा - कृष्ण के प्रेम को लेकर उनके काव्य लिखे गये हैं परन्तु उद्यान्त एवं लोकहितकारी प्रेम का सपना हमें सब से पहले इसी कृति में मिलता है। राधा और कृष्ण का चरित्र इस काव्य में नवीन युग की पुनीती के रूप में है। युग की बौद्धिकता की छाप भी इन चरित्रों में स्पष्ट परिलक्षित है। भावना सेवा की भावना का वर्णन करके हरिवोध जी ने इस उद्योग मानववादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। जो वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद का ही रूप है।

गुप्त जी की "भारत - भारती" में तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का सुन्दर प्रतिबिम्ब है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी इसे कहा जा सकता है। गुप्त जी ने इस में राष्ट्रीयता के स्वर को मुखरित किया है। कलसाद और सीफ की भावना के साथ साथ इस में नये उत्साह और नई शक्ति का भी वर्णन हुआ है। गुप्त जी की इस कृति में सुधारवादी स्वर के साथ साथ कभी और उत्साह की प्रेरणा भी है। अपनी इसी रचना में गुप्त जी अगर की संकीर्ण विषय-सीमा से निकल कर एक व्यापक भाव भूमि पर जाये हैं। जनसाधारण की मनोवृत्तियों का इस में सजीव चित्रण है।

पं० जीधर पाठक स्वच्छन्दतावादी भावनाओं से जोत-प्रोत कितनाई पहुँचे हैं। पाठक जी ने अपनी कृतियों में नये विषयों का ध्यान किया है हिन्दी काव्य की एक नयी भाव भूमि प्रदान की है। छोटे छोटे विषयों को काव्य का विषय बनाया है। यह दृष्टिकोण उनकी स्वच्छन्दतावादिता का सूचक है। काव्य की रूढ़ एवं जड़ परम्पराओं को पाठक जी ने खंगीकार नहीं किया है। भारत गीत और “मनीषिनीद” नवीन राष्ट्रीय विचारधारा की कृतियाँ हैं। इन कृतियों से प्रकृति के स्वच्छन्द चित्रांकन का भी बोध होता है। भाषा शिल्प एवं अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नाज़गी पाठक जी की अपनी विशेषता है। उनके काव्य की मौलिकता एवं नवीनता में द्विवेद्य युग के नीरस नैतिकतावादी एवं उति वृत्तात्मक काव्य बोध को नया मोड़ दिया है उनकी “देहरादून और काश्मीर सुषमा” में प्रकृति का अत्यन्त वनुराम पूर्ण रूप देने का प्रयत्न है। “काश्मीर सुषमा और देहरादून जैसे विषयों पर रचना करना वस्तुतः काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना था। पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों को छोड़ कर साधारण विषयों का ध्यान स्वच्छन्दतावादी को और अधिक प्रवृत्त बनाना था।

“देहरादून” की रचना पाठक जी ने पूर्वी बोली में की है। “काश्मीर सुषमा” का भाषा में है और जिसमें प्रकृति एक सजीव नायिका के रूप में चित्रित है। इस कृति में प्रकृति से एक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया गया है और उसका मानवीकरण किया गया है। “काश्मीर सुषमा” को वाधुनिक हिन्दी काव्य के विकास इतिहास में एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में देखा जा सकता है।

राम नरेश त्रिपाठी के काव्य में भी नई प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। यह पूर्ण स्वच्छन्दतावादी कहे जा सकते हैं। उन्होंने काव्य के पुराने धर्मों को स्वीकार नहीं किया है। लोक गीतों के ध्यान एवं राष्ट्रीय खान्दोलनों में सहयोग की उनकी प्रवृत्ति से साफ़ और स्वच्छन्द प्रकृति का अच्छा परिचय मिलता है। त्रिपाठी जी का काव्य दो युगों के बीच का काव्य है एक और द्विवेदी युग की नीरस उति वृत्तात्मकता है तो दूसरी ओर हायावाद की कौमलता है। उनका काव्य इन दोनों युगों की सन्धि का परिचायक है। उनमें

स्वच्छन्दतावादी छायावादी प्रवृत्तियाँ मुखरित हैं। हैं। “पथिक” और “मिलन” में उनकी राष्ट्रीयता मानवता तथा प्रकृति चित्रण की साम्यता प्रतिफलित है। देश प्रेम प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम से लेकर विश्व प्रेम तक की भावन का समावेश भी इन कृतियों में हुआ है। त्रिपाठी जी के काव्य में नारी जीवन का आदर्श भी देखने को मिलता है। उनके नारी पात्र आधुनिक युग के अनुरूप हैं। उन के समस्त काव्यों में भाषा और छन्द का अत्यन्त परिमार्जित रूप दिखलाई पड़ता है। स्वच्छन्दता धारा के कवियों में वे एक समर्थ काव्य शिल्पी सिद्ध हुए हैं।

छायावाद के आरम्भिक कवियों - जय शंकर प्रसाद सुमित्रा नन्दन पंत तथा निराला आदि की काव्य कृतियों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। छायावाद स्वच्छन्दतावाद की पीठ पर आया और उसका परिपक्व रूप कहा जा सकता है। विवेच्य युग की आरम्भिक कृतियों में कल्पना का प्रसार और अभिव्यञ्जना का नूतन विधान पुष्टव्य है यह रचनाएं हिन्दी में पहली बार एक अभिनव एवं कलात्मक काव्य-सृष्टि का परिचय देती हैं।

उपसंहार में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि विवेच्य युग ( १९०१-१९२० ई० ) की काव्य साधना अपने समसामयिक सामाजिक परिवेश का प्रतिफलन रही है। आचार्य द्विवेदी से प्रेरित पुनरुत्थानवादी काव्य धारा एवं उस से अलग हटकर प्रवाहित होने वाली स्वच्छन्द धारा तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक चेतना के स्मन्दन को लेकर चली है। स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के सन्दर्भ में अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य एवं उसके प्रभाव का विश्लेषण देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का प्रधान योग रहा है। इन से अलग हटकर हम इस काव्य का अनुशीलन नहीं कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता एवं आधुनिक कला चेतना का आरम्भ भी विवेच्य काव्य धारा के साथ ही हुआ। स्वच्छन्दतावादी चेतना में आधुनिक हिन्दी कविता की आत्मा और उसके वाक् रूप में आमूल परिवर्तन कर दिया। आधुनिक भाव बोध एवं आधुनिक रचना शिल्प की हिन्दी कविता का शुभारम्भ काल विवेच्य काल की स्वच्छन्द धारा से ही समझना चाहिए।



## निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के दो दशकों की हिन्दी कविता का अध्ययन स्वतन्त्रतावाद की दृष्टि से किया गया है। इस काल की हिन्दी कविता वाधुनिक हिन्दी कविता के प्रारम्भिक युग का प्रतिनिधित्व करती है और वाक्पङ्क्तियों में इस द्विवेदी-युग की संज्ञा प्रदान की है। द्विवेदी-युग के काव्य को प्रायः पुनरात्मवादी उत्थित प्रधान और नीरस काव्य कहा जाता है किन्तु यह उसका एक पक्ष है। द्विवेदी युग में ही वाचस्पति महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से जगत रत्नकर काव्य रचना करने वाले कवियों में एक भिन्न प्रकार की काव्य चेतना विकसित हुई है। बीच और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से ये कवि द्विवेदी मण्डल के कवियों से भिन्न हैं। इन कवियों की प्रथम पंक्ति में पं० श्रीधर पाठक जाते हैं बीच में पं० राम नरेश त्रिपाठी और अन्त में सुमित्रा मन्वन पन्त जो छायावाद के प्रधान स्तम्भ रहे हैं, किन्तु उनकी काव्य चेतना वाधुनिक स्वतन्त्रतावादी रही है। प्रस्तुत प्रबन्ध में द्विवेदी-युग की इसी धारा का अध्ययन किया गया है। एक ओर तो हमने इस धारा का मूल्यांकन तत्कालीन सामाजिक, वाक्यिक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयत्न किया है। और दूसरी ओर स्वतन्त्रतावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर हमने इसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने की चेष्टा की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को मैं एक प्रयत्न मात्र मानती हूँ। इस तरह का कुछ कार्य अन्य लोगों ने भी किया है जिनमें डा० राम चन्द्र मिश्र का नाम उल्लेख है। मिश्र जी ने अपना अध्ययन मुख्यतः ५० बीघर पाठक को केन्द्र बनाकर प्रस्तुत किया है। मैंने एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में समस्त द्वितीय युग की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन समग्र रूप से करने का प्रयत्न किया है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में सीमित रहने के कारण कुछ मित्रों और श्रोतारक्षियों ने मेरे विषय की विवादास्पद बताया जिनमें डा० नाम्दार सिंह का नाम उल्लेखनीय है। मैं उनके प्रति आभारी हूँ क्योंकि विषय की काल की दृष्टि से अनुपयुक्त बतलाते हुए उन्होंने मुझे दोहरा प्रेरणा प्रदान की। मैं तो जानबूझकर यह भीतिम लिया था। जिस युग की पुनरुत्थानवादी एवं सुधारवादी कहते जाये उस युग की कविता में उसके उपेक्षित स्वच्छन्दतावादी पक्ष का अध्ययन करके मुझे सम्तोष हुआ है। विवेच्य विषय पर कार्य करने से पूर्व मेरी भी यह मान्यता थी कि द्वितीय युग में पुराने विषयों और पुराने वाद्यों को लेकर ही काव्य रचना की गई। और उस युग के कवि अधिकतर में हस्तिसात्परक और नीरस रहे किन्तु अब मेरी मान्यता बल गयी है।

मुझे अनुभूति प्रदान की जाये कि मैं अपने प्रस्तुत खोज कार्य के आधार पर यहाँ तक कह सकती हूँ कि विवेच्य युग में कुछ स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का प्रसार न हुआ होता तो शायद आयावाद इतनी जल्दी न आया होता। आयावाद में भी स्वच्छन्दतावाद के पूरे तत्त्व

विवर्तमान है । किसी विशिष्ट काल की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का परवर्ती विकास सम्भन्ना चाहिए । परवर्ती युग के मातन लाल चतुर्वेदी , सुमन्रा कुमारी चौहान, रावारी सिंह दिनकर एवं हरिवंश राय बच्चन कादि कवि की मुख्यतः स्वच्छन्दतावादी कवि है । इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा श्रीपर पाठक है लेकर वाक्कक निरन्तर प्रवाहित है । किन्तु मैं तो एक निश्चित अवधि की वाधार बनाकर ही अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

प्रबन्ध के लेखन और प्रस्तुतीकरण में मुझे अनेक प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है । सर्वे प्रथम में अपने निदेशक डा० रवीन्द्र प्रनर के प्रति सद्गुण्य से आभारी हूँ । जिनके सतु परामर्शों , सुझाव और संकेतों के बिना यह कार्य इस रूप में सम्भव न हो पाता । डा० प्रनर ने मुझे अपना अमूल्य समय देकर इस प्रबन्ध की त्रुटियों की यथा-सम्भव दूर करने का प्रयत्न किया है । मैं अपने आदर्शनीय गुरु डा० हरिवंश राय की शर्मा , विभाग अध्यक्ष के प्रति भी विषय पूर्वक कृत्य से आभारी हूँ जिनके प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के बिना मैं यह प्रस्तुत प्रबन्ध कभी पूर्ण न कर पाती मैं आचार्य सायबेरी के कर्मचारियों के प्रति भी कृत्य से आभारी हूँ । जिन्होंने सदैव मेरी कठिनाईयों की यथासम्भव दूर किया है ।

मेरा यह प्रयत्न अत्यन्त विनीत भाव से हिन्दी ज्ञात की सेवा में प्रस्तुत है । विद्वज्जनों से मैं आशीर्वाद की आकांक्षा रखती हूँ । जिन विद्वानों से सलकों की कृतियों से मुझे फाय-मग पर सहायता मिली है उनकी मैं कृणी हूँ

और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा पुनीत कर्तव्य है ।

मेरे अपने मित्र डा० अरुण हुसैन साहब के प्रति भी कृतज्ञता से  
बोधगोपी हूँ किन्तु मैंने भी इस कार्य की कठिनाईयों की सम्यक् समझ  
पर दूर किया है ।

मईना साहब

## विषय सूची

### पहला अध्याय

- (क) विषय-प्रवेश (पृ० १ - ३५)
- (ख) स्वच्छन्दतावाद : विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में
- (ग) स्वच्छन्दतावाद और कथावाद
- (घ) स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्तियाँ
- (ङ) कौप्री रोमान्टिसिज्म : स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ
- (च) हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पर पाश्चात्य प्रभाव
- (छ) हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दतावाद का आन्दोलनात्मक स्वरूप
- (ज) सांस्कृतिक जागरण : सामाजिक पुच्छमूढि
- (झ) आधुनिक हिन्दी कविता (पृ० ३६ - ६६)
- (ञ) भारतेन्दु - युग : पुच्छमूढि
- (ट) द्वैदी-युग : विकास युग
- (ड) कथावाद युग : परिपक्व
- (ण) हिन्दी काव्य की नयी विस्तार
- (त) प्रगतिवाद (क) प्रयोगवाद (ग) नयी कविता
- (थ) निष्कर्ष (पृ० ६०-७१)

### दूसरा अध्याय

- (क) विविध कालीन कविता की पुच्छमूढि : (पृ० ७२-७८)
- (ख) उत्तर-रीति काल
- (ग) भारतेन्दु - युग

- (क) नवीन परिस्थितियाँ ( पृ० ७६-८२ )
- (ख) पुष्पार वादी बान्धवलन
- (ग) वायु समाज
- (घ) ब्रह्म समाज
- (ङ) धर्मोत्तरीकीकृत सौख्ययटी
- (च) राम कृष्ण पित्तन
- (छ) राजनीतिक परिस्थितियाँ ( पृ० ८३ - ८६ )
- (ज) राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम
- (झ) भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस
- (झ) साहित्य में नवीन चेतना की लहर
- (ण) विवेच्य कालीन काव्य पर उक्त परिस्थितियों का प्रभाव  
(पृ० ८६ - ९७ )
- (१) साहित्य में वाचिक कला की प्रतिध्वनि
- (२) स्वदेशी बान्धवलन
- (३) समता का समर्थन
- (४) देश की दुर्दशा के कारणों की खोज का प्रयत्न
- (५) वात्सल्य गौरव ज्ञान का प्रयास
- (६) राष्ट्रीय दृष्टि का प्रसार
- (७) स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विस्तार
- (८) कला की दिशा में नये प्रयोग ( ९८ - ११६ )
- (१) नवीन विषय-वस्तु और भाव भूमि का उद्भव और विकास
- (२) शिल्प : भाषा शैली , छन्द , वर्णन

### तीसरा अध्याय

- (क) विवेक्य कालीन कवियों की काव्य - दृष्टि  
पूर्व पीठिका ( पृ० १२० - १२४ )
- (ख) भारतेन्दु युग के कवि और उनकी कविता (पृ० १२५-१२८)  
द्विवेदी - मण्डल के कवि - नैतिकतावादी दृष्टि (पृ० १२९-१५६)
- (१) व्योम्या सिंह उपाध्याय " हरिवीथ "
- (२) बाबू मैथिलीशरण गुप्त
- (ग) द्विवेदी - मण्डल के अन्य कवि :
- (१) बाबू राम शर्मा " रंकर "
- (२) राय फैदी प्रसाद " पूणी "
- (३) राम चरित उपाध्याय
- (४) लीचन प्रसाद पाण्डेय
- (५) गोपाच-शरण सिंह
- (घ) पं० श्रीधर पाठक और अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि  
( पृ० १५७ - १८३ )
- (१) पं० श्रीधर पाठक
- (२) पं० राम मरेश त्रिपाठी
- (३) स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण - अन्य कवि :
- (१) रूप नारायण पाण्डेय
- (२) मन्नन द्विवेदी गजपुरी
- (च) छायावाद के आरम्भिक कवियों की काव्य - दृष्टि  
( पृ० १८४ - १९० )
- (१) जय शंकर प्रसाद
- (२) महाकवि निराला

- (३) सुमित्रा नन्दन पन्त
- (४) मुकुटधर पाण्डेय
- (५) स्वच्छन्दतावादी काव्य - दृष्टि ( पृ० १६१-२०० )

### चौथा अध्याय

काव्य की नवीन विषय-वस्तु ( पृ० २०१-२०३ )

- (क) विवेच्य काल : नवीन प्रवृत्तियों का व्युत्पत्ति
- (ख) नवीन काव्य - कथारंभ ( पृ० २०४-२२४ )
- (ग) पौराणिक देवी देवताओं के नये तथे
- (घ) प्राचीन महापुरुष नवीन परिवेश में
- (ङ) काव्य में लौकिककारी भावना का विकास
- (च) दुःखी मानवता के प्रति सहानुभूति
- (छ) विज्ञान मनुष्य और शीघ्रित घने के भाविक चित्र
- (ज) मानवता के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की भावना तथा नये मानस की प्रतिष्ठा ।

(ग) नारी : उसकी समस्याएं ( पृ० २२५-२४० )

- (१) नारी का नवीन रूप
- (२) अपने अधिकारों के प्रति सजग नारी
- (३) कठिणशील नारी

(घ) धार्मिक समस्याएं ( पृ० २४१ - २४५ )

- (१) धार्मिक कृतियों और बाह्यकारों का विरोध
- (२) स्वयं-प्रेम की भावना ( पृ० २४६-२६६ )

(३) राष्ट्रीयता का उद्भव और विकास

- (१) प्रकृति के माध्यम से स्वयं-प्रेम और राष्ट्रीय भावना का प्रसार

- (२) प्राकृतिक सौन्दर्य , नदियाँ , पर्वत , वन , पशु पक्षी और प्राकृतिक सम्पदा का गौरवपूर्ण वर्णन



- (४) स्वयं के साथ ही स्वामिमान की जगह का सक्रिय प्रयत्न
- (क) प्रकृति : नये वष्य विषय के रूप में (पृ० २६७-२७२)
- (ख) प्रणय का उदात्त स्वरूप ( पृ० २७३-२७७ )  
प्रणय का नया सन्दर्भ ( पृ० २७७-२८२ )
- (ग) काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों का समावेश (पृ० २८३-२८६)

#### पाँचवा अध्याय

- (क) ऐली-शिल्प की दिशा में नये प्रयोग ( पृ० २८७ )
- (ख) वाचुनिक महाकाव्यों की प्रेरक शक्तियों और प्रमुख प्रवृत्तियाँ  
काव्य रूप ( पृ० २८८-३३६ )
- (१) महाकाव्य (२) प्रबन्ध काव्य (३) सण्ड काव्य
- (४) वाच्यमानक गीति (५) मुक्तक (६) गीति काव्य
- (७) प्रगीत
- (ग) माण्डा ( पृ० ३४०-३४९ )
- (१) छड़ी बीली का वाच्यमान
- (२) छड़ी बीली की प्रतिष्ठा
- (३) छड़ी बीली का परिभाषन
- (घ) छन्द ( पृ० ३४९ - ३६० )
- (१) संस्कृत छन्द (२) लोक गीतों के छन्द
- (३) अन्य माण्डों के लिए गर छन्द मुख्यतः उड़ु , बंला  
और ब्रैजी के छन्द

- (क) कंतकार ( पृ० ३६१ - ३६७ )  
 (ख) उपमा , उत्प्रेक्षा और अस्तुतौ विधान  
 (ग) इन दिशाओं में नये प्रयोग

### द्विटा अध्याय

- (क) प्रतिनिधि कवियों और उनकी कृतियों का मूल्यांकन  
 [पृ० ३६८ - ३७१ ]  
 (ख) महाकवि हरिवंश ( पृ० ३७२-३७७ )  
 प्रिय प्रवास का मूल्यांकन  
 (ग) वैष्णवीशरण गुप्त  
 भारत - भारती ( ) कविता  
 (घ) अन्य कवि : गया प्रसाद शुक्ल समेती  
 (ङ) नाथू राम शर्मा लंकार  
 (च) श्रीधर पाठक ( पृ० ४००-४३८ )  
 (छ) पैरान्द्र ( २ ) काश्मीर सुषमा (३) ज्ञान्त पथिक  
 (ज) मनोविनीत  
 श्री राम नील त्रिपाठी  
 कविता ( ) पथिक  
 अन्य कवि : रूप नारायण पाण्डेय  
 ( ) मन्मथ द्विवेदी गजपुरी  
 (ग) जयशंकर प्रसाद ( पृ० ४३९-४४९ )  
 (ख) प्रेम पथिक  
 (ग) सुमित्रा नन्दन पन्त ( पृ० ४५०-४५८ )  
 (घ) वीणा (४) ग्रन्थि  
 अन्य कवि : सुटपर पाण्डेय , निराला (पृ० ४५९-४६५ )

## सारांश वध्याय

उप-संहार : सध्यमन वीर उपलब्धि (पृ० ४६६ - ४७७)

## प रि शि ष ट

- (क) सहायक ग्रन्थ ( हिन्दी ) (पृ० ४७६ - ४८३)
- (ख) पत्र - पत्रिकारं वीर वीर रिपीट (पृ० ४८३)
- (ग) सहायक ग्रन्थ ( कौपी ) (पृ० ४८४ - ४८६)

**पहला अध्याय**  
=====

## विषय - प्रवेश

समय बदलता है, समाज बदलता है, समाज के आचार-विचार बदलते हैं जिनके साथ साहित्य के ढाँच में भी रुढ़ रीतियाँ और विचारों में परिवर्तन आ जाता है। हिन्दीकाव्य में जाधुनिकता का प्रवेश भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ उस युग के साथ उस में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का भी समावेश होने लगा। इस छिद्र भारतेन्दु युग की हम जाधुनिक जगत्वा नवजागरण युग का आरम्भ कह सकते हैं।

१९ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध भारत में नवजागरण का काल है। सुधारवादी आन्दोलन उस काल में अपनी चरम उत्कर्ष पर थी। इन आन्दोलनों का प्रभाव समाज और साहित्य पर उमान रूप से पड़ रहा था। ये आन्दोलन पूरे वर्तमान में परिवर्तन करना चाहते थे। जागे चलकर ये सामाजिक आन्दोलन तीन धाराओं में बंट गये। इन में से एक धारा सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद की थी, जिसका उद्देश्य प्राचीन संस्कृति-सम्यता की स्थापना और उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करना था। इसके समानन्तर दूसरी धारा ने देश की पराधीनता का उन्मूलन अपना उद्देश्य बनाया। यह एक सख्त धारा थी और इस ने कालान्तर में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का रूप लिया। तीसरी साहित्यिक धारा थी। साहित्य में जाधुनिक समस्याएँ और पैतृता मुक्ति होनी लगी थी। लेकिन साहित्य का माध्यम राजनीतिक या दूसरी धाराओं से भिन्न होता है। साहित्य का माध्यम कला है। साहित्य अपनी भाव भाषण या नारेबाजी से नहीं, बल्कि कला के माध्यम से रहता है। हिन्दी साहित्य में इसी कलात्मक आन्दोलन को स्वच्छन्दतावाद कहा गया। इस धारा ने काव्य की प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं की स्थापना की और हिन्दी काव्य के विकास को एक नई दिशा प्रदान की।

स्वच्छन्दतावाद का नाम लेते ही कभी साहित्य के रोमान्टिसिज्म की ओर ध्यान चला जाता है। बहुत से विद्वानों ने स्वच्छन्दतावाद को रोमान्टिसिज्म का पर्याय मान लिया है। वे हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावाद और कभी-कभी के रोमान्टिसिज्म में कोई भेद नहीं करते हैं और जब हिन्दी में उन्हें वे प्रवृत्तियाँ नहीं मिलती हैं

जो कौली के रोमान्टिसिज्म में हैं तो वे हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते । दोनों में कुछ समानताएँ अवश्य हैं । दोनों ही नवीनता के पक्षपाती रहे हैं। प्राचीनता के प्रति अनुचित मोह के विरोधी हैं। जागरूकता और नवीन सामाजिक चेतना को दोनों ने ही काव्य के माध्यम से उद्बोधित किया है । लेकिन दोनों में समानता के तत्व का और अन्तर अधिक है ।

हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद भारत के सुधारवादी बान्दोल्ना की उत्पत्ति है। इस का प्रथम लक्ष्य समाज सुधार था । हिन्दी में किसी भी स्वच्छन्द कवि का मुख्य लक्ष्य राजनीति<sup>क</sup> और आर्थिक स्वाधीनता नहीं था । उन के काव्य में राजनीतिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था का वर्णन अस्तर है लेकिन वह उन का वर्ण्य विषय नहीं है। ये प्रश्न तो सामाजिक दुर्व्यवस्था एवं देश प्रेम आदि के वर्णन के समय उठ सके हुए हैं और बिना किसी समाधान के बिलीन हो गये हैं। लेकिन इन्हें रोमान्टिसिज्म का उदय और विकास वर्सा की तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ और बान्दोल्ना के परिणाम स्वरूप हुआ था । रोमान्टिक कवि मूलतः वर्सा की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था से दुःख्य थे। वे उस समाज से दुःख्य थे जिसने व्यक्ति को मशीन और पूँजी का दास बना दिया था। वे उस वादर्थ की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे जो फ्रांस की क्रांति के बाद स्थापित होने से पहले ही टूट गया था । वे उस सामाजिक मूल्यों के लिए लड़ रहे थे जो स्थापित होने से पूर्व ही टूट चुके थे । उस समय के मानव मूल्यों के प्रति उनका दृष्टिकोण एक ऐसे अन्वेषण की भाँति था जिस के हाथ से सफलता फिसल गई थी और स्व<sup>त</sup>सफलता ने उनमें एक लीक, आक्रोश, एक सीमा तक अज्ञात और पराजय की भावना का संचार कर दिया था जो कभी मिटी नहीं ।

इन कवियों ने अपने विद्रोह का मुख्य अपने जीवन से दिया । कीदर शैली, कायरन, तीनों अपने देश, परिवार से दूर अपने वादर्थ एवं सिद्धान्तों के लिए बलिदान हुए । योरोप का स्वच्छन्दतावादी बान्दोल्न एक स्वतन्त्र एवं साम्राज्यवादी देश के जागरूक व्यक्तियों का अपनी सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक व्यवस्था---

के प्रति विद्रोह था । हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन एक पराधीन देश के अर्थ आधुनिक चेतना सम्पन्न कवियों का अपने समाज की दुराइयों, जड़-परम्पराओं और अन्य विश्वासों के प्रति विद्रोह था । इन का उद्देश्य अपनी जनता में आत्म विश्वास और आस्था का प्रसार करना था । इसलिए इन कवियों ने देश के प्राचीन गौरव और प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया । इन कवियों का दौत्र अत्यन्त संकुचित है। इन में इंग्लैण्ड के कवियों जैसी सामाजिक और राजनीतिक चेतना नहीं है उनका काव्य भी उस कोटि का नहीं है जैसा कि इंग्लैण्ड के रोमान्टिक कवियों का है ।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में आस्था, पराजय, कुप्टा और सीमा की भावना नहीं है। इंग्लैण्ड का रोमान्टिसिज्म अंग्रेजी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कलात्मक रूप है। हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद साहित्य के दौत्र में एक नयी दिशा का निर्देश मात्र है। दोनों के उस अन्तर को स्पष्ट करने का उद्देश्य यह है कि पश्चिम के रोमान्टिसिज्म और हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद को एक दूसरे का समानाधीन समझा जाए ।

## स्वच्छन्दतावाद : विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में-

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद एक नया परिवर्तन बिन्दु था । प्रेम, सौन्दर्य, मानव, प्रकृति, राष्ट्र और जाति का इस काव्य के मुख्य विषय थे । यह विषय काव्य में सदैव रहे लेकिन स्वच्छन्दतावादी काव्य में इनका सन्दर्भ बदल गया । अब तक विषय, भाषा, तथा छन्द आदि के संबंध में प्राचीनता का अनुसरण चल रहा था । भक्ति और रीतिपरक विषय प्रचलित थे । ब्रजभाषा काव्य- भाषा बनी हुई थी । छन्दों में भी दोहा, कविच, तथा सवैया आदि का ही विशेष प्रयोग होता था । काव्य का क्षेत्र बड़ा संकुचित, रुढ़ और मिजीवि सा हो गया था । सामान्य और दैनिक जीवन की भावनाओं का चित्रण कहीं था ही नहीं । श्रीधर पाठक वृत्त एकान्तवासी योगी के प्रकाशन से पूर्व हिन्दी काव्य की प्रगति मुख्यतः परम्परागत थी । एकान्तवासी योगी के स्वच्छन्दतावादिता का अग्रदूत सिद्ध हुआ । उस की सीधी-सादी सड़ी बोली और जनता के बीच प्रचलित लय ही ध्यान देने योग्य नहीं है। उस में कथा की सांकेतिक मार्मिकता भी ध्यान देने योग्य है।<sup>१</sup> बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक के स्वच्छन्दतावाद नामक इस नवीन साहित्यिक आन्दोलन का पुरस्कर्ता बतलाया है। नन्ददुलारे बाबपेयी शुक्ल भी का समर्थन करते हैं लेकिन उनके मत में कई विवादास्पद बातें भी हैं - भारतेन्दु-युग के समाप्त होते-होते प० श्रीधर पाठक की स्वच्छन्दतावादी कृतियाँ प्रकाशित होने लगी थीं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह स्वच्छन्दतावादी धारा मैथिलीशरण गुप्त और हरिवीच जैसे कवियों के नीतिवादी काव्य-प्रवाह में पड़ कर विहीन होती जा रही थी । यद्यपि रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय, आदि की काव्य कृतियाँ ने उसे एकदम लुप्त होने से बचाया । इस स्वच्छन्दधारा के बीच-बीच में टूट-जाने से --

---

१- डा० रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली प्र० सं०, पृ० ६०० ।



इस का बहिरंग प्रवाह साहित्यिकों की दृष्टि से जीभल होता रहा। जिससे हिन्दी साहित्य में जाधुनिक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उद्गम और विकास बहुत कुछ अस्पष्ट ही बना रहा।<sup>१</sup>

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य को उस के सामाजिक और ऐतिहासिक सन्दर्भ में कभी ठीक से देखा परखा नहीं गया है, उसे या तो द्विवेदी- युगीन नैतिकतावादी सुधारवादी, दृष्टि से देखा गया है, या छायावाद के परिप्रेक्ष्य में उसका अध्ययन किया गया है।<sup>२</sup> स्वच्छन्दतावाद हिन्दी काव्य की एक स्वतन्त्र धारा है। यह धारा भारत के नवोत्कर्ष और सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इस काव्य में एक नव विकसित राष्ट्र की भावनाओं का चित्रण है इस के बाद शायद पहली बार काव्य और समाज में ऐसा घनिष्ठ और सीधा संबंध स्थापित हुआ। इस युग की समस्याएँ बहुत स्पष्ट थीं। इनके समाधान के लिए संघर्ष भी बहुत तीव्र होता जा रहा था और शक्तियाँ एक साथ भारतीय धर्म, समाज, विचार, संस्कार, और स्वभाव बदलने का कार्य कर रही थीं। काव्य में स्वच्छन्दतावाद इनकी परिणति है।<sup>३</sup>

इन परिवर्तनों में विचित्र गुण थे। एक ओर अंग्रेजी साहित्य, कला दर्शन आदि का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हो रहा था दूसरी ओर प्राचीन साहित्य, दर्शन, धर्म, आदि के पठन-पाठन पर विशेष बल दिया जा रहा था। भारत के अतीत गरव की स्थापना का आदर्श भारतीय समाज सुधारकों और साहित्यकारों का लक्ष्य बन गया था। भारतीय संस्कृति को विश्व में प्रेष्ठ सिद्ध करने का ---

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृ० ६००

प्रकाशन स्थान- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- ग्यारहवाँ संस्करण।

२- नन्ददुलारे वाजपेयी - जाधुनिक साहित्य- पृ० ४१७, भारती मण्डार लीडर प्रेस, कलाहाबाद। तृतीय संस्करण।

३- डा० श्रीकृष्ण लाल- जाधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास प्रयाग, १९५२

प्रयत्न किया जा रहा था। अतीत और वर्तमान, पूर्व और पश्चिम का समन्वय करने के प्रयत्नों के कारण साहित्य, समाज, और राजनीति में कई बन्तरविरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं जिनका यथोचित प्रतिफलन हमारे स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी है। स्वच्छन्दतावादी काव्य ने हिन्दी साहित्य की प्राचीन मान्यताओं में आमूल परिवर्तन कर दिया। हिन्दी साहित्य की संकीर्णता मिटाने में इस आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।<sup>१</sup> २५ को कुछ लोगों ने स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया है जिन में डा० देवराज उपाध्याय, डा० त्रिभुवन सिंह, डा० रामचन्द्र मिश्र, के नाम प्रमुख हैं। डा० त्रिभुवन के अनुसार स्वच्छन्दतावाद एक ऐसा शब्द है जिससे नवीनता का आभास होता है, जिसमें प्राचीनता के निर्भीक का त्याग और नूतनतम आकाशवाणी के प्रति जागरूकता का उद्घोषण निहित है।<sup>२</sup>

डा० देवराज के मतानुसार यह साहित्य अपने युग की संपूर्ण चेतना और विचार संघर्षों की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस संघर्ष में विद्रोह का स्वर भी है परन्तु अतली और प्रज्ञान स्वर रचनात्मक है। कुछ नया करने का प्रयत्न है। नया देखने की तीव्र आकांक्षा से उत्प्रेरित है और बाह्य अनुन्दरता को बदलने के उद्देश्य से परिचालित है।<sup>३</sup>

डा० रामचन्द्र मिश्र के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की वह विशेष सृजना है जो कल्पना और आवेग से युक्त परम्परागत विधान और काल्याण नियंत्रण से विमुक्त और मानसिक उल्लास तथा अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोक भूमि की भावनाओं से युक्त हो।<sup>४</sup>

१- डा० श्रीकृष्ण लाल - आ० हि० सा० का विकास, प्रयाग १९५२ पृ० ३७-३८ ।

२- डा० त्रिभुवन सिंह- आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा- पृ० १७ ।

३- डा० देवराज उपाध्याय - रीमान्टिक साहित्य शास्त्र - पृ० २-३ ।

४- श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व- स्वच्छन्दतावादी काव्य । पृ० ४६ ।

डा० विभुवन सिंह स्वच्छन्दतावाद की नवीनता का आभास मात्र मानते हैं। स्वच्छन्दतावाद नवीनता का आभास नहीं बल्कि उद्घोष है। आधुनिक काव्य में स्वच्छन्दतावाद ने शिल्प, भाषा और छन्द विधान में ही नवीनता का समावेश नहीं किया है, बल्कि एक वैचारिक क्रान्ति भी की है। आधुनिकता की स्पष्ट रूपरेखा हमें स्वच्छन्दतावादी काव्य में ही मिलती है। नई राहों के खोजक इस साहित्यिक आन्दोलन को नवीनता के आभास वाली शब्दावली में व्यक्त नहीं कर सकते।

डा० देवराज की परिभाषा उद्देश्यवादी अधिक है। उनके अनुसार स्वच्छन्दतावाद उपयोगितावादी अधिक है। काव्य आन्दोलन जब अधिक उपयोगितावादी हो जाता है तो वह कला की उच्च कौटि से गिर जाता है। प्रातिवाद अपनी अधिक उपयोगितावादी प्रवृत्ति के कारण ही समझता हो गया।

डा० रामचन्द्र मिश्र ने शब्दों के चमत्कार से स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्ति को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। फिर स्वच्छन्दतावाद सभी साहित्य नियंत्रणों से विमुक्त नहीं है। सभी नियंत्रणों से विमुक्त तो अराजकतावाद होता है। स्वच्छन्दतावाद के अपने नियम, मूल्यमान और विधान हैं। वह मुक्त आकाश का काव्य नहीं बल्कि जन-जीवन और घरेली का काव्य-आन्दोलन है। लेकिन इन विद्वानों के विचार स्वयं में और एक दूसरे विरोधी हैं, ये किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचे हैं। इस लिए हम यहाँ बिबूवेदी जी, वाजपेयी जी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तथा नगेन्द्र जी के स्वच्छन्दतावाद-संबंधी मतों के आधार पर अपना निष्कर्ष निकालेंगे। इन विद्वानों ने स्फुट रूप से स्वच्छन्दतावाद पर मूल्यमान विचारणा प्रस्तुत की है।

डा० सजारी प्रसाद बिबूवेदी का मत है कि - रौमान्टिक साहित्य की वास्तविक उत्पत्ति मूलि वह मानसिक गठन है जिस में कल्पना के अधिरु प्रवास से घन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है इस पर कल्पना का अधिरु और निविड़ आवेग ही निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियों ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं, परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक ---

दूधरे से अलग रह कर काम करती है।<sup>१</sup>

प० नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार \* स्वतन्त्रता की लालसा और बन्धनों का त्याग रोमान्टिक धारा के मूल में व्याप्त है।<sup>२</sup>

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत से स्वच्छन्दतावाद का अर्थ है सानाजिक बन्धनों को तोड़ कर जीवन की स्वच्छन्द भूमि में विचरण करने की लालसा<sup>३</sup> डा० नगेन्द्र छायावाद को रोमानी कविता से अभिन्न मानते हैं उनके अनुसार--कर्म सन्देह नहीं कि छायावाद मूलतः रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में भी वागर्ण और कुण्ठा का मिश्रण है परन्तु फिर भी यह कैसे मूलाया जा सकता है कि छायावाद एक सर्वथा भिन्न देश और काल की सृष्टि है। जहाँ छायावाद के पीछे असफल सत्याग्रह था, वहाँ रोमान्टिक काव्य के पीछे फ्रांस का सफल विद्रोह था, जिसमें जनता की विजयिनी सत्ता ने समस्त बागुल देशों में एक नवीन आत्मविश्वास की लहर बौड़ा दी थी। फलस्वरूप वहाँ के रोमानी काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उस की दुनियाँ अधिक मूर्त थी, उसकी भाषा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उनकी अनुभूति अधिक तीव्र थी। छायावाद की अपेक्षा वह निश्चय ही कम अन्तर्मुखी एवं वायवी थी।<sup>४</sup>

हिंदुवेदी जी ने रोमान्टिक साहित्य को जीवन की अन्तर दृष्टि से परिचालित माना है। जिस में कल्पना के अभिरत प्रवास का सौना जलरी बताया है। हिंदुवेदी जी की परिभाषा के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य अर्थ की भूमिका पर उफ़ा और फलने फूलने वाला काव्य है इस साहित्य ने अपनी प्राचीन रुढ़ियाँ---

१- डा० हजारी प्रसाद हिंदुवेदी - रोमान्टिक साहित्य शास्त्र की, भूमिका-पृ० १

२- प० नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - पृ० ३६६

३- प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - हिन्दी का सामाजिक साहित्य, पृ० ५४

४- डा० नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० २४

संकीर्ण नैतिकता और प्रचलित काव्य रूपों के प्रति विद्रोह करके नयी परम्पराओं को जन्म देने का प्रयत्न किया। सामाजिक स्वाधीनता के साथ व्यक्ति की स्वाधीनता भी इस काव्य का प्रमुख स्वर था। हिन्दी काव्य में यह व्यक्ति बिल्कुल नया था जिसका स्वच्छन्दतावादी काव्य में जन्म हुआ और जो हायाबाद में जाकर विकसित हुआ। विद्वेदी जी के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुभूति कल्पना और वाक्य के माध्यम से प्रकट होती है।<sup>१</sup> स्वतन्त्र अनुभूति किन्हीं बंधे बंधाएँ नियमों, सदाचार, नैतिकता आदि का बन्धन नहीं मानती है। वह एक नये सामाजिक और कलात्मक विश्व का सृजन करने की कल्पना में रत रहती है। उसका विद्रोह किसी एक वस्तु तक ही सीमित नहीं उसका दायें विस्तृत है लेकिन उस में गहराई नहीं इस लिए हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का मूल स्वर विद्रोह नहीं बन पाया। इसका अर्थ यह नहीं कि वह केवल कल्पना का काव्य है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की कल्पना का निर्माण और एक नयी परिपाटी के निर्माण में कृत संकल्प दिखाई देती है। विद्वेदी जी भी रोमान्टिक काव्य के मूल में विद्रोह की भावना नहीं मानते बल्कि उनके विरोधों को परिस्थिति जन्म बतलाते हैं और इसी परिस्थिति को स्वाभाविक स्वच्छन्द भाव धारा के रूप में स्वीकार करते हैं। इसका विरोधी रूप आन्तरिक नहीं बल्कि वह बाह्य परिस्थिति जन्म है। विद्वेदी जी स्वच्छन्दतावादी काव्य को समझने के लिये हमें एक पृष्ठ भूमि प्रदान करते हैं।

जो धारा नियम उत्पन्न करती है और संयमित प्रवृत्तियों के विरोध स्वरूप उत्पन्न हो जायगैसी जो उसे स्वच्छन्दतावादी काव्य की गति का सूचक कहते हैं, असंयम को उन्होंने काव्य की व्यक्तिवादी भावधारा का अर्याप्त बताया है। काव्य के नये रूप नियमों की अवहेलना है। स्वच्छन्दतावादी काव्य, परम्परावादी काव्य से ही का तिरस्कार करता है लेकिन हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य ने बन्धनों का पूर्णतया परित्याग नहीं किया बल्कि उनका परिष्कार किया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद इतना अनियमित और संयम रहित भी नहीं है बल्कि---

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य में नैतिकता की एक दृष्टि धारा हर समय विद्यमान रही है। वाजपेयी जी के सामने बौद्ध का रोमान्टिसिज्म रहा है लेकिन इन दोनों में अन्तर है। अन्त में अपने की भावना हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में नहीं है यह प्रवृत्ति बाद में हायावादी काव्य में आई। हायावाद और स्वच्छन्दतावाद एक नहीं हैं बल्कि यह दोनों काव्य की अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं। क्योंकि अन्त में अपने की भावना अन्ततः रहस्यवाद की ओर लौ जाती है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में रहस्यवादी तत्व प्रायः नहीं हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य की चित्रण भूमि अपने पूर्ववर्ती काव्य से बचती हुई है। इस काव्य के लिए कोई निश्चित सीमाएँ नहीं, वह कौटुकी सी कुटिया से लेकर महल तक के वर्णन के लिये स्वतन्त्र है। लेकिन अधिकतर कवियों ने साधारण और लघु समझे जाने वाले जीवन और वस्तु का चित्रण किया है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने स्वच्छन्दतावाद को सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर जीवन में स्वच्छन्द विवरण करने की लालसा कहा है। मिश्र जी मानते हैं कि स्वच्छन्दतावाद हायावाद और रहस्यवाद, काव्य की अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में इन प्रवृत्तियों ने साथ-साथ जन्म लिया, लेकिन सबसे पहले स्वच्छन्दतावादी काव्य फूला-फूला। समतामयिक घुटन शील परिस्थितियों के कारण साहित्य में इस जीवन के प्रति एक प्रकार की मिश्रित कान्ता उत्पन्न हो रही थी। इस प्रवृत्ति ने रहस्यवाद को जन्म दिया। सामाजिक कठिनाइयों के कठोर बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रादुर्भाव हुआ और हायावाद नवीन कलात्मक अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति लेकर उत्पन्न हुआ इसीलिए हायावाद की कला तो उच्चकोटि की है लेकिन इसका सामाजिक पक्ष बहुत गौण है। रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ इस युग की कठोर वास्तविकता एवं परिस्थितियों के सामने टिक न सकीं इसलिये २० वीं शताब्दी के काव्य में यह अपना एक निश्चित मार्ग बनाने में असमर्थ रही। स्वच्छन्दतावादी काव्य की सामाजिकता और हायावादी काव्य की कलात्मकता के सम्मुख यह जीतल ही गई। मिश्र जी की परिभाषा से कुछ लोग यह अर्थ--

छाते हैं कि यदि वायुनिक साहित्य की इन तीन प्रमुख धाराओं का मूल स्थान एक ही है तो इन्हें जलग-जलग मानने से कोई लाभ नहीं लेकिन एक ही युग में काव्य या सामाजिक जीवन में कई अन्तर धारोधी प्रवृत्तियाँ और धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। एक साथ जन्म लेने से उन्हें समान धर्माँ या समान रूपा नहीं माना जा सकता। इसलिए इन तीनों प्रवृत्तियों की जो २० वीं शताब्दी के काव्य में प्रकट हुई एक नहीं माना जा सकता। जाजपेयी जी की भाँति मित्र जी भी स्वच्छन्दतावादी काव्य को लोक जीवन का काव्य मानते हैं वे इस काव्य को लोक भूमि पर विश्वास के साथ उतरने वाला काव्य मानते हैं।<sup>१</sup>

डा० मोन्द छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से जलग नहीं मानते, वे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को अँग्रेजी के रोमान्टिक काव्य साहित्य के समझा रख कर परखते हैं इससे उनकी परिभाषा कुछ भिन्न हो जाती है। भारत की ऐतिहासिक सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ रोमान्टिक काव्य की भूमि से बहुत भिन्न रही हैं और यह भिन्नता स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्पष्ट रूप से मिलती है। इसी प्रकार छायावाद और स्वच्छन्दतावाद भी एक जैसी वस्तुएँ नहीं हैं। स्वच्छन्दतावाद का मूल स्वर नवीन सामाजिकता का चित्रण है। छायावाद में कलात्मक व्यक्तित्व का मूल रूप में है। पश्चिम के रोमान्टिक काव्य का स्वच्छन्दतावाद और छायावाद दोनों पर प्रभाव तो है लेकिन उस का अनुकरण नहीं है। पश्चिम की साहित्यिक और अन्य विचार धाराएँ भी हमारे बीच बहुत कुछ परिवर्तन संशोधन के साथ आई हैं।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने युग की उदारवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। यह उदारवादी दृष्टिकोण १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत के औद्योगीकरण और नवीन राजनीतिक व्यवस्था के फलस्वरूप अस्तित्व में आया, और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में काफी विकसित हुआ। इस --

समय देश में सुधारवादी आन्दोलनों की धूम मची हुई थी । सदियों से सोई हुई भारतीय चेतना एक नवीन रूप में विकसित हो रही थी । इस चेतना का सूदन रूपक हमें तात्कालीन काव्य में मिलता है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में नये मूल्यों की खोज और अभिव्यक्ति, जड़ परम्पराओं और रुढ़ियों से विद्रोह के सक्रिय प्रयत्न मिलते हैं। इस काव्य ने एक नये मानव की खोज का प्रयत्न किया, यही मानव बागे बल कर हायावादी काव्य में व्यक्ति हो गया । कविता का दौत्र महलों से कुटिया में बाया और संकीर्ण दौत्र से प्रकृति की विस्तृत रंगस्थली में विवरण करने लगा ।

में स्वच्छन्दतावाद की बीसवीं शताब्दी का वह काव्य रूप मकनती हूँ जिसमें समसामयिक चेतना, नये मानव मूल्यों की खोज, विस्तृत और नयी मानव भूमि, सौन्दर्य और प्रकृति के प्रति कौतूहल पूर्ण दृष्टि, बौद्धिक जिज्ञासा, और आत्म अभिव्यक्ति का प्रयत्न है। स्वच्छन्दतावादी काव्य जीवन के सकल तत्त्वों की ओर हो जाने की प्रेरणा देता है ।

ऊपर की विचारणा के आधार पर स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हो सकती हैं:-

- (क) बाह्य संसार से अपने अन्तर के तत्त्वों का समन्वय करने का प्रयत्न ।
- (ख) सूक्ष्म भावबोध ।
- (ग) गहरी संवेदनशीलता और तीव्र अनुभूति ।
- (घ) कल्पना की उच्च उड़ान ।
- (ङ) सौन्दर्यवादी दृष्टि का विस्तार ।
- (च) सौन्दर्य और प्रकृति के प्रति कौतूहल और लालसा भरी दृष्टि तथा वास्तव्य का भाव ।



(क) प्रबल बौद्धिक जिज्ञासा ।

(ख) जीवन की सख्त तत्त्वों की और ली जाने वाली प्रेरणा ।

उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी पर पूरी तरह से लागू होती हैं । परन्तु हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी साहित्य की अपनी कुछ कला की विशेषताएँ भी हैं। योरोप के १६ वीं शताब्दी के समाज में रोमान्टिकिज्म फूला-फूला था । वे परिस्थितियाँ भारतीय समाज की साहित्य में नहीं थी । योरोप के वे कवि-स्वतन्त्र देश के नागरिक थे परन्तु हमारे कवि गुलाम देश में रहते थे। योरोप के कवियों के केवल सामाजिक धार्मिक, रुढ़ियों से लड़ना पड़ रहा था, परन्तु हमारे कवियों को विदेशी साम्राज्यवाद से भी संघर्ष करना पड़ रहा था, हमारे कवियों के सामने देश की स्वाधीन कराने की समस्या भी प्रभु थी । योरोप के समाज में पूँजीवाद पूर्णतः स्थापित हो चुका था परन्तु हमारे वहाँ पूँजीवाद ने अभी अपनी जड़ें जमाना आरम्भ किया था। योरोप में राष्ट्रीय पूँजीवाद का विकास हो रहा था हमारे वहाँ साम्राज्यवाद के द्वारा पूँजीवाद स्थापित हो रहा था योरोप के कवियों का उद्देश्य वर्ग व्यवस्था को उन्नत बनाना था परन्तु भारत में पूँजीवाद का विस्तार धार्मिक, राजनीतिक शोषण के लिये हो रहा था।

राष्ट्रीय पूँजीवाद के विकास में साम्राज्यवादी - पूँजीवाद सबसे बड़ी बाधा था, हमारे कवियों की परिस्थितियाँ योरोप से बहुत भिन्न थीं ।<sup>१</sup> यही कारण है कि हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा अंग्रेजी के कुछ भिन्न रही है।

१-

A. R. Desai, The Social Back ground of Indian Nationalism  
P. 135, Third Edition, Bombay - 1959.

## स्वच्छन्दतावाद और शाय्यावाद

स्वच्छन्दतावाद और शाय्यावाद के पारस्परिक संबंध के विषय में भी विद्वानों में रोमान्टिकिज़्म और स्वच्छन्दतावाद की भांति ही, मतभेद है। कुछ लोग शाय्यावाद को स्वच्छन्दतावाद का एक विकसित शैलीगत रूप मानते हैं।<sup>१</sup> डा० श्रीकृष्ण लाल शाय्यावाद को स्वच्छन्दतावाद की चरम परिणति कहते हैं।<sup>२</sup> इसके विपरीत आचार्य वाजपेयी दोनों में बहुत अन्तर मानते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य शाय्यावादियों के लिए पीठिका और प्रेरणा भूमि तो रही है<sup>३</sup> लेकिन वह न तो उस का शैलीगत विकास है और न चरम-परिणति ही है दोनों में बहुत अन्तर है। स्वच्छन्दतावाद का सामाजिक पक्ष शाय्यावादी काव्य में एक प्रकार से विहीन हो गया है। स्वच्छन्दतावाद के स्वदेश प्रेम और जन-जीवन के अवाधस्वीत की भावना शाय्यावादी काव्य में एक दृष्टि धारा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। स्वच्छन्दतावाद काव्य में जनजीवन के पुत दुःख, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण है। शाय्यावाद में इसकी परिणति व्यक्ति में दिखाई देती है। स्वच्छन्दतावाद और शाय्यावाद में वही अन्तर है जो समष्टिवादी दृष्टि कौण और व्यक्तिवादी जीवन दर्शन में है। डा० ख्यारी प्रसाद जी ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -

‘ शाय्यावादी काव्य में व्यक्ति प्रधान होता है और समाज गौण। उनके सामने केवल व्यक्ति उस की भावना उसके आदर्श, उसकी इच्छा आदि रह जाती है। वह अपने को ठीकर स्वयं ही निर्माणक होने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह-

१- डा० त्रिभुवन सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा, पृ० १८

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण १९६१।

२- आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा की भूमिका से उद्धृत।

३- आचार्य नन्दबुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य- पृ० ४१५।

भारती मण्डार, लीडर प्रेस, जलहाबाद। तृतीय संस्करण।

### स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्तियाँ-

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कविता ने पुरानी परम्पराओं से हट कर अलग मार्ग का निर्माण किया। इस काल की मूल प्रवृत्ति बन्धन हीनता थी। बन्धन हीनता का अर्थ परम्पराओं को तिलांजलि देना नहीं था बल्कि जड़ता और रुढ़ियों से मुक्त होने की आकांक्षा थी। स्वतन्त्र अभिव्यञ्जना, स्वाभाविक और सरल शैली, मुक्त छन्द उसी आकांक्षा के परिणाम हैं। सामान्य जीवन के पात्र काव्य का विषय बनने लगे। कृत्रिम जीवन से छुटकारा पाने के लिए इस युग में जितने प्रयत्न किए गये हैं उसकी चरम परिणति प्रगतिवादी काव्य में मिलती है। काव्य में उदार मानवतावाद का अन्वेषण हुआ। कवि के व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रभाव इस युग में आरम्भ हुआ। कवि द्वारा विषय-वस्तु, छन्द, शब्द-योजना अलंकार आदि चुनने और प्रयोग करने की स्वाधीनता का अन्वेषण स्वच्छन्दतावाद काव्य से ही आरम्भ होता है। इससे पूर्व, कविगण परम्परागत भाषा, छन्द, अलंकार और विषय वस्तु पर काव्य-रचना के लिए बाध्य थे। स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति के साथ आत्मीयता का संबंध है। मक्ति युग में प्रकृति से नैतिक उदाहरण लिए गये हैं। रीति-काल में ऋग्गा के उदीपन विभाव के रूप में उसका प्रयोग हुआ है। श्रीधर पाठक आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति को प्रेरणा देने वाली सहयोगिनी शक्ति के रूप में चित्रित किया है। यहाँ आकर प्रकृति के संबंध में पूरी धारणा और भाव भूमि भी बदल गई। प्रकृति यहाँ न सन्देश वाहिनी है न विरह की व्याकुलता अपना मिलन की प्रेरणा स्फूर्ति देती है, बल्कि वह निरन्तर कर्म करने के लिए उत्साहित करती है।

इस युग में राष्ट्रीय जागरण की लहर पूरे देश में प्रवाहित हो रही थी। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सुधारवादी आन्दोलन व्याप्त हो चुके थे सुधार और युग दृष्टा के लिए रुढ़िवाद और जड़ परम्पराओं का विरोध और नवीनता का पोषण करना आवश्यक था। समाज की सुधारवादी, राष्ट्रवादी चेतना, साहित्य में स्वच्छन्दतावाद के रूप में प्रस्फुटित हुई। सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलन ने साहित्यकार को जीवन के गीत गाने और युग धारा के साथ चलने के लिये बाध्य कर दिया।

हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर बीधा, ठाकुर और बनारस के साथ ही फूट चुके थे। भारतेन्दु और जगमोहन ने इस परम्परा को एक निश्चित रूप देने का प्रयास किया। श्रीधर पाठक में हमें यह परम्परा पूर्ण विकसित रूप में मिलती है। रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय मुकुटधर पाण्डेय ने इस काव्य-धारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य - धारा का यह प्रथम उत्थान है। स्वच्छन्दतावादी काव्य - धारा छायावाद और उसके बाद भी प्रवाहित होती रही। द्वितीय उत्थान के कवियों में सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, मातंगलाल त्रिवेदी, सुमद्रा कुमारी चौहान के नाम प्रमुख हैं। उन कवियों में हमें स्वच्छन्दतावाद का कलात्मक और प्रवृत्तिगत विकास मिलता है। मैंने प्रथम उत्थान के कवियों को ही लिया है।

## रौमान्टिसिज्म

हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद कौजी के रौमान्टिसिज्म के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। दोनों में प्रवृत्तिगत भेद होते हुए भी मैंने स्वच्छन्दतावाद को लगभग इसी अर्थ में स्वीकार कर लिया है। रौमान्टिसिज्म और स्वच्छन्दतावाद का भेद अन्यत्र स्पष्ट किया गया है। कौजी रौमान्टिसिज्म का हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। इस लिए स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठ भूमि और इस पर परिलक्षित प्रभावों को परखने के लिए रौमान्टिसिज्म की मूल प्रवृत्तियाँ और उसके स्वरूप को समझना है ।

यौसेप के १९ वीं शताब्दी के प्रायः सभी विद्वानों और बालीचकों ने रौमान्टिसिज्म के रूप की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है । पर अभी तक वे इस के स्वरूप निर्धारण में एक मत नहीं हो सके हैं। साहित्य की विवादग्रस्त समस्याओं पर बालीचक भी एक मत हो भी नहीं सकते हैं। यहाँ कुछ प्रसिद्ध विद्वानों और बालीचकों के मत रौमान्टिसिज्म के स्वरूप ज्यों समझने के लिए उद्धृत हैं :-

(क) रौमान्टिक शब्द के अनेक अर्थ हैं और कभी-कभी ये अर्थ एक दूसरे के विपरीत भी अर्थ प्रकट करते हैं। कभी इस शब्द का प्रयोग भी व्यर्थ लगता है लेकिन अनेक अर्थों और व्यर्थता<sup>ओं</sup> बावज़ूब देने वाला यह शब्द १८ वीं शताब्दी में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति के लिये प्रयुक्त होने लगा । यह नवीनता के अन्वेषण और परम्पराओं से विद्रोह करने की प्रवृत्ति थी ।<sup>१</sup>

---

१- Grahaw Hough, The Romantic Poets, London 1963, pp. 7-8.

(ख) रोमान्टिक सामान्य अथवा साधारण का विरोध है। स्टौडर के कथन का तात्पर्य ऐसी इच्छा के रूपान्तर से है जो सामान्य से, साधारण दृष्टि से और स्थिरता से भिन्न हो, इस के अतिरिक्त इसकी स्थिति ऐसे क्षेत्र में हो जिसमें निराधार इच्छाओं के लिये शक्तिशाली प्रयत्न होता है।<sup>१</sup>

(ग) लेटर हेज (Lester Hage) महत्वाकांक्षा को ही स्वच्छन्दतावाद का मूलतत्त्व मानता है। उसके अनुसार रोमान्टिक वैयक्तिक अभिव्यक्ति है। रोमान्टिक और क्लासिक (स्वच्छन्द और रीति) का वही संबंध है जो संगीत और क्लासिक कला का होता है।<sup>२</sup>

(घ) हरफोर्ड ने इसे काल्पनिक अनुभूति का एक अवधारण विकास माना है।<sup>३</sup>

(ङ) पेटर के अनुसार साहित्य में सौन्दर्य में आश्चर्य तत्त्व का समावेश, सौंदर्य, की आकांक्षा, सुप्त आश्चर्य बोध, सुप्त प्रकृत बौद्धिक जित्ताया, सामान्य जीवन के सहज तत्त्वों की ओर से जाने वाली वृत्ति स्वच्छन्दतावाद है।<sup>४</sup>

---

१- H.C. Wells, Socialism, P. 48, London 1948

२- Stodder, An Introduction to the Poetry of Romantic revival,  
Page 23, New York 1925.

३- Mario Prus, The Romantic Agony, P. 38, New York. 1933.

४- William Herford, The Romantic Age, P. 59 Cambridge University.  
1938.

(घ) रोमान्टिसिज़्म का अर्थ एक नये साहित्य के उन्मेष में लिया जाता है। कल्पना की उड़ान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिकता और कल्पना इस साहित्यिक आन्दोलन के मूल में रही है।<sup>१</sup>

(ङ) रोमान्टिक साहित्य के मूल में नवीनता की खोज की महत्वाकांक्षा प्रमुख रूप से विद्यमान थी।<sup>२</sup>

(च) जर्मन विद्वान् फ्रिड्रिख (Fritzsche) का मत है कि स्वच्छन्दतावाद मनुष्य की पूर्णता के लिये वह महत्वाकांक्षा है, जो कभी प्राप्त न हो।<sup>३</sup> पश्चिमी आलोचकों ने रोमान्टिसिज़्म की जो परिभाषाएँ दी हैं कबो व्याख्याएँ की हैं वे एक दूसरे से बहुत कम मेल खाती हैं। कुछ परिभाषाएँ तो इंगलिश रोमान्टिक (इंगलिश रोमान्टिक) कवियों की मूल भावना के विपरीत हैं। स्टोडर ने रोमान्टिसिज़्म की असाधारण कहा है, लेकिन शैली, कीदर, तथा धारण के काव्य पर यह परिभाषा सही नहीं उतरती है। इन कवियों ने न निराधार इच्छाओं के लिए प्रयत्न किया है और न उनके काव्य की मूल प्रेरणा ही असाधारण स्थितियों का चित्रण करना है। नया कलात्मक प्रयोग न तो निराधार इच्छाओं का नाम है, और न असाधारण स्थितियों का चित्रण ही है।

---

१- Compton Rickett, History of English Literature. P. 239,  
London, 1956.

२- Joseph T. Shipley, Dictionary of World Literary Terms.  
P. 259, London 1955.

३- The Encyclopedia America P. 539, New York, 1954.

इस परिभाषा की अपेक्षाकृत छेटरहेज की परिभाषा अधिक सन्तुलित है। क्योंकि पश्चिम के रोमान्टिक काव्य में महत्वाकांक्षा अन्ततः व्यक्ति को समाज की ओर ले जाती है। छेटरहेज उस स्थिति पर प्रकाश डालने में समर्थ नहीं हैं। रोमान्टिसिज्म की अनुभूति काल्पनिक भी थी और वास्तविक भी, उसे केवल काल्पनिक कहना जैसा कि हरफोर्ड ने रोमान्टिसिज्म की व्याख्या करते हुए कहा है, ठीक नहीं है। असाधारण विकास को केवल काव्य के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि उस युग के संपूर्ण सामाजिक अधोगतिक विकास में दृढ़ता चाहिए जो स्वयं में बहुत तीव्रगामी था। पेटर ने स्वच्छन्दतावाद का अध्ययन अधिक सहानुभूति के साथ किया है। लेकिन पेटर ने कौतूहल और आश्चर्यजनक प्रवृत्तियों को विशेष महत्व दिया है। स्वच्छन्दतावाद में आश्चर्य प्रश्नों के रूप में लाया है रहस्य के रूप में नहीं, अगर इसे जिज्ञासा का नाम दिया जाता तो अधिक सन्तुलित परिभाषा होती।

रोमान्टिक साहित्य को शिपले साक्षरिक्ता और कल्पना तक ही सीमित कर देते हैं। जब कि रोमान्टिसिज्म का दार्शनिक सामान्य राजनीतिक और साहित्यिक दार्श्यों में भी नवीनता के नये अध्याय का सूत्रपात करना रहा है। शिपले ने रोमान्टिक साहित्य के विषय में एक महत्वपूर्ण बात कही है शिपले ने यह स्वीकार किया है कि रोमान्टिक साहित्य मानव महत्वाकांक्षा का साहित्य है। इससे रोमान्टिक साहित्य के ऊपर निराशावाद के आरोप स्रिष्ठ हो जाते हैं।

यह महत्वाकांक्षा एक नये समाज, नये मानव के निर्माण की थी, जहाँ फा-फा पर मानव बन्धनों की यातनाओं से मुक्ति के लिए तड़प रहा था। साहित्य अपने वर्तमान से सन्तुष्ट नहीं था उस लिए वह एक नये समाज और मानव के सृजन का स्वप्न देख रहा था जो अत्यन्त क्रियाशील कर्मठ और स्वतन्त्र हो लेकिन केवल महत्वाकांक्षा का वर्णन करना स्वच्छन्दतावाद के एक पक्ष का चित्रण करना है। उसके अनेक रंग और पक्ष हैं जिनका इस परिभाषा में कोई उल्लेख नहीं है।



निष्कर्ष:---

स्वच्छन्दतावाद में नये समाज के निर्माण की महत्वाकांक्षा कल्पना, नवीन सौन्दर्य धौध, नये कलात्मक पत्रों का उद्घाटन, व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के माध्यम से सामाजिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण, जिज्ञासा के तत्त्व, अनुदारता और रुढ़िवादिता का सक्रिय विरोध, मानव स्वाधीनता का नवीन उन्मेष, हर क्षेत्र में नवीनता की खोज का प्रयत्न और इस खोज के लिए कई प्रकार के विद्रोह शामिल हैं। इस ने व्यक्ति को सर्वप्रथम महत्व दिया और व्यक्ति के माध्यम से समाज को पूर्णता देने का प्रयत्न किया। इस साहित्य में व्यक्ति से समाज का अध्ययन करने की नवीन प्रणाली का सूत्रपात हुआ, इस दृष्टि से न तो यह केवल कार्लपनिक या असाधारण काव्य ही है और न केवल विद्रोही काव्य-परम्परा को ही जन्म देता है। इसमें अपने समसामयिक जीवन के प्रति व्यन्तौष के स्वर हैं व्यक्ति की वेदना की वाणी है जो वह अपने समाज में देखता है, लेकिन इस साहित्य का मूल स्वर निराशा और पराजय नहीं है, दुःख और अवसाद तत्कालीन समाज के उभरते हुये व्यक्ति के व्यस्तित्व के प्रमुख अंग बन गये थे जिन की अभिव्यक्ति इस विद्रोही काव्य में जरूरी थी। अपनी समस्त निराशा के बाद इसमें आशा का सशक्त धौष मिलता है।

### पाश्चात्य प्रभाव:-

भारतीय संस्कृति से योरोपीय संस्कृति के सम्पर्क का एक बहुत बड़ा परिणाम यह हुआ कि हमने जीवन के दृष्टि में वैज्ञानिक अथवा तार्किक दृष्टि से विचार करना शुरू कर दिया, विचार-स्वातन्त्र्य की बढ़ती हुई तेज़ धारा ने हमारे धर्म, दर्शन, समाज एवं कला की मान्यताओं को भी तौड़ दिया। प्राचीन मूल्यों और मर्यादाओं में कम्बलित उपस्थित कर दी। वास्तव में सांस्कृतिक परम्पराओं के संतुलन में अस्थिरता उत्पन्न होने लगी। बुद्धिवाद की नयी लहर से साहित्य भी अछूता न रह सका। इस नयी लहर ने साहित्य की पुरानी सृष्टियाँ, धार्मिकप्रतिष्ठा और मान्यताओं पर भी प्रहार किये। उसका प्रभाव विवेककालीन साहित्य पर भी पड़ा। हिन्दी साहित्य में राम और कृष्ण के जीवन चरित्र सदैव कवियों की रचना के प्रिय विषय रहे हैं, किन्तु विवेककाल में वैज्ञानिक शिद्दा के प्रसार और बुद्धिवाद के प्राधान्य से ब्रह्मा और मछि के स्थान पर तार्किक शक्ति का प्रभाव पड़ा। तब उनका जन्म नवीन और अलङ्कित रूप में किया गया। अवतारवाद में अविरास की भावना के साथ-साथ उन देवी चरित्रों को मनुष्य की महिमा प्रदान की जाने लगी। हरिऔध ने अपने महाकाव्यप्रिय प्रवास<sup>१</sup> में कृष्ण, राधा, आदि को यथार्थमानव-चरित्र के रूप में चित्रित किया है। गुप्त जी के साकेत महाकाव्य के पात्र भी देवता अथवा अवतार होने की अपेक्षा मानव अधिक हैं।

“रूसी” के मानवतावाद की सुन्दर अभिव्यक्ति हमें शेली<sup>२</sup> के वादसंवाद में मिलती है जिसे फेटीनिज़्म के नाम से पुकारा जाता है। रूसी की सीछल कान्ट्रेक्ट और सुमली पुस्तकें से समस्त योरोप में सनसनी फैल गई। रूसी का सारा दर्शन हमें बीज रूप से इन दो पुस्तकों के प्रारम्भ के वाक्यों से मिल जाता है। उसकी प्रथम पुस्तक का प्रारम्भ- मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होता है, परन्तु वह प्रत्येक स्थान पर दासता की बेड़ियों में जकड़ा है,<sup>३</sup> से होता है। रूसी की सीछल कान्ट्रेक्ट पुस्तक ने फ्रांसीसी क्रांति

१- रूसी - सीछल कान्ट्रेक्ट, पृ० ३५ ।

की स्वतन्त्रता, समता और संयुक्त (लिबर्टी, इक्वलिटी, फ्रेंटरनिटि) के बारे में ध्ये और कीर्ती साहित्य के समस्त रोमान्टिक वान्दोलन की प्रेरित किया। इसी की दूसरी पुस्तक स्पली (स्पली) का प्रारम्भ ईश्वर ने सब वस्तुओं की वज्रना बनाया है, किन्तु समय ने इसे कुरूप और वीभत्त बना दिया है<sup>१</sup> से होता है। इस विचार से रोमान्टिजिज्म के एक नये पक्ष का उद्घाटन हुआ है। रोमान्टिक कवि उच्च वर्गीय समाज के जीवन को ही चिन्तित नहीं करता बल्कि ग्रामीण जीवन को भी अपनी काव्य का विषय बनाता है। इस प्रकार इन कवियों में मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। पहले यह बौद्धिक स्तर पर ही प्रारम्भ हुआ लेकिन धीरे-धीरे यह जीवन में भी व्यवहृत होने लगा। साहित्य में एक नवीन दृष्टिकोण का उदय हुआ, कीर्ती काव्य को रोमान्टिक धारा पर इसी के मानवतावाद का प्रभाव पड़ा आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसी के मानवतावाद की सर्व प्रथम अभिव्यक्ति पारसोन्दु में मिलती है। उनकी कविता में जन जीवन की जीक सुन्दर कारकिर्ी उपलब्ध है। उनकी रचनाओं में सर्वप्रथम समाज की पड़कों सुनाई देती हैं। आर्थिक जीवन में पराई और बकाल, टैक्स, और धन का विदेश - प्रवाह, पार्थिक- दौम में बहुदेव पूजा और पक्षतान्तर के लम्गे सामाजिक दौम में जाति- पार्थि के टंटे आदि जीवन के विभिन्न स्वर सुनाई दिए, इसीलिए उसे क्रान्ति का प्रथम चरण कहा जा सकता है।<sup>२</sup>

२० वीं शताब्दी में आकर कवि बहुजनहिताय ही लिखने लगे । प्रियप्रता और लालत नामक विवेकाकालीन महाकाव्यों में मानव-देव और मानव-प्रेम को ही ईश्वर- प्रेम के रूप में उल्लिखित किया गया है। उक्त काव्यों के चरित्रों का दुःख, जनता के दुःख-दुःख के साथ एकप हो गया।

१- इसी - स्पली पृ० १८५ ।

२- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता का क्रान्ति युग - पृ० २३ दिल्ली - १९७७ ।

प्रेम भारतीय-साहित्य का विरमन्त मूल्य है। यह कविता की सबसे बड़ी प्रेरक - शक्ति रहा है। कर्म यानुसूय परिवर्तन भी होते रहे हैं। वीरगाथाकाल के काव्य में प्रेम की लौकिक अभिव्यक्ति हुई है। मजिबुन तक आते-आते समाज की स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया था। ऐतिहासिक में प्रेम का रूप विकृत हो गया। परम्परागत लक्ष्यों के प्रति जब साहित्य के अन्दर विरोध की लहर प्रवाहित होने लगी तथा स्वच्छन्द विचारों को साहित्य में स्थान मिलने लगा तो प्रेम में भी परिवर्तन आया। स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी कविताओं में स्वयं प्रेमी के रूप में प्रकट हुआ है। स्वच्छन्दतावादी कवियों में यह प्रवृत्ति देश और प्रकृति-प्रेम के रूप में भी प्रकट हुई है। प्रकृति-प्रेम का रूप स्वच्छन्दतावादी कविताओं में विशेष महत्त्व रखता है। हिन्दी के कवियों को यह प्रेरणा जैसी काव्य से प्राप्त हुई। हिन्दी में इसका सुरुवात श्रीवर पाठक ने किया। उन्होंने गोरख शिष्य के श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थों (त्रेवलर, रमिट, डेवर्टेड विथ) के हिन्दी अनुवाद किए जिनसे - हिन्दी के कवियों तथा पाठकों को जैसी काव्य की कुछ प्रवृत्तियों को समझने का अवसर मिला। स्वच्छन्दतावादी काव्य की ऐसी शक्ति एवं स्वाभाविक होती है। कवि अपनी निजी अनुभूतियों को कुछ हद और स्वतन्त्र अभिव्यक्तता ऐसी के गुंफित कर स्वाभाविक संगीत द्वारा व्यक्त करता है।

जैसी के रोमान्टिक काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति सौन्दर्यवाद है। रोमान्टिक कवि सौन्दर्य की भावना से जोत-प्रीत होता है। प्रकृति-सौन्दर्य अथवा नारी-सौन्दर्य रोमान्टिक कवि की कल्पना को उद्धेलित कर देता है और वह अपनी अनुभूति को वास्तव कविता का रूप प्रदान कर देता है। इस का यह अर्थ नहीं कि शास्त्रीयता का पीछा सौन्दर्य प्रेमी नहीं लाता बल्कि सौन्दर्य की शास्त्रीय भावना और रोमान्टिक भावना में अन्तर है। वास्टर पेटर ने इस अन्तर को मही प्रकार बताया है। वे कहते हैं कि सौन्दर्य की शास्त्रीय भावना में एक क्रम है जब कि उसकी रोमान्टिक भावना में सौन्दर्य के साथ कौतूहल के भाव का मिश्रण है।<sup>१</sup> अतः शास्त्रीय सौन्दर्यानुभूति-

१- मैकमिलन मैगजीन, वॉल्यूम ३५, फेब्रुअरी के ५ दिगनिंग्स आफ् एंगलिश रोमान्टिक मूवमेन्ट से उद्धृत पृष्ठ ३।

में बाह्य सुधीलता की प्रधानता रहती है और रोमान्टिक रीन्द्र्यानुभूति का रहस्य कवि के आन्तरिक अनुभवों में निहित रहता है। यह कहना अनुचित नहीं है कि विवेक्य कालीन भावधारा के कवियों में प्रवाद पर केंद्री रोमान्टिक कवियों का सीधा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उस समय के वातावरण - संघर्षी प्रभावों और बंगला की नयी रोमान्टिक कविता से प्रेरणा ग्रहण की। उन्होंने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्र प्रस्तुत किए हैं। ये चित्र विशेषकर उन लोगों के लिए हैं जो उस मशीन युग में प्रकृति के रीन्द्र्य के मोहक सुख से वंचित रह जाते हैं। प्रवाद ने अपनी क्रम भाषा की प्रारम्भिक रचनाओं में प्राकृतिक दृश्यों का यथेष्ट चित्रण किया है। चित्राधार के चौथे भाग (पराग) में उन्होंने प्रकृति के जौक जूठे पुरुष अंकित किए हैं। इसके बाद कानन कुसुम तथा प्रेम-पथिक में भी प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन मिलता है। निराशावाद रोमान्टिक कवियों की मुख्य प्रवृत्ति है। इस निराशा अथवा दुःख का कारण स्वप्न और वास्तविकता का पारस्परिक संघर्ष है। रोमान्टिक कवि स्वप्न के स्वप्न दृष्टा होता है किन्तु जगुषा संसार के कटु सत्यों का सामना करने में अपने को असमर्थ पाता है। यही असमर्थता उसे निराशावादी बना देती है। यह प्रवृत्ति हमें केंद्री के रोमान्टिक युग के जमी कवियों में मिलती है। केंद्री के लिए, संसार के सब व्यक्ति जुती हैं, केवल उस का जीवन ही विभाज्य है। इसी प्रकार कीटस को भी यह प्रतीत होता था कि जैसे प्रकृति में ही कहीं विभाज्य का अंकुर है जिससे वह कच्चा करने पर भी हुटकारा नहीं पा सकता। वह अपनी जोड़ टू बाइट रंगिल में संसार की समस्त सुन्दर वस्तुओं पर विचार की गहरी क्षाप देता है। केंद्री कवियों की इस प्रवृत्ति का प्रभाव हमारे यहाँ के कवियों पर भी पड़ा है। यह प्रभाव स्वाभाविक ही है क्योंकि नि भारत के लिए दो महायुद्धों के बीच का काल और निराशा का काल रहा है। ब्रिटिश राज्य के अत्याचारी से पीड़ित भारत अपनी स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष कर रहा था। सन् १९२०-२१ ई० के आन्दोलन की असफलता के कारण भारत की राष्ट्रीय भावना कुंठित हो जाने लगी थी। भारतीयों के आर्थिक शोषण, दमन और अत्याचारों से देश में मय और अवसाद का वातावरण छा गया था। संघर्षरत जनता अपने नेताओं पर भी -

अविश्वास करने लगी थी । हर जागक भारतीय के सामने यह प्रश्न था कि वह क्या करे ? और कैसे करे ? <sup>१</sup> आयावाद की कविता इसी युग के अवसाद, भय, निराशा वैयना और विवर्तित विमूढता का चित्रण करती है। पन्त, प्रसाद, निराला, तथा महादेवी का काव्य इस युग की सहज अभिव्यक्ति है।

रहस्यवाद भी रोमान्टिक साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। रोमान्टिक कवि अहंवादी होता है । इस मनोवृत्ति के कारण रोमान्टिक कवि वास्तव्य जगत से फलायन कर अपने अन्तर के तत्त्वों पर एकाग्र होता है कज़ामिया का कहना है कि १८ वीं शताब्दी में अंग्रेजी साहित्य में एक नवीन अनुभूति प्रधान साहित्य की रचना होने लगी थी । ब्लैक के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है आगे चलकर वर्डस्वर्थ में इस प्रवृत्ति का विकास हुआ है इसमें कवि की पूर्ण निस्मृतता, निमूढता आत्मत्याग की भावना और उसके अहं की जागरूकता का यथार्थ आत्म-प्रदर्शन आदि ऐसे गुण हैं जो हमारे लिए आध्यात्मवाद के अपूर्व ज्ञानकोष को प्रस्तुत करते हैं। यह कौण आन्तरिक तथा गुप्त होने पर भी सरल और सुलभ है । <sup>१</sup>

अंग्रेजी रोमान्टिक प्रवर्तन के प्रमुख कवि- ब्लैक, वर्डस्वर्थ, और शेली रोमान्टिक होने के साथ ही रहस्यवादी कवि भी हैं। विवेच्य काठीन कविता में रहस्यवाद की दृष्टि से यह कहना कठिन है कि इस पर पार्श्वात्य प्रभाव पड़ा है क्योंकि पार्श्वात्य प्रभाव से पूर्व भी भारत में रहस्यवाद की एक समृद्ध परम्परा रही है। उपनिषदों और भोला दीर्घों का ही अतना समृद्ध साहित्य है कि वे ही आलोच्य-काल की हिन्दी कविता को यह प्रवृत्ति प्रदान कर सकते हैं । रीयस के अनुसार तो उपनिषदों में रहस्यवाद की समस्त कथा मिल जाती है। <sup>२</sup> अतः आलोच्य काल की कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति को हम पार्श्वात्य प्रभाव का परिणाम नहीं कह सकते--

१- लिन्की एण्ड कज़ामिया लिस्डी आफ लिटरेचर । पृ० ६८६, लन्दन (१८७१)

२- रीयस- वर्ल्ड एण्ड द हिन्डविजुअल, पृ० १५६ ।

क्योंकि पाश्चात्य प्रभाव से पूर्व बंगाली साहित्य में यह प्रवृत्ति विद्यमान थी । उपनिषद्, विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों, तथा सुफियों ने रहस्यवादी प्रवृत्ति कुछ साहित्य का सृजन और प्रचार किया है। रहस्यवाद पश्चिम से अधिक भारत की अपनी वस्तु है। हिन्दी में कबीर और जायसी जैसे बड़े सन्त और महाकवि पैदा किये हैं । अंग्रेजी कवि ब्लैक की गणना रहस्यवादियों में होती है। यद्यपि कबीर और ब्लैक के रहस्यवाद में भेद है किन्तु रहस्यवाद के वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है । यही कारण है कि दो विभिन्न देश और काल के कवियों में कभी कभी इतनी समता मिलती है कि वे एक दूसरे से प्रभावित प्रतीत होते हैं। <sup>अंग्रेजी में (१९२६-२७) १८५</sup> गौल्डस्मिथ <sup>अंग्रेजी में (१९२६-२७) १८५</sup> (सन् १७२८-७४ ई०) से माना जा सकता है। आगे इस धारा के अन्दर बर्द्धमर्थ, रैली, कीट्स, वायरने, और काउपर आदि ने अपनी अमूल्य कृतियों का प्रणयन किया। अंग्रेजी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ ये हैं:-

प्राचीन रुढ़ियों के प्रति विद्रोह,  
वार्द्धिकता,  
मानवतावाद,  
वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यञ्जना,  
रहस्यात्मकता,  
सौन्दर्य का सुदम चित्रण,  
प्रकृति में वेतना का आरोप ।

पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के भारत में स्थापना के फलस्वरूप भारतीय समाज में एक नवीन परिवर्तन आया। लोगों के विचारों में एक नयी छान्ति आई। इसके परिणाम स्वरूप विवेच्य काव्य धारा के कवियों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति अधिकाधिक प्रस्फुटित हुई। यहाँ यह ध्यान रहे कि रोमान्टिसिज्म शब्द का प्रयोग हमने एक व्यापक अर्थ में किया है। यहाँ अंग्रेजी के रोमान्टिक काव्य की कतिपय उन प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है जिन्होंने विवेच्य कालीन काव्य-धारा को प्रभावित किया है। ये प्रवृत्तियाँ वस्तुतः एक नये दृष्टिकोण की भाँति विवेच्य कालीन काव्य धारा के कवियों की प्रेरणा का स्रोत रही हैं ।

हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद का आन्दोलनात्मक स्वरूप एवं विकास

स्टौडर ने स्वीकार किया है कि रोमांस दूर से आये हुए एक शब्द का परिवर्तित स्वरूप है जो एक ऐसे जीवन की ओर संकेत करता है जो वर्तमान से अच्छा और अधिक पूर्ण हो तथा उसकी आशा वर्तमान जीवन के लिए न की जाती हो। जिसके संबंध में ज्ञान धुंक्ला हो तथा ऐसे जीवन का होना जीवन में कभी संभव न हो।<sup>१</sup> सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में रोमान्टिक शब्द पहली बार कौजी साहित्य में प्रयुक्त हुआ। यह शब्द रोमान्टिक काल्पनिक कथाओं की विशेषता प्रकट करता था और उन्हीं मिथ्या कथाओं के आधार पर रोमान्टिक शब्द को बहुत सीपतान कर जिस अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा वह काल्पनिक था। इस शब्द का प्रयोग धीरे एवं मद्धे ढंग से किया जाने लगा ।

अठारहवीं शताब्दी में यह दृष्टिकोण थोड़े अन्तर के साथ इंग्लैण्ड फ्रांस और जर्मनी में दिखाई दिया । इसका आरम्भ इंग्लैण्ड में हुआ परन्तु इसकी एक निश्चित तर्क-पूर्ण परिभाषा नहीं बन पाई । इस आन्दोलन से पूर्व काव्य में पौर शास्त्रीय नियमों का विधान था। प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य के नियमों का अनुसरणमात्र किया जाता था । इस का आरम्भ हम बहसकर्ता और कालरिष के काव्य संग्रह लिрикल कैटेड (लिरेक्लि कैटेड) के प्रकाशन से मानते हैं । इस काव्य संग्रह में शास्त्रीय ढंग की परम्परा का त्याग और नवीन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति थी । प्राचीन, शिष्ट तथा शैतिक परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होने वाली यह भावधारा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इंग्लैण्ड में रोमान्टिसिज्म के नाम से अभिहित की गई । इसी भावा-धारा का भारतीय रूप स्वच्छन्दतावाद कहा जाता है।

१-

K. K. Sharma, An Introduction to the Poetry of Romantic

Revival P. 32. 1959.



रोमान्टिक आन्दोलन में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का भी पुट रहा है लेकिन इस काव्य में दर्शन और आध्यात्मिकता दोनों को नया अर्थ प्रदान करने प्रयत्न किया गया है। उन के प्राचीन अर्थ, और रूपों को अस्वीकार किया गया है। नये प्रयोगों में विशेष रुचि ली गई है। जहाँ तक भाषा और शिल्प का प्रश्न है, रोमान्टिक आन्दोलन उन सभी शास्त्रीय सद्धतियों का, जिसमें एक निश्चित विश्व-स्त रूप, स्पष्टता, सन्तुलित भावना, पूर्व निर्मित नियम, जो केवल अपनी ही और देखते हैं, तिरस्कार करता है। नयी तुली पिटी- बिटार्ड लकीरों पर चलना उसे स्वीकार नहीं और न शास्त्रीय शिक्षों में विश्वास करना ही उसे पसन्द है। उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने मानव-जीवन में नहीं बल्कि प्रकृति के नाना दोषों में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किये। जितनी प्राचीन मान्यताएँ शुद्ध कल्पना एवं रुढ़ि के कल पर टिकी थीं उन पर ते लीनों का विश्वास छटने लगा और मानव समाज ऐसे स्थल पर जाकर खड़ा हो गया जहाँ वह किसी भी वस्तु को केवल इसलिये ही मानने को तैयार नहीं था कि वह हमारे लिए मान्य एवं अनुकरणीय है। धर्म शास्त्रों के द्वारा उसे मान्यता प्राप्त है। किसी भी वस्तु को स्वीकार करने से पूर्व मानव समाज उसकी संभावनाओं और उपयोगिताओं की ओर देखने लगा। इससे मानव समाज के पुराने नियमों वाद्यों तथा मान्यताओं में परिवर्तन ही नहीं हुआ बल्कि उन्होंने अपनी आँखों से भी उसके विभिन्न रूपों को देखा। गुनवंत ह्यन्त में वे गाँवों में उपजने वाली मूली, मटर, जैसी उन वस्तुओं को भी प्रेम से खामने लाये जो परम्परागत वर्जन दर्शन के भीतर नहीं दिखाई पड़ती थी। विवेच्यकाल में श्रीपर पाठक के उपरान्त स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को दर्शन मुख्यतः रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधरपाण्डेय एवं रूपनारायण पाण्डेय की कृतियों में होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों की गणना द्विवेदी-मण्डल से बाहर के कवियों में की है क्योंकि उनकी रचनाओं द्विवेदी युग की उत्कृष्टात्मकता और नैतिकतावादी दृष्टि का अभाव है। द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कहे जाने वाले कवियों ने भी स्वच्छन्दतावादी काव्य के विकास में कुछ योगदान किया है। मैथिलीशरणगुप्त हरिवंश, तथा रामनरित उपाध्याय जादि ने धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराओं को नया रूप देने का प्रयत्न किया है। उनके पौराणिक और धार्मिक पात्र परम्परागत नहीं हैं-

वै अपने व्यवहार और चिन्तन में नये युग के पात्र लगते हैं। उनके इस पुनरुत्थानवादी-सुधारवादी दृष्टिकोण में भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मिल जाती हैं। भाषा और सामाजिक परिवर्तन में ये कवि स्वच्छन्दतावादी हैं। धार्मिकता और नैतिकतावादी दृष्टिकोण उन्हें स्वच्छन्दतावाद से अलग कर देती है।

यह ऐसा युग था जब कि देश में राष्ट्रीय जागरण की लहर एक छोर तक प्रसारित हो दूसरे छोर तक प्रवाहित थी। समाज के समस्त दीर्घों में सुधारवादी बान्दीलन चल रहे थे नवीनता के लिए स्वच्छन्दतावादी होना अनिवार्य था। रुढ़ियों जयवा परम्पराएँ किसी नयी व्यवस्था या विचारधारा का चाहे वह फितनी ही जरूरी और युगानुरूप क्यों न हो स्वागत नहीं कर सकती। स्वच्छन्दतावाद ही एक ऐसी प्रवृत्ति है जो नवीनता को जन्म देकर उसे बागे बढ़ा सकती है। समाज सुधार के साथ-साथ देश के सामने सबसे बड़ी समस्या स्वतन्त्रता की थी, देश के अन्दर परतन्त्रता की केड़ियों को तोड़ने और स्वतन्त्रता के मुक्त आकाश में साँस लेने के लिए बान्दीलन चल रहे थे। ऐसी स्थिति में देश का कवि परिस्थितियों से मुँह फेर कर प्रेम और विरह के गान जयवा नायक नायिकाओं के भावों का वर्णन करता तो वह साहित्य और समाज के लिये अभिशाप ही होता। कोई भी साहित्य अधिक दिनों तक सामाजिक भावनाओं की उपेक्षा करके जीवित नहीं रह सकता। साहित्य से समाज और समाज से साहित्य के प्रभावित होने का क्रम सृष्टि की ऐतिहासिक चिरन्तन प्रवृत्तमान धारा जैसा है। इस लिये तत्कालीन कवियों के लिये यह जरूरी था कि वे समाज की माँग के साथ-साथ अपना कण्ठ-स्वर मिलावें। हिन्दी में सर्वप्रथम श्रीधर पाठक ने युग की माँग को अपने काव्य में व्यक्त किया। उनकी कविता के माध्यम से हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों में काव्य धारा को नए नए विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति तो दिखार्ह पड़ती है परन्तु उनकी भाषा क्लृप्त ही रही और पद्य के रूप, अभिव्यञ्जना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दता के दर्शन नहीं हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आरंभ श्रीधर पाठक ने किया। श्रीधर पाठक ने प्रकृति के रुढ़िग्रस्त रूपों तक ही अपने काव्य को सीमित-

नहीं रता बल्कि आरम्भ से लगता था कि स्वच्छन्दतावाद रीतिकाल की प्रतिक्रिया है लेकिन धीरे धीरे प्रतिक्रिया की यह भावना समाप्त हो गई और स्वच्छन्दधारा अपनी सच्चा रूप में अभिव्यक्त हुई ।<sup>१</sup>

आधुनिक हिन्दी कविता में नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हैं। श्री मैथिली शरण गुप्त नैतिकतावादी- राष्ट्रवादी काव्य-धारा के आधार कहे जाते हैं। छायावादी काव्य धारा में जी स्थान बाबू जयशंकर प्रसाद का है, स्वच्छन्दतावादी काव्य में य० श्रीधर पाठक उसी स्थान के अधिकारी हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० श्रीकृष्ण लाल, आदि विद्वान् पाठक जी को स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का नेता तथा केन्द्र बिन्दु मानते हैं। इस युग के अन्य प्रसिद्ध कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, और हरिऔध जी को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आदि विद्वान् स्वच्छन्दतावादी नहीं मानते। वे उन्हें नैतिकतावादी मानते हैं। पाठक जी के अतिरिक्त अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों में ठाकुर जगमोहन सिंह, रायदेवी प्रसाद, पूर्ण, रूपनारायण पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, तथा मुकुटवर पाण्डेय की गणना की जाती है। किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में गुप्त जी, एवं हरिऔध जी की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके काव्य में जैसे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। काव्य भाषा और काव्य विषय को नये रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त, एवं हरिऔध जी सच्चे स्वच्छन्दतावादी हैं। गुप्त जी हरिऔध जी की अपेक्षा प्रकृति और स्वदेश वर्णन में स्वच्छन्दतावादी हैं। साथ ही दोनों नीतिवादी भी हैं क्योंकि एक समय में ही जैसे सामाजिक और राजनीतिक विचार धाराओं के संघर्ष और आन्दोलन होते रहते हैं। समाज और साहित्य दोनों में कई समानान्तर धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। कुछ प्रवृत्तियाँ एक दूसरे की विरोधी होती हैं जैसे भक्ति काल में रीतिकालीन काव्य रचना अथवा रीतिकाल में भक्ति परक काव्य का उर्जन हम किसी युग का नाम अपनी सुविधा के लिए उस युग की मुख्य प्रवृत्ति के नाम पर रत लेते हैं। -

---

१- डा० त्रिभुवन सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा ।

हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा यौत्स्य से नितान्त भिन्न है। कीटस वायरन, रैली, और वडंस्यर्थ आदि रोमान्टिक कवि स्वाधीन देश के नागरिक थे। उन के सम्मुख पराधीनता और विदेशी शोषण की समस्या नहीं थी उन कवियों ने तो सामंती रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया था। उन्होंने उन परम्पराओं नैतिक, धार्मिक अन्ध-विश्वासों, सामाजिक कुरीतियों आदि के विरोध में आवाज़ उठाई थी जो प्रातिशील मानव के पैरों में धेड़ी की तरह थी, मशीनकृता की कुरता को इन लोगों ने महसूस किया था। ये कवि मानव की उन कौमल भावनाओं और सख्त विश्वासों की स्थापना करना चाहते थे जो मशीनों की गड़गड़ाहट में खो गये थे। पूंजीवादी समाज ने अपने उदय के आरम्भ में जिन जनतांत्रिक अधिकारों को जनता को देने का वचन दिया था, वे इन अधिकारों को चाहते थे। अपने उन्हीं विश्वासों के लिए इंग्लैंड के तीन कवियों कीटस, वायरन, तथा रैली ने अपने देश से निर्वासित स्थिति में अपने प्राण तक निहावर कर दिये।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की परिस्थितियाँ भिन्न थीं, यह आन्दोलन किसी उद्योगीकरण की उपज नहीं था बल्कि यह तो तत्कालीन सुधारवादी आन्दोलनों से अनुप्रेरित और प्रभावित था। हमारे सुधारवादी आन्दोलनों का उद्देश्य किसी जनतन्त्र की स्थापना करना नहीं था। उनका लक्ष्य स्वाधीनता भी नहीं थी। यहाँ के सुधारवादी नेता तो भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, बहुत सी बेतना हीनता, धार्मिक पूर्वाग्रहों, जातिवाद, संबंधी दुराग्रहों तथा नारी जाति की दयनीय स्थिति को सुधारना चाहते थे। उन सुधारों के सन्दर्भ में देश की निर्धनता जनता की दयनीय स्थिति, मूस, बेकरी, शोषण, अन्याय, बर्ताचार, विदेशी शासन, आदि के भी प्रसंग आते रहे हैं।

विवेक्य काल की हिन्दी कविता में विदेशी शासन से मुक्ति पाने की छटपटाहट मिलती है। इस काल के अनेक कवियों में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का बाहुल्य है। अनेक रचनाओं में अतीत के स्वर्णिम चित्र हैं। हरिऔध तथा गुप्त जी आदि में ये प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से मिलती हैं। इन लोगों ने नयी माणिक नये हृन्द, नवीन

ऐसी और नवीन काव्य परम्परा को भी जन्म दिया, और विकसित किया, पर उनके यहाँ नवीन विषय वस्तु का अभाव है। भारतेन्दु युग की विषय-वस्तु का विकास तो इस युग में मिलता है परन्तु एकदम नवीन वस्तुओं को काव्य का विषय बहुत कम बनाया गया है। इस युग के काव्य के अधिकांश पात्र पौराणिक तथा ऐतिहासिक हैं। वर्तमान सामाजिक जीवन से पात्रों का चयन बहुत कम मात्रा में है। बंगाली के रोमान्टिक कवि नैतिकता के विरोधी थे। धार्मिकता भी उन्हें बखूबी नहीं लगती थी, वे किसी प्रकार के सुधारवाद के छापी भी नहीं थे। वे स्वच्छन्द प्रेम चाहते थे जिस के लिए उन्हें तत्समजसे बहिष्कृत होना पड़ा। परन्तु हमारे स्वच्छन्दतावादी कवि मूलतः नैतिकवादी हैं वे सुधारवादी बान्धोलनों के समर्थक रहे हैं और पूर्णतः धार्मिक हैं। स्वच्छन्द प्रेम की बात तो वे सोच भी नहीं सकते। उनका आदर्श भी सती और पतिव्रता नारी है। इसलिए विवेक्य काल के इन कवियों और उनके काव्य की इंग्लैण्ड के रोमान्टिक कवियों और उनके काव्य से तुलना कुछ निरर्थक ही प्रतीत होती है।

आज नयी कविता के इस युग में भी छायावादी कवितारें की जा रही हैं। गुप्त और हरिवोध स्वच्छन्दतावाद। बान्धोलन के सहयोगी हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पन्त और निराला छायावाद के स्तम्भ होने पर भी प्रातिशील काव्य धारा के स्तम्भ रहे हैं। मुजिबोध, केदार आदि कवि प्रातिवादी होने पर भी प्रयोगवाद के सहयोगी हैं। डा० श्रीकृष्णलाल के हरिवोध और गुप्त की गणना स्वच्छन्दतावादी कवियों के अन्तर्गत की है।

स्वच्छन्दतावादी बान्धोलन के सबसे बड़े कवि हरिवोध और गुप्त ही नहीं थे बल्कि श्रीधर पाठक थे। जिन अन्य लोगों ने इस बान्धोलन को गति दी उनमें बदरीनाथ मट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिवोध, मैथिलीशरण गुप्त आदि के नाम प्रमुख हैं। पाठक जीके बाद स्वच्छन्दतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी, और रुपनारायण पाण्डेय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

### सांस्कृतिक जागरण : सामाजिक पृष्ठभूमि:-

सांस्कृतिक जागरण, पुनरुत्थान, आदि शब्द एक विशेष अर्थ की ओर संकेत करते हैं। जिस का तात्पर्य है अयोध्या होने के बाद ऊर्ध्वान्मुखी होना, एक जाति वेत जब सम्बन्धता और संस्कृति की दृष्टि से अवोगति की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तब कुछ महान व्यक्तित्व उसे पुनः उबार कर सांस्कृतिक उन्नति के पराकल पर लाते हैं। विश्व के अनेक राष्ट्रों के साथ ऐसा हुआ है, और भारत में भी इस प्रकार नयी चेतना का उत्थान कई बार हुआ। इस चेतना का वाधुनिष्ठतम रूप वह है जो पिछले १५० वर्षों से हमारे समक्ष आ रहा है यह एक विचित्र बात है कि यह नवचेतना आंग्ल-भारतीय सम्पर्क का परिणाम है।<sup>१</sup> प्रत्येक नयी विचार धारा जीवन और जगत की रुढ़ियों का विरोध कर उदात्त<sup>विजय</sup> का सुत्रपात करती है। इस उदारता के अनेक रूप हैं। कभी यह साहित्य में कभी राजनीति में और कभी सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करती है। परिवर्तन क्रान्तिकारी होता है पर उसका पराकल इस कारण उदार होता है कि वह प्राचीन जड़ परम्पराओं का, जड़ बन्धनों का विरोध कर लोक की ओर अग्रसर होता है। कभी को भारत का सांस्कृतिक जागरण विदेशियों के सम्पर्क का परिणाम है किन्तु इस बात को पूर्ण रूप से सत्य नहीं माना जा सकता इस प्रकार विदेशियों का नवीस्थान का अग्रदूत होना एक आकस्मिक घटना थी।<sup>२</sup> यद्यपि यह सत्य है कि पुनरुत्थान में गति विदेशियों के द्वारा ही आई पर विदेशियों ने कभी यह विचार नहीं किया होगा कि एक सांस्कृतिक उत्थान भारत में हो। हाँ यह जरूरी था कि पश्चात्य प्रभाव के कारण भारत ने अपने को पराधीन समझा। इतना हीय समझा कि आगे राष्ट्रव्यापी अपमान और तिरस्कार के आमूल निवारणार्थ उपाय और प्रयत्न किये जाने लगे। भारतीय सांस्कृतिक जागरण के पीछे प्राचीनता का आग्रह अधिक था। यह आग्रह पश्चात्य सांस्कृतिक संघर्ष से और उमर कर सामने आया।

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव। पृ० ३-४।

२- Jawahar Lal Nehru - .Discovery of India, P. 268-269  
IInd Edition 1948.

सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद भारत में दो बार्ते दिखाई दी। पहली चतुर्दिक विषमता और दूसरी जागरण की भावना। इसमें पहली ने सामाजिक जीवन में और दूसरी ने राजनीतिक जीवन में क्रान्ति का सुत्रपात किया। अरविन्द घोष के अनुसार पाश्चात्य संपर्क के कारण हमारे देश में नये विचार, नये भाव, और जीवन के नये मूल्यों का आगमन हुआ पाश्चात्य प्रभाव से हमारे हृदय में नवीन निर्माण का उत्साह मरा<sup>१</sup> अरविन्द के विचारों से पूर्ण रूप से सम्पन्न न होते हुए हम यह मानते हैं कि पाश्चात्य प्रभाव ने हमें:- बौद्धिक आलोचना की दृष्टि, नव निर्माण की शक्ति में आश्रय और नये जीवन को समझ कर उस पर विषय की आकाशा की चलवती प्रेरणा दी।

विश्व के इतिहास में अनेक क्रान्तियाँ ऐसी हुई जिन्होंने देश के सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप निर्धारित किया और साहित्य को समाज से संबंधित कर दिया। इन क्रान्तियों में फ्रांस की क्रान्ति, अंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति और भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल हिन्दू संस्कृति का काल था। इस काल में भारत राजनीतिक दृष्टि से अशान्तिके वातावरण में चल रहा था। राजनीतिक उथल-पुथल ने समाज को सांस्कृतिक रूप से संकुचित कर दिया। यद्यपि इस काल के काव्य में जीवन की जो हल्की<sup>ही</sup> मर्यादा मिल जाती है किन्तु साहित्य का संबंध व्यापक जन-जीवन और सांस्कृतिक जागरण से नहीं हो पाया।

भक्ति काल में पहली बार हिन्दी साहित्य के प्रमुल स्तम्भ सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पर आधारित एक व्यापक धर्म भावना को लेकर चले। भारतीय दर्शन ने विशेष रूप से भक्तिवाद में अभिव्यक्ति पाई। साधुओं और फकीरों ने समाज की मनोवृत्ति-

---

<sup>१</sup>- Arvindo Ghosh - The Renaissance in India, P. ३३, Calcutta (1948)

बदलने का प्रयास किया और वे किन्हीं विधाओं में सफल भी हुए। रीतिकाल में कवियों का एक बड़ा वर्ग विलासी जीवन को चित्रित करने में अपनी कार्यक्षमता का अन्त कर रहा था। उस समय एक विशेष बात यह हुई कि भगवान का संबंध लौकिकता से बौड़ दिया गया। यह साहित्य भी लोक जीवन के वास्तविक तत्त्वों की अभिव्यक्ति से दूर रहा।

उपर्युक्त तीनों कालों के बाद हिन्दी के आधुनिक काल में जीवन के समस्त पदों में क्रान्ति हुई। उनमें एक क्रान्ति जिसका प्रभाव भारत की सभी भाषाओं के साहित्य पर पड़ा, विदेशी प्रभाव का परिणाम है। अनेक आलोचकों एवं स्वतन्त्र विचारकों के मत में अंग्रेजी सभ्यता और साहित्य के संपर्क में आकर ही भारत ने नवीन जागरण का शंस फुंका। भारत में सुधार की जो उत्कट विचार धारा उस समय प्रचलित हुई वह भी पश्चिम की देन है।<sup>१</sup> माननीय तथ्य है कि भारत की सदियों पुरानी मान्यता और आदर्श से योरोप की आधुनिक संस्कृति का संघर्ष हुआ और विजेताओं की सभ्यता ने विविध व्यक्तियों की मान्यताओं को अधिक मात्रा में प्रभावित किया। भारतीय आस्था का बुद्धिवाद से सामना हुआ और हमारे जीवन की प्रगति धाराओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मुद्रणकला, समाचारपत्र, वातावात के सुख साधनों, एवं व्यापक अध्ययन में एक चेतना की लहर दौड़ी उस लहर के परिणाम स्वरूप हमारे साहित्य के पुराने मूल्यों एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन आया। साहित्य दरबारों की सीमा से बाहर आकर स्वतन्त्र संसार में सांस लेने लगा।

आधुनिक काल में समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है। इसी कारण इसे क्रान्ति युग कहा गया है। इस परिवर्तन का आरम्भ भारतेन्दु ने सर्व प्रथम हिन्दी जगत में किया भारतेन्दुयुगीन साहित्य पुरानी परम्पराओं से बंधा था लेकिन नये वातावरण में सांस ले रहा था और यह एक अनिवार्य आवश्यकता का परिणाम था। एक जागरक

---

१- डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - पृ० १६



साहित्य को राष्ट्रीय बनाने को विवश कर रहा था । अतः यह कहना ठीक है कि हमारा साहित्यिक आन्दोलन किसी वास्तव्य प्रभाव का परिणाम है। डा० सुधीन्द्र के अनुसार भारत में नवोत्थान की परम्परा भारतीय विद्रोह (१८५७) से प्रारम्भ हो गई थी । साहित्य में भी नवजागरण प्रतिबिम्बित हो गया था । बहिरंग दृष्टि से प्राचीन संस्कारधर्म मूल होते हुए भी अन्तरंग दृष्टि से नवीन जीवन के संसार द्वारा कविता में नवीनता और आधुनिकता की श्रीगणेश भारतेन्दु ने किया ।<sup>१</sup>

--

---

१- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ० ३६ ।

## आधुनिक हिन्दी कविता

काव्य में आधुनिक शब्द का प्रयोग औद्योगिक सम्यता के विकास के साथ ही आरम्भ हुआ। आधुनिक वह है जिसमें युगबोध की अभिव्यक्ति हो। जिस युग में कृषि व्यवस्था का स्थान औद्योगिक व्यवस्था ले रही हो, उस युग की राजनीति आर्थिक और सामाजिक गति विधियाँ का केन्द्र पूँजीपति वर्ग बन गया हो या बनता जा रहा हो। सामन्त वर्ग के हाथ से धीरे धीरे सत्ता खिसकती जा रही हो तथा पुराने सामन्ती और सांस्कृतिक संबंधों के स्थान पर नवीन सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति का उदय हो रहा हो। फ्रांकोन्मुली सामन्तवाद और विकासोन्मुख पूँजीवाद के संघर्ष से उत्पन्न युग चेतना को आधुनिकता का नाम दिया जाता है।<sup>१</sup> यह आधुनिकता अपनी पूर्व परम्पराओं से कई बातों में भिन्न है। अपने बौद्धिक स्तर, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना में यह अधिक उदार और विस्तृत है। साथ ही इसमें अन्तर्जात्रिक भावना का स्वर भी है। अन्तिम वस्तु हमारे समाज के लिए बिल्कुल नयी थी। इस जनतांत्रिक भावना के उदय ने हमारे सोचने-समझने की प्रणाली, युग बोध, सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक स्तर में नये परिवर्तन किये जिन्होंने काव्य के पुराने मुख्य मानों को बदल दिया। काव्य की विषय - वस्तु, शिल्प, भाषा, शैली और संवेदनशीलता बिल्कुल बदल गई। योरोप के काव्य में यह नये परिवर्तन १८ वीं शताब्दी में आरम्भ हो गये थे, क्योंकि वहाँ की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था एक नया रूप धारण कर रही थी, भारत में यह परिवर्तन और नवीनता की धारा बहुत धीरे-धीरे आई। हिन्दी साहित्य के मारतेन्बुर्गुलीन काव्य में ये परिवर्तन अवश्य हुए किन्तु कविता अपने पुराने परिवेश के अधिक निकट रही। चिन्तन, भावबोध युग-चेतना, भाषा-शैली आदि की दृष्टि से उस युग की कविता को हम आधुनिक नहीं कह सकते। आधुनिक काव्य का आरम्भ ख्रिस्तीय काल से हुआ जब जब कविता की विषय-भूमि बदलने लगी ख्रिस्तीय<sup>युग</sup> के हिन्दीकाव्य में जनतांत्रिक भावना का तीव्र गति से विकास और विस्तार हुआ। कविता ने अपने----

सामाजिक उत्तरदायित्वों की समझ और वहन किया। काव्य के साथ भाषा में परिवर्तन हुए। काव्य की भाषा पूर्णरूप से सड़ी बोली हो गई। विवेकी युगीन परिवर्तनों ने हिन्दी काव्य को आधुनिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक काव्य की संवेदनशीलता और चेतना में विस्तार एवं गहनता का समावेश किया है। काव्य के प्रतीक और भाव बोध निरन्तर बदलते रहे हैं। युगीन समस्याएँ अत्यन्त जटिल और दुरुह होती जा रही हैं। व्यक्ति और समाज का संबंध तीव्र होता जा रहा है। आधुनिक कविता व्यक्ति और समाज के इस संबंध की उपज है। वह व्यक्ति के अतिरिक्त सामाजिक दुरुहता और जटिलता की अभिव्यक्ति करने के लिए भी प्रयत्नशील है।<sup>१</sup> इस अभिव्यक्ति के लिए कविता का पुराना चित्प, भावबोध भाषा और शैली समर्थ नहीं थी। समाज और व्यक्ति के अन्दर होने वाले परिवर्तन बुनियादी और अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। और इन परिवर्तनों को स्वर देने के लिए काव्य के क्षेत्र में भी ये बुनियादी परिवर्तन आवश्यक और अनिवार्य हो गये। हिन्दी काव्य में पिछली अर्ध शताब्दी में जो तीव्रगामी <sup>परिवर्तन</sup> हुए वे व्यापक या संयोगवत् नहीं हो गये हैं, बल्कि उनके पीछे ऐतिहासिक मार्ग और युग की प्रेरणा थी।

प्रत्येक प्रगतिशील और जीवनन्त साहित्य के लिए वह, आवश्यक है कि वह दूसरे साहित्य के अच्छे प्रभावों की ग्रहण करे, जो साहित्य सेवा करने में असमर्थ रहता है उसका क्लेश होना निश्चित है।<sup>२</sup> भारतीय समाज की यह सहज विशेषता है कि वह अपनी मूल प्रवृत्तियों को नहीं छोड़ता है। लेकिन दूसरों से सीखने और ग्रहण करने में उसने सदैव पहल की है। भारतीय समाज की यह विशेषता भारतीय साहित्य के लिए उतनी ही सही है। उसने सदैव दूसरी भाषाओं से ज्ञान-प्रदान किया है ?

<sup>१</sup> A. V. Ayyar - Contemporary Indian Literature. P-22. Bombay (1960)

<sup>२</sup> De Quincy - "Literary Essays" P. 37 London (1936)

विवेच्य विषय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता के विकास को अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रभाव के रूप में देखना अनुचित न होना। अंग्रेज इस देश में सुधार करने नहीं आये थे बल्कि वे व्यापार करने और ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना करने आये थे। इस देश का शांण्ड और इंग्लैंड की समृद्धि, उनका प्रमुख उद्देश्य था। जिस की लिए उन्होंने हर संभव उपाय और साधन प्रयुक्त किये। देश में शिक्षा यातायात और संचार व्यवस्था का प्रसार करने तथा कुछ विशेष प्रकार के उद्योग-धन्धों को प्रश्रय देने की अंग्रेजी नीति इसी उद्देश्य की <sup>पूर्ति</sup> के लिए थी, नवीन शिक्षा ने भारतीयों को सोचने - समझने की नयी भाव भूमि और विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान किया। भारत में राष्ट्रीयता का वास्तविक विकास अंग्रेजी शासन में ही हुआ। पूँजीवाद व्यवस्थासामन्ती व्यवस्था की अपेक्षा अधिक प्रातिशील होती है। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक रूप से नहीं बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी यह सामन्ती व्यवस्था का विकसित रूप है। भारत में पूँजीवाद व्यवस्था का स्वाभाविक विकास नहीं हुआ है। उस लिए उसकी सहज उपलब्धियों से देश संबंधित रह गया। यह व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा हमारे यहां आयात की गई है। बाहर से लाये जाने के कारण इसमें अनेक विकृतियाँ हैं। १८ वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों ने भारत की पिछड़ी हुई जातियों में ईसाई धर्म का प्रचार शुरू किया। देश में इस की प्रतिक्रिया जरूरी थी। दो संस्कृतियों का तुला संघर्ष आरम्भ हुआ। १९ वीं शताब्दी के क्रान्तिमत्त तथा कार्य समाज इत्यादि बान्धविक्रान्ति संघर्ष और नव जागरण के परिणाम थे। क्रान्ति समाज ने पश्चिमी शिक्षा के साथ समझौता करके सामयिक कदम उठाया लेकिन कार्य समाज ने पश्चिम की अपेक्षा भारतीय संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठ समझ। सामाजिक रूप से क्रान्ति समाज कार्य समाज से प्रातिशील था, उसकी सामाजिक विचारधारा युगानुरूप थी। वे कार्य समाज की भाँति नैतिकतावादी भी नहीं थे। लेकिन राजनीतिक विचारधारा में कार्यसमाज क्रान्ति समाज से बहुत आगे था। यह विभिन्न संयोग भारतीय राजनीतिक और सामाजिक जीवन में सदैव चलता रहा है। आगे चलकर यह अन्तर विरोध बहुत खोलकर हमारे राष्ट्रीय नेताओं के सामने आया। जो लोग सामाजिक रूप से अधिक चेतना सम्पन्न थे, वे राजनीतिक विचारों में पिछड़े हुए थे। राजनीतिक जीवन में अधिक उग्र और यथार्थ दृष्टि रखने -

वाले नेतागण सामाजिक विचारों में पुरातनवादी थे। तिलक और गोसठे इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं।<sup>१</sup>

ब्रह्म समाज और आर्य समाज दोनों के नेता कलम्बियाँ ने हिन्दू समाज की कुरीतियाँ, बन्ध पिशाचाँ, दूध भंडुक्ता कुसंस्कारों आदि का विरोध किया। उन दोनों आन्दोलनों ने अधिक विस्तृत दृष्टिकोण और स्वस्थ सामाजिक जीवन अपनाने के लिए सक्रिय प्रयत्न किये। इन सुधारवादियों ने नारी जीवन के सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया।

ईसाई धर्म हिन्दू धर्म की अपेक्षा भाईवारे और मानवता पर अधिक बल दे रहा था। इस लिए वह निम्न वर्ग को अपनी ओर खींच रहा था। उस स्थिति में इन सुधारवादियों के लिए भी जरूरी हो गया था कि वे अछूतों के लिए समान मानवीय अधिकारों की बात उठावे अन्यथा ईसाई मत के सम्मुख उनके पराजित होने की आशंका थी। फलस्वरूप इनारे सुधारवादी नेताओं ने कुजाहूत का विरोध किया। और अछूतों को भी उच्च वर्ग वालों की पाँति धार्मिक और सामाजिक समानता का अधिकार देने पर बल दिया। लेकिन उस संघर्ष के बीच एक नयी पीढ़ी उभर रही थी। इसमें अधिकतर मध्य वर्ग के पढ़े लिखे व्यक्ति थे। इन लोगों ने न तो पश्चिम का अनुकरण किया और न विरोध किया। बल्कि पश्चिम की नवीन विन्तन धाराओं को सहानुभूति के साथ समझने का प्रयत्न किया, वहाँ के ज्ञान-विज्ञान को उपलब्धियों से ये लोग काफी प्रभावित हुए उसके अतिरिक्त स्वतन्त्र विन्तन, राष्ट्रीय विचारधारा, कुरीतियों के त्याग, वर्ग के धर्म्यता के त्याग, तार्किक विन्तन धारा, विस्तृत मानवीय दृष्टिकोण और सत्य की खोज की ललक आदि का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

१-

A. R. Desai - Rise of the New Social Classes in India. P.163.  
Bombay 1948.

## भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग के आरम्भ में हम वैसे को एक व्यापक साहित्यिक आन्दोलन के समझ सकते हैं। इस युग में पुरानी परम्पराओं और जड़ मान्यताओं के आवरण उन्तरनात शुरू हो गया था। साहित्य स्वतन्त्र वातावरण में जनजीवन की व्यापक अनुभूति को अभिव्यक्त कर रहा था एक अनिवार्य आवश्यकता के अनुसार और सांस्कृतिक चेतना के परिणाम स्वरूप परिवर्तन के क्रान्तिकारी संकेत उपलब्ध हो रहे थे। इससे साहित्य के दौम में व्यापकता आई और सामाजिक गतिविधियों के कारण नवीन विषयों की ओर साहित्यकार का ध्यान गया। शताब्दियों से काव्य में ब्रज भाषा का साम्राज्य था। शृंगार का निरंकुश शासन पूर्ण रूप से पैर जमा चुका था। भक्तिकाल में कुछ दिशाओं में परिवर्तन हुआ किन्तु कोई बात सामने न आ सकी। भक्ति में मधुर भक्ति के मान पर शृंगार के रसुपों को नये रंग में रंगा गया। बुम्बन, बालिगन, रति, किलास, हाव भाव स्त्रीया, परकीया, की सीमाओं में बद्ध कविता थी। भारतेन्दु काल में वही कविता विस्तृत राजपथ पर खड़ी हो गई और समाज की पड़कन सुनने लगी।<sup>१</sup> कविता के सामने प्रेम की गहराई, व्यापक<sup>ता</sup> और स्निग्धता के साथ अकाल, महंगी, मतमत्तान्तर, जनता का शोषण, पराधीनता, आदि भी आकर खड़े हो गये थे। अब तक के उपेक्षित रूपों ने भी कविता कामिनी के गले में बरसाछा डाली। भारतेन्दु के स्वर में जनता की पहली बार अभिव्यक्ति मिली। नवीन ने प्राचीन के विरोध में क्रान्ति की बात: भारतेन्दु का समय संक्रान्ति के नाम से अभिहित किया गया।<sup>२</sup> भारतेन्दु तथा उनके समकालीन कवि राष्ट्रीय जागरण की स्वस्थ अभिव्यक्ति करने लगे। यद्यपि उसी समय पाश्चात्य सभ्यता भारतीयों के गले के नीचे उतारी जा रही थी किन्तु यह केवल एक ऐतिहासिक घटना मात्र है। जिसका यत्र-तत्र प्रभाव लक्षित है क्योंकि इस विचार धारा ने भारतीय चिन्तन को प्रभावित तो किया है, परन्तु बहुत कम, हमारा प्राचीनता के प्रति गहरा नौस कम तो हुआ पर उसमें-

१- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता का क्रान्ति युग - पृ० २६।

२- डा० लक्ष्मी सागर बाबुर्ण्य - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० ११।

कोई आमूल परिवर्तन नहीं हुआ । भारतेन्दु युगीन कवियों ने राष्ट्र सुधार, समाज सुधार, नरीश्री, पराधीनता, आदि पर कुछ न कुछ लिखा, अवश्य था, परन्तु वे कवि फिर भी कहीं न कहीं प्राचीनता के मोह से बंधे हुए थे। अतः यह कहना ठीक है कि साहित्य का यह नया परिवर्तन भारत की आन्तरिक चेतना का परिणाम था। नवीन विचार प्राचीन रुढ़िवादिता को जनायास आत्मज्ञात न कर सके पर उसे अपवस्थ करने में, अक्षम रहे ।

भारतेन्दुयुगीन कवि और लेखक यदि एक और अपने परिवारों की सांस्कृतिक परम्पराओं में पड़े- बड़े थे तो दूसरी ओर उन्होंने जीवन की नवीन परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया भी व्यक्त की । उन्होंने नीर-दगीर-विवेक और स्वतन्त्र दृष्टिकोण ग्रहण किया । नवीन प्रभाव ग्रहण करते हुए भी भारतीय बने रहने में ही उस समय सच्चा देश हित सम्भक्त जाता था। इस प्रकार समन्वयवादी दृष्टिकोण ग्रहण कर उन्होंने नवीन शिक्षा, वैज्ञानिक आविष्कारों आदि के प्रचार के फलस्वरूप उत्पन्न नवोत्थान - कालीन भावना को प्रगुथ और विविध धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा और आर्थिक आन्दोलनों में योग दिया । उनके जीवनकाल में जनता की आर्थिक दुरवस्था थी, करों का भार था, सस्ते विदेशी माल के प्रचार से भारतीय व्यापारियों की बक्का पहुच रहा था । देश के उद्योग धन्धे नष्ट हो रहे थे क्रेयों का आतंक छाया हुआ था, राजनीतिक, शिक्षा और सरकारी नौकरियों तक साधारण मनुष्य की पहुच नहीं थी, शिक्षा आदि के फलस्वरूप नवीन सुधारवादी आन्दोलनों और राष्ट्रीय चेतना का जन्म हो चुका था। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने हिन्दी नवोत्थान को प्रोत्साहन और प्रेरणा प्रदान की । उन कवियों ने देश, भक्ति, लोक हित, समाज सुधार, आदि की वाणी सुनाई उनके साहित्य में प्राचीनता के साथ-साथ नवीनता भी है। नवीनता से तात्पर्य है भारतीय नवोत्थान द्वारा पोषित नवीन विचारों की दृष्टि ।

नवोत्थान भावना द्वारा पोषित होने के कारण भारतेन्दुयुगी साहित्यकारों का ध्यान देश की क्षीणगति की ओर जाना स्वाभाविक था । देश के-

सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जयः पतन की पैल कर उन्हींमें जतीस का गौरवगान करके उसके उन्नयन की चेष्टा की ।

ताहूँ मैं मंछी, काल, रोग विस्तारी,  
दिन-दिन दूने दुःख ऐसे देत हा- हारी ।  
सब के ऊपर टिक्कस की आफत बाई ।  
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई॥<sup>१</sup>

< < < < < < < < < < < < < < <

धन धन भारत के सब छ्त्री जिन की-सुजत-पुना-फसताय-  
मारि मारि के सत्रु दिस हैं लाखन बैर भगाय ॥<sup>२</sup>

सांस्कृतिक पतन की और संकेत करते हुए उनका कथन है कि-  
सीलत कौड न कला, उदर मारि जीवन केवल ।  
प्रीति समान सब वन्न साथ पीवत गंगा जल॥  
यन विदेश बलि जात तऊ दिय होत न चंचल ।  
जड़ समान है रहत- जबिल हत रचि न सकल कल॥  
जीवत विदेश की वस्तु छै ता बिनु कछु नहिं कर सकल॥

परस्परिक फूट और कलह के कारण ही विदेशी आक्रमण<sup>३</sup> कारियाँ छ्हार वार्यकीर्ति का लौन हुआ । धार्मिक दोग में साम्प्रदायिक द्वेष समाज में घुन की तरह काम कर रहा था । इस संबंध में भारतेन्दु का संकेत इस प्रकार है-

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - भारत दुर्दशा - पृ० २८६ । (१८८०)

२- वही - भारत वीरत्व - पृ० ३७ - ३६ ।

३- वही - भारत दुर्दशा - पृ० ३६ ।



रवि बहु विधि के वाक्य पुरानम माँरि छुसार ।  
 खि शाक्त वैष्णव लोक मत प्राटि ब्लाए ।  
 जाति अनेक करी नीच बह ऊँच बनायौ ।  
 खान पान संबंध सबन सौ धराजे लुहायौ ।<sup>१</sup>

वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के हिन्दी कवियों और लेखकों ने पूर्व और पश्चिम का समन्वय कर देश की अयोग्यता के गर्त से निकाल कर उन्नति-पथ की ओर गतिमान करना चाहा । उन्होंने ऐसी नवीन बातों पर जोर दिया जो भारतीय चिन्तन - पद्धति और जीवन में सप सक्ती थी । उन्होंने निज-भाषा-ज्ञान को उन्नति का मूल कहा है। कर्म, युद्ध विद्या, बला, गीत, काव्य और ज्ञान को समझने के लिए उन्होंने निज भाषा की महत्ता बताई । क्योंकि भाषा और राष्ट्रीयता का अविच्छिन्न संबंध है। उन्नीसवीं शताब्दी में फारसी राज-भाषा के रूप में रह गई थी । अंग्रेजों के शासन के कारण जो स्थान हिन्दी की मिलना चाहिए था वह स्थान उर्दू ने ग्रहण किया । जीविका-निर्वाह के लिए लोगों ने उर्दू पढ़ना सीखा और उर्दू साहित्य का मनन किया । उर्दू और अँग्रेज़ी की प्राधान्य मिल जाने के कारण हिन्दी की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया ।<sup>२</sup>

उन्नीसवीं शताब्दी की एक और प्रमुख समस्या नारी उन्नति की समस्या थी । भारतेन्दु ने नीलदेवी की रचना इसी विचार से प्रेरित होकर की थी । जब पारवात्य नारी को देखते थे तो उन्हें देश की स्त्रियों की हीन दशा स्मरण हो जाती थी और यह बात उनके दुःख का कारण थी । इसीलिए उन्होंने इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किए । वे चाहते थे कि ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश में, अति का परित्याग कर मध्यम मार्ग ग्रहण किया जाय साथ ही भारतीयता को बनाये रखते हुए देश की राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक समस्त क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त करें।-

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - भारत दुर्दशा - पृ० ३६ ।

२- लक्ष्मीनारायण वाष्णय- आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० ४२ ।

उनका यही दृष्टिकोण स्वयं भारतीय सुधारवादी जान्दोलनों के प्रति था । वे सामाजिक और धार्मिक सुधार चाहते थे किन्तु अति का परित्याग और पश्चिम की सकार्वाय से बच कर भारतीयता की रक्षा करना भी चाहते थे इसलिए सुधारवादी जान्दोलन उन्हें पूरी तरह पसन्द न थे। पतों की विविधता और आपसी मतभेदों को वे भारतीय पतन का एकमात्र कारण मानते थे। वे अन्धविश्वासों के विरोधी थे लेकिन दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षाओं की अमरतीयता भी उन्हें <sup>अच्छी</sup> नहीं लगती थी । भारतेंदु युग में कविता ने नया मोड़ तो लिया परन्तु प्राचीनता के प्रति मोह बना रहा । २० वीं शताब्दी का आरम्भ हिन्दी कविता के लिए पूर्ण कायाकल्प का सन्देश लेकर आया । अंग्रेजी कविता में जिस प्रकार काउपर ब्लेस्कट आदि ने रोमान्टिसिज्म का आधार पाकर उस भावाभिव्यक्ति की, हिन्दी में भी वैसी ही भाव धारा का सूत्रपात इस युग में हुआ । हृन्दी में विविधता, भावों में अनेक रूपता, अभिव्यक्ति में स्वच्छन्दता, प्रकृति के प्रति ममत्व तथा विषय-वस्तु में दिव्यता को स्थान देने के कारण श्रीधर पाठक ही हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक ठहरते हैं ।

### द्विवेदी-युग

इस युग में द्विवेदी जी ने आधुनिकता का श्वाभाव किया। द्विवेदी जी ने भाषा को समृद्ध बनाया और विचारों के क्षेत्र में बहुमुखी सामग्री - प्रदान की। नये विचार, नयी भाषा, दोनों ही द्विवेदी जी की देन हैं। इस दृष्टि से बीसवीं शताब्दी की नवीन कविता में भाव, भाषा दोनों क्षेत्रों में क्रांति हुई। शक्तिवृत्त के फलस्वरूप में प्राचीन काव्य को लेकर कवियों ने नवीन चेतना का उद्घोष किया।<sup>२</sup>

१- डा० किशोरेन्द्र नाथक - हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० २२१-२२२ ।

२- बाबाय नन्दगुलारे बाजपेयी - आधुनिक साहित्य-पृ० १२ । कलाकाव्य (१९६१)

इस युग में हिन्दी साहित्य की नवीन परम्पराओं का परिपार्जन तथा विकास हुआ। काव्य, आलोचना तथा कथा-साहित्य में प्रगति आई। इस समय की कविता की भावगत तथा कलात्मक प्रवृत्तियों का विश्लेषण निम्नलिखित क्रम से किया जा सकता है।

- १- देश भक्ति की कविता
- २- धार्मिक कविता
- ३- सामाजिक कविता
- ४- शक्तिवृष्टात्मकता
- ५- प्रकृति-चित्रण
- ६- कालानुसरण की साम्यता
- ७- वैदिकता की प्रभावता

देश का अतीत गौरव और संस्कृति का गौरव गान  
नवीन तथा साधारण विषय  
अनुवाद कार्य का प्रसार एवं प्रचार  
काव्य रूपों में विविधता  
नवीन छन्दों के प्रयोग  
भाषा को एक नया और आधुनिक रूप देने का सख्ख प्रयत्न

विशेष्य काल में प्रत्येक कवि ने देश भक्ति के विषय में कुछ न कुछ लिखा है। मारतेन्दुमुनि कविता का देश-प्रेम भाषा, भोजन और मेख तक सीमित था अब उसकी सीमा विस्तृत एवं व्यापक हो गई। विशेष्य कालीन कविता की राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी। इसमें प्रमुख आलम्बन देश के उज्ज्वल अतीत गौरव को लिया। डा० हेतरी नारायण शुक्ल का मत है कि- इससे इस समय जो राष्ट्रीय जागरण हुआ वह एक प्रकार से हिन्दू जागरण था क्योंकि उस जागरण में हिन्दू इतिहास और परम्परा का आश्रय या अवलम्बन प्रधान था। गौरव की भावना की हिन्दुओं में ही जागी और हिन्दू ही अतीत के समान वर्तमान और भविष्य को सुधारने

तथा समुज्ज्वल बनाने की उद्दिष्ट हुए। इस प्रकार यह राष्ट्रीय जागरण और हिन्दू पुनरुत्थान दोनों बना, फिर भी इन सब परिस्थितियों का सबसे बड़ा और उन परिणाम यह हुआ कि जनता की हीनता की भावना दूर हुई और पारम्परिक संस्कृति की बकाचीय कम हो गई।<sup>१</sup> विवेच्य कालीन कविता में देश भक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति छोटी-छोटी फुटकर कविताओं से लेकर लघु काव्यों और प्रबन्ध काव्यों तक में हुई। उपाध्याय जी का प्रिन्स-प्रवास गुप्त जी की भारत भारती श्रीधर पाठक का देश गीत, भारत गीत, रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि रामनरेश त्रिपाठी का पथिक और मिलने देश-भक्ति की भावना और अतीत की विभूतियों के ज्वलन्त नमूने हैं जैसे-

जय-जय प्यारा भारत देश,  
जय-जय प्यारा जंग से न्यारा।  
शोभित सारा देश छमारा,  
जगत-मुक्त जगदीश दुलारा।  
जय सौभाग्य सुदेश,  
जय-जय प्यारा भारत देश।<sup>२</sup>

देश भक्ति को कल प्रदान करने वाला एक विशेष उल्लेखनीय कार्य इस काल में यह हुआ कि जागरण के गीतों की रचनाओं में - गीतों के छन्दों, क्यली तुमरी, चैती, होली, लावनी आदि में हुई जिसका भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

राष्ट्रीय भावना का एक दूसरा रूप गौरव गान के रूप में मिलता है। भारतीय युगीन कवि भारत के अतीत का चित्र जन साधारण के सम्मुख ला चुके थे। यही <sup>परजा</sup> कर्तव्य अब भी चली आ रही थी। भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात होते देखकर कुछ चेतना -

१- डा० केसरी नारायण शुक्ल- आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० ५१।

२- श्रीधर पाठक - देशगीत - पृ० २६। लखनऊ (१९२८)

सम्पन्न लोगों का ध्यान भारत के वैभवपूर्ण अतीत की ओर गया। क्योंकि पाश्चात्य विद्वान् भारत की इतिहास, राजनीतिक एवं विज्ञान से सर्वथा कौरा सिद्ध करने पर तुले थे, अतएव तत्संबंधी भारतीय साहित्य की सामने लाने की जरूरत थी। कवियों ने अतीत विवर्ण के साथ-साथ भारत के उज्ज्वल भविष्य पर भी नजर डाली। भारत की स्वतन्त्रता की प्रार्थना करते हुए बीते दिनों की लौटाने की भी प्रार्थना की गई:-

भगवान एक बार फिर करी वही दया ।  
हो नाथ एक बार पुराना वही नया ॥  
वह शक्ति हो कि धर्म राज्य को बला सके ।  
वह मक्ति हो कि नाथ । तुम्हें फिर बुला सके ॥<sup>१</sup>

कवि का देश प्रेम विस्तृत एवं मानवतावाद की सुदृढ़ भित्ति पर आधारित है वह चाहता है कि यह विश्व प्रेम तक फैल जाय-

वह ज्ञान हो कि विश्व प्रेम को जगा सके ।  
वह त्याग हो कि विश्व को अपना बना सके ॥<sup>२</sup>

त्रिपाठी जी का देश प्रेम गांधी जी की मार्गित व्यक्ति प्रधान नहीं है बल्कि हमें समाज सुधार की प्रेरणा देता है जैसे-

केवल बल प्रयोग पशुता है,  
केवल कीश्रु है काररपन  
शास्त्र ब्रह्म दोनों के बल से,  
वित्त जीतते हैं जीवन- रण ॥<sup>३</sup>

छाँक सेवा के उस आदर्श प्रेम को हम पूँजीवाद के विरुद्ध साम्यवाद के समकक्ष रख सकते हैं। त्रिपाठी जी तो स्त्रियों को भी कमर कसकर मैदान में लाने के-

१- रामनरेश त्रिपाठी - मानसी- (द्वितीय संस्करण) पृ० ४६ ।

२- " - मानसी - (द्वितीय संस्करण) पृ० ४७ ।

३- " - स्वप्न - (आठवाँ संस्करण) पृ० ७३ ।

लिर जामंत्रित करते मिलते हैं:-

लिर विशूल हाथ में करने,

धली देश उद्धार ।

गाँव गाँव में लगी घूमने,

सेवा - व्रत उर धार ॥<sup>१</sup>

स्वप्न की सुमना नवयुवकी में ज्ञान्ति के बीज बोती है-

जाकर वन-जल पर पड़ता है

निर्भय रण-धुन्धुभी बजाकर ।

तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के,

क्या बैठे रहते हैं घर पर ? ॥<sup>२</sup>

विविधकालीन कविता की दृष्टि मूल रूप से बहिर्मुखी है। इस कारण राष्ट्र जीवन की घलचलों में निरन्तर रमती चली आई है। अन्तर्मुखी होकर व्यक्ति वेतना की व्याम गहराई में नहीं उतर पाई विशेषकर लाके प्रचलित पौराणिक आस्थानों, इतिहास कृतों और देश की राजनीतिक घटनाओं से उन्होंने अपने काव्य की विषय वस्तु को उजाया । इन आस्थानों में कृतों और घटनाओं के चयन में उपेक्षाओं के प्रति सहानुभूति का भाव, देशानुराग और तदा के प्रति विद्रोह का स्वर, मुखरित है। वह एक प्रकार से राजनीति में राष्ट्रीय आन्दोलन और काव्य में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के बीच फलने और बहने वाली कविता की बहिर्मुखी धारा है, जिसने हिन्दी भाषणी जनता को आधुनिक जीवन के व्यक्ति एवं समाज संबंधी गहरे सात्त्विक प्रश्नों के प्रति तो नहीं लेकिन राजनीतिक पराधीनता और राष्ट्रीय संघर्ष के प्रति सदैव बनाने में बहुत बड़ा काम किया है।<sup>३</sup>

१- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन- (तेरहवां संस्करण) पृ० ६४-६५ ।

२- " " - स्वप्न- (ठाठवां संस्करण) पृ० ४५ ।

३- शिवदान सिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के बस्तीवर्ग । दिल्ली (१९५५) पृ० ६ ।

विवेच्य कालीन हिन्दी कविता में संकीर्णता बहुत कम हुई है। इस युग की पार्विकता बहुत व्यापक और मानवीय है। मगवान् के गुणगान के अतिरिक्त वा व्याप्तिक और मानवतावादी आदर्शों की भी प्रतिष्ठा हुई है। मानवतावाद के कारण ही कविता में पीड़ित, शोणित, और दुर्बल और दलितों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित हुई। कवियों की यह वास्था बन गई कि मानव- प्रेम से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है। इस प्रकार विवेच्य कालीन कवियों का ईश्वर - प्रेम क्या विश्व प्रेम में बदल गया ठाकुर गीपाल शरण सिंह के शब्दों में:-

जग ही सेवा करना ही बल, है सब चारों का चार ।

विश्व- प्रेम के बन्धन ही मैं, मुक्त को मिला मुक्ति का प्यार।।<sup>१</sup>

इस दृष्टिकोण ने कारण दुष्टियों के प्रति अन्याय और अवहेलना करने वाली सामन्ती सभ्यता की कवियों ने कटु आलोचना की। उन्हें ईश्वर की दिव्य शक्ति का अनुभव जन सेवा में हुआ। बौद्धिक चेतना के कारण राम और कृष्ण के चरित्र को आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है, अवतार के रूप में नहीं। प्रिय-प्रवास के नायक- एवं नायिका, कृष्ण एवं राधा दोनों ही समाज सेवक एवं समाज सेविका के रूप में चित्रित हैं। गोप और ग्वाले कृष्ण के संबंध में कहते हैं-

विचित्र ऐसी गुण है ब्रह्म- मैं,

स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है ।

निबिड सी है जिनमें नितान्त सी,

अज्ञानुरागी जन की विमुग्धता ॥<sup>२</sup>

राधा का समाज सेविका के रूप में चित्र पथुर एवं शिष्ट बन पड़ा है।

दीनों की थी बहिन, जननी थी जनाधारिणी की।

वाराणसी थीं प्र-अवि की, प्रेमिका विश्व की थी।।<sup>३</sup>

१-ठाकुर गीपाल शरण सिंह- मानसी - पृ० १०

२- हरिवंश - प्रिय-प्रवास, पृ० १४७ । बनारस (१९५६)

३- " - " पृ० २६८ । बनारस (१९५६)।

प्रिय-प्रवास के समान ही साकेत भी विवेच्य युग का महत्वपूर्ण काव्य है । यद्यपि उसकी समाप्ति १९३१ में हुई किन्तु कवि के कथनानुसार उसकी रचना १५-१६ वर्ष पहले प्रारम्भ हो चुकी थी वही कारण साकेत भी हमारी विवेचना का विषय है। साकेत महाकवियों के द्वारा उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को प्रधानता देकर चला। उससे साकेत में मौलिकता की उद्भावना भी हो सकी। उपदेशात्मक और सैतनिक कविताओं का थोड़ा अभाव हो गया। जीवन जगत और प्रकृति में रहस्यात्मकता का गर्ह। आचार्य शुक्ल, हिन्दवी युगीन धार्मिक कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-भारतेन्दु-युगीन धार्मिक कविता से यह निःसन्देह अधिक उपत है। उपदेशात्मक प्रवृत्ति को झौड़ कर कवियों ने मानवतावाद को ग्रहण किया। उदार और व्यापक मानवतावादी दृष्टि इस धार्मिक कविता की विशेष प्रवृत्ति है। अन्योक्तियाँ सौन्दर्यपूर्ण हैं। इनमें कवित्व है। इन कवियों ने रहस्यात्मक मुलक गीतों के तृतीय उत्थान की कविता को अधिक प्रभावित किया। विश्व प्रेम और जनसेवा की भावना द्वारा तृतीय उत्थान के कवियों ने धार्मिक कविता को अधिक उन्नतिशील बनाया।<sup>१</sup>

भारतेन्दुयुगीन कविता में सामाजिक सुधारों का स्वर सुन्नरित था किन्तु उनमें सण्डन-मण्डन की कर्कशता अधिक थी। इसके अतिरिक्त उस काल में कवियों की दृष्टि समाज के संपूर्ण वर्गों पर नहीं जा पाई थी। उन्होंने समाज के केवल उस वर्ग पर लिखा जिससे वह अधिक प्रभावित हुए किन्तु विवेच्य युग के कवियों की दृष्टि संपूर्ण समाज के पदों पर पड़ी। उनकी वाणी में सण्डन के स्थान पर सीधाई, सद्भावना भङ्गूत हो उठी। इस युग के कवियों को संपूर्ण समाज की उन्नति कभीष्ट थी। कवियों ने पारिवारिक स्थिति को भी देखा जहाँ में ठहराव प्रथा के चलन से भारतीय नारियाँ का महान अहित हो रहा था-



लठेक के विवाह में कहिये पौल-तोल क्यों करते हो।  
 इस काटे कलंक को हा, हा क्यों अपने सिर धरते हो ?  
 जिनके नहीं शक्ति देने की क्यों उनका घन धरते हो ?  
 बढ़कर उच्च सुयश- सीढ़ी पर क्यों इस भाँति उतरते हो ।

देश में मुष्टाचार के कारण हमारे समाज में बाल विवाह<sup>१</sup> भी प्रचलित हो उठे ।  
 इससे समाज का अयःपतन होना स्वाभाविक था। बिना शिदा के विवाह कर देना  
 कर्षा की बुद्धिमत्ता और म्याय था-

कभी कभी गुड़िया-सी बचपन ही में व्याही जाती है,  
 जिसके कारण ही अति दुःख दुःख जन्म भर पाती है।  
 पढ़े लिखे जी नहीं जिन्होंने शिदा नहीं कभी पाई,  
 उनके साथ बात तक करते सक्ताते ही से भाई<sup>२</sup>।

राय देवी प्रसाद पूर्ण भी भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के पूर्ण अनुयायी थे ।  
 जी वंश के रक्षा में वह देश का कल्याण समझते हुए कहते हैं।

नर तुम हो सरा पुरुष सिंह की धुप बलवन्ध कहाओ ।  
 पैरी रक्षा में फिर काहे कायरपन दितलाओ॥

वीर का नाम छटाओ ।

ऐसी लोरी को आगी लगाओ॥<sup>३</sup>

गौ वंश के समान किसान भी हमारे समाज का अमिन्न का है। उनी के प्रयासों के  
 परिणाम स्वरूप हमें अन्य उपलब्ध होता है किन्तु आज समाज की प्राप्ति का यह  
 दुष्परिणाम है कि किसान एक-एक दाने को तरस रहा है।

पाया हमने म्रू कौन-सा बास नहीं है?  
 क्या अब भी परिपूर्ण हमारा क्वास नहीं है ?  
 मिला हमें क्या नहीं, नरक का बास नहीं है ?  
 विष लाने के लिए टिका भी पास नहीं है ?

१- महावीरप्रसाद द्विवेदी-ठहरीनी- सरस्वती नवम्बर- १९०६ ।

२- महावीर प्रसाद द्विवेदी- कान्यकुब्ज-बदला बिलाप- सरस्वती सितम्बर, १९०६ ।

३- रायदेवी प्रसाद पूर्ण- पूर्ण संग्रह गौपुकार- गंगा पुस्तकालय- पृ० २८० ।

इन सामाजिक कविताओं में सुधार की भावनाओं का पूर्ण समावेश है। कवि सामाजिक कविताओं में समाजगत दुर्भलताओं का उल्लेख करता है मानव के सुधारों के लिए उपदेशात्मक कथन है और धार्मिक वास्था के कारण ईश्वर से भी सुधार के लिये विनय करता है। इन कवियों का रुढ़ उदार और मनोवृत्ति व्यापक है ये कवि प्राचीन समाज और नये विचारों का सामंजस्य चाहते हैं।

विवेच्य कालीन कविता शृंगार रस से बहुत कुछ मुक्ति है। भारतेन्दुकाल में रीति-कालीन शृंगारिक परम्परा किसी न किसी रूप में चलती रही, किन्तु उस युग के उसका प्रणयन प्रायः बन्द हो ही गया। आर्य समाज तथा दूसरी संस्थाओं के प्रभाव के परिणाम स्वरूप शृंगार रस की अश्लील सम्पन्न कविता क्षेत्र से उसका बहिष्कार कर दिया गया। इससे काव्य में शक्तिवृत्तात्मक प्रवृत्ति आ गई और लाघ-णिक्ता तथा चित्रमयी भावना कम हो गई। इस काल के कवियों में नैतिकता के प्रचार का अधिक्य था। युग की कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है:-

इन्द्रासन के इच्छुक किसने, करके तप अतिशय मारी,  
की उत्पन्न अतुला तुफन में, मुझसे कही क्या सारी।  
मेरा यह अनिवार्य शरासन पांच- कुसुम- शायक-धारी,  
अभी बना लेवे सत्क्षण ही उस की निज आजाकारी॥<sup>१</sup>

इस प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया स्वरूप लायाबाव का उदय हुआ।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण पुरानी बंधी बंधाई परम्परा के आधार पर होता रहा, परन्तु विवेच्य युग में प्रकृति के स्वतन्त्र निरीक्षण का सफल प्रयास मिलता है। इस युग का कवि प्रकृति के अन्तरात्म में प्रवेश करके उसका रहस्य जानने की उत्सुक नहीं है, वह केवल दर्शन की भाँति प्रकृति को देखता है। श्रीधर पाठक ने प्रकृति के संवेदनात्मक और चिन्तात्मक, रूपों का सुन्दर वर्णन किया है।-

‘कास्मीर सुषमा’, ‘सांख्य अष्टम’, एवं वनाष्टक में प्रकृति का संवेदनशील वर्णन है :-

बारि कुहारि भरे बदरा, सोह लीसल कुंजर हैं मतवारे ।  
बीजुरी जीति कुजा मुजा फहरि धन गर्जन शब्द सोई है नगारे॥  
रोर की घोर की और न और, नरेसन की सी छटा हविधारे॥  
कामिन के मन की प्रिय पावस बायो प्रिये नव मोहिनी हारे॥<sup>१</sup>

विवेच्यकाल में जहाँ काव्य के अन्यान्य अंगों का विकास हुआ है, वहाँ प्रकृति को भी नये रूप में देखा गया है, कवि की सांख्यानुभूति विस्तृत विश्व के कोने-कोने से सार ग्रहण करती है। कहीं वह मुरली के मधुर स्वर में स्वर भर ठौरों के पीछे, चलते हुए चरवाहों से गान सुनती है,<sup>२</sup> और कहीं बीचि विवुम्बित तीर पर लड़े लौकर तरल तरंगों का नृत्य देखती है।<sup>३</sup> कवि की इस अवस्था को हम प्रकृति रहस्यानुभूति की व्यापार-भूमि कह सकते हैं। कवि की कल्पना उद्धान्तों का उद्घाटन नहीं करती अपितु सहज जिज्ञासा से पूछ बैठती है:-

धन में किस प्रियतम से चपला,  
करती है विनोद हंस हंस कर ।  
किसके लिए उष्ण उठती है,  
प्रतिदिन कर भ्रमर मनोहर॥<sup>४</sup>

ऐसे भावात्मक उद्गार कवियों की स्फुट रचनाओं में भी व्यक्त हुए हैं:-

लोल चन्द्र की सिद्धि की जगत्,  
स्वर्ग सदन से हंसता है।  
पृथ्वी पर नवीन जीवन का,  
नया विकास विकसता है॥  
मैं जाता हूँ किर्ना में,  
फूल कर केवल फल भर में॥  
बरस पड़ूँ इस पृथ्वी पर,  
विस्तृत शीमा -सागर में॥<sup>५</sup>

१- श्रीधर पाठक- मनोविनोद - भाग २, पृ० १७ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी- स्वप्न- हिन्दी मंदिर प्रयाग-पृ० २८।

३-        ॥        - पथिक- पृ० १५।

४-        ॥        - मानसी- पृ० ६।

५-        ॥        - मानसी- पृ० ६।

रायदेवी प्रताप पूर्ण के प्रकृति वर्णन में प्राचीनता एवं नवीनता दोनों का ही समावेश है:-

बाटिका विफिन लागे झावन रंगीली बटा,  
 क्षिति से छिरि को क्वाला मयी न्यारी है।  
 कूजन किलौल रीं लगे हैं कुल पंछिन के,  
 पुरन समीरन सुंगय को फतारी है।  
 सुमन निकुंजन में कंजन के पुजन में,  
 गुंजत मलिन्दन को वृन्द मतवारी है।<sup>१</sup>

कवि ने शर्मा अनुप्रासमयी रीति कालीन पद्धति को अपनाया है। शृंगार छिद्र के प्रति उसका आग्रह नहीं है। इस में कवि की शृंगारिक प्रवृत्ति का परस्पर जल्लार मिलता है परन्तु वह इस वर्णन में कटिबद्ध नही है। हरिजीव भी ने भी प्रकृति का सकल चित्रण किया है। वृन्द की सफलता के साथ विषय का निर्वाह भी अच्छा है:-

दिवस का अवसान समीप था ।  
 गगन था कुछ उल्लिखित ही बला ।।  
 तरु - शिखा पर थी जब राजती ।  
 कमलिनी - कुल - वल्लभ की प्रभा ।।<sup>२</sup>

प्राकृतिक काव्य के विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि विवेच्यकाल के कवि प्रकृति के संक्षेप में भारतेन्दु युगीन कवियों से नहीं अधिक प्रातिशील है। तथापि युग की शक्ति-वृषात्मकता का स्वरूप इस समय के काव्य पर अमिट है।

विवेच्यकालीन कवियों में युग की बदलती हुई भावनाओं को वास्तविक करने तथा काल के अनुसार उद्भूत काव्य रूपों और शैलियों का अपनाने की अपार दायता है। इस काल में परम्परावादी प्रवृत्तियों के साथ समानान्तर रूप से काव्य की स्वच्छन्द-तावादी प्रवृत्तियाँ भी रही हैं, इसी लिए विवेच्यकालीन कवियों में हरिजीव तथा गुप्त जी में कालानुसरण की प्रवृत्तियाँ बहुत हैं। दोनों कवि विवेच्य युग की वापार शिखा हैं परन्तु फिर भी दोनों के महाकाव्यों पर उस समय के प्रभाव की स्पष्ट परिलक्षित है।

१- रायदेवी प्रताप पूर्ण - पूर्ण संग्रह - वसन्त वर्णन, पृ० ६४ ।

२- कव्याभ्यासिंह उपाध्याय- हरिजीव - प्रिय प्रवास, प्रथम सर्ग पृ० १ उक्तारस १६५६।

दोनों महाकाव्यों के विषय भागवत् एवं रामायण पर आधारित होने के कारण परम्परावादी एवं शास्त्रीय हैं, परन्तु दोनों कवियों ने इन काव्यों में युगानुसार नयी चेतना एवं मानवता के स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। भागवत की प्रेम-स्वर्णीणि राधा के स्थान पर प्रेमिका एवं समाज सेविका राधा और रामायण महाकाव्य की उपेक्षाता <sup>उर्मिला</sup> उर्मिला के स्थान पर लक्ष्मणा एवं विरहिणी उर्मिला लोक भूमि पर उमर जाने के कारण <sup>सह्य</sup> लक्ष्मणा पाठक के हृदय में करुणा का उद्गार करती है। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही वास्तव में ये दोनों महाकाव्य नये हैं।

दोनों कवियों ने राधा एवं उर्मिला को मानवीय आधार शिल्प पर निर्मित किया है। उनके चरित्र विशेष प्रकार के हो गये हैं। उनमें नव-चेतना का स्फुरण है और वे मानवैतर नहीं हैं, वे विरह-विदग्धा हैं। उनमें वैयक्तिकता का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। उनका तदाच प्रेम एवं उनके मानसिक उद्गार व्यक्तिवादी होने के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रहे जा सकते हैं। यही इन कवियों का युगानुरूप होने का सच्चा प्रमाण है।

७- विवेच्य कालीन कवियों का काव्य पार्श्वान्त्य संस्कृतिक के बुद्धिवाद से प्रभावित है। इस युग के कवियों को हिन्दू जागरण के लिए भारत के अतीत गौरव और सांस्कृतिक उच्चता की प्रतिष्ठा करना अभीष्ट था। उसके बिना औपजी शासन में रहने वाले भारतीयों के मन से हीनता की पावना का निराकरण असंभव था। अतः इस युग के कवियों ने अपनी प्राचीन संस्कृति की बौद्धिक व्याख्या की। गुप्त के राम अवतार न होकर एक महामानव के रूप में हमारे सम्मुख हैं। हरिवंश के कृष्ण और राधा भी आदर्श समाज सेविका, और चुबारक नेता के रूप में हैं। इसका उद्देश्य एकमात्र देश के उत्थानियों को देशोन्नति का मार्ग प्रदर्शित करना है। कवियों की इस मनोवृत्ति का रहस्य तत्कालीन परिस्थितियों में निहित था। कार्यसमाज के प्रभाव के परिणाम स्वरूप उस समय के हिन्दुओं के हृदय में अपनी उच्चता का भाव दृढ़ हो रहा था। और साथ-साथ अपने प्राचीन संस्कृति के जीवन का रहस्य भी बहता जा रहा था।

और साथ साथ उसने अपनी संस्कृति के गौरव का सहस्राव भी बढ़ता जा रहा था।  
उन कवियों ने प्राचीनता की बुद्धिमत्त व्याख्या करके आधुनिकता के बादर्शनय बनाना  
चाहा, क्योंकि बुद्धिवाद अधिकतर अराधिकर जिज्ञासाओं से बचाता तथा मानव को  
व्यवस्थाकारी तत्त्वों से बचा कर सुव्यवस्थित बनाए रखता है।

८- विवेक्य कालीन कवियों ने देश के अतीत गौरव और संस्कृति का वर्णन  
सुन्दर ढंग से किया है। भारत भूमि जैसी सर्वश्रेष्ठ भूमि जिसके प्रति देवताओं की भी  
आकर्षण रहा है वही आज अंग्रेजों की धंदिनी है। विश्व के परातल पर कौन ऐसा  
व्यक्ति होगा जो इस भूमि की इस प्रकार की कारुणिक स्थिति में रहने दे:-

मुक्ति हेतु है मातृभूमि इस तेरे पद आराधन ।  
जिस में तेरा हित राखन ही वही राखन आर्धन ॥  
स्वार्थ और परमार्थ छोड़ कर तुझ से लगन लावने ।  
तेरी सेवा करने की हा दीड़े दर-दर आवने ॥<sup>१</sup>

कवियों ने पाश्चात्य संस्कृति के बुरे प्रभावों को दूर करने, के लिए हिन्दुओं  
में जातीय अभिमान को जगाने के लिए अतीत के दर्शन, कला, साहित्य विज्ञान की समृद्धि  
के गान गाये । अतीत का गान करते हुए कवि का विश्वास सजग ही उठता है। वह आवेश  
में आकर कहीं-कहीं जग-उद्धारक भारत का वाक्यान करता है तथा पूर्व स्थिति का  
ज्ञान करता है-

क्या तुम मूल गये । जब तुम थे  
स्वामी और जगत् था दास ॥<sup>२</sup>

कवि का पुरातन बादर्शन उसे प्रेरित करता है उसका सार्थ सदैव परमार्थ  
रहा है-

स्वाधीन ही मनुष्य कहीं स्वार्थ के लिये ।  
उन की स्वतन्त्र थे कभी परमार्थ के लिये ॥<sup>३</sup>

१- रामेश्वर प्रसाद, राष्ठीवावली, (राष्ट्र बदन, सीतापुर) १९७० वि०

२- रामनरेश त्रिपाठी - मोनसी - पृ० ४३ ।

३- " " " " " पृ० ४६ ।

गुप्त जी की भारत-भारती, देश की जन गीता है। कवि ने उसमें देश के अतीत कैमव एवं उसकी संस्कृति का गौरव गान किया है कि वास्तव में भारत भारती राष्ट्रियता का प्रथम उद्घोषण है। अन्त में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि:-

हा ! दीनबन्धों ! क्या हमारा नाम ही मिट जायगा,  
अब फिर कृपा - कण भी न क्या भारत तुम्हारा पायगा ।  
हा ! राम ! हा हा ! कृष्ण हा ! नाथ हा ! रक्षा करी,  
मनुजत्व दो हम को दयामय, दुःख - दुर्लता हरी ।<sup>१</sup>

विशेष्य काल की कविता में नवीन तथा साधारण विषयों के समावेश का वर्णन करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है सड़ी बोली का प्रचार बढ़ता दिलाई देता था और काव्य के प्रसार के लिए कुछ नई भूमियाँ भी दिलाई देती थीं । देश दशा, समाज सुधार, स्वदेश प्रेम, आचारण संबंधी उपदेश आदि तक नई पारा की कविता न रह कर जीवन के कुछ और पक्षों की ओर भी बढ़ी, परन्तु गहराई के साथ नहीं । त्याग वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि अनेक शौराणिक और ऐतिहासिक पक्षबद्ध हुए जिन के बीच बीच में जन्म भूमि स्वजाति गौरव,, आत्म सम्मान की व्यंजना करने वाले जोशीले भाषण रहे गए ।<sup>२</sup> इस युग में मानव अधिक बौद्धिक हो गया था । फलतः इस युग में विषय वस्तु के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन हुए। कवि साहित्यिक बने । उन्होंने अपनी भावनाओं को विश्व के प्रत्येक पदार्थ से संप्राप्त कर उन्हें काव्य का विषय बनाया । सरस्वती जी उस समय की अग्रणी हिन्दी पत्रिका थी उसे प्रकाशन के लिए काफी सामग्री नहीं मिल पाती थी । फलतः सरस्वती की विनय अपने आवक की पूर्ति के लिए सुनाई पड़ी -

१- मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती - वर्तमान खण्ड - पृ० १५५ ।

२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का ऐतिहास । पृ० ६१२ ।

उन्नति उन्नति उच्च सदा जो चित्लाते हैं,  
मुक्त में विविध प्रकार न्यूनता बतालाते हैं।  
उनसे विनय वितीत यही पैरी, पन लावे,  
मूले भक्ति विशेषण वही करके दिखलावे।।<sup>१</sup>

गोपाल शरण सिंह की उल्लासना, लज्ज की वेदना, कामता प्रसाद गुरु की मैना की स्वतन्त्रता, रामचरित उपाध्याय की विधि-विडम्बना, हरिवीथ की भीर का उठना, इत्यादि ऐसी कविताएँ हैं जिन में साधारण विषयों को वर्णन किया गया है। यह तत्कालीन स्वच्छन्दतावादी भावधारा का ही परिणाम है।

विवेच्य काल में देशी विदेशी भाषाओं के काव्य-ग्रंथों और कविताओं का उड़ी बोली में अनुवाद हुआ। हिन्दी साहित्य को समृद्ध एवं व्यापक बनाने के उद्देश्य से शिववेदी जी ने इसे बहुत प्रोत्साहन दिया। इस काल के कवियों ने बंगाल साहित्य की भाव सामग्री का वर्णन प्रवान शैली में अनुवाद किया। गुप्त जी ने माइकेल मधुसूदन दत्त के दो काव्यों ग्रन्थों, मेघनाद वन, तथा विरहणि कृष्णगना, का सुन्दर अनुवाद किया। सियाराम शरण गुप्त की समस्त कविताओं पर रवीन्द्र नाथ ठाकुर की गीतांजलि का प्रभाव है। विवेच्यकाल में श्रीधर पाठक ने अंग्रेजी कवि गील्डस्मिथ के ग्रन्थों हरिमिट (एकान्तवासीयोगी) ड्रेव्लर, (शान्त पक्षिक, इंग्लैंड विलेज (ऊजड़ ग्राम) के सुन्दर अनुवाद किये। इन अनुवादों के द्वारा श्रीधर पाठक ने हिन्दी प्रेमियों को अंग्रेजी काव्य से अवगत कराया। इनके द्वारा स्वच्छन्दतावादी भावधारा को भी प्रोत्साहन मिला।

विवेच्य काल में प्रबन्ध-काव्यों, लण्डकाव्य, और प्रणीत मुक्तकों का भी प्रणयन हुआ। डा० श्रीकृष्ण लाल का मत है कि- पन्नीस वर्षों में एक ठूठा परिवर्तन हो गया। मुक्तकों के बन-लण्डों के स्थान पर महाकाव्य, वार्त्थान-काव्य प्रेमालया-काव्य, प्रबन्ध काव्य, गीत-काव्य और गीतां से सुशोभित काव्योपवन का निर्माण-



होने लगा । गद्य में घटना- प्रधान, भाव प्रधान, ऐतिहासिक तथा शैराणिक उपन्यास और कहानियों की रचना हुई । उपासीयता और निबन्धों की अपूर्व उन्नति हुई ।<sup>१</sup>

विवेच्य काल में कवियों ने भाषा और विषय की भाँति ही भारतेन्दु युगीन छन्द विधान में भी परिवर्तन किए । भारतेन्दु - युग में लावनी तथा अन्य-जन-गीतों में रचना हो रही थी । उसी परम्परा में श्रीधर पाठक ने स्वप्न, एकान्त-वासीयोंगी का लावनी छन्द में अनुवाद किया । पाठक जी ने लंकाभाषा के इस छन्द का विस्तृत सही ढंगी में प्रयोग किया है। इस कारण वे अन्य लावनी रचयिताओं से अधिक मौलिक सिद्ध हुए ।

भारतेन्दु काल की संध्या अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में एक नई प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ । वह थी संस्कृत कृतों (वर्णिक छन्दों) का नवोत्थान<sup>२</sup> इस नई धारा, के प्रथम उत्थान के सन्दर्भ में शुक्ल जी का मत है- मैं समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में संस्कृत कृतों में सही ढंगी के कुछ पय पहले मित्र जी (चम्पारन निवासी प० चन्द्र शंकर मित्र) ने ही लिखे ।<sup>३</sup> उसी परम्परा में पाठक जी ने कालिदास के अतुल्यहार का ललित एवं मधुर अनुवाद संस्कृत कृतों में किया-

नाले सरौज के नैनन लो,  
अंसुजान की सुंदन को भर लावति ।  
बिम्ब से छौंठन से सुठि बल्लव,  
छौंवि तिनहै तिनहीं अन्हवावति।<sup>४</sup>

१- डा० श्रीकृष्ण लाल- आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० ३४ ।

२- डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ८७ ।

३- श्री रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० ५८६ ।

४- श्रीधर पाठक - मनोविनोद, द्वितीय सण्ड, पृ० २९ प्रयाग (१९०५ ई०)

हरिवंश जी ने संस्कृत, कूर्चों के समान अतुकान्त छन्द लिखने की प्रेरणा भी दी:-

सुरम्य रूपे, रसराशि राजिवे,  
विचित्रवर्णा परणा, कहाँ गई ?  
कलौकिकानन्द विवायिनी महा,  
कवीन्द्र कान्त कविते । कहाँ कहाँ ?  
मार्गस्थमूलमय वारिद - वारि - वृष्टि ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार संस्कृत कूर्चों के आधार पर रचना करने की विवेच्य काल की पसल प्रवृत्ति रही । लावणी, कवीर जादि लोक गीतों की परिपाटी चली, वह स्वच्छन्दता-वादी भावधारा की प्रेरणा का परिणाम था ।

विश्वेदी जी, केवल संस्कृत - गर्भित भाषा तथा संस्कृत कूर्चों में ही काव्य रचन न करते थे अपितु उन्होंने कलते हुए छन्दों में बोल चाल की भाषा का प्रयोग करते हुए भी काव्य रचना की । उनका विचार तो था कि कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिससे कौंसे सस्त्र में समझ में आए और जहाँ कौं छन्दयंगम कर सके यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ।--कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए।--गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिये ।<sup>२</sup> यह तथ्य ठीक है क्योंकि जो कुछ लिखा जाता है वह वही अमिप्राय से लिखा जाता है कि रचना में सन्निविष्ट भाव दूसरे समझ में । यदि इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हुई तो लिखना व्यर्थ है। सड़ी बोली के आरम्भिक काव्य में जो शैथिल्य था वह भी दूर हो गया । विशुद्धता के मापदण्ड को बनाने के कारण विश्वेदी जी की काव्य में छन्दों के संबंध में भी नये प्रयोग करने पड़े । सड़ी बोली के प्रौत्साहन उर्दू मिश्रित हिन्दी अथवा उर्दू छन्दों के प्रयोग भारतीय-दुसरा से मिलने लगे थे। उर्दू के -

१- हरिवंश - प्रिय प्रवास - पृ० १६१, बनारस (१९५६)

२- महावीर प्रसाद विश्वेदी - रसत रंजन, कवि कर्तव्य के अन्तर्ग - (भाषा)

जागर (१९९५)

छन्दों में विवेच्य युग में रक्माई हो रही थीं -

चार छा हमने मारे तो क्या किया,  
है यहाँ मैदान कौनों का भी ।  
काम जो है आज के दिन तक हुये,  
हैं न छाने के बराबर वे सभी ।<sup>१</sup>

विश्वेदी जी ने सड़ी बोली को प्रस्ताव चौराहे पर सड़ा करने के लिये  
संस्कृत कृष्ण को अपनाया और दूसरों को अपनाने के लिए प्रेरणा भी दी ।

बिना याचना के जो कोई स्वयं सलिल ले जाता था ।  
सरस लसी का किरण - जाल जो क्या समय मिल जाता था  
उसे छौड़ कर रेल सुता ने और न कुछ मुल में डाला ।  
कृष्ण के समान, जाकाशी- वृधि - वृत्त उसने पाला ।<sup>२</sup>

इसी परम्परापालन में हरिविध जी क्लिष्ट हो गये-

सदुस्था- सदलंकृता - गुणयुता - सर्वत्र सम्मानिता ।  
रागी वृद्ध जनोपकार- निराला सच्चास्त्र चिन्तापरा ॥  
सदापतिरता अन्य छन्दया सत्प्रम - संपोषिका ।  
राधा थी सुमना प्रसन्न वदना स्त्री जाति रत्नापमा ॥<sup>३</sup>

विवेच्य काल में भाषा की विशुद्धता पर अधिक बल दिया गया यह प्रयत्न  
सड़ी बोली के रूप की स्वच्छता तथा परिपक्वता दिलाने के लिए किये गये ।

ऊपर के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि विश्वेदी युग भारतेन्दु  
और कायाकादी युग के बीच की कड़ी है। यह भारतेन्दु युग से प्रभावित हुआ और

१- हरिविध - प्रियप्रवास की भूमिका - बनारस (१९५६)

२- जाकाय महावीर प्रताप विश्वेदी - (कुमार लमक-सार) पृ० ७३ ।

३- हरिविध - प्रिय-प्रवास, कृष्ण बनारस पृ० ३७ (१९५६)

उसने आने वाले युग को प्रभावित किया । विवेच्य युग में ऐसे भी कवि हैं जिनकी रचनाओं में कविता की नवीन प्रवृत्तियों के बीज निहित हैं। जिस प्रकार अंग्रेजी साहित्य में रोमान्टिसिज्म के जन्म से पूर्व साहित्य में अतिशक्ति सुधारवाद, शक्तिवृत्तात्मकता, शुष्कता तथा शास्त्रीय रुढ़ियों का बोलबाला था ठीक यही दशा हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद से पूर्व छिन्देदी युग में थी जिसकी प्रतिक्रिया स्वच्छन्दतावाद के रूप में हुई ।

छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को बहुत से बालोचक एक दूसरे का पर्याय समझते हैं । लेकिन यह विचार ठीक नहीं है । हिन्दी स्वच्छन्दतावाद काव्य नैतिकतावादी काव्य और कलात्मक काव्य धारा के मध्य बहने वाली धारा है। स्वर्ग सामाजिक चेतना के स्वर्ग के साथ-साथ काव्य में युगानुरूप छान्नी की प्रवृत्ति प्रमुख है। इन सूक्ष्म भेदों को समझने के लिए छायावादी काव्य पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है ।

इसके अतिरिक्त आधुनिक काल की अन्य प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों और आन्दोलनों पर संक्षेप में विचार करना उपयुक्त होगा । ताकि स्वच्छन्दतावाद को हिन्दी-काव्य की बीसवीं शताब्दी की स्थापित के परिवेश में मही प्रकार परखा जा सके । मने छायावाद के अतिरिक्त, प्रातिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन किया है।

## हायावाद युगः--

दो महायुद्धों के बीच की आधुनिक हिन्दी कविता को हायावादी कविता का नाम दिया जाता है। इस काल में हिन्दी के रोमान्टिक काव्य का उदय, विकास और अन्तः काल हुआ है। विज्ञान की उन्नति के साथ भारत का वास्तव्य वातावरण पूर्णतया परिवर्तित हो गया। अन्त महायुद्ध के समाप्त होने तक मनुष्य प्रकृति पर विजय पाने की ओर कदम उठा चुका था। वह समाज का वैज्ञानिक ढंग से निर्माण करना चाहता था। अन्त का स्थान मशीनें ले रही थीं। नवीन सम्यता का प्रभाव केवल नागरिक जीवन पर ही नहीं पड़ा बल्कि ग्राम्य जीवन भी इससे व्युत्पन्न रह सका। बौद्धिक जीवन के इस परिवर्तन का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी लेखकों पर इसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक थी। हिन्दी कवियों ने जीवन के तमोरे तथ्यों का साक्षात् के साथ सामना किया किन्तु उनमें से अधिकांश फ्लायनवादी प्रवृत्ति से नहीं बच सके और वे तब की तकरी प्राचीरों में धन्द होकर काव्य रचना करते रहे।<sup>१</sup>

आधुनिक हिन्दी काव्य को सुन्दर शब्द कोण और कोमल मधुर अनुभूतियाँ हायावाद की ऐतिहासिक देन है।<sup>२</sup> हायावाद हिन्दी साहित्य में महान् आन्दोलन के रूप में आया हिन्दी में परिवर्तन, लय, गति, यति आदि की स्वच्छन्द योजना तथा वस्तु - विधान और अभिव्यञ्जना शैली में नूतन प्रवृत्तियों का समावेश इस युग में हुआ। राष्ट्र प्रेम का जो स्वर भारतीय युग में सुनाई पड़ा वह इस युग में नूतन ध्वनि के साथ गुंजित हुआ। साम्राज्यवाद और सामन्तशाही के विरुद्ध आवाज उठाने वाले अनेक आन्दोलन जीवन और काव्य क्षेत्र में सुनाई दिए। इसके साथ ही द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से निष्कृति पाने के लिए कवियों ने एक साथ नवीन भावनाओं, विचारों, कल्पनाओं और अनुभूतियों को काव्य में स्थान देना आरम्भ किया। कविता में पद-लालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यञ्जना, वेदना,-

१-

E.M. Foster - The London Mercury, December, 1933.

२- डा० देवराज उपाध्याय- रोमान्टिक साहित्य शास्त्र की मूमिका- पृ० ८ ।

की निवृत्ति, प्रतीक प्रयोग की विलक्षणता कवियों में अंकुरित हुई। इसके फलस्वरूप काव्य की समस्त पुरातन प्रक्रिया और विषय-वस्तु परिवर्तित हो गई।<sup>१</sup>

छायावाद आधुनिक हिन्दी काव्य में तीव्र आन्दोलन के रूप में आया परन्तु उसे कल्पना की दृष्टि ने हमारे जीवन से दूर हटा दिया। इसके बाद भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य बोध और नये विचारों का रस नहीं था पन्त जी छायावादी कवि हैं परन्तु फिर भी उन का कहना है कि नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण करने से पहले हिन्दी कविता छायावाद के रूप में स्नातक के वैयक्तिक, अनुभवी ऊर्ध्व मुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकाशवाणी संबंधी स्वप्नों, निराशाओं, और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी। व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कठिनाइयों से द्रव्य बलायक के रूप में प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर, भीतर-बाहर, सुख-दुःख आशा-निराशा और संयोग-वियोग के खून्दों में सामंजस्य स्थापित करने लगी। सापेक्षता की पराजय और निरपेक्षता की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी।<sup>२</sup>

कवि युग का प्रतिनिधि होता है। कविता उसके हर्ष विषादों सुख-दुःख और आशा निराशा का प्रतिबिम्ब होती है पर छायावादी युग के कवि इस तथ्य को भुल रहा थे। छिंदेदी युगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता मोरसता और भाव-निष्प्राणता के विरुद्ध उन्होंने निद्रास तो किया परन्तु अपने दोष में सफल होने के बाद जिस दुनिया के चित्र उन्होंने खींचे उनमें आकर्षण था, सुनहरे रंग थे, कल्पना के रेखी धागे भी थे परलौक जीवन के जास पास उसे जन्म देने वाली परती पर क्या हो रहा है उस उसे पता न था। संसार की कठोर वास्तविकताओं के प्रति उदासीन रहे। १९३० ई० का राष्ट्रीय आन्दोलन एक जन आन्दोलन के रूप में हमारे यहाँ फैला। हमारे उपन्यासकार, कहानीकार, अपनी रचनाओं द्वारा उस का समर्थन कर रहे थे। देश की जनता ने छायावादी कवियों से भी काव्य के माध्यम से उस --

१- प्रो० विजयेन्द्र स्नातक- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० २२१।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि- पर्यालोचन पृ० १२।

आन्धोलता में सहयोग चाहा । परन्तु हायावादी कवि इस मार्ग को पूर्ण न कर पड़े । कवि समाज की आशाओं, अभिलाषाओं, की स्वर देता है लेकिन हायावादी कवियों ने इस और से बाँहें फेर ली । कविता कल्पना की रानी ली बन गई पर धरती की चितवन, उसकी हँसी उसकी मुस्कराहट न बन सकी । इस अस्माधिकता के विरोध के जिस नवीन प्रकृति ने जन्म लिया वह प्रगतिवाद कहलाई ।

### हिन्दी कविता की नयी दिशाएँ : प्रगतिवाद

१९३६ ई० में मुत्सराज आनन्द व सज्जाद जहीर के प्रयत्न स्वरूप यह संस्था लखनऊ में बनी । इसके प्रथम अधिवेशन का समावर्तित्व मुन्शी प्रेमचन्द ने किया । तभी से भारत में प्रगतिशील साहित्य का प्रचार हुआ । डा० नामवर सिंह के शब्दों में-- प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों का इतिहास, साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता व्यापक भाव भूमि, और उच्च विचार के निरन्तर विकास का इतिहास है जो केवल राजनीतिक जागरण से उत्पन्न होकर क्रमशः जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थ से जाग्रत होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थ - वाद की ओर अग्रसर होता आ रहा है। प्रगतिवादी साहित्य ने हिन्दी साहित्य में एक नये अध्याय की स्थापना की । गुर्गों से प्रताड़ित और पीड़ित जनताधारण की भावनाओं की व्यक्त कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए संघर्ष किया । पूँजीवाद, साम्राज्यवाद आदि शोचक शक्तियों का कड़ा विरोध किया । प्रगति की यह प्रेरणा हिन्दी में राजनीतिक आन्दोलनों के प्रभाव से आई । हायावादी कवि समाज का काँ न रस कर अपने ही व्यक्तित्व की सीमाओं में समाकर रह गये थे । उसकी कविता व्यष्टिपरक थी - समाष्टि की छविना उसका स्वभाव था, किन्तु प्रगतिवाद ने कवि को पुनः समाज की एक इकाई बनने को बाध्य किया । उसने अपने जीवन-

१- डा० नामवर सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता की नई प्रवृत्तियाँ । पृ० १२ ।

दर्शन की परिवर्तन करने के साथ-साथ कला का मापदण्ड भी परिवर्तित किया। कोयल की कुबू के स्थान पर उसने गिल के गोंपू और तैल तल्लिहान के पीड़ा भरे कन्दन को पुनरावलोकित किया। कुर्जुआ और सामन्तशाही की वाणी का त्याग कर जन-साधारण की राज्य-स्थापना की कातिवादी कवि ने अपनी कविता का लक्ष्य माना। यह साहित्य हिन्दी में छायावादी कविता के प्रति विक्रीह की भावना लेकर आया था। इसका मूल आधार मार्क्स का द्वन्द्व-आत्मक मोतिकवाद था। मार्क्सवाद की मूल प्रेरणा पर आधारित यह वाद, आर्थिक समस्याओं के समाधान को मूल मानता है। धर्म, ईश्वर तथा आध्यात्मिकता में इसकी आस्था नहीं, इस लिए इस साहित्य का अहिम्नीही होना स्वाभाविक है। परन्तु ऐहिकता की प्रधानता के कारण इस साहित्य में कदाता और शुष्कता है, भावुक व्यक्ति को यह प्रेरित नहीं करता। वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखने के कारण-अर्थ मूलक समस्याओं का ही इस वाद में स्थान है। कहीं-कहीं काम-मूलक समस्याओं का भी चित्रण है, किन्तु उसका समाधान अर्थ के वैषम्य को दूर करने में ही निहित है। इस वाद ने हमारी नई शिक्षित पीढ़ी को एक विशेष समाज-दर्शन और जीवन-दर्शन दिया। इसके बाद ही उसने हमारी दृष्टि एक तात्कालिक सामाजिक समस्या पर केन्द्रित कर दी है। हमें एक छोटी और मजबूत रस्ती से बांध कर सामाजिक समस्या की लूटी में जकड़ दिए गए हैं यह परवशता हमें विदेशी शासन से स्वतन्त्र होते ही प्राप्त हुई है। हमारे साहित्यिक मान-दण्ड इसी लूटी से बंधे होने के कारण अतिशय सीमित और संकीर्ण हो उठे हैं। इस प्रकार साहित्य के सौंदर्य संबंधी एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमें दिया है। जिसे प्रयोगवाद नाम दिया जाता है।

### प्रयोगवाद

प्रयोगवाद का आरम्भ १९४९ ई० के लगभग हुआ। प्रयोगशील कविता में नर सत्य या नई यथार्थताओं का जीवन बोध भी है। वर्तमान युग में हमारा जीवन पुराने दायरे से बिकल कर नये दायरे में संक्रमण कर रहा है। प्रत्येक संक्रान्ति युग विकट संघर्ष, वैषम्य संकट और सत्यान्वेषण का युग होता है इसमें मनुष्य के पुराने समाज-



विधान का ढाँचा ही नहीं टूटता बल्कि उसके विश्वास उसकी नैतिकता उसके विचार, उसके भाव सब बदलने लगते हैं जो पुराना है उससे टकराते हैं। मनुष्य का संपूर्ण विश्व-बीच एक नये परिवर्तन के संवर में पड़ जाता है। संक्रान्ति युग के कवि और कलाकारों की कृतियों में व्यक्तिगत अभिव्यक्ति या पार्श्व के चरित्र चित्रण के माध्यम से वस्तुतः मनुष्य के नये विश्व बीच और जीवन की पुरानी मान्यताओं का विराट् संघर्ष प्रति-बिम्बित होता है। आधुनिक कविता के पीछे परिस्थितियों की प्रबल प्रेरणा है। आधुनिक मानव समाज जिन अंतर्गतियों से ग्रस्त है उसमें जो संगठित शक्तियाँ एक दूसरे से जूझ रही हैं, और समस्त वैज्ञानिक आविष्कार राष्ट्रीय आन्दोलन, वर्ग संघर्ष और अन्तर राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा और युद्ध के बावजूद वह जिस दिशा में अग्रसर है उसकी गतिविधि को प्रभावित करना व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो गया है।

आधुनिक कविता काव्य शास्त्र की प्राचीन रूढ़ियों को त्याग रही है। उसके छन्द, शब्द, सयन, वाक्य रचना, अलंकार विधान, सभी कुछ बदल रहे हैं। कविता का तुक ताल के बन्धनों से मुक्त होकर नये वाक्य को स्पष्ट करने, अभिव्यक्ति के साधन और तीव्र बनाने के लिए नयी भाषा, नयी लय नयी छेड़ी और नयी टेक्नीक का प्रयोग कर रही है। प्रत्येक महान और मौलिक जिस अनुपात में वह मौलिक तथा महान है अपनी कला के महत्त्व को समझने वाली अभिरुचि का निर्माण करता है।<sup>१</sup> वाज की कविता और कवि उसी नई अभिरुचि और आकाशों का निर्माण कर रहे हैं।

प्रतिक्रिया और परिवर्तन के साथ साथ चलते हैं। जब किसी वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया होती है तो उसमें परिवर्तन का जाना केवल स्वाभाविक ही है। बल्कि अनिवार्य भी है। हिन्दी साहित्य में जब द्विवेदी युग के प्रति प्रतिक्रिया होने लगी तो उसमें जो परिवर्तन आया वह हायावाद के रूप में प्रकट हुआ। इसके कई—

कारण थे। विद्वेदी युग की कविता शक्तिवृत्तात्मक, नतिस्पर्शक, उपवेशात्मक, कल्पनाहीन थी, उसकी वस्तुओं की भावार्थ पकड़ या सतही विवेचन, दैनिकजीवन के विषयों पर अधिक आश्रित था। साथ-साथ वह संस्कृत निष्ठ एवं अगढ़ भाषा में लिखी जा रही थी। इस काव्य के विपरीत विशेषताओं को लेकर छायावाद का प्रागुद्भव हुआ। छायावाद में यह परिवर्तन केवल विषय वस्तु या कथ्य की दृष्टि से ही नहीं हुआ बल्कि भाषा, छन्द, लंकार, प्रतीक आदि सभी अभिव्यक्ति के माध्यमों में भी परिलक्षित होता है। छायावाद अपनी कालोन्मुखी प्रवृत्तियों की अधिकता के कारण स्वतः भरने लगा और प्रातिवाद का जन्म होने लगा। छायावाद यदि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विरोध है तो प्रातिवाद सूक्ष्म के प्रति स्थूल का विरोध कहा जा सकता है। प्रातिवादी काव्य धारा १९२६ से लेकर १९४९ के अल्प समय तक ही अस्तित्व में रह सकी। उसके पश्चात् प्रयोगवाद का जन्म हुआ। प्रातिवाद के अन्त होने के कई कारण थे। प्रातिवाद राजनीति के संश्लिष्ट घेरे में चपकर काट रहा था। विषय-वस्तु की संकीर्णता और रुढ़िवादिता के प्रति असन्तुष्टि थी प्रातिवादी के ह्रास का एक मात्र कारण नहीं था बल्कि शिल्प-सौंदर्य के प्रति पूर्ण उदासीनता भी उसका एक अन्य कारण था। भाषा की अराजकता ने कविताओं में विद्वेदी युग के पूर्व का दृश्य उपस्थित कर दिया था। लंकारों की सुवृद्धा फैलाने मानकर उसका बहिष्कार होने लगा छन्द भी लक्ष्मीन होने लगे। इस प्रकार की शिथिलता होने के कारण भी प्रातिवाद के प्रति प्रतिक्रिया हुई।

द्वितीय महायुद्ध के परिणाम स्वरूप तब में द्विपी हुई लोक भावनाएँ और चिन्ताएँ उभर कर सतह पर आ गई थीं। जीवन अपनी एकाग्रता खो रहा था। मानव-मूल्यों में अस्थिरता आने लगी थी, पुरानी मान्यताएँ और आस्थाएँ टूटने लगी थीं। जीवन के समस्त दायों में अस्थिरता, अस्तव्यस्तता, विह्वल, और अराजकता फैल रही थी यह विह्वल ही आधुनिक युग की समस्या थी इस नये माहौल को अभिव्यक्त करने के लिए टैक्नीक की आवश्यकता हुई और प्रयोगवाद का जन्म हुआ।

स्वतन्त्रता के प्राप्त हो जाने पर भी मध्य वर्ग की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ । इस कारण नयी कविता में निराशाङ्ग विभीषिका आदि के साथ-साथ एक आशा का स्वर भी सुनाई पड़ा नयी कविता उस नगर संस्कृति की उषा है जहाँ समाज और व्यक्ति के संबंध टूट गये हैं जहाँ व्यक्ति की कोमल भावनाएँ मशीन की आवाज़ में ली जाती हैं। इन्सान की आत्मा के बीच से उठी हुई कैबुरी आवाज़ का नाम नयी कविता है। यह आदि से अन्त तक साहित्यिक आन्दोलन है। यह कला का आन्दोलन है । इसका मुख्य उद्देश्य काव्य कला एवं कला संबंधी हमारी परम्पराओं को परिवर्तित करना है। हिन्दी की नयी कविता परम्परा से वर्ण्य विषय की दृष्टि से भिन्न है इसी लिए इसके शिल्प विज्ञान में भी हमें परम्परा से अधिक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। नये काव्य ने सदैव बन्धनों को तोड़ा है। जो काव्य ऐसा करने में समर्थ न हो सका वह कृति की वस्तु होकर रह गया है। साहित्य युग का प्रतिनिध नहीं बल्कि पथ प्रदर्शक है। अच्छे साहित्य ने सदैव अपने युग और मानव जीवन को नई राहें प्रदान की ।

### ४- निष्कर्ष:-

वापुनिक हिन्दी साहित्य के कविता के उपर्युक्त बिकासत्मक अध्ययन से स्वच्छन्दतावादी काव्य पारा के परवर्ती प्रभाव की सम्पूर्ण मैपकारिता सहायता मिलती है। वापुनिक हिन्दी कविता का वास्तविक पुनारम्भ स्वच्छन्दतावादी कविता के साथ ही हुआ था। स्वच्छन्दतावाद का जन्मीलन हिन्दी में नयी भाव-भूमि और नयी प्रवृत्तियाँ लेकर प्रविष्ट हुआ। उसने भारतीय युग की भाषा, शैली, शब्द, वादि की सम्पूर्ण कल धिया और विषय-वस्तु में नये क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। समाज-यिक युग की सामाजिक और राजनीतिक रङ्ग जन्मीलनों की रोमान्टिसिज्म पर गहरा प्रभाव है। सामाजिक लड़ाई, धार्मिक अन्धविश्वासों, कुशियों के विरुद्ध स्वच्छन्दतावाद में प्रखर स्वर मिलता है। स्वच्छन्दतावाद की गव से बड़ी देन है सामाजिकता। हिन्दी साहित्य के ऐतिहास में विवेच्य युग जैसी सामाजिकता शायद ही मिली युग में रही हो। जहाँ कवि प्रसन्न नहीं कविता प्रसुप्त है। उलटिए उस कविता में व्यक्तिवाद का पैरा स्वर नहीं मिलता जो धीरे स्तर क्षयावाद या प्रयोगवाद में जाया। स्वच्छन्दतावाद ने हिन्दी काव्य को नयी भावभूमि की प्रेरणा तथा नयी विषयवस्तु प्रदान की। क्षयावाद में स्वच्छन्दतावाद की कलात्मक पद्धति का परम विकास मिलता है। प्रातिवाद में उसकी सामाजिकता का सर्वोच्च रूप है। इस कविता में राजनीतिक चेतना का वह स्वरूप नहीं है जो हिन्दी की परवर्ती कविता में मिलता है। वरुण एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि स्वच्छन्दतावादी युग में भारत की राजनीति में स्थिरता नहीं, धाँस की और न जन्मीलनों का पैरा स्वरूप स्पष्ट हो पाया था जो क्षयावाद या प्रातिवाद युग में मिलता है। भारत की राजनीति का स्वरूप अहर्निश जन्मीलन के बाद स्पष्ट हुआ और उस समय क्षयावाद वरुण स्थान ले चुका था। विवेच्यकाल के बाद के युग में जो स्वच्छन्दतावादी कवि हुए हैं उनमें राजनीतिक चेतना का स्वर प्रखर है। बालकृष्ण लाल नवीन लुहता लुहारी चौराहा जैसे प्रमुख कवि हैं।

वाधुनिक हिन्दी काव्य में अब तक इस दिशा में जितने शोध-कार्य हुए हैं उनमें से किसी से स्वच्छन्दतावाद की कोई निश्चित दिशा निर्धारित नहीं होती है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रणवियों पर कोई ठोस काम अभी तक नहीं हुआ है। अधिकांश विद्वानों के मतों में अन्तर विरोध है। कुछ विद्वान् लोग स्वच्छन्दतावाद को अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म का भारतीय संस्करण मान बैठे हैं। कुछ उसे आध्यावाद और रहस्यवाद की जोड़ तक ले जाते हैं। विद्वानों का यह अन्तर विरोध मैंने विषय प्रवेश तथा परिभाषाओं में स्पष्ट कर दिया है। दो एक विद्वानों ने इस संबंध में कुछ अच्छा कार्य किया भी है। उदाहरण के लिए श्री रामचन्द्र मिश्र के शोधकार्य को ले सकते हैं। लेकिन मिश्र जी ने स्वच्छन्दतावाद को श्रीधर पाठक तक ही सीमित कर के देखा है। दूसरे मिश्र जी का ध्यान प्रकृति चित्रण पर अधिक गया है परन्तु स्वच्छन्दतावाद की नयी भाव-भूमि, विषय-वस्तु तथा सामाजिकता पर उनका तथा अन्य विद्वानों का भी ध्यान बहुत कम गया है।

हिन्दी साहित्य को स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन की सबसे बड़ी देन है जन जीवन का चित्रण तथा काव्य को जन-जीवन के निकट लाना। स्वच्छन्दतावाद में जितनी गहरी सामाजिकता तथा समतामयिक आन्दोलनों से जितनी जन-चेतना उभर कर आई वह हिन्दी काव्य के लिए नयी वस्तु थी। हमने इस सामाजिक पक्ष पर विशेष जोर दिया है। स्वच्छन्दतावाद की उस सामाजिकता ने भावी हिन्दी काव्य को नयी दिशाएं प्रदान की हैं। स्वच्छन्दतावाद को हिन्दी साहित्य में वाधुनिकता और नये युग का सूत्रपात करने वाला आन्दोलन मानना चाहिए।

झारा जण्णाय

पिछले अध्याय में स्वच्छन्दतावाद के विकास और उसके संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद और अंग्रेजी के रोमान्टिसिज़्म (Romanticism) के अन्तर को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। आयावाद और स्वच्छन्दतावाद की एकता और विभिन्नता सम्बन्धी दृष्टिकोण के विश्लेषण से कुछ नवीन तथ्य सामने आये हैं। स्वच्छन्दतावादी और आयावादी काव्य की मूल चेतना में समष्टिवादी और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हैं। समष्टि और व्यक्ति की एकता और विभिन्नता इन काव्य आन्दोलनों के मूल में दिखाई पड़ती है।

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्यकालीन कविता की पृष्ठभूमि एवं नवीन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में स्वच्छन्दतावादी काव्य के विवेचनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है। विवेच्यकाल (१६००- १६२० ई०) के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों का तत्कालीन काव्य पर क्या प्रभाव पड़ा तथा पश्चिमी साहित्य, संस्कृति और चिन्तन द्वारा ने क्या प्रभाव डाला ? इस का विश्लेषण करना इस अध्याय का प्रमुख उद्देश्य है।

पाश्चात्य आर्यों के कारण भारत की प्राचीन काल से स्थापित मूल व्यवस्था में आमूल परिवर्तन आरम्भ हुए। धर्मोपेगीकरण, विज्ञान के नूतन आविष्कारों एवं नवीन आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था ने देश की प्राचीन जीवन पद्धति को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। लोगों की आस्था और विश्वास हलंगाने लगे। प्रतिक्रिया स्वरूप देश में पुनरावादी आन्दोलनों की प्रकृति धारा प्रवाहित हुई। इन आन्दोलनों का मूल उद्देश्य नव- जागरण नवीन चेतना का विस्तार और साथ ही पश्चिम की तैय हवा से अपने अस्तित्व की रक्षा करना भी था। इस आत्म- रक्षा के प्रयत्न में हमारे नेताओं ने अतीत का सहारा लिया। हमारे कवि और ऐशकों ने प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास के स्वर्णिम सन्दर्भों को विषय बनाकर ग्रन्थों की रचना की। प्राचीन महापुरुष और पौराणिक अवतार, नये मानवीय सन्दर्भ में, साहित्य के माध्यम से हमारे सम्मुख आये। इन कार्यों ने देश को एक नया आत्मगौरव और विश्वास प्रदान किया।

इसी आत्मगौरव और विश्वास के कल पर हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन फूला-फूला। यह कार्य मूलतः भारतीय युग से आरम्भ हुआ। स्वतन्त्रतावादी काव्य ने इस का विस्तार हुआ।

विषय- वस्तु और भाव-भूमि के आमूल परिवर्तनों के साथ साहित्य का शिल्प भी बदल जाता है<sup>१</sup> क्योंकि पुरानी भाषा-शैली, छन्द, कलंकार आदि नवीन विषय-वस्तु के संग्रहण में असमर्थ रहते हैं। इस लिए शिल्प का आविष्कार कलाकार स्वयं नहीं करता है बल्कि नयी विषय- वस्तु, चेतना और भाव-भूमि स्वयं करा लेती है।<sup>२</sup> इस ऐतिहासिक आवश्यकता ने स्वतन्त्रतावादी काव्य के लिए नयी भाषा, शैली छन्द, और कलंकारों का निर्माण किया। इस काव्य की भाषा कब से खड़ी बोली हो गई। परम्परागत शैली और छन्दों का प्रयोग बहुत कम हो गया। काव्य रचना में कला गीत हो गई और सामाजिक चेतना के स्वर अत्यन्त प्रबल हो गये। घनाकारी, हृष्य, कवि आदि प्राचीन छन्दों का धीरे-धीरे लोप होता गया। इसी प्रकार विवेच्य युग के काव्य में कलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं। पूर्ववर्ती काव्य की भाँति प्रयत्न करके नहीं लाये गये हैं। नवयुग की नयी चेतना और नवीन अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए। विवेच्य काल के कवियों ने नवीन अभिव्यक्ति पद्धतियों का भी अवलम्ब ग्रहण किया है। शिल्प विषयक यह संपूर्ण प्रक्रिया नवीन विषय- वस्तु और नये दृष्टिकोण के अनुरूप रही है।

---

१- Howard Fast - Literature and Reality, P. 23. New York (1930)

२- Ralph Fox - Novel and the People, P. 23. Moscow (1961)



## विवेच्यकालीन कविता की पृष्ठभूमि

### उत्तर-ऐतिहासिक

प्लासी की लड़ाई (१७५७ ई०) ने भारत के इतिहास की धारा को मोड़ दिया। एक बार ऐसा अनुभव होने लगा था कि मुग़ल साम्राज्य का स्थान पराठा राज्य होने वाला है। संशय में यह कहा जा सकता है कि मुग़ल साम्राज्य का अक्षय्य बड़े पैमाने से खोना प्रारम्भ हो गया। पराठा, जाट, शिखर, रोहिला आदि सब पानों मिलकर मुग़ल साम्राज्य के विनाश-कार्य में संलग्न थे।<sup>१</sup> प्लासी की हार केवल शिराज-उद्दौला की पराजय न होकर भारतीय सामन्तवाद की पराजय थी। प्लासी की विजय विदेशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की विजय थी। वहाँ से देश में त्रिकोणात्मक संघर्ष प्रारम्भ हुआ। एक ओर तो भारतीय सामन्त एक दूसरे से झूझ रहे थे दूसरी ओर उनके सम्मुख विदेशी साम्राज्यवादियों से अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न पुरुष बनता जा रहा था। तीसरा संघर्ष सब से भयंकर था। इसी संघर्ष के फलस्वरूप भारतीय सामन्तवाद परास्त हुआ। इस पराजय की पृष्ठ भूमि में व्यक्तिगत और दौलतीय स्वार्थ प्रभुत्व थे। भारतीय राजा और नवाब एक दूसरे का विनाश करने के लिए लड़ रहे थे। एक दूसरे के विनाश के लिए वे विदेशी साम्राज्यवादी सशक्तियों का सक्रिय सहयोग ले रहे थे। भारतीय सामन्तों की इस राजनीतिक भूलों का अंग्रेजों ने सब से अधिक लाभ उठाया। फ्रान्सीसी और पुर्तगाली बड़े लाभ उठाने में असमर्थ रहे उस विघटन से दरबारी संस्कृति और परम्परावादी में भी परिवर्तन आये। बड़े दरबारों का युग समाप्त हो रहा था और छोटे छोटे सामन्त उनका स्थान लेते जा रहे थे। नयी उभरने वाली विदेशी शक्ति को, भारतीय संस्कृति और साहित्य से कोई मतलब नहीं था। उनका एकमात्र कार्य यहाँ मुग़ल साम्राज्य स्थापित करना था जिससे ब्रिटेन समुद्रमाली और फुला सम्पन्न बनाया जा सके। अतएव तत्कालीन काव्य एवं कला को उन विघटित होते हुए छोटे-छोटे दरबारों की में आश्रय लेना पड़ा।

कैवल और बिहारी आदि कवियों की अपेक्षा उच्च रीतिगण के कवियों की कविता में जीवन का चित्रण अधिक गहराई से हुआ है इस काव्य का दाय्र सीमित है। लेकिन इस में गहराई और सामाजिकता है। कैवल और बिहारी की अपेक्षा देव और घनानन्द के काव्य में सामाजिकता और युगबोध की मात्रा अधिक है। उनके काव्य में नये युग के धंकर दिखाई देते हैं। इस युग के कवियों ने रुढ़ियों और कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई कथिबर देव ने कुंस्कारों और ऊँच-नीच पर आधारित भारतीय समाज-व्यवस्था का उपहास किया। तत्कालीन सामाजिक स्थिति से यह बात स्पष्ट है कि यह युग नैतिकता के क्रांति का युग था। जन्म-मरण-व्रत-साधना मोक्ष आदि पर भी देव ने व्यंग्य किया वे दूसरे लोक के लिए इस लोक की भी नष्ट करने की कौरी मूर्खता समझते हुए कहते हैं:-

जीवत तौ मरु मूर्ख सुखीत  
सरीर महापुर रुख हरे को।  
ऐसी जगामु, जगामुन की बुधि  
साधना दैत सरास मरे को।<sup>१</sup>

रुढ़ियों, कुंस्कारों और धर्म के ठेकेदारों के विरुद्ध इतना तीव्र व्यंग्य इन के किसी समकालीन और पूर्ववर्ती कवि के काव्य में नहीं मिलता है। वतसव तत्कालीन का एवं कहा कि उन विमटित होते हुए छोटे-छोटे दरबारों में ही काव्य लेना पड़ा। अपने वादों से छटकर धर्म धुणा का विषय बन जाता है यही विक्रीही स्वर हमें मारते-दु कालीन काव्य में अधिक सशक्त रूप में सुनाई देता है। भाषा की शुद्धतावादी मान्यता टूट रही थी। लौकिकीयों और मुहावरों का प्रयोग भी उच्च रीतिगण कवियों में काफी मिलता है। घनानन्द की भाषा में अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा काफी परिवर्तन दिखाई देते हैं। घनानन्द ने अपने समय की परम्परा से भुल होकर तन्वी-

उद्गारों की अपनी कविता में सहज ढंग से रखा है। उन की भाषा बिहारी और केशव की समस्कार विधायिनी प्रवृत्ति की न अपनाकर हृदय की सहज अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करती है। सरस, शुद्ध और समर्थ भाषा में हृदय की अनुभूतियों का स्वाभाविक वर्णन धनानन्द को भारतेन्दु युगीन कवियों की भाषा के अधिक निकट कर देता है। सब ती क्षुब्ध पीवत जीवन है, अब जीवन लोका जात गैर।

हित दोष के तीस से प्रान भले, बिललात महादुत -दोष-मरे॥

धन- आनंद पीत सुजान बिना, सबही सुख-साज सनाज हरे।

सब छार पहार से लागत है, अब जानि के बीच पहार परे॥<sup>१</sup>

कवि एवं सवैया इस युग की संपूर्ण कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। सवैया और कवि का यह युग ही है। राज्याभ्य में पूरी कविता में कलंकार प्रियता का होना स्वाभाविक था। रीतिकालीन कविता में कृत्रिमरूपकों और रुढ़िगत उपमाओं का पैला सा छाया रहता था - वे तीते की भाँति चकवा, पपीहा, चकौर, राजहंस इत्यादि पक्षियों के विषय में प्रचलित कितने ही रूपकों को अपनी कविता में बार बार दहुराते थे।<sup>२</sup> इस प्रकार रीति-कालीन कविता संस्कृत साहित्य शास्त्र के अनुसार नियम-धृष्ट की गई थी। कुछ कवियों ने इसे स्विकार नहीं किया और वे मुक्त रूप से काव्य के माध्यम से अपनी उद्गारों को व्यक्त करते रहे। परन्तु ऐसे कवियों की संख्या कम थी। उन कवियों में रीतिकालीन संकुचित दृष्टिकोण से बाहर निकलने की दृष्टिकोण मिलता है। भारतेन्दु युग तक यह प्रयत्न एक सीमा तक सफल भी हुआ है।

शृंगार और भक्ति इस युग के मुख्य वर्ण्य विषय रहे हैं। इस युग के शृंगार में अधिक कौकिलता है। वह जीवन के अधिक निकट दिखाई देता है। इस में अधिक सामाजिकता और जीवन है। इस युग की कविता में भारतेन्दुयुगीन काव्य की नयी भाव भूमि प्रदान की। भारतेन्दु युगीन काव्य रीति काल से इस लिए अलग है कि उसमें सामाजिकता और जन-जीवन का बहुत गहरा मुट है। भाषा और छन्दों की दृष्टि से उत्तर रीति कालीन काव्य और भारतेन्दु युगीन काव्य में विशेष अन्तर नहीं रहा है।

१- डा० गीविन्दरान शर्मा - हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० ३६२।

२- एक० डॉ० श्री - हिन्दी भाषा हिन्दी लिटरेचर, पृ० ६२। कलकत्ता, (१९२०)

## भारतेन्दु युग-

भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में नव-जागरण काल की विभूति थे उन्होंने हिन्दी काव्य की दिशा में एक नयी रचना पारा को प्रस्तुत किया । इस संबंध में डा० सुदीन्द्र का कहना है : " सताब्दियों से हिन्दी कविता भक्ति या श्रृंगार के रंग में रंगी कही जा रही थी । केवल चुम्बन और बालिन, रति और विलास, रोमांच, और स्नेह, स्वकथा और परकीया की कहियों में जकड़ी हुई हिन्दी कविता को भारतेन्दु ने सर्वप्रथम विलास-मवन और लता-कुर्जा से बाहर लाकर लोक-जीवन के राजपथ पर लड़ा कर दिया" । भारतेन्दु युग में काव्य की प्रचलित प्रवृत्तियों में परिवर्तन हो गया । नयी भावधारालों और नयी विचार- धाराओं के समावेश के कारण इन प्रवृत्तियों का बदलना स्वाभाविक था ।

राजनीतिक चेतना, आर्थिक स्थिति, देश-भक्ति, सामाजिक परिस्थितियों के कारण सुधारवादी कवियों को काव्य की भावभूमि में परिवर्तन करने पड़े । भारतेन्दु युगीन कविता का बहिरंग तो पुराना रहा किन्तु अन्तरंग में काव्य की भावधारा बदल गई नये विषयों के आ जाने के कारण काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावना के लिये पर्याप्त स्थान हुआ । काव्य के बहिरंग में परिवर्तन बहुत धीरे- धीरे तथापि भाषा के प्रश्न को लेकर भारतेन्दु-युगीन कवियों ने काफी प्रयत्न किए । भारतेन्दु जी ने लड़ी बोली का प्रयोग काव्य में किया, किन्तु उन का यह प्रयोग उर्दू की बहरी में मिलता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रचलित छन्दों, के स्थान पर लावनी, कजली तथा अन्य लोक छन्दों को अपनाया । भारतेन्दु ने बंगला के प्यार छन्द को भी अपनाकर काव्य में नवीनता प्रस्तुत की । विषय, भाषा, और छन्दों की दृष्टि से यद्यपि भारतेन्दु युग में परिवर्तन हो चुके थे तथापि पं० श्रीधर साठक के एकान्तवासीयोगी ने इस नये क्षेत्र में एक और नवीनता की जोड़ दिया । लावनी छन्द में लड़ी बोली का प्रयोग-

१- डा० सुदीन्द्र - हिन्दी कविता का इतिहास युग- पृ० २६, जागरा (१९५७)



7 886

करके उन्होंने एकान्तवासीयोगी की स्वच्छन्द प्रेम कहानी को प्रस्तुत किया है। इस कथा की भाव-भूमि रीति-कालीन प्रेम कहानियाँ से भिन्न थी। इस से प्राचीन रुढ़ियों का कड़ा विरोध हुआ और काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावना का सूत्रपात हुआ।

साहित्य में नवोत्थान की परम्परा प्रथम स्वाधीनता संग्राम (१८५७) से प्रारम्भ हुई। (१९ वीं शताब्दी का नवजागरण, काव्य प्रतिबिम्बित होने लगा था। कविता बाह्य रूप से भी रुढ़ियों और पुराने संस्कारों से कलज छीने के लिए प्रयत्नशील थी, किन्तु उसके आन्तरिक पक्ष में बाह्य पक्ष की अपेक्षा तेजी से परिवर्तन हो रहा था। भारतेन्दु युग की कविता में हमें विषय-वस्तु और कला की नवीनता दिखाई देती है। भारतेन्दु को हिन्दी कविता में वापुनिकता का जन्म देने का श्रेय है। यह कहा जाये तो ठीक ही होगा कि हिन्दी कविता का भाव कल्प भारतेन्दु युग की है। यह भाव कल्प काल की परम्परा से विच्छिन्न नहीं है। रीति-कालीन काव्य भाषा की परम्परा भारतेन्दु युग में भी थी। उसमें भक्ति कालीन भाव-परम्परा का नवोत्थान था। परन्तु उसके साथ ही भारतेन्दु नवयुग की कविता के अग्रदूत हैं। भारतेन्दु ने अपने काव्य को समाजीषयोगी बनाने का प्रयत्न किया, उनके काव्य में युग की वास्तविकता की फलक दिखाई देती है। उन्होंने अकाल, महंगाई, टैक्स, धन के विदेश प्रवाह आदि विषयों पर छेद प्रकट किया। धार्मिक दौत्रों में बहुदेव-पूजा एवं मत-मतान्तरों के झगड़ों की निन्दा की। सामाजिक दौत्र में जाति के झगड़े, पारस्परिक कलह फूट, और अफ़ेसी तद्भावना की कमी की बालीचना की। काव्य में ये परिवर्तन और सशक्त सामाजिक स्वर पहली बार सुनने की मिले। जीवन और काव्य का टूटा सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गया। इस कारण से भारतेन्दु हिन्दी कविता में कान्ति और नयी आधार भूमि के अग्रदूत और जन्मदाता हैं। इसीलिए भारतेन्दु युग को कान्ति का प्रथम चरण कहा जाता है। हिन्दी कविता के अन्तर्ग में परिवर्तन (भाव और विषय का विकास) प्रायः प्रत्येक युग के साथ स्वतः होता है। परन्तु कविता के बहिरंग (भाव, हृन्द इत्यादि) में परिवर्तन होना एक महान कान्ति है जो इस युग की विशेष है।

### (क) नवी परिस्थितियाँ

अंग्रेजों के आगमन एवं राज्य संस्थापन से देश में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। भारतीय एवं अंग्रेजी सभ्यता तथा संस्कृति के सम्मिलन से देश का केवल अहित ही नहीं हुआ बल्कि अंग्रेजी सभ्यता एवं संस्कृति से टकराकर हमारी सोई हुई चेतना उद्बुद्ध हो उठी। इस जागरण से देश, जो अब भी मध्य-कालीन रीति-नीति और विचार धाराओं में अपनी निष्कृति समझता था, सतर्क हो उठा। उसकी प्राचीन परम्पराओं और निष्ठा की एक धक्का लगा। राष्ट्र के झोने-झोने में नये विचारों और नव-चेतना की अनुभूति हुई, और संपूर्ण देश नवीन विकास की ओर अग्रसर होने के लिए तालाबद्ध हो उठा। देश के राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में उथल-पुथल होने लगी। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्राप्ति में राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का विस्तृत प्रभाव पड़ा। इस को पूर्ण आंकलन करने के लिए भारतीय जीवन के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों पर दृष्टि डालना अपेक्षित है।

### आर्यसमाज

सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में इस समाज से भी अधिक क्रान्ति लाने का श्रेय आर्यसमाज को है। जिस के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) थे। दयानन्द वेद को ही प्रमाण मानते थे। वैदिक संस्कृति भाषना का उनके द्वारा प्रचार हुआ। वे मूर्ति पूजा, कुशाकृत, जाति भेद, सती प्रथा, बाल-विवाह, के विरोधी थे। आर्य समाज के दार्शनिक सिद्धान्तों ने भारतीय जनता को एक तात्स्था एवं नवी चेतना दी। आर्य समाज पूर्णतः वैदिक संस्कृति की पृष्ठ भूमि लेकर चला परन्तु इस के प्रसार का मूल कारण उस की सुानुरुपता और बुद्धिवाद था जिसका जन्म अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई मिशनरियों के ईसाई धर्म प्रचार की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। ईसाई मिशनरी निम्न जातियों में अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे, इस के प्रति-रोध के लिए आर्य-समाज ने अहंतावाद की ओर रुख बढ़ाया। उतने कुशाकृत को --

अवधिक सिद्ध करके, उसकी भिन्ना की और अज्ञातों की मानवीय अधिकार देने की मार्ग की ।<sup>१</sup>

आर्य समाज ने भिन्नस्तर की जनता में भी जागरण को जन्म दिया। कुरीतियों के उच्छेदन और पुराणवाद के उन्मूलन से युगान्तर करने में आर्य-समाज सफल हुआ। भारतीय शिक्षा और सभ्यता के पुनरुद्धार में भी आर्य-समाज का कार्य प्रशंसनीय है। इस की और से पुरुषों और स्त्रियों के लिए गुरुकुल कानिकुल और दयानन्द संस्कृत वैदिक कालिज आदि स्थापित किये गए। जातीयता की पावना का उद्घोषण सब से पहले दयानन्द ने किया। स्वराज्य स्वदेश भाषा आदि की प्रेरणा भी दयानन्द ने दी ।<sup>२</sup> आर्य समाज ने नये दार्शनिक, धार्मिक संस्कार दिये इस का मुख्य कार्य दून पंजाब और उत्तर-प्रदेश का हिन्दू समाज रहा है। इस आन्दोलन ने लोगों को जागृत कर चेतना सम्पन्न तथा जातीय दृष्टि से प्रातिशील बनाया। आर्य-समाज ने नये समाज निर्माण की प्रेरणा दी और जातीयता का उन्मेष किया। आर्य-समाज भारत के पश्चिमीकरण का विरोधी रहा है। इसलिए उस ने पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा और संस्कृति का घोर विरोध किया। आर्य-समाज को यह भय था कि, पश्चिमी संस्कृति भारतीयता को नष्ट कर देगी । अपनी पूरी विचार-धारा के फलस्वरूप आर्य-समाज ने नव विकसित मध्यकाल में पश्चिमी संस्कृति और शिक्षा के विरुद्ध प्रचार किया। हमारे अधिकांश समसामयिक कवि और लेखक आर्य समाज के इस प्रचार में सम्मिलित हो गये ।<sup>३</sup> आर्य समाज ने जातीयता, सांस्कृतिक उच्चता और राष्ट्रीयता को जन्म दिया। परन्तु आर्य समाज की राष्ट्रीयता एक छद्म तक संकुचित और पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों पर आधारित थी । इस लिए लोगों का विशाल राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं बन सका। पुनरुत्थानवादी

१- A.R. Desai --- Crusade against Caste System. P. 237, Bombay

२- स्वामी दयानन्द- सत्यार्थ प्रकाश- पृ ६६- अग्रे (१९३२) (१९५९)

३- H.M. Bradford, Indian Social Reforms. P. 91, London 1963

### ब्रह्म समाज:-

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में भारतीय जन-जीवन में युगानुरूप जागरण का सुख श्रेष्ठ ब्रह्म समाज को है। राजाराम मोहन राय भारत के सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सुधारवादी बान्दोलनों के कर्माग्रत थे। १९ वीं शताब्दी के सभी प्रमुख बान्दोलनों पर उनके विचारों का प्रभाव रहा है। ब्रह्म समाज का तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग और मध्यम वर्ग पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इस संस्था का देश के बौद्धिक जागरण और रुढ़ियों के उन्मूलन में जो महत्वपूर्ण सहयोग है, वह भारतीय समाज के लिए एक परीस्तर और प्रेरणास्फुट वस्तु की भांति है। ब्रह्म-समाज ने सामाजिक, सांस्कृतिक सुधार तथा कला साहित्य, दर्शन, सिद्धांत, आदि सभी क्षेत्रों में नयी परम्पराओं का निर्माण किया। इस संस्था के द्वारा अनेक भारत विख्यात कवि, लेखक, पार्श्वनिक, कलाकार और सिद्धांत वैज्ञानिकों ने प्रेरणा ग्रहण करके, देश के जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से राजाराम मोहन राय की दृष्टि पश्चात्त्य दर्शन और साहित्य की ओर गई थी। उसी से प्रेरित होकर उन्होंने हिन्दू धर्म को भी नवीन बौद्धिक और आध्यात्मिक भूमिका में ढालने का प्रयत्न किया। उन का उद्देश्य हिन्दुत्व का नव-संस्कार और सच्चे ईश्वर की प्रतिष्ठा करना था। वेदान्त और उपनिषद् से उन्होंने मूल प्रेरणा ग्रहण की। अपने धर्म ग्रन्थों को आधार मानकर उन्होंने जाति-भेद, अस्पृश्यता, बहुविवाह, सती प्रथा, मूर्ति पूजा, और पशु बलि आदि कर्म-काण्डों की निरर्थकता सिद्ध कर दी। उन्होंने उन मिथ्याचारों का बौद्धिक रूप से सण्डन और उन्मूलन करने का प्रयत्न किया। रुढ़िवादिता के स्थान पर बुद्धिवाद और सुधारवाद की चेतना दी। ब्रह्म समाज एक उदार एवं सहनशील संस्था थी जिस में कठिनाई, दया, उदारता, तथा अन्य सभी धर्मों के उदार सिद्धान्तों का समनवेश था।

### (थियोसोफीकल) सोसायटी

इस सोसायटी की स्थापना ब्लैक्ली एवं वालकाट ने १८७५ ई० में न्यूयार्क में की थी। कालान्तर में ये दोनों संस्थापक भारत में आये और भारतीयों-



को उनके गौरवपूर्ण उत्तीर्ण का स्मरण दिलाया। उन्होंने हिन्दू धर्म की सत्ताहीन दुराख्या को दूर करने का प्रयत्न किया। हिन्दुओं के मध्यवर्ग में राष्ट्रीयता और धार्मिक चेतना छाने में बड़ा योग दिया।<sup>१</sup> ऐसीकेलेन्ट ने सोसायटी के कार्य को और बाने बढ़ाया तथा विस्तार दिया इस वादौलन ने धार्मिक दौत्र में सहिष्णुता के प्रसार में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। धियोसौफीकल सोसायटी ने वस्तुतः सब धर्मों के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया। इस सोसायटी के सिद्धान्त वादर्थ रूप में बहुत अच्छे थे किन्तु उसमें सामाजिकता का कुछ अभाव था। इस लिए उनका भारतीय समाज पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हमारा समसामयिक साहित्य भी इस से विशेष प्रभावित नहीं हुआ।

#### राम कृष्ण मिशन:-

शुद्ध समाज और जायँ समाज के समान इस संस्था ने भी दले की नवीन दिशा की और जाग्रत किया। राम कृष्ण मिशन और धियोसौफीकल सोसायटी के सिद्धान्तों ने देश में ईसाई - धर्म के प्रचार को रोककर रामकृष्ण मिशन के सिद्धान्त आध्यात्मिक जीवन के सम्पूर्णक थे। इस मिशन ने हिन्दू शास्त्रों के मूल विचारों को सरल और ज्ञान - प्रथ व्याख्या के माध्यम से नव जाग्रत समाज तक पहुँचाया। वे अर्द्ध में संकीर्णता के विरोधी थे।<sup>२</sup>

१- Jawaher Lal Nehru - The Discovery of India. P. 295. (1946)

२- The Teachings of Sri Ram Krishna Mission. P. 864. Calcutta.

## राजनीतिक परिस्थितियाँ

### स्वाधीनता संग्राम : राष्ट्रीय कार्य

सामाजिक बान्धनों जन्य चेतना और नयी आर्थिक व्यवस्था ने भारत में एक नयी राजनीतिक चेतना को जन्म दिया।<sup>१</sup> सन् १८५७ ई० में भारतीय स्वाधीनता का पहला संघर्ष हुआ। यद्यपि वह असफल रहा फिर भी उसने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का तो खन्त ही कर दिया। कम्पनी के राज्य का खन्त और महारानी विक्टोरिया की १८५८ ई० घोषणा ने भारत में शान्ति और विश्वास का वातावरण बनाने में सहायता की। परन्तु यह वातावरण शीघ्र ही समाप्त हो गया। देश की अवस्था दिन-प्रतिदिन सराव होती जा रही थी। १८६१ से १९०० ई० के बीच दुर्भिक्षों, महामारियों, टैक्स, बेकारी निम्न शोषण आदि ने जनता के सामने ब्रिटिश शासन की वास्तविकता को सामने लाकर रख दिया। एक ओर यह स्थिति थी दूसरी ओर भारत में प्रत्येक क्षेत्र में जागरण और चेतना की लहर व्याप्त हो रही थी। फलस्वरूप कुछ जागरूक लोगों ने सन् १८७६ में इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की जिसके निम्न उद्देश्य थे।

(क) भारतीयों में राजनीतिक रूप से एकता का उपक्रम करना है।

(ख) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये प्रयत्न करना ।

(ग) राजनीतिक प्रश्नों पर भारतीय जनता को जागरूक करना ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस- सन् १८७५ ई० में काँग्रेस के अन्वयाय पूर्ण कार्य से देश को गहरा आघात लगा । इस आघात से संपूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गई। भारत में ब्रिटिश राज्य के प्रति जनता का अविश्वास आक्रोश में बदलने लगा। देश में-

१-

A. R. Desai - Rise of New Social Classes in India. P. 111. .  
Third Edition, Bombay (1954).

इस प्रश्न पर पहला संगठित आन्दोलन हुआ। क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दीं, क्रांति अधिकारियों की हत्याएँ की गईं, उन पर बन फैके जाने लगे, सरकारी कार्यों में तरह-तरह के अवरोध उत्पन्न किये जाने लगे, कंगाल इस समय इस आन्दोलन का कां बन गया था।<sup>१</sup> कां-भंग आन्दोलन ने देश में एकता और जागरण का संक - फूर्का। कांग्रेस इस आन्दोलन के फलस्वरूप ही एक जन संस्था बन गई। इंडियन एसोसिएशन सन् १८८५ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस में विहीन हो गई।<sup>२</sup> इस से भारतीयों में और अधिक संगठित होकर रहने की भावना उदय हो गई।

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८ ई०) में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध में हर प्रकार की सहायता दी। विजय के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए दमन का सहारा लिया। महायुद्ध में सहायता पहुंचाने के बदले में भारतीयों को रौलट एक्ट मिले किन्तु कांग्रेस ने रौलट एक्ट को काला बिल कह कर उसका विरोध किया। इस बिल का विरोध करने के लिए अमृतसर के जलियावाला बाग में १३ अप्रैल १९१६ ई० में एक बड़ी सभा की गई। ब्रिटिश सरकार ने निरव्ययी जनता पर अन्यायपूर्ण गोलियां चलाकर सैकड़ों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया इस हत्याकांड की देश में अव्यदस्त प्रतिक्रिया हुई। क्रांति सरकार की इस बर्बरता ने देश की सीढ़ें हुई आत्मा को फकभरी दिया। दमन से उत्पन्न हुए जागरण और राष्ट्रीय चेतना ने असहयोग आन्दोलन (१९२१-२२) को जन्म दिया। जो इस देश का सबसे पहला विशाल जन आन्दोलन था।

साहित्य में चेतना की नयी लहर :-

असहयोग आन्दोलन का देश पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। हमारे बुद्धिजीवियों और लेखकों में इससे एक नयी राजनीतिक चेतना की लहर आई। अब तक हमारे साहित्यकार केवल सामाजिक सुधारों की ही अपना लक्ष्य बनाये हुए थे। अब -

१- मनमथ नाथ गुप्त - राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास - पृ० ५६।

२- R.P. Dutt - India Today - P.108 1st Edition 1948.

उन्होंने यह अनुभव किया कि बिना राजनीतिक स्वाधीनता के इस देश का निर्माण संभव नहीं है। कवियों और व्याकरणों ने इस तथ्य को मही प्रकार समझ लिया। अतएव समय के साहित्य में गहरी राजनीतिक चेतना के स्वर मिलते हैं। हिन्दी काव्य में स्वदेश प्रेम की भाव-धारा इन्हीं विशाल राजनीतिक अन्दोलनों की देन है। स्वदेशी, असहयोग, गांधीवाद, अहिंसा, स्वराज्य, आदि राजनीतिक नारे साहित्य में उमाविष्ट हो गए। उदाहरण के लिए पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह रचना दृष्टव्य है जिसमें स्वदेशी कहावत है:

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै, विनय इतनी हमारी मान लीजै।

शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागा, न जाओ पास उसके दूर भागी॥<sup>१</sup>

देश में होने वाले राष्ट्रीय जागरण के परिणाम स्वरूप- कवि और लेखक इतने जागरूक हो गए कि बालों के शिशु को भी उपदेश सुनाने लगे। श्री गिरधर शर्मा एक शिशु के प्रति कामना करते हैं कि वह अपनी जन्म भूमि की समृद्धि में योगदान करने के योग्य बने :

करना ऐसे काम मनीष -

कर्म-कर भारतवासी घर, व

जन्म-भूमि फूली न समावे,

नर-नर-सुख-सम्पत्ति पावे॥<sup>२</sup>

पं० जनार्दन मल्ल अहिंसा का उपदेश देते हुए कहते हैं कि-हिंसा से बढ़कर के पाप, नहीं दूसरा आप। निज समान वीरों को जान, करिये सब जीवों का वाण॥<sup>३</sup>

राष्ट्रीयता के संश्रम के वातावरण में हरिऔध जी ने कर्मवीर की महान शक्तियों का वर्णन करते हुए उसका महत्त्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया :

१- सरस्वती, जुलाई १९०३ - ।

२- गिरधर शर्मा- लीरी, सरस्वती जनवरी- १९१३ । पृ० ५३

३- जनार्दन मल्ल - शिवाशक्त । कृष्णशक्त । सरस्वती, नवम्बर १९०४ पृ० ८४

देतकर जो विघ्न - तपाकों को घबराते नहीं ।  
मार्ग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ।  
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।  
मीड़ पड़ने पर भी बचलता जो दिसलाते नहीं ।  
होते हैं एक जान में उनके घुरे दिन भी भले ।  
सब जगह सब काल में रहते हैं वह फूले फले।।<sup>१</sup>

कवि अपने देश काल के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। विवेच्यकालीन कवियों ने यह प्रतिनिधित्व किया- उसमें सन्देह नहीं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण का बहुमुखी चित्रण हुआ है। सामाजिक जागृति के सन्देश उनकी कृतियों का एक प्रधान स्वर रहे हैं। विवेच्यकालीन कविता की नवीन भाव मंगिमा के मूल में एक इन कवियों की सामाजिक एवं राष्ट्रीय धारणाओं का महत्पूर्ण योग है।

स- विवेच्य काल पर उक्त परिस्थितियों का प्रभाव

साहित्य में आर्थिक दशा की प्रतिध्वनि-

अंग्रेजों के आगमन से राष्ट्रीय जीवन के समान ही आर्थिक जीवन भी आन्दोलित हुआ। अंग्रेजों ने भारत को नयी आर्थिक व्यवस्था प्रदान की। यह व्यवस्था पुरानी समिती आर्थिक व्यवस्था से बहुत भिन्न थीर कई त्वाँ में अधिक प्रातिशील थी। लेकिन इस का मुख्य उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। भारत में यह नया पूँजीवाद साम्राज्यवाद के रूप में आया था। इस लिए यह योरप के स्वधिकसित राष्ट्रीय पूँजीवाद से भिन्न था।<sup>२</sup> अंग्रेजों ने नये आविष्कारों से सभी प्रकार के उत्पादनों को बढ़ा कर भारत को अपना बाजार बनाया। वे सदैव से सफल व्यापारी और अच्छे राजनीतिज्ञ थे। व्यापार के साथ वह राजनीतिक चालों का भी प्रयोग करते थे। इस कारण दोनों क्षेत्रों में उन का एकाधिपत्य स्थापित -

१- हरिवंश, सरस्वती, मई १९१२। पृ० ६७।

२- D. B. Gadgil - "The Industrial Evolution of India in Recent Times", P. 55. Bombay (1934)

हो गया । भारतीय शर्मती की अपेक्षा वे कुछ शासक भी थे। भारत में आदिकाल से आर्थिक-व्यवस्था परस्पर के आदान-प्रदान पर निर्भर थी। इस के अतिरिक्त विशाल पैमाने पर यहाँ कोई उत्पादन नहीं होता था। उत्पादन के ढंग अत्यन्त पुराने और अविकसित थे। वे नये औद्योगिक साधनों और वैज्ञानिक उपलब्धियों से परिपूर्ण आधुनिक उत्पादन साधनों की प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे। भारतीय कारीगर मशीनों की प्रतियोगिता में हार गये। वे अपने कुटीर-उद्योग और घरेलू हाथ कर मिली और कारखानों में मजदूर हो गये। भूखी मरने से यह कहीं अच्छा था। इस विप्लव आर्थिक स्थिति के लिये ज़ीजी की साम्राज्यवादी नीति ही उत्तरदायी थी । विवेक्य कालीन काव्य साहित्य में देश की उक्त आर्थिक दुर्दशा का अच्छा चित्रण हुआ है। भारतेन्दु युग में ही भारतेन्दु जी ने देशी घन के विदेश चले जाने पर श्लोक प्रकट किया था:

जिज्ज राज सुत साज सजे सब भारी।  
 पै घन विदेश चलि जात यह बति त्वारी।  
 ताहू पे महंगी काल राग विस्तारी  
 दिन-दिन दूने दुख फँस देत हा हा री॥<sup>१</sup>

भारतेन्दु जी केवल पे घन विदेश चले जात यह बति त्वारी कहकर चुप हो गये परन्तु हमारे बालीच्य काल की कवि इसके कारण बताता है। देशी<sup>३</sup> पालव में कवि का स्वर अधिक स्पष्ट है । वह स्वदेशी वस्तुओं से घृणा करने पर दुःख प्रकट करता है। मुई, पाक्सि जैसी हाँटी-हाँटी वस्तुएँ दूर रहीं विदेश से बुड़िया तक मंगाना कवि को व्यथित करता है और वह कह उठता है-

कुल नारियाँ जिन को हमारी है करीं वे भारती।  
 तीमाग्य का रुम चिन्ह जिन की है सदैव विचारती॥  
 वे बुड़िया तक है विदेशी दस्त ली बस ली चुका,  
 भारत स्वकीया सुहाग भी परकीया करके लो चुका॥<sup>२</sup>

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली- पहला भाग- पृ० ४७० ।

२- मैथिलीशरण गुप्त- भारत भारती, पृ० ६७ ।

## स्वदेशी आन्दोलन

स्वदेशी आन्दोलन के प्रियाशील होने से पूर्व ही जागृक कवि के मुख से हमें स्वदेशी वस्त्रों की ग्रहण करने और विदेशी वस्त्रों का स्वीकार करने की ध्वनि सुनाई देती है—

विदेशी वस्त्र हम क्यों छे रहे हैं ?  
कृपा मन देश का क्यों वे रहे हैं ?  
न सूझ है अरे भारत भित्तारी ।।  
गई है हाथ तेरी बुद्धि मारी ।<sup>१</sup>

समाज में व्याप्त दरिद्रता, दुर्मिता, मुतमरी, आदि पर सहानुभूति के साथ विचार करने वालों में श्री केशवप्रसाद मिश्र प्रमुख हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक चेतना के तीव्र स्वर मुखरित हुए हैं :

समा, समाज, देश की सेवा, एवं वाद विवाद,  
कठर, पिठर में चारों रहते जाते हैं सब याद ।  
किन्तु आज ये सभी वस्तुएँ दीसतीं मार,  
हा ! हा !! हन्त!!! बिना ही साथे बीत गये दिन बार।।<sup>२</sup>

कवि आर्थिक विषमता और सम्यता को धिक्कारता है :

आर सम्यता आज भरे ही की है मरना,  
नहीं भूलकर कभी गरीबों का हित करना।  
तो सौ- सौ धिक्कार सम्यता को है ऐसी,  
आव मात्र को लाभ नहीं तो समता कैसी ?<sup>३</sup>

१- मैथिलीशरण गुप्त- स्वदेशी वस्त्र करो स्वीकार । सरस्वती-जून १९११ पृ० ६५।

२- केशवप्रसाद मिश्र -दरिद्रता, सरस्वती, जून १९१०, पृ० ३१ ।<sup>४</sup>

३- वही, वर्णा और निर्धन, सरस्वती, अगस्त १९१६ पृ० ७३ ।

## देश की दुर्दशा के कारणों की तोज का प्रयत्न

रामनरेश त्रिपाठी में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना बहुत गहरी है। इस युग के अन्य कवियों की सहानुभूति भावात्मक है। देश की दुर्दशा का चित्रण आँसुओं में डूबाकर लिखा गया है। इस लिए उस में विवशता और असहाय स्थिति का आभास अधिक होता है। इन कवियों की कविताओं से पाठक को यह मालूम नहीं होता कि देश और समाज की उस दुर्दशा के लिए कौन उत्तरदायी है। आतिर हम हमने असहाय और विवश क्यों हैं : विदेशी शासकों के प्रति इन कवियों में आक्रोश का नहीं याचना का स्वर अधिक है। ये कवि देश की दुर्दशा के वास्तविक कारणों की ओर संकेत करने में असमर्थ रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण, अन्याय और अत्याचारों की ओर उनका ध्यान नहीं जा सका है। वे देवी देवताओं और मगवान से देश को इस विषम स्थिति से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करते हैं। लेकिन देश की जनता को एक जुट करके संघर्ष का आह्वान नहीं कर पाते। इस का कारण यह भी हो सकता है कि, इस काल तक राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रसार नहीं हुआ था। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भी विदेशी साम्राज्यवाद का सक्रिय विरोध आरम्भ नहीं किया था। ये नेतागण भारतीयों के लिए नागरिकता और सुविधाएँ प्राप्त करना चाहते थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध और स्वाधीनता उनका उद्देश्य नहीं था।<sup>१</sup> इसलिए इन कवियों में भी राजनीतिक चेतना का अभाव है। राष्ट्रीय चेतना का सब से प्रारंभिक स्वर रामनरेश त्रिपाठी में मिलता है। उन्होंने देश की दुर्दशा का वर्णन करके और ईश्वर से इसके निवारण की प्रार्थना करके ही सन्तुष्ट नहीं कर लिया है, उन्होंने भारतवासियों को कर्तव्य करने का आह्वान किया है। उन्होंने देशवासियों की अकर्षण्यता पर खेद प्रकट किया है। भाग्यवाद और फलापवाद का सक्रिय विरोध किया है। उनके पात्र-

<sup>१</sup>- A. R. Desai - Social Background of Indian Nationalism, ~~Vol. 1, 2, 3~~, Nationalism, P. 161, Third Edition Bombay (1959)



मातृभूमि के कष्टों के निवारण के लिए सक्रिय संघर्ष करते हैं। पथिक में उन्होंने देश और समाज के प्रति कर्तव्य और उत्तरदायित्वों को छोड़कर उन से उन्मुख होने वाले युवकों की निन्दा की है। उनका सब से पहला कर्तव्य देश और समाज की सेवा है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनका जीवन व्यर्थ है। त्रिपाठी जी ने अपने रामसामयिक कवियों में सब से अधिक राजनीतिक चेतना सम्पन्न है। उस युग के अन्य कवियों का विचार था, कि देश के नैतिक पतन के कारण हमारी यह दुर्दशा हुई है। त्रिपाठी जी ने इस के विपरीत राय व्यक्त की है। इनका कहना है कि वस्तुतः आर्थिक पतन ही अन्य दुर्व्यवस्थाओं एवं विषमताओं के लिए उत्तरदायी है। यदि देश आर्थिक रूप से सम्पन्न होगा तो दोष स्वतः दूर हो जायेंगे। त्रिपाठी जी ने अपने काव्य पथिक में संकेतात्मक रीति से समाज के आर्थिक संकटों और आवर्णों का चित्रण उस प्रकार से किया है:-

लासों नहीं करों, ऐसे हैं मनुष्य दुत पाते।

जीवन भर जी जठरानल में जल- जलकर मर जाते।

हाथ, हाथ कर लोग सांभ की निराहार हो जाते।

एक बार भी रात- दिवस में पेट नहीं भर पाते।<sup>१</sup>

< < < < < < < < < < < < < < < <

साते हैं गम और खांसुओं हो से प्यास बुझाते ।

लेकर आयु विविध रीतों की हैं दिन रात बिताते।<sup>२</sup>

### आत्मगौरव जमाने का प्रयास

सुधारवादी आन्दोलनों के परिणाम स्वल्प देश की अपना अस्तित्व, आत्म-गौरव समझने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय यह समझने लगे कि, अतीत की प्रेरणा से वे वर्तमान संकट से छुटकारा पा सकते हैं। प्राचीन की जायार भूमि पर-

१- पं० रामनरेश त्रिपाठी- पथिक, प्रयाग, पृ० ४५ ।

२- वही - वही, वही, वही, पृ० ४५ ।

भारतीय समाज का उत्थान हो सकता है। सुधारवादी ज़ान्दोलन भारत में सांस्कृतिक जागरण और फिखड़े हुए समाज में चेतना लाने में सहायक हुए। इससे भारतीय समाज में सुधारों और प्रगति का एक नया पथ प्रशस्त हुआ। भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन इस समाज की स्थापना से प्रारम्भ हुए। राजा राम मोहन राय आधुनिक भारत के प्रथम समाज सुधारक और धार्मिक चेतना के व्यक्तित्व थे। उन की भारतीय समाज को सब से बड़ी देन, कानून द्वारा सती प्रथा का अन्त कराना है।

उन ज़ान्दोलनों और सामाजिक संस्थाओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप बाल-विवाह, बहु-विवाह, एवं दासी प्रथा को कानून द्वारा रोक दिया गया। विधवा विवाह को कानूनी मान्यता मिल गई। ज़ूतों को मानवीय अधिकार मिलने प्रारम्भ हो गये जाति- प्रथा के बन्धन ढीले हुए। उन सुधारों का हिन्दी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्यकार मूलतः प्रातिशील और रुढ़िवादी ही होते हैं। व्यर्थ के बन्धन उसे असहाय होते हैं। अतएव तत्कालीन सुधारवादी ज़ान्दोलनों और सामाजिक संस्थाओं ने हिन्दी के लेखकों को भी एक नयी भाव भूमि और प्रेरणा प्रदान की। समसामयिक युग के कवियों - लेखकों ने धार्मिक अन्धविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों, रुढ़ियों आदि का तीव्र विरोध किया। इस युग के साहित्य में एक नये उदारतावादी दृष्टिकोण और सहष्णुता का उदय एवं विकास हुआ। भारतीय संस्कृति के परिष्कार और नवीनीकरण के विशेष प्रयत्न किए गये। सर जमुनाथ सरकार का कथन है कि - नवीनतान से पूर्व के समस्त भारतीय साहित्य में हमें धार्मिक पौराणिक विषयों, श्रृंगारिक भावनाओं एवं वीरगाथाओं का वर्णन मिलता है।<sup>१</sup> विवेच्य युग के कवियों ने भी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के गीत उच्च स्वरों में गाये हैं। इससे एक छानि यह हुई कि आगे चलकर यह दृष्टिकोण संकुचित और पुनस्तथान-वादी हो गया।

इन आन्दोलनों के फलस्वरूप काव्य में एक नये मानवतावाद का जन्म हुआ। ईश्वरीय आस्था, मानव आस्था में परिवर्तित होने लगी। अवतारों की मानवीय रूप दिया जाने लगा। उन के कार्यों की नवीन बौद्धिक और सामाजिक कथ प्रदान करने के प्रयत्न किए गए। प्राचीन देवी प्रभावों और चमत्कारों को तर्क सिद्ध और बुद्धिमय बनाने के सक्रिय प्रयत्न हुए। सामाजिक स्वाधीनता के माध्यम से साहित्य में राष्ट्रीय स्वाधीनता के स्वर प्रकट होने लगे और अन्त में साहित्यकारों ने देश की राजनीतिक स्वाधीनता की अपेक्षा लम्बे निश्चित किया। देश में एक नयी सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के विस्तार तथा राजनीतिक जागरूकता में इन सुधारवादी आन्दोलनों और सामाजिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। तत्कालीन हिन्दी काव्य इन परिस्थितियों से भली भाँति आन्दोलित हुआ है। उसमें इनका परिष्कृत, उदार और उपयोगी स्वरूप दिखलाई पड़ता है।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार का प्रभाव साहित्य पर स्वतन्त्र रूप से पड़ा। उस प्रभाव ने हमारे हिन्दी साहित्य की नयी प्रवृत्तियाँ और नयी भाव-भूमि देकर शक्तिशाली और समृद्ध बनाया। हमारे यहाँ के चेतना सम्पन्न व्यक्तियों ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवियों और लेखकों (स्काट, कांट, मिल, रैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ) के काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन किया जिसके परिणाम स्वरूप उनके दृष्टिकोण का राष्ट्रीय हो जाना स्वभाविक था। विवेच्यकालीन हिन्दी साहित्य को अधिक प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य, विशेषतः उसकी रोमान्टिक धारा से मिली। डी-बी मुक्जी के अनुसार भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं के साहित्य में युगान्तर अंग्रेजी रोमान्टिक लेखकों के गये तथा पय के अनुवादों से प्रारम्भ हुआ।<sup>१</sup> पश्चिमी साहित्य और जीवन-दृष्टि का प्रभाव अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से आया। अंग्रेजी के अध्ययन एवं हिन्दी पाठकों, लेखकों एवं कवियों को अंग्रेजी साहित्य की प्रेष्ठ कृतियों से परिचय हुआ और अंग्रेजी अनुवादों के द्वारा हिन्दी साहित्य के भाव जगत का विस्तार हुआ।

नये काव्यरूप, नवीन काव्य-क्यारे, नयी शैली तथा नवीन पद्धतियाँ उपलब्ध हुईं । स्वच्छन्दतावाद के अग्रदूत पं० श्रीधर पाठक गौल्डस्मिथ के काव्य ग्रन्थों को हिन्दी जगत के सम्मुख रखा । उन अनुवादों ने हिन्दी साहित्य की अनेक काव्य क्यारों को प्रभावित किया । उन अनुवादों ने हिन्दी में एक नयी परम्परा को जन्म दिया । जो बागे बलकर स्वच्छन्दतावाद के रूप में विकसित हुई । लॉगफेली, ग्रे, पीप, वायरन, स्काट, आदि कवियों की स्फुट रचनाओं के रूपान्तर मीनप्रस्तुत किए गये। उस प्रकार विवेक्यकालीन काव्य-धारा को अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क में आने का पुञ्जवत् प्राप्त हुआ और हमारे यहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य दृष्टि का बन्धुव्य हुआ।

### राष्ट्रीय दृष्टि का प्रसार

पश्चिमी शिक्षा एवं साहित्य के सम्पर्क से हमारे यहाँ राष्ट्रीयता की भावना के जन्मदय में भी सहयोग मिला। मिल्टन, बर्क, मिल, मैकारै, और स्पेन्सर के उदार मानवतावादी साहित्य ने भारतीयों में राष्ट्रीयता एवं स्वराज्य के विचार भर दिये । अंग्रेजी साहित्य मानवता, प्राकृणाव न्याय, जनसत्ता और स्वतन्त्रता की भावना से जाँत-प्राँत था। पढ़े-लिखे भारतीय युवकों पर इस नवीन विचार धारा का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अंग्रेजी साहित्य की उदार विचारधारा और विशाल सम्पन्नता ने हिन्दी साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न लेखकों और कवियों को नयी दिशायें दिखाईं। हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी का प्रभाव बंगाला साहित्य के माध्यम से भी आया। बंगाला साहित्य पर अंग्रेजों- साहित्य का प्रभाव सबसे पहले पड़ा था। माधवल मधुसूदन कल तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर अंग्रेजी कवियों से बहुत प्रभावित हुए थे । डॉ० जे० टोमसन का कथन है कि टैगोर के सब से अधिक उपमाऊ रचना- काल में हाउसिंग का व्योष्ट प्रभाव पड़ा।--वे शेक्सपीयर को भी पढ़ते और पसन्द करते थे। वहसवर्ष उन्हें बच्चा लगता है पर सम्भवतः अधिक नहीं। परन्तु अंग्रेजी कवियों में उन्हें शैली और कीदर सबसे अधिक प्रिय हैं।<sup>१</sup>

---

१- डॉ० जे० टोमसन, टैगोर पोर्ट्रेट एण्ड इमेटिस्ट, (आक्सफर्ड यू० प्रेस, १९२६) पृ० ३०५

उपर्युक्त, सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों के कारण विवेच्यकालीन हिन्दी कविता में आमूल क्रान्ति हुई। पुरानी परम्पराएँ और रुढ़ियाँ पीछे हटती चली गईं और नवीन परम्पराओं का अभ्युदय होता गया। औंसी साहित्य की प्रत्यक्षा और परीक्षा प्रभाव के कारण यह प्रक्रिया अधिक तार्थिक रूप में सम्पन्न हुई। परीक्षा प्रभाव के रूप में बंगला साहित्य के माध्यम से पढ़ने वाले प्रभाव का उत्प्रेक्ष्य औंसी समने किया है। यह कार्य भारतेन्दु युग में ही आरम्भ हो गया था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि लेखकों ने बंगला के कई नाटकों का अनुवाद किया था। बंगला के प्रसिद्ध पयार हृन्द का उपयोग भी पहले-पहल भारतेन्दु जी ने ही किया था। औंसी काव्य की अनुकान्त हृन्दों वाले पदाति भी वस्तुतः बंगला काव्य के माध्यम से ही हिन्दी में आई। अतएव, यह कहा जा सकता है कि विवेच्यकालीन कविता अपनी समसामयिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से सन्निर्मित थी।

### काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विस्तार

हिन्दी साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ आधुनिक युग की देन हैं। विवेच्य कालीन हिन्दी कविता पर प्रभाव डालने वाली सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, साहित्यिक एवं कलात्मक शक्तियाँ और परिस्थितियों की पैलने पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि स्वच्छन्दतावाद में कौन सी ऐसी नवीन प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करती हैं। और जो हिन्दी काव्य में उसके पूर्व नहीं थीं।

आधुनिक हिन्दी काव्य पर पारस्वात्य प्रभाव बहुधा प्रत्यक्षा रूप से न आकर बंगला साहित्य के माध्यम से आया। इन नवीन प्रभावों के परिणाम स्वरूप हिन्दी काव्य पुरानी परम्पराओं से मुक्त हो सका। आधुनिक हिन्दी कविता पर पारस्वात्य प्रभाव वाक्य और वान्तारिक दोनों दृष्टियों से समान रूप से पड़ा। काव्य के विषयों और उपादानों में परिवर्तन हुआ। औंसी के प्रभाव के कारण शुरू से ही -

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय, पारा का क्रमिक विकास मिलने लगता है। शेक्सपीयर, मिल्टन, बर्क, और गौडविन आदि पश्चात्य लेखकों की कृतियों के अध्ययन के फलस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना का तीव्र उदय हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य की पश्चात्य साहित्य की यह एक प्रसूत देन है।<sup>१</sup>

भारतीय और पश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क और टकराव का एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा बौद्धिक दृष्टि से विचार करना शुरू कर दिया गया। नये विचारों की इस बढ़ती हुई लहर के साथ हमारे धर्म, दर्शन, समाज एवं कला की मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। बुद्धिवाद की इस नयी लहर ने पुराने संस्कारों को तोड़ दिया। इस का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। रुढ़िवादी धार्मिक वात्सा, प्रतिष्ठा और मान्यताओं पर इसका प्रहार हुआ। और उन्हें जड़ से हिला दिया गया। विवेच्य कालीन कवियों ने संकीर्णता को दूर किया और उदार मानवतावादी नये दृष्टिकोण की स्थापना की। पौराणिक देवी देवताओं को मनुष्य के रूप में समुचित आदर प्रदान किया। विवेच्य युग के प्रमुख कवि हरिदास जी के कृष्ण वसी परम्परा में आये। हरिदास जी के कृष्ण और राधा देवी देवता कम और मानव अधिक हैं। विवेच्य काव्य की यह अपनी बड़ी देन है। नवीन बौद्धिक दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप विवेच्य काव्य में नये मानव मूल्यों की स्थापना दिलाई देती है। हरिदास जी के कृष्ण एक आदर्श महापुरुष हैं देवता नहीं उनका विश्वास था कि कृष्ण का प्रादुर्भाव संसार में संकट काल उपस्थित होने पर ही संभव हो सका है। अतः उपाध्याय जी ने प्रिय प्रवास में कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं वरन् एक महान व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। और उनके चरित्र को आधुनिक मनोवृत्ति के अनुरूप ही दिखलाया है

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - पृ० २६३ - ६४ ।

२- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिदास - प्रिय-प्रवास, मुद्रिका पृ० २६-२७ ।

शीर्षीकरण में कहीं-कहीं हरिऔष जो बातें सफल हुए हैं। जहाँ तुणावर्त तथा बकासुर दैत्याँ को उन्होंने फँजावात अथवा मकानक पशु के रूप में दिखाया है।<sup>१</sup> कवि ने गोवर्धन की कथा का शीर्षीकरण किया है।<sup>२</sup>

बुद्धिवाद की यह प्रवृत्ति हमें विवेच्य काल के काव्य की पौराणिक कथाओं के वर्णन में भी मिल जाती है। उन्हें आधुनिक रुचि के अनुरूप प्रस्तुत करने के लिए उनका शीर्षीकरण किया गया। गुरुत्त जी का 'शक्ति' काव्य उसी प्रकार का प्रतीकात्मक काव्य है। इस में पाप और पुण्य का द्वन्द्व और अन्त में पाप पर विजय दिखाई गई है।

रीतिकालीन कवियों का समाज के प्रति बहुत सीमित दृष्टिकोण था। उनके लिए समस्त पुरुष नायक और सारी स्त्रियाँ नायिकाएँ थीं। उस छासो-न्मुली युग में मानव व्यक्तित्व के केवल इसी एक रूप की अभिव्यक्ति संभव हो सकी। विवेच्य कालीन युग में नयी चेतना से प्रभावित होकर उसे मनुष्य के रूप में देखा गया। यहाँ आकर मनुष्य का देवत्व और दानत्व दोनों मनुष्यत्व में परिवर्तित हो गये। श्रृंगारिक्ता, रुढ़िवादिता, एवं धार्मिकता की संकीर्ण सीधियाँ से मनुष्य को मुक्त करने का सक्रिय प्रयत्न किया गया। काव्य उच्च वर्गीय जीवन का चित्रण मात्र न रहकर जनसाधारण कृषकों और श्रमिकों के जीवन की प्रतिबिम्बित करने लगा। दीन होन मानव की सेवा के द्वारा ईश्वर तक जाने का नया मार्ग आधुनिक काव्य ने बंझि, विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ के द्वारा सीखा। नारी-स्वातंत्र्य आन्दोलन की प्राप्ति का श्रेय भी पश्चिम की मानवतावादी प्रवृत्ति की देन है, किन्तु आधुनिक हिन्दी काव्य की मानवतावादी प्रवृत्ति को फल शैली, कीदृश, वर्द्धसर्व्य और बायन, के काव्य से मिला, ये कवि स्वयं प्रारम्भ की क्रान्ति के आवर्ण से प्रभावित थे। निराशा का विद्रोहात्मक आदर्शवाद शैली के रोमान्टिक क्रान्तिवाद से बहुत कुछ प्रभावित रहा है।

<sup>१</sup> शैली के मानवतावाद में सारी मानवता एक ही मनुष्य का स्वरूप है। अतः जन्म सम्पत्ति, पद आदि से उत्पन्न समस्त भेद भाव मिट जायें और समाज-

के व्यक्ति स्वतन्त्र होकर, समान अवसर प्राप्त कर बन्धुत्व के सूत्र में बँधे रहें। तब:  
ऐसी अवस्था में जाति-प्राप्ति, वर्ण-देश आदि द्वारा उत्पन्न भेद न रहें और  
मानवता का केवल एक ही देश और एक ही राष्ट्र रह जावेगा।<sup>१</sup> निराला ने भी  
भारतीयों पर किये गये अत्याचारों का तीव्र अनुभव किया और उसके प्रति विद्वोह  
व्यक्त किया जो मानवता के पक्ष में था ।

आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी भावधारा पर भी  
पारवात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों,<sup>२</sup> विशेषकर  
शेरी और वर्ड्सवर्थ के सर्ववैतनावाद का प्रभाव भी विवेच्य कवि चन्द के काव्य में  
मिलता है ।

---

१- S. A. Brook, *Naturalism in English Poetry* -

P. 80-81, 1929 Bombay.



## कला की दिशा में नये प्रयोग

पारम्परिक सम्यता और विचार धारा का प्रभाव वाधुनिक हिन्दी के काव्य-रूपाँ और शैली पर भी पड़ा। इस युग में यह विचित्र संयोग है कि जैसे जैसे साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र और विस्तृत होता गया, पश्चिमी संस्कृति और चिन्तन धारा का प्रभाव भी गहरा होता गया, यह प्रभाव समसामयिक साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।<sup>१</sup> विवेक्य काल की सभ से महत्वपूर्ण विशेषता वाधुनिक काव्य-कला का विकास है। कला भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशेषता रही है। कलंकारों के साथ ही कलाका उदय भी हुआ। मजि काल में कला काव्य का महत्वपूर्ण अंग न बन सकी परन्तु रीति काल में तो कला काव्य का विषय और उपादान दोनों का कार्य कर रही थी परन्तु विवेक्य कालीन काव्य में कलात्मकता की वृद्धि होती गई और कला की यह भावना पश्चिम से ली गई। भारत में काव्य-कला के संबंध में पाँच विन्न मत हैं, परन्तु वाधुनिक कवियों को उनमें एक भी नहीं जवा। बात यह है कि भारतीय कला का वादर्थ प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित और मर्यादित रुढ़ियों, परम्पराओं और विविध निष्कर्षों का प्रतिपालन मात्र था, परन्तु इस व्यक्ति-स्वातंत्र्य के युग में आचार्यों के नियम और विधान केवल ध्वन्य मात्र जान पड़े। वाधुनिक कवि तो किसी ऐसी कला की लोज में थे जिस में व्यक्ति-स्वातंत्र्य का सम्मान हो और पश्चिमी कला ठीक वही प्रकार की थी। काव्य की परिभाणा उन्होंने ध्वनि और व्यंजना के रूप में स्वीकार की जो पश्चिमी *Suggestiveness* का रूपांतर मात्र है। और काव्यालंकारों में मानवीकरण विशेषण, विषय और ध्वन्यर्थ-व्यंजना का प्रयोग किया है<sup>२</sup> की हिन्दी की-

१- S. H. Rajan - The Social Problems. P. 32 Madras (1952)

२-

आधुनिक रहस्यवादी कविता में मिलता है। आधुनिक कवि पन्त भी वर्तमान की भाँति बालक में दार्शनिकता का आभास पाता है। जो वयस्क व्यक्तियों की पहुँच से परे है।

आधुनिक हिन्दी काव्य पर पाश्चात्य प्रभाव लाभप्रद होने के साथ-साथ किसी सीमा तक हानिकारक भी सिद्ध हुआ। पाश्चात्य प्रभाव ने हमारे कवियों, एवं लेखकों में किसी सीमा तक हीनता के भाव भी मरे हैं<sup>१</sup> केवल अनुकरण योग्य ही बनाया, केवल प्रतिभा सम्पन्न कवि ही विदेशी भावों को पली प्रकार आत्मसात् करके, उसका जातीय प्रतिभा के विकास में प्रयोग कर सके हैं। मध्यम वर्ग के कवियों एवं लेखकों ने केवल अन्धा अनुसरण किया है। जे-सी- घोष ने बंगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं वे केवल बंगला साहित्य पर ही नहीं बल्कि बंगला और हिन्दी दोनों के लिए सत्य है:- उनके अनुसार १९ वीं शताब्दी के बंगला, साहित्य में जातीय और विदेशी तत्वों का विविध मिश्रण है, वहाँ एक ओर तो साहित्य की परम्परागत भाषा और रूप का दर्शन होता है तो दूसरी ओर पश्चिम से आने वाले नवीन प्रभाव भी आभास होता है। वे कहते हैं कि यद्यपि आधुनिक बंगला साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तत्व योरोप से आये किन्तु कतिपय बुद्धिजीवियों की कृतियों को छोड़ कर योरोपीय साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तत्व या तो बंग भूमि में आये ही नहीं अथवा वे आकार पनप न सके।<sup>२</sup> क्योंकि अंग्रेजी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य ने बंगला के माध्यम से ग्रहण किया है। अंग्रेजी साहित्य संसार के समस्त साहित्यों में सर्वाधिक समृद्ध है इसलिए उसके अच्छे तत्वों को ग्रहण करना किसी भी सीमा में हानिकारक नहीं है। अंग्रेजी साहित्य का समुचित अध्ययन भी हमारे हिन्दी साहित्य को समृद्ध बना सकता है। इस बात का प्रमाण हमें डा० अरनाथ फा के विचारों में भी मिल जाता है:- भारत में अंग्रेजी-

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा- हिन्दी काव्य पर अंग्रेज प्रभाव- पृ० १५२ ।

२- J.C. Ghosh - Bengali Literature, P. 166-167  
Oxford Press (1939)

के व्यापक का अब तक महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और भविष्य में भी रहेगा । वह भारतीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध बनाने का कार्य करेगा और उसे नवीन रूपरेखा और दिशा प्रदान कर साहित्यकारों के दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक सिद्ध होगा।<sup>१</sup> आधुनिक हिन्दी कविता भी अंग्रेजी साहित्य के अच्छे सत्त्वों को आत्मसात् करेगी और निकट भविष्य में एक सुवस्थित और सुन्दर साहित्य का निर्माण करेगी ।

### नवीन विषय-वस्तु और भावभूमि का उद्भव और विकास

स्वच्छन्दतावाद का तात्पर्य मनुष्य की उस सहज वृत्ति से है जो बन्धन और रुढ़िवादिता का तिरस्कार करती है<sup>२</sup> यह मुक्त वात्सा की वह चैष्टा है जो इस युग की कविता और कला में अभिव्यक्त हुई है। ये नये विचार, सामाजिक रीति-रिवाज और आचार-विचार में भी प्रकट होने लगे । जीवन में स्वाधीनता की भावना और गतिशीलता की प्रवृत्ति भी उस में दिखाई देती है। माव-विवाद से लेकर हन्द विधान तक वह प्रवृत्ति प्रस्फुटित हुई है। काव्य शिल्प में देवताओं के मानवीकरण से लेकर मानव के दैवीकरण तक, आदर्श से यथार्थ एवं प्रकृति के मानवीकरण तक यह प्रवृत्ति दिग्दर्शित हुई है।

हिन्दी साहित्य में नवीनता का सूत्रपात सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ हुआ था । उस से पूर्व कविता का दायें सीमित था। हिन्दी काव्य के लिए ये प्रवृत्तियाँ एकदम नयी थीं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कभी जन-जीवन काव्य का विषय नहीं रहा । काव्य एक विशेष वर्ग या दायें विशेष तक ही सीमित रहा। वीरगाथा काल का काव्य अत्यन्त संकुचित और संकीर्ण मनोभावों .

<sup>१</sup>- Essays and Studies - English Association, P.136(1938)

<sup>२</sup>- H. Gough - The Romantic Poets, P.18, London(1962)

का काव्य रहा है। न इस में राष्ट्रीयता है और न कोई निश्चित विचार धारा है। इस युग की भाँति यह काव्य भी सामान्यों के जीवन और शौर्य वर्णन तक ही सीमित रहा। भक्ति काल के काव्य में अधिक माँड़ता है, परन्तु इस में दर्शन और आध्यात्मिकता का बहुत गहरा फुट है। इस में जन-जीवन का फुट नहीं है। महाकाव्यों में भी देवी - देवताओं और अवतारों का चरित्र-चित्रण किया गया है। रीति-कालीन काव्य हिन्दी साहित्य में कलात्मक क्रांतिकारों का युग है। युग की क्रांति-मुक्ती प्रवृत्तियों से यह काव्य पूर्ण प्रभावित है। रीति काल में कवियों की आदि कालीन प्रवृत्ति दूसरे रूप में पुनः प्रकट हुई। जिस में उस समय का विलासी समाज फाँक रहा है किन्तु वही काल में हर्म कविता की उस दक्षिण वारा का भी कुत्रपात दिखाई देता है जिस का विकास आधुनिक काल की विभिन्न साहित्यिक धाराओं में हुआ। इस में काव्य की शास्त्रीय रुढ़ियों का तिरस्कार तथा प्रवास युक्त क्रांतिकारी कविता करने की प्रवृत्ति की उद्देष्टा का भाव निहित है। यह सामाजिक और विस्तृत दृष्टि-वाली प्रवृत्ति मारसेन्दु युग में फलवती हुई और स्वच्छन्दतावादी युग में पूर्ण विकसित हो गई। स्वच्छन्दतावादी काव्य यही अवस्था में आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिक युग का मानव अधिक बौद्धिक और तर्कशील है। फलतः इस युग में विषय वस्तु, तथा काव्य की मूल चेतना के दोनों में परिवर्तन हुए। राम और कृष्ण भारतीय हिन्दी कवियों के विषय रहे हैं। आधुनिक युग में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार और बुद्धिवाद के प्राधान्य प्रभाव स्वरूप और कौरी मृदुता के स्थान पर तार्किक दृष्टि का प्रभाव पड़ा। आधुनिक चेतना सम्पन्न एवं तर्कशील लोगों का ईश्वर के अवतार में विश्वास होने लगा। कार्य-समाज और उस समाज ने अवतारवाद के विरुद्ध आन्दोलन किया। ये संस्थाएँ बहुदेववाद और मूर्ति पूजा की विरोधी थी। उनके प्रभाव से साहित्य भी अछूता न रह सका। हरिबाँध जी और पैथिलीशरण गुप्त के राम और कृष्ण भी हमारे सम्मुख मानव रूप में जाये। इन दोनों कवियों ने पुराणों और भागवत के राम तथा कृष्ण से उनका देवत्व निकाल कर उनकी सामान्यिक युग के अनुरूप बिलार दिया है। इन दोनों कवियों की अपनै हंग की मकी सृष्टि है। कवियों के हन्ती--

प्रयत्नों की देतकर हम कह सकते हैं कि हिंदूवैदी -युग जहाँ नैतिकतावादी और शक्तिवृद्धात्मकता का युग कहा जाता है उसी युग में हमें इस प्रकार के प्रयत्न भी मिलते हैं जो स्वच्छन्दतावाद के भीतक हैं। उदाहरण के लिए कृष्ण का गीर्वाण पर्वत धारण करने का प्रसंग हीनिर । हरिर्जीव ने इसे इतने स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है कि इस पर किसी भी आधुनिक व्यक्ति को आपाधि नहीं हो सकती इस का वर्णन इस प्रकार किया है:-

भ्रमण ही करते सब ने उन्हें,  
सकल काल लखा सप्रसन्नता ।  
रजनि भी उन की कटती रही,  
सुम्न विधि-रक्षण में सब - लोक के ।  
उस अपार प्रसार गिरिन्द में,  
सब -धराविष के प्रिय-पुत्र का,  
सकल लोग लगे कहने उसे।  
रस लिया उंगली पर श्याम ने॥<sup>१</sup>

आधुनिक काव्य में सामान्य मानवता को भी उच्च स्थान मिलने लगा । अब किसान, मज़दूर और साधारण लोग काव्य के विषय बनने लगे । इससे पूर्व हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती है। यह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का फल था। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सामान्य मानवता को लेकर बहुत कुछ ही रचनाएँ कीं । इस युग की कविता में आनाजिक व्यंग्य का स्पष्ट और प्रखर स्वर मिलता है। व्यंग्य इसी साहित्य में विकसित होता है जहाँ समाज की रुढ़ियों की गहरी पकड़ हो और राजनीतिक व्यवस्था में घुटन और मय व्याप्त हो<sup>२</sup> देशका तत्कालीन वातावरण इसी प्रकार का था इसी कारण हमारे आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रखर स्वर मिलते हैं।

१- हरिजाय- प्रिय-प्रवास, पृ० १५६ कांसी १९५६ ।

२- Plakhenov "Art and Social Life." P. 45, New York (1950)

देश की दरफता और कृष्णक वर्ग पर वायुनिक कवियों ने बहुत सी महत्वपूर्ण कृतियाँ लिखीं जैसे मैथिलीशरण गुप्त जी का किसान (१९१५ ई०) सियारामशरण गुप्त का जनार्ण (१९१७ ई०) और गयाप्रसाद शुक्ल सनेही का कृष्णक-झंजन (१९१६ ई०) बहुत प्रसिद्ध हैं। इन समस्त कृतियों में आकाँक्ष और कल-णा का प्रवाद है। कृष्णक- झंजन में किसान की दयनीय स्थिति का चित्रण है। किसान पर कौटं दया नहीं करता उसके सेत में सूखे पड़े हैं चारों ओर से समाज में उसके साथ बर्ताव-चार किया जा रहा है वह जीवन से निराश है। अपनी सहायता के लिए भादलों को पुकार उठता है:-

रहे आवाँ ऐ भादलों ! आवाँ आवाँ !  
तुम्हीं आके दो चार जाँसू बहाओ,  
हुली हैं तुम्हारे कृष्णक दुल पटाओ,  
न कुछ धन पड़े जाँ तो कियली गिराओ,  
न रोएंगे हम घम्बियाँ तुन उड़ा दो  
किसी भाँति आपत्ति से तो छुड़ा दो।।<sup>१</sup>

रस

वायुनिक हिन्दी के विचारकों में डा० रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० नगेन्द्र के रस सम्बन्धी मान्यताओं की स्वीकार किया जाता है। शुक्ल जी के मतानुसार- व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठित ऐसे सामान्य धर्म की रहती है जिसके छाया-स्कार से सब जीताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय धौड़ा या बहुत होता है।<sup>२</sup>

डा० नगेन्द्र शुक्ल जी के आलम्बन में सामान्य गुणों की विषयगत सत्ता में विश्वास करते दिखार देते हैं। डा० नगेन्द्र काव्य के विषय की कवि की भावना मानते हैं। उन का विचार है कि- " हम काव्य की सीता से प्रेम करते हैं और --

१- गयाप्रसाद शुक्ल सनेही - कृष्णक झंजन, पृ० १८ ।

२- रामचन्द्र शुक्ल- जिनतामणि १ भाग १ (पृ० ३१३)

काव्य की यह आलम्बनरूप चीज़ा कोई व्यक्ति नहीं है। जिस से हमको किसी प्रकार का समझाने करने की आवश्यकता नहीं, वह कवि की पानसी सृष्टि है क्योंकि कवि की अपनी अनुभूति का प्रतीक है। उसके द्वारा कवि ने अपनी अनुभूति को हमारे प्रति संवेद्य बनाया है। अतः, इसलिए जिसे हम आलम्बन करते हैं वह वास्तव में कवि की अपनी अनुभूति का संवेद्य रूप है। उसके साधारणीकरण का अर्थ है कवि की अनुभूति का साधारणीकरण जो भट्ट नायक और अमिनव गुप्त का प्रतिपाद है।<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन कवियों ने भी इस को महत्व दिया है। इन कवियों का प्रेम-वर्णन प्रायः प्रकृति और पृथ्वी के प्रतीकों के द्वारा व्यक्त होता है जो अत्यन्त सलात्मक ढंग का है। जैसे गिराला की जुही की कली<sup>२</sup> दार्शनिक सत्य की व्यंजना करने वाली कहीं जाती है परन्तु उसका यह प्रकृति चित्रण जो बहुत सुन्दर और सुन्दर किया गया है, कुछ और स्थानी भी सदाता दिखाई पड़ता है। इस भाव की काव्य की आत्मा क्या है:

मिर्दय उस नम्रयक ने  
निपट मिहिराई की कि  
फाँकों की फाड़ियों से  
सुन्दर सुस्मार देह सारी फकफोर डाली,  
मसल लिये गोरों कपोल गाल।।<sup>३</sup>

हरिऔध ने भी प्रिय-प्रवास की विरहिणी राधा की विरह वशा का पार्थिक चित्रण किया है। उसके परिणाम स्वरूप राधा का विरह आलम्बनता होकर भी विश्वोन्मुक्त हो गया है। यह कला की सुन्दर सृष्टि है। जो प्रत्यक्षा न होकर भी प्रभाव डालती है और इस की कोटि में रखी जाती है:

१- डा० गोन्द - रीति काव्य की मुद्रिका १९० ५० ।

२- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में क्रान्ति युग १९०

सूती जाती भलिम ललितता जी घरा में पड़ी हो।  
 तो पाँवों के निकट उसको श्याम के छा गिराना॥  
 यों लीचे से प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो।  
 मेरा हीना वति मलिन और सुलते नित्य-जाना॥<sup>१</sup>

इसी प्रकार का कलात्मक वर्णन हमें मैथिलीशरण गुप्त जी की भारत-भारती तथा रामनरेश त्रिपाठी जी की पथिक में मिलता है। भारत-भारती में गुप्त जी की कला देखने योग्य है:

जबिहाम बाँझों से बरसता बाँसुओं का पैर है।  
 है छटपटाती बाँध उन की छटपटाती पैर है।  
 गिरकर कभी उठते वहाँ उठकर कभी गिरते वहाँ।  
 धाकड़ दुर से चुमते हैं वे जगाम जहाँ वहाँ॥<sup>२</sup>

पथिक काव्य में रामनरेश त्रिपाठी की कला कलण रस के रूप में सुन्दर ढंग से व्यंजित हुई है:

जाते हैं गम और बाँसुओं ही से व्यास चुकाते  
 ठेकर बाँसु विविध रीतों की हैं दिन रात बिताते।  
 फटे पुराने चियड़ों ही से ठके किसी विधि तन हैं।  
 कैसे सिये, सुई ताँझों से भी नितान्त निर्धन हैं॥<sup>३</sup>

विदेव्य काल के कवियों ने राष्ट्र जागरण के लिए जिन कविताओं का निर्माण किया उस से देश, समाज, तथा राष्ट्र की एक नया उत्साह, और नयी उमंग मिली। इन रचनाओं में कवियों ने वीर रस का कलात्मक प्रयोग किया है। हरिवोध ने भी इस रस का प्रयोग अपने महाकाव्य में किया है:

अतः करुंगा यह कार्य मैं स्वयं  
 स्व-हस्त में दुर्लभ प्राण लिये।  
 स्व-प्राति और जन्म-घरा निमित्त मैं-  
 न भीत हूँ विकराल व्याल से॥<sup>४</sup>

१- हरिवोध- प्रिय प्रवास - पृ० ७१।  
 २- मैथिलीशरण गुप्त- भारत-भारती पृ० १४।  
 ३- रामनरेश त्रिपाठी- पथिक - पृ० ४५।  
 ४- हरिवोध- प्रिय प्रवास पृ० ४६।



शिल्प:-

साहित्य में सामाजिक सन्दर्भ और विषय-वस्तु के परिवर्तन के साथ, उस के सभी सन्दर्भ बदल जाते हैं। भाषा-शैली और शिल्प उस के अनुगामी होते हैं।<sup>१</sup>

इस युग के काव्य का सामाजिक सन्दर्भ बदल गया, सुधारवादी नैतिकतावादी दृष्टि धीरे-धीरे गहरी सामाजिक और राजनीतिक चेतना में बदलने लगी। आरंभ में सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक सुधारवाद तक सीमित हिन्दी का जब युगीन राजनीतिक चेतना का सम्बल बन गया। प्रकृति प्रेम धीरे धीरे स्वदेश प्रेम में परिवर्तित हो गया। विनालस्य काव्य का विषय इसलिए चुना गया है क्योंकि वह देश का पूरवी है, हमारा रपाक है। देश को हरा-भरा बनाने में सहायक है। गधियाँ इस धरती के सत्य स्यामला रहती हैं। वन कों प्रकार की सम्पदा के भंडार हैं। ये भावना धीरे-धीरे स्वदेशी आन्दोलन के रूप में बदल गईं। इस विषुद स्वदेश प्रेम में अन्त में आधिक और राजनीतिक रूप धारण किया।

वर्तमान काल के आरम्भिक कवियों ने देश के सामाजिक पतन पर ही सेव प्रकट किया था, इस युग के कवि सामाजिक और राजनीतिक रूप से अधिक चेतना सम्पन्न थे। इस लिए उन्होंने देश की दुर्दशा के मूल कारण धार्मिक शोषण और राजनीतिक पतन बताये। उन कवियों ने विदेशी वस्तुओं के प्रयोग की निन्दा की और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देने का आग्रह किया। भारतीयों की गुलाम-प्रवृत्ति पर इस युग के कवियों ने व्यंग्य किये हैं। उन्हें पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति और वस्तुओं की सड़क झड़क से कवने को कहा है-

---

Howard Fast - "Literature and Reality"  
P. 23. New York (1950).

जो वस्तु बेती (मेड इन, मैडिड, मैडली, जर्मनी ।  
जापान, फ्रांस, स्वेडिश वा अन्य देशों में बनी।।  
६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६  
जाधे यहाँ से और कच्चा माल बर बाहर नहीं ।  
हो मेड इन के नाम पर इण्डिया की सब कहीं।।<sup>१</sup>

आर्थिक शोषण का यह निर्मम चित्रण हिन्दी काव्य के लिए एक दम नया था, इस से पूर्व इतनी गहराई और पैराना के साथ कवियों ने देश की राजनीतिक दुर्व्यवस्था और आर्थिक पतन का चित्रण नहीं किया था। इसी नयी चेतना ने काव्य के रूपों में आमूल परिवर्तन किए। पुरानी भाषा छड़ी उन नये विषयों के लिए उपयुक्त नहीं रही । ज्ञान विज्ञान की प्रगति ने भारत में गद्य के विकास को प्रोत्साहन और अनिवार्यता प्रदान की। कलत्वरूप गद्य का महत्त्व कम होने लगा। यह ऐतिहासिक आवश्यकता थी, जिस ने गद्य को गद्य की भाषा के नज़दीक लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इस आधुनिक युग में यह संभव नहीं था : कि गद्य की भाषा ब्रज या अवधी हो और आम व्यवहार की भाषा सड़ी बोली हो भाषा में एकसमता लाने में इन नयी परिस्थितियों का सन से अधिक योगदान है। इस युग के काव्य में एक नयी दृष्टि का योग हुआ । सुभारवादी आन्दोलन युग के कवि, कवी, पढ़े- लिखे वर्ग को सन्देश की दृष्टि से देखते थे। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन युग के कवियों ने इस वर्ग को सहानुभूति की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया । कर्म आदि के जीवन के इस युग में अनेक मार्मिक चित्र मिलते हैं-

ठिंसते रहो जो सर फुका,  
जुन शक़्सरों की गालियाँ,  
तो दे सकें रात को,  
दो रौटियाँ घर वालियाँ।<sup>२</sup>

१- मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती - पृ० १०१। भांसी (१९५६)

२-मैथिलीशरण गुप्त- भारत भारती -पृ० १७ भांसी- (१९५१)

हिन्दी काव्य में यह एक नयी दृष्टि का समावेश था जिस ने वाग्वैचल्य कर जन-जीवन को अधिक सुली दृष्टि, गहराई, विस्तार और सहानुभूति से देखा-पढ़ा इस प्रवृत्ति ने हिन्दी काव्य को विस्तृत चेतना प्रदान की ।

मछि काल के बाद काव्य और जन-जीवन का संबंध टूट गया था । कविता एक विशेष वर्ग की धरोहर बन गई थी । भारत-सन्धु युग में जाकर कविता का फिर से सामाजिकरण होना आरम्भ हुआ, उस में सामाजिकता और चेतना के स्वर प्रबल होने लगे । उस युग में जाकर कविता समाज और राष्ट्र की संपत्ति समझी जाने लगी । इस युग में काव्य ने अपना स्पष्ट उद्देश्य सामाजिक चेतना और राष्ट्र-य एकता केमव एवं स्वाधीनता घोषित किया । इस युग की कवियोंकी रचनाएँ राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का कष्टकर बन गई थीं । वे बड़े- बड़े संपादकों और राजनीतिक जलसों में गाई जाती थीं हमारे कुछ कवियों ने अपने राष्ट्र प्रेम का मूल्य भी चुकाया । उन्होंने ब्रिटिश सरकार की जेल यातनाएँ भी सहं इन में मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण झाँ नवीन, सुमदा कुमारी चौहान और भावन लाल चतुर्वेदी के नाम प्रमुख हैं । मैथिलीशरण गुप्त को भारत भारती के संबंध में हमारे प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने कहा कि:

मेँ राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में भारत-भारती की कविताएँ राजनीतिक सभाओं में गाकर सुनाया करता था । इन दिनों यह कविताएँ हम सब कार्यकर्ताओं को प्रेरणा देती थीं ।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की ये नवीन प्रवृत्तियाँ थीं जिनके कारण वह अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य-रूपों से भिन्न और नवीन है । जिस प्रकार पुराने विषयों के मध्य में नवीन विषयों को काव्य में स्थान दिया गया है और प्राचीन आन्धताओं को तोड़ा गया उसी प्रकार काव्य में आज भाषा के समस्त सही बौली का प्रयोग कर भाषा के दौब में एक नवीनता लाई गई । यह परिवर्तन समासमयिक युग के अनुकूल ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक आवश्यकता के अन्तर्गत था । जागरूक कवि --

जीवन के कटु सत्यों और देश की तत्कालीन परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकते इसी लिए उन्हें व्यार्थ की ओर जाने और देखने की जाय्य होना पड़ा। क्यों कि कला की दृष्टि से लोक भाषा या सड़ी बोली आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। जन-साधारण विषयों के लिए भाषा का स्वाभाविक प्रयोग अनिवार्य है और यह स्वाभाविक और सशक्त भाषा सड़ी बोली थी। उस से पहले विवेच्य काल के प्रतिनिधि कवि द्विवेदी जी ने अपनी क्लीवर्द नामक कविता सड़ी बोली में श्री वैकुण्ठेश्वर समाचार में लिखी :

क्लीवर्द, तुम पशु होने से अविवेकी कहलाते हो,  
मद पर भी निम्न उन्मदता से विजय बड़ाई पाते हो।  
साभिमान बनवान पास भी नहीं विषेक फटक्ता है।  
अहंकार -मद में वह अपने घूर सर्वदा रहता है।<sup>१</sup>

सड़ी बोली की इसी परम्परा को श्रीधर पाठक ने भी अपने स्कान्तवासीयोगी के द्वारा प्रस्तुत किया। श्रीधर पाठक ने यह रचना १८८६ ई० में लिखी। कला की दृष्टि से यह भी अपने में महत्त्वपूर्ण है:-

प्राण पियारे की गुन- गाथा- साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।  
गाते गाते चुके नहीं वह चाहें मैं ही चुक जाऊँ॥  
विश्व निकाईं विधि ने उस में की एक बटोर।  
बलिहारी त्रिभुवन धन उस पर वारी काँव करीर॥<sup>२</sup>

विवेच्य कालीन कवियों में हरिदास जी, गुप्त जी, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी तथा प्रसाद जी उल्लेखनीय हैं। हरिदास जी का भाषा पर साधारण अधिकार है। हरिदास जी ने परम्परागत भाषा का भी साधारणीकरण कर उसे नया रूप प्रदान किया। हरिदास जी ने 'प्रिय-प्रवास' में ध्वन्यात्मक शब्दों को नलकान्त पदावली, तथा संगीतात्मकता का सजीव चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। निम्न छन्द को पढ़ते ही-

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी- द्विवेदी काव्य-माला । क्लीवर्द । पृ० २७५ ।

२- श्रीधर पाठक- स्कान्तवासी योगी - पृ० ३७ ।

वर्णाकालीन मेधाह्वन जाकाश का दृश्य सजीव ही उठता है-

मथित चालित ताड़ित ही मरहा,  
जति प्रबंड प्रमंजन- युज है,  
जलद के दल के दल वा रहे,  
धुपड़ते धिरते झल धेरते।।<sup>१</sup>

हरिजाँघ ने जहाँ सरस भाषा का प्रयोग किया है वहाँ दूसरी ओर प्रिय-प्रवास में कवि ने किट्ठुपाणा का भी प्रयोग किया है। यह प्रवृत्ति ही विवेक्यकालीन काव्य के कलावदा का निस्तरा पुत्रा रूप ऊनारे सम्मुख उपस्थित करती है:

सद्वस्त्रा -सदलकृता- गुणयुता -सर्वत - सम्मानित ।  
रौगी वृद्ध जनायकार - निरता सञ्ज्ञास्त्र चिन्तापरा।।  
सदावतिरता जनन्य छन्दया सत्तम -संपीणिना ।  
राधा थी सुमना प्रसन्न वदना स्त्री जाति रत्नापमा।।<sup>२</sup>

इस प्रकार हरिजाँघ जी ने उर्दू मिश्रित हिन्दी जयवा उर्दू शब्दों में भी रचनाई की:

चार छा समने भरे तो क्या किया,  
है यहाँ मैदान कौसा का जमी ।  
काम सौ है बाज के दिन तक हुये,  
हैं न छोने के बराबर वे जमी।।<sup>३</sup>

धीरे धीरे विवेक्यकालीन कवियों के काव्य भाषा के आवर्त धीरे-धीरे समृद्ध और विकसित होने लगे। इस उत्तिकृपात्मकता और नैतिकतावादी युग में भी कवि क्रान्तिकार रहे उनके इन्हीं क्रान्तिकारी प्रयत्नों की काव्य में स्वच्छन्दतावाद का नाम दिया गया संज्ञा और क्रिया की अपेक्षा भाववाचक संज्ञा और विशेषणों के प्रयोग का भी प्रवा होने लगा, इस के साथ ही भाषा में व्यञ्जकता, संगीतात्मकता, माधुर्य और चित्रात्मकता की गयी सक्ति भी जाने लगी। विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) की नये काव्यालंकार भी हिन्दी कविता में आ गए।<sup>४</sup>

१- हरिजाँघ - प्रिय - प्रवास - पृ० २० ।

२- वही - चोहे कोपड़े - पृ० १ ।

३- वही - चोहे कोपड़े - पृ० २० । (काशी, १९२७)

४- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा- आधुनिक हिन्दी काव्य पर बांग्ल प्रभाव- पृ० - ६८

छन्द :

आधुनिक हिन्दी काव्य में शिल्प की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्रान्ति अतुकान्त छन्दों के प्रयोग के रूप में व्यक्त हुई। हरिऔध ने अन्त्यानुप्रास की रूप-परम्परा को तोड़ा और संस्कृत वृत्तों का अपने काव्य में सफल प्रयोग किया-

कलिय-किरण- बाला बिम्ब सौंदर्यशाली।

सुगगन तल- सौमी दिव्य छायापति का॥

हविमय करती थी दर्शकों के घूर्णों को।

जब रवि- तनया छे अंक में क्रीडती थी॥<sup>१</sup>

प्रिय प्रवास में उपाध्याय जी ने वर्णित छन्दों का सफल निर्वाह किया है। कुतविलम्पित शिखरिणी, सार्दूलविकण्डित, झंझुझा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, त्रोटक, इत्यादि सभी वर्णिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। गुप्त ने पद्मवली और शकुन्तला में तथा रायदेवीप्रसाद पूर्ण महावीर प्रसाद विद्वेदी, रामचरित उपाध्याय तथा अन्य कवियों ने अपनी स्फुट कविताओं में भी वर्णिक छन्दों का सफल प्रयोग किया है। वर्णिक वृत्तों के अन्त्यानुप्रास के संबंध में भी दो मत थे। मैथिलीशरण गुप्त वर्णिक वृत्तों में भी अन्त्यानुप्रास रखते थे परन्तु उपाध्याय जी वर्णिक छन्दों में अन्त्यानुप्रास आवश्यक नहीं समझते थे क्योंकि संस्कृत कविता में वर्णिक वृत्त अतुकान्त होते हैं। मुक्तक वृत्त में कवित्व और उसके भेदों का प्रयोग किया गया। इसी परम्परा-सालन में श्रीधर पाठक ने कालिदास के ऋतुसंहार के द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत पावस वर्णन का अनुवाद इस प्रकार किया-

नीले सरोज से नैनन सी,

अंसवान की खुंदन को झर लावति।

बिम्ब से हाँठन के सुठि पल्लव ।

सीचिं तिनहीं तिनसों अन्हवावति॥<sup>२</sup>

१- कयोध्यासिंह उपाध्याय-हरिऔध- प्रिय-प्रवास । पृ० २७ ।

२- श्रीधर पाठक - मनाविनोद (द्वितीय खण्ड) पृ० २१ प्रयाग (१६०५ ई०)

इस युग के महाकाव्यों की छन्द परम्परा में जहाँ हमें हरिऔध की अतुलान्त परम्परा मिलती है वहाँ दूसरी ओर हमें प्राचीन संस्कृत कृत्तों के गणात्मक सिद्धान्तों का पालन भी मिल जाता है-

सवारि जीमूत मतंग मान,  
सुरेन्द्र - चापायुध बुन्द धान ।  
सखन देशेश्वर सो सुहायी,  
बिलौकिया पावस काल आयी ॥<sup>१</sup>

इस समय खड़ी बोली का ठीक प्रकार से परिष्कार नहीं हो पाया था और नये छन्द अपना स्थान नहीं बना पाये थे इस लिए इस युग के काव्य में प्रवाह नहीं है। काव्य अत्यन्त शुष्क है और इस प्रकार उपदेशात्मकता का भार ही लदा हुआ है अपनी इसी शुष्कता शक्तिवृत्तात्मकता और प्रवाह-हीनता के कारण इस युग की कविता लोकप्रिय नहीं हो सकी । वे कविताएँ लोकप्रिय हुईं जो उर्दू बहराँ अथवा लोकगीतों की परम्परा में लिखी गईं इस प्रवृत्ति ने काव्य को जनता से दूर होने से बचा लिया। धीरे-धीरे ये नये और असाहित्यिक समझे जाने वाले छन्द काव्य में पूर्णतः पत्र गये संगीत की प्रचलित राग-रागिनियाँ (गजल, ठुमरी, प्यार आदि) में गेय काव्य की रचना और साथ ही जन गीतों (लावनी, कबली, होली, कबीर आदि) को काव्य का आचार बनाना वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। उवाध्याया जी ने चौपदे और छपदे उर्दू बहराँ में लिखे हैं-

उमंगी भरा दिल किसी का न टूटे,  
फूट आयं पाँसे मगर जुग न फूटे,  
कभी संग निज संगिनियों का न छूटे,  
हमारा चलन घर हमारा न छूटे,  
संगी से संगे कर न लेवे किनारा,  
फाटे दिल मगर घर न फूटे हमारा ॥<sup>२</sup>

१- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी- द्विवेदी काव्य माला- अतुतरंगिणी, वर्षावर्णन पृ० ८५।  
२- हरिऔध- चौपदे छपदे - पृ० ३५ ।

विवेच्य काल में कवियों ने यह लोक प्रचलित छन्दों को अपनाया। उसी लिए कजली, एवं कबीर आदि गीतों के प्रयोग ने कवियों को लोक भूमि पर आसीन कर दिया। भारतेन्दु ने भी छन्दों के नवीन प्रयोग किये हैं। वर्णिक छन्दों में बंगला के प्यार छन्द का सुन्दर प्रयोग सब से पहले उन्होंने किया है-

मन्द मन्द बाँधे देता प्रातः समीरन।  
करत गुणव्य चारों ओर यिकीस।  
गात सिहरात तन लगत सीतल।  
रैन निडाहल जन सुखद चंचल॥<sup>१</sup>

विवेच्य युग में हरिबांध जी ने भी संस्कृत कृतों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है

हृषीकान प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु- विम्बानना,  
तन्वंगी कलहाशिनी सुरसिका कीड़ा-कला -कुशली॥  
शोभा -वारिधि की अमृत्य मणि सी लावराय -लीलामयी।  
श्री राधा मुकुभाणिणी मृगकुली माधुर्य- सन्धति थीं॥<sup>२</sup>

सड़ी बोली की उर्दू शैली में दो सौ साल पहले से ही काव्य रचना हो रही थी। हिन्दी सड़ी बोली का काव्य उसकी तुलना में शिशु था उर्दू काव्य हिन्दी की अपेक्षा परिष्कृत प्रवाह्युक्त और सरल था। उस का दोष संकीर्ण आवश्यक था किन्तु उसमें रुच्यग्राहिता बहुत थी। हिन्दी के कुछ जागरूक कवियों ने उर्दू से उसके कुछ लोक-प्रिय छन्द और शब्दावली लेकर उसका हिन्दी में सकल प्रयोग किया यह परम्परा आगे के काव्य में कौन ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से विकसित नहीं हो सकी एक ओर हिन्दी के कवि उर्दू छन्दों और लोकप्रिय शब्दावली का अपने काव्य में प्रयोग कर रहे थे, दूसरी ओर उर्दू - हिन्दी का संगठित रूप में झगड़ा उसी युग में आरम्भ हुआ। यह परिस्थिति उसी प्रकार है कि, अंग्रेजी के विरुद्ध देश में तीव्र आन्दोलन हो रहे थे, दूसरी ओर पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता का भारत में विस्तार हो रहा था।<sup>३</sup>

१- भारतेन्दु शब्दावली--(भाग २) प्रातः समीरन। पृ० ६८६।

२- हरिबांध--प्रिय प्रवास पृ० ४१, चिगाव अंगली

३- डॉ० शमचन्द्र मिश्र - अध्यात्मिक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ८३



कहीं कहीं उर्दू की मिश्रित भाषा का भी सकल प्रयोग हुआ है-

यह कह कर तमक ताव में भाड़े को उमाला,  
मुझ-दण्ड के बल लाल किया वार निराला।  
धुस झोड़ दिया मान पे एक राँव छा काला,  
उस पाता तो बस उम्र का भर जाता पियाला।<sup>१</sup>

उपयुक्त छन्द-विणयक प्रवृत्तियाँ में स्वच्छन्दतावादी भावना व्यक्त हुई। इस प्रकार के छन्द ही वास्तव में स्वच्छन्दतावादी कविता के भाव बोध को उपयुक्त और कला-पूर्ण तरीके से व्यञ्जित करने के एकमात्र साधन रहे हैं। विवेच्यकालीन काव्य में अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में छन्दों की दृष्टि से वह क्रांति संभव नहीं हो सकी है, जो भाषा और शैली के क्षेत्र में हुई। लेकिन छन्दों की क्रांति और विकास उपेक्षा योग्य नहीं अपितु महत्वपूर्ण है। यह सत्य है कि इस युग में अधिक नये छन्दों का सृजन संभव नहीं हो सका लेकिन प्राचीन छन्दों में नूतन प्राण फुँककर उन्हें एकदम नये रूप में प्रस्तुत करना, भी कम महत्व की बात नहीं है। ~~क्योंकि भारतेन्दु काल की संख्या अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ण में एक नयी प्रवृत्ति नूतन प्राण फुँककर उन्हें एकदम नये रूप में प्रस्तुत करना भी कम महत्व की बात नहीं है।~~ क्योंकि भारतेन्दु काल की संख्या अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ण में एक नयी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। वह थी संस्कृत वृत्तों (वर्णिक छन्दों) का नवोत्थान<sup>२</sup>। विवेच्य युग के प्रमुख कवि हरिवंश जी ने अपने महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' में इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया। बाद में इस को भी झोड़ दिया गया और हिन्दी कवि किसी भी छन्द में अनुप्रासहीन कविता करने लगे इस का सजग प्रमाण प्रसाद जी का भी पथिक है। बिबूदेव जी ने भी काव्यात्मक अनुभूति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर बल दिया वे उन कवियों की मानसिक प्रवृत्ति<sup>३</sup> को काव्यात्मा का गला पोट कर तुलान्त, यमक, उपस्थापुर्ति आदि में काव्य-सौन्दर्य टूटते हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार विवेच्य कालीन काव्य छन्दों की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

१- लाला मगवानदीन- वीर पंथ रत्न - पृ० १२ ।

२- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० ८७ ।

३- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा- हिन्दी काव्य पर जाँच प्रभाव- पृ० ६८ ।

## अलंकार

अलंकार काव्य के आलस्य शोभापरक धर्म हैं। इस के प्रयोग का एक मात्र कारण काव्य का अलंकरण या सजावट है। जिस प्रकार रमणी की शोभा की वृद्धि में उपकरण होते हैं उसी प्रकार अलंकार काव्य की रसात्मकता के उत्कर्ष हैं। वास्तव में अलंकार वाणी के विभूषण हैं, उनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रसविष्णुता और प्रेक्षणीयता तथा भाषा में औन्दर्य का सम्पादन होता है। स्पष्टता और प्रभावीत्पादन के हेतु वाणी अलंकार का रूप धारण करती है। इसलिए काव्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।<sup>१</sup>

आधुनिक काव्य शास्त्रीय सन्दर्भ में अलंकार वर्णन की सुन्दर और समत्कारपूर्ण प्रणाली है। शुक्ल जी के अनुसार भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।<sup>२</sup> हिन्दी काव्य में प्राचीन आचार्यों ने अलंकार को काव्य का धर्म माना है। हिन्दी में केशव ने इस का पोषण ही नहीं किया बल्कि सहमत भी दिखाते हैं :

अपि तुजाति पुलच्छिनी, सुवरन सरस सुवृत् ।

भूषण विभु न बिराजत, कविता धमिता मित॥<sup>३</sup>

विशेष्य कालीन काव्य में दो प्रकार के मत हैं एक वे हैं जो अलंकारों को केवल एक सहज धर्म के रूप में मानकर चले हैं केवल भाव-औन्दर्य के लिए उसका प्रयोग करते हैं उन में पं० श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, मैथिलीशरण गुप्त, गीपाल शरण सिंह--

१- हिन्दी साहित्य कोष - पृ० ६० (ज्ञान मण्डल बनारस)

२- डॉ० रामचन्द्रशुक्ल- जायसी ग्रन्थावली की मूनि में इस काव्य की और स्पष्ट निर्देश है ।

३- केशव - कवि- प्रिया पृ० ५ : १)

तथा रामनरेश त्रिपाठी हैं। दूसरे वे कवि हैं जो कलंकारों के मौह से जकड़ रहते हैं  
उन में हरिऔध, नाथुराम संकर शर्मा, सनेह, रामचरित उपाध्याय आदि हैं। क्योंकि  
उनका विश्वास है कि

स्तुति से, गुण से, रस से कलंकृता भी तथा जलंकृति  
कविता ही या कविता दोनों सब को लुनाती हैं।<sup>१</sup>

काव्य में कलंकारों का प्रयोग कलात्मक ढंग से श्रीधर पाठक, मैथिलशरिराण गुप्त,  
हरिऔध रामनरेश त्रिपाठी, तथा पन्त ने किया है। श्रीधर पाठक ने नयी उपमाएँ  
एवं सन्देह कलंकारों द्वारा विवेच्य काल के काव्य में कलात्मकता लाने का प्रयास  
किया है। प्रकृति की लजीवता पर वैयक्तिक अनुभूतियों से युक्त प्रकृति का सुन्दर एवं  
मनमोहक चित्र खींचा है। अनुप्रास की सुन्दर छटा श्रीधर पाठक के काव्य में देखने को  
योग्य है :

फल फल फलटति मैस कृमिक छवि छिन छिन वारति ।

विमल अम्बुसर मुकुरन महं मुखविम्ब निहारति॥<sup>२</sup>

विवेच्य काल के कवि हरिऔध जी की कला भी चौंसे चौपदे के पद्यों में देखने योग्य है-  
उस में ईश्वर को बड़ा तिलाड़ी बताया है क्योंकि वह तारारजों की जगणित चमकदार  
गीलियाँ छेकर चांदनीके बिछौने पर सेलता रहता है। उस में चांदनी शब्द में सुन्दर  
श्लेष है :

है चमकदार गीलियाँ तारे ।

जौं तिली चांदनी बिछौना है॥

उस बहुत ही बड़े तिलाड़ी के ।

हाथ का चन्डमा तिलौना है॥<sup>३</sup>

१- रामचरित उपाध्याय - कवि और कविता - पृ० ८३ ।

२- पं० श्रीधर पाठक- काश्मीर पुष्पमा - पृ० १३ ।

३- महाकवि हरिऔध - चौंसे चौपदे, पृ० ६५ ।

रामचरित उपाध्याय तानुप्रासिक यमक के शिल्प द्वारा सुक्ति काव्य की रचना करने में बहुत सकल रहे हैं :

सुविष से विष से यदि है मिली,  
रसवती सरसीय सरस्वती ।  
मन ! तदा तुम को अमरत्वदा,  
नभ- पुत्रा बहुधा पर ही मिला।<sup>१</sup>

कवियों ने नयी उपमाओं का भी सुन्दर प्रयोग किया है :

सरिता के चिकने उपलों की मेरी इच्छा है रंगीन।<sup>२</sup>

< < < < < < < < < < < <  
हन्धियाँ दासी सदृश अपनी जगह पर स्तब्ध हैं  
मिल रहा गहूपति सदृश यह प्राण प्राणाधार से।<sup>३</sup>

श्री रूपनारायण पाण्डेय ने भी की हृदयेश्वरी कविता में उपमा के कुछ नमूने दक्षिणः

हाँ गौ कहीं जब हो स - जीव- बल्लभ- हीन अमन्द,  
तो ठीक वैसा हो सके सुन्दर शरद का वन्द।<sup>४</sup>  
वाकाश में सन्धिर रहे झिझली आर हर वान,  
तो प्राप्त हो उसकी रसीली उस छड़ी की शान  
फूले फले चिर दिन रहे रस- राग रंग अनन्त,  
तो उस प्रकुल्लित आ की पावे बहारें वसन्त।<sup>४</sup>

राष्ट्र कवि विशुल ने भी परिंतेरिया का श्रेष्ठ प्रयोग किया है:

१- रामचरित उपाध्याय - विवि- विडम्बना, पृ० ६ ।

२- पन्त - सरस्वती - जुलाई १९१२ ।

३- प्रताप - कानन कुसुम - पृ० ७ ।

४- सरस्वती : भाग १४, खण्ड १ : फरवरी १९१३ ।

लज्जा रही लाजवन्ती मैं, रही सुरता जन्मी मैं,  
 लौगाँ को लड़वाना भाकी सिर्फ रहा है धन्वी मैं।  
 पानी है सर कुप गरित मैं, नमक रहा दुकानों मैं,  
 नाम चनों मैं, ज्ञान एक है भाकी बेईमानों मैं।  
 ऊँचे रहे ताल तरु कैवल, भाव रहा बाजारों मैं,  
 ब्रण रह गया नाव ही मैं बस बल भू मैं या बालों मैं।।<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन स्वच्छन्दतावादी कवियों (जीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, सनेही, हनारामण पाण्डेय, प्रताप, तथा पन्त) ने काव्य में अलंकारों को पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये प्रयोग नहीं किया बल्कि अलंकार स्वाभाविक रूप से उनके काव्य में जाये हैं जिनसे उनकी अभिव्यक्ति में सुन्दरता, भावानुभूति की उत्कृष्टता, और कथा-वस्तु की स्पष्टता मिली है। विवेच्य कालीन काव्य का एक वर्ग रुढ़िवादी भी रहा है, जो अलंकारों के मोह से जकड़ा रहा हूँ। कारण उस वर्ग का काव्य कला की दृष्टि से तो जरूर मान्य है परन्तु उस कला में कहीं भी हर्ष नवीनता नहीं दिखाई देता है। नवीनता की प्रवृत्ति जिस वर्ग के कवियों में थी वही वर्ग स्वच्छन्दतावादी कवियों का वर्ग कहलाया।

### निष्कर्ष:- -----

विवेच्यकालीन काव्य पर युग की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दी काव्य अपने युग से इतना अधिक प्रभावित कभी नहीं रहा। सुधारवादी आन्दोलनों का इस युग में आरंभिक काव्य पर विशेष प्रभाव रहा है, बाद का काव्य युग की राजनीतियाँ परिस्थितियाँ और राष्ट्रीय आन्दोलन से विशेष रूप से प्रभावित रहा है। इस युग के कवि देश की गरीबी, विषमता और पतन से काफी चिन्तित रहे हैं। देश के निर्मम शोषण और विषमता के प्रति इस युग में काव्य में आक्रोश की ध्वनि मिलती है। नवीन चेतना की देशव्यापी लहर भी इस युग में काव्य में गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। इस युग में कवियों ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया है और राष्ट्रीयता की संकीर्णता से निकालकर विस्तृत भावभूमि प्रदान की है। इस युग के काव्य में राष्ट्रीय दृष्टि का सही दिशा में विकास हुआ है।

काव्य की भावभूमि और काव्य के परिवर्तन से शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। काव्य की भाषा और शैली में क्रान्तिमयी परिवर्तन आये। परम्परागत भाषा-शैली के स्थान पर एकदम नयी भाषा-शैली अस्तित्व में आई। पुराने छन्द और अलंकारों का परिमार्जन और परिष्कार हुआ। कुछ नवीन अलंकारों और छन्दों का प्रादुर्भाव हुआ। भाव और शिल्प दोनों की दृष्टि से इस युग के काव्य ने नवीन परम्पराओं का निर्माण किया है।

### **तीसरा अध्याय** -----

## विवेच्ययुगीन कवियों की काव्य-दृष्टि

### पूर्व पीठिका

जैजी के प्रसिद्ध कवि टेनीसन का कथन है कि "प्राचीनता का पतन और नवीनता का उत्थान ही परिवर्तन है।" उस कथन में संसार के मूल और विकास का कारण दिया है। काव्य जीवन का चित्र होता है। जीवन के स्वरूप और आवर्त प्रत्येक युग की परिस्थितियों के साथ बदलते हैं और साहित्य पर भी उनका प्रभाव पड़ता है। हिन्दी साहित्य के स्वरूप और आवर्त भी बदलते गए हैं। हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग विविध प्रयोगों का युग है। उस युग की अनेक-रूपात्मक परिस्थितियाँ और जत्यात्मकता का प्रभाव साहित्यिक दैतना एवं कला दोनों पर पड़ा है। बीसवीं शताब्दी का कवि ग्रहण के प्रति उदार और परिवर्तन में विशेष रुचि रखा है। काव्य रूपों की यही अनेकरूपता उन के स्वतन्त्र व्यञ्जन की प्रेरणा को जन्म देती है।

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य कालीन कवियों की काव्य संबंधी धारणाओं पर विचार करने का अविरल नवीन स्थापनाओं का भूतार्थक भी किया गया है। रीति काल की धारणा - परम्परा के उपरान्त भारतेन्दु काल में काव्य-शास्त्र की खींची हुई रेतारें उरु में इस शंका को जन्म देती हैं कि इस युग के कवि काव्य भीमांसा की ओर सक्रिय नहीं रहे किन्तु विचार-विश्लेषण के बाद यह धारणा निर्मूल है। भारतेन्दुकाल के विचार काव्य-रचनाओं की भूमिका और नव कृतियों में स्फुट रूप से व्याप्त है। भारतेन्दु युगीन कवियों की काव्य - धारणा --

1- A Tennyson - King Arther, P. 6 Third Edition 1925

"The Old Order Changeth Yielding Place to new."



पच्चीस वर्षों में सीमित थी । उस कारण हम इस थोड़े से समय में काव्य - शास्त्र के व्यापक विवेचन की जाया नहीं कर सकते हैं। फिर भी इस काल के कवियों की काव्य सम्पत्ती दृष्टि कुछ महत्वपूर्ण मानी जा सकती है ।

द्विवेदी युग के कवियों ने अपने अधिकतर विचारों को संस्कृत काव्य - शास्त्र के आधार पर प्रस्तुत किया है किन्तु फिर भी कहीं - कहीं उन के विचारों पर बंगाली, उर्दू, बंगाल, के काव्य शास्त्र के नियमों एवं विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। इन भाषाओं की काव्य शास्त्रीय सम्पदा से लाभान्वित होने वाले कवियों में वाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी महाकवि हरिवंश तथा मैथिलीशरण गुप्त हैं। द्विवेदी जी तथा हरिवंश जी ने बंगाली और उर्दू के प्रभाव वश भाषा में बोल चाल के शब्दों और मुहावरों के प्रयोग पर विशेष धन दिया है। मैथिलीशरण गुप्त ने बंगाल की अभिजातार हृन्द प्रकृति के महत्त्व की स्वीकार किया है । महाकवि हरिवंश ने उर्दू हृन्दी की लय के आधार पर हृन्द रचना की आवश्यकता का निर्देश किया है। लॉचन प्रताप पाण्डेय ने बंगाली के छानेट के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। श्रीधर पाठक पर बंगाली काव्य का बहुत प्रभाव है। उस युग के कवियों में पाठक जी ने सब से अधिक संस्कृत काव्य - शास्त्र की अवहेलना की है । उस के स्थान पर उन्होंने बंगाली काव्य की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा की मूल भावना को हिन्दी में स्थापित करने का प्रयत्न किया है। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य पर लोक - साहित्य का बहुत प्रभाव है। उन के काव्य अधिक पर वाचनिक जनवादी विचारों का बहुत प्रभाव है कप्तारायण पाण्डेय बंगाल साहित्य की उपलब्धियों से बहुत प्रभावित रहे हैं। पाठक जी और त्रिपाठी जी ने बंगाली और बंगाल साहित्य की धुनानुसंग प्रकृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। बंगाली और बंगाल के स्वस्थ और धुनानुसंग प्रभावों की स्वीकार करने वाले ये स्वच्छन्दतावादी कवि, अधिक वाच्य- विश्वास हैं ये भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए मयनीत दिखाई नहीं देते हैं। इसके विपरीत द्विवेदी- स्कूल के कवि पार्श्वार्थ संस्कृति से मयग्रस्त दिखाई देते हैं। हिन्दी काव्य में ये दोनों दृष्टिकोण समानान्तर चलते--

रहे हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि पुराने सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के साथ नये मूल्यों का उद्घाटन और उनकी स्थापना करना चाहते हैं। इसके लिए वे पश्चिम के युगानुरूप मूल्यों का स्वागत करते हैं। हिंदूवैदी स्कूल के कवि भारतीय संस्कृति का उद्धार करना चाहते हैं इस लिए अतीत की शरण दिखाई देते हैं। वे संस्कृत और उसके काव्य शास्त्र को वादर्थ और नवीन रूप देना चाहते हैं। सन् १९०० ई० के इस युग को विनारों और काव्य की दृष्टि से तीन प्रमुख मार्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे विवेक काळ की हिंदूवैदी युग कहा जाता है। लेकिन अपनी काव्यगत प्रवृत्तियों और काव्य सिद्धान्तों की दृष्टि से इस युग के कवियों का एक शक्तिशाली वर्ग हिंदूवैदी जो एवं उनके सहयोगी कवियों से सम्मत नहीं था हिंदूवैदी मण्डल के कवियों के समानान्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य की धारा प्रवाहित हो रही थी। काव्य की दृष्टि से यह बहुत शक्तिशाली धारा थी। उसी हिन्दी के भावी काव्य के लिए पथ- प्रशस्त किया है। अधिकांश जालौषकों ने जब तक हिंदूवैदी - मण्डल के कवियों के काव्य और स्वच्छन्दतावादी काव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं किया है। इसे संपूर्ण हिंदूवैदी युग के काव्य की वैचारिक भाव-भूति और उसके कलात्मक दृष्टिकोण को उसी समझने में कठिनाई उत्पन्न होती जा रही है। एक ही युग में साथ-साथ चलने वाली इन काव्य धाराओं में काव्य और विनारों की दृष्टि से बहुत भेद है। हिंदूवैदी - मण्डल के कवि नैतिकतावादी हैं। पश्चिम की संस्कृति से प्रभावित होकर वे भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए अतीत का आश्रय लेते हैं एक हिन्दु पर पहुँचकर उनका दृष्टिकोण पुनरुत्थावादी हो जाता है। रीति- काळ की प्रतिक्रिया और नार्थ समाज के गहरे प्रभाव के कारण इन कवियों में पवित्रतावादी दृष्टि का भी समावेश हो गया है।

स्वच्छन्दतावादी कवि अधिक आत्मविश्वासी हैं। वे पश्चिम से प्रभावित नहीं हैं उन्हें भारतीय संस्कृति और सत्यता की परिपक्वता पर भरोसा है।-

इस लिए वे साहित्य में पश्चिम के अच्छे प्रभावों को ग्रहण करने के विरोधी नहीं हैं। वे कवि पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान और जनतांत्रिक विचारों से भी प्रभावित रहे हैं। वे अपने विचारों और चित्रण में हिन्दू-बौद्ध-मण्डल के कवियों की अपेक्षा वाधुनिक और उदार हैं। उन्होंने प्राचीन की अपेक्षा नहीं की है, लेकिन वर्तमान को अपने चित्रण का मूल आधार बनाया है। हमके काव्य का उद्देश्य कर्वाव है। भारत के प्राकृतिक गौरव के चित्रण के द्वारा ये कवि इस देश की प्राकृतिक सम्पदा की और लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे। स्वच्छन्दतावादी काव्य के मूल स्वर में वाधुनिक और कर्वाव है। इन कवियों ने पश्चिम के प्रभाव को स्वीकार किया है। हिन्दू-बौद्ध मण्डल के कवियों की भांति पश्चिमी प्रभावों से अपने के लिए अतीत की शरण में नहीं गये हैं।

काव्य में हायावादी दृष्टि का विकास विवेच्य काल के अन्तिम दो वर्षों में होना आरम्भ हुआ। इस युग में इस का रूप स्पष्ट नहीं हो सका। प्रभाव, पन्त और निराला की केवल कुछ आरम्भिक रचनाओं में कुछ थोड़े से विचार मिलते हैं। उन्हीं के आधार पर इस नयी उमरती हुई काव्य धारा के विषय में कुछ मूल्यांकन किया गया है। हायावाद हिन्दू-बौद्ध युगिन नैतिकता एवं पवित्रतावादी दृष्टिकोण, की प्रतिक्रिया मात्र नहीं था। यह तीव्रता से परिवर्तित होते हुए वाधुनिक युग की उत्पन्न था। हायावादी कवि कलागत और वैचारिक स्वाधीनता चाहते थे काव्य की स्वाधीनता ही इन कवियों को मिल गई लेकिन समाज के नैतिक बन्धनों से छुटकारा नहीं मिला। हायावादी काव्य में रहस्य और जटिलता के समावेश का यह एक बड़ा कारण है। हायावादी काव्य का गम्भीरता से विश्लेषण करने पर दो व्यक्तित्व मिलते हैं एक वह है जो स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए बैचन है वह सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति चाहता है दूसरा पय प्रस्ता और वसहायता का अनुभव करने वाला व्यक्तित्व है। यह प्रथम महायुद्ध से सम्बन्ध

यौरेय के मनुष्य की मनस्थिति का चित्रण है। छायावादी काव्य पर यौरेय का कलात्मक ही नहीं वैचारिक प्रभाव भी पड़ा है। विवेच्य काल की उपयुक्त तीनों चारार्थों को प्रस्तुत प्रसंग में हमने तीन वर्गों में विभाजित किया है। यह विभाजन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से किया है। उस में कालक्रम नहीं, प्रवृत्ति और वैचारिक दृष्टि प्रमुख है।

## भारतेन्दु युग के कवि और उनकी कविता

आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। यह सत्य है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने रीति-कालीन काव्य में उपलब्ध होने वाली शृंगारिकता और कुछ कम-प्रणाली का पूर्णतः त्याग नहीं किया, गया तथापि इस में सन्देह नहीं कि इस युग के साहित्य में समाज-सुधार, राष्ट्रीय भावना, हास्य-व्यंग्य, आदि से सम्बद्ध कतिपय नवीन विषयों का विवेक सम्पन्न अध्ययन भी उपस्थित किया गया है। साहित्य और लोक व्यवहार का यह सम्बन्ध इसी रूप में माना है।<sup>१</sup>

भारतेन्दु युगीन कवियों की सबसे बड़ी विशेषता पुरातनता से नूतनता की ओर प्रवेश है। उन्होंने पुराने दृष्टिकोण को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। इस युग के कवियों में बौद्धिकता का भी समावेश रहा है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने परम्पराओं के ढेर के भीतर रहकर भी उदार सुधारकों की भांति देश काल के अनुरूप भावों को अपने काव्य में महत्व दिया है। भावों की अनेकरूपता, विषय-वस्तु की विविधता का कार्य इस युग के कवियों ने सुब किया है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने संस्कृत आचार्यों द्वारा काव्य के सर्व मान्य तत्त्व जैसे रस, कर्कार, रीति- (वक्रोक्ति) तथा ध्वनि आदि पर कुछ नहीं दिया है। रस को भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी महत्व दिया है। रीति कालीन कवियों ने रस को काव्यात्मा का गौरव दिया था। देव, रसलीन, पतिराम, क्रीप्रवीन, मनानन्द, ठाकुर गोपा, आदि कवियों ने भी रस को काव्यात्मा माना है।<sup>२</sup> भारतेन्दु युगीन कवियों ने--

१- डा० सुरेश चन्द्र गुप्त - आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त पृ० १७।

हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली- ६।

२- डा० मोन्द - रीति काल की युमिका; पृ० १७० !

रीति कालीन कवियों की इस मान्यता को स्वीकार किया है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने रस-संस्था निर्धारण और रसराज के प्रति विशेष रुचि दिखाई है। भारतेन्दु ने स्वयं रस पिशा में विशेष रुचि दिखाई है। भारतेन्दु ने मजि, रस और वात्सल्य - रस के अधिक मान्यता दी है। मजि-रस और वात्सल्य रस को काव्य में मान्यता देकर उन्होंने काव्य में एक उदार एवं विस्तृत दृष्टिकोण की स्थापना की है। बदलती हुई सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अनुरूप भारतेन्दु युगीन कवियों ने बहुत से काव्य-शास्त्रीय धर्मनों को नहीं अपनाया है। उन्होंने अपने काव्य-सिद्धान्तों में लोक-हित की वास्तवीर से चर्चा की है। लोक हित की सिद्धि भी उस युग की सबसे बड़ी देन है। भारतेन्दु युगीन कवि अपनी उसी मान्यता एवं मौलिक धारणा के कारण रीति-कालीन श्रृंगारिक भावना के प्रभाव को शिथिल कर सके हैं। यही उन कवियों की नवीनता है। भारतेन्दु युगीन कवि अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा वार्षिक परिस्थितियों में इतना उलझे रहे कि अपने काव्यादर्शों का प्रतिपादन एक निश्चित सीमा के भीतर ही कर सके किन्तु प्रभाव की दृष्टि से वे सीमित नहीं रहे। उन्होंने ऋग्वेदी युग के कवियों के लिए निश्चय ही एक प्रयत्न का कार्य किया है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपने आप को रीतिकाल की अवस्था मजि काल से जोड़ने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार उस युग के कवियों ने काव्य के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न किया है।

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने अपनी काव्य-रचनाओं में तो मजि की अवतारणा की है किन्तु गद्य में वापुनिक जीवन की क्यु विषमताओं का चित्रण किया है। अतएव भारतेन्दु-काल में मजि और वापुनिक धीय का एक संगम दिखाई पड़ता है जिसे संक्रान्ति की संज्ञा भी दी जा सकती है। ऐसे संगम अवस्था संक्रान्ति के बावजूद उस युग के लेखकों को समय का ध्यान बराबर रहा है। कवियों--

को बहुत से नियमों में बाध न करके उन्हें अपनी उच्चा के अनुसार कविता करने दो परन्तु उनकी रुचि समयोपयोगी आवश्यकताओं की ओर झुका कर अपने साहित्य मण्डार को उपयोगी विषयों से भरने का उद्योग करी।<sup>१</sup> भारतेन्दुगीन लेखकों ने एक साथ ही भाषाओं का निर्वहण किया है। उनकी काव्य की भाषा मुख्यतः क्रम है किन्तु गीतों तथा अन्य गम रचनाओं में उन्होंने सड़ी बोली का प्रयोग किया है।

भारतेन्दु युग के कवि एक प्रकार से दुविधा में पितार्ह देते हैं। वे (कवि) भाषा और वास्तुनिष्ठा, सड़ी बोली और क्रम भाषा के समन्वय की दुविधा के कारण काव्य के समन्वय में अपना कोई नया मार्ग निश्चित नहीं कर पाये हैं। लेकिन उन्होंने पारसी (विशेष्य कालीन) कवियों के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया है उन्होंने रीतिकालीन काव्य की वैचारिक भूमि के विरुद्ध विशेष्य कालीन कवियों की विमोह करने की प्रेरणा भी दी है। इन कवियों के काव्य को सामाजिक और उद्देश्य युक्त बनाने का सरासरीय प्रयास किया है। उन्होंने मित्र भाषा और स्वदेश की उन्नति<sup>२</sup> पर जोर दिया है। भारतेन्दु जी ने भारतीयों से वास्तविकता छोड़ने का आग्रह किया है और वैश्वविद्यालय द्वारा उन्हें कोटित होने की प्रेरणा दी है। डा० रामविद्यास झा का कथन है कि - भारतेन्दु की पिताल बताती है कि वैश्व-मज्जा लोगों का संगठन किस तरह करना चाहिए। समाज संस्कार और देश-प्रेम के उद्देश्य<sup>३</sup> लेकर जब साहित्यकार एक धर्म तभी वे कुछ कर सकेंगे वरना रुढ़िवादियों से एका करके साहित्य का रूप पीछे ठेका जा सकता है, बागे नहीं बढ़ सकता।<sup>४</sup> --

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, छठा भाग, सन् १९०२, पृ० १८० ।

२- मित्र भाषा उन्नति वर्ण, सब उन्नति की मूल।

बिन मित्र भाषा ज्ञान के, मिटत न छिय को मूल॥

(भारतेन्दु द्वारा लिखी छन्दार, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित - अन्ध ५।

३- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ० १८० ।

राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा का संगठित रूप से प्रचार और संयोग इस युग में आरम्भ हुआ। भारतेन्दु कुमारी कवियों ने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का नारा दिया। आगे चल कर यह नारा संकीर्ण अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। पहले यह हिन्दी, उर्दू के बीच विवाद का कारण बना फिर यह राष्ट्रनीति में भी जा गया और साम्प्रदायिकता के विषय में जाकर हुआ गया। भारतेन्दु-कुमारी कवियों का उद्देश्य शुद्ध रूप से नव विकसित हिन्दी का उत्थान करना था। किसी सम्प्रदाय या भाषा की हानि पहुँचाना नहीं। लेकिन कभी-कभी अपने युग के उसी नारे और प्रवृत्तियों अभिष्य में बहुत गलत दिशा ले लेते हैं जो स्वायत्त तथा साहित्य दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं।



## हिंदूवेदी मण्डल के कवि : नैतिकतावादी दृष्टि

### श्री हरिऔध :

विविध काल के प्रमुख कवि हरिऔध जी ने अपने काव्य-सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अपनी विशेष मौलिकता का परिचय दिया है। हरिऔध जी केवल कवि ही नहीं बल्कि एक बालोचक भी थे। उन्होंने काव्य के विविध - रंगों का विशद विवेक किया है। एक ओर रसमल्ल की रचना द्वारा शास्त्र विज्ञान की रीति-रिवाज परम्परा का मौलिक रीति से विस्तार किया है और दूसरी ओर विवेच्य काल के नवीन काव्यादर्शों के अनुसार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनकी विचार-धारा से अवगत होने के लिए उनकी कृतियाँ-प्रिय-प्रवास, 'रसमल्ल', चौथे चौपदे, 'बुनते चौपदे' तथा कुछ पत्रिकाओं जैसे एरस्वती, हन्दु, माधुरी तथा साहित्य सम्देश के संस्मरण देखने योग्य हैं।<sup>१</sup>

### काव्य स्वरूप

हरिऔध जी ने अपने काव्य में भाव-तत्त्व तथा बुद्धि तत्त्व दोनों को प्रधानता दी है। उनका विचार था कि कला में केवल भावुकता ही नहीं होती बल्कि उसमें मस्तिष्क का योग भी रहता है। हरिऔध जी वस्तुतः समन्वय-वादी थे। शीघ्र पाठक और हिंदूवेदी जी की भाँति उन्होंने काव्य में भाव-तत्त्व पर विशेष बल दिया है। उनका विचार है कि भावुकता कविता की रीढ़ है। << < लक्ष्मी विद्यालये है कि भावोद्भूत होने पर ही कविता स्वतः परावर से स्वभावतया फूट निकलता है, वास्तविक कविता के गुण उसी में होते हैं।<sup>२</sup> भाव-पदा के साथ-साथ विचार पदा पर बल देते हुए हरिऔध जी कहते हैं<sup>३</sup> कला में हृदय की भावुकता है

१- डा० सुरेशचन्द्र गुप्त- आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृ० १३७ (विदर्भ)

२- रसमल्ल - मुद्रिका, पृ० १२४ ।

नहीं होती उसमें नस्तिष्क का कार्य- कलाप भी होता है। दोनों के साहचर्य से ही कला पूर्णता की प्राप्ति होती है।<sup>१</sup> हरिवंश जी की काव्य मान्यताओं से बहुत अधिक प्रभावित थे। इस कारण उनके विचारों में इस प्रकार की फाँसी मिलना जरूरी है। उन्होंने काव्य में लोक चित्त की भावना की गेष्ठ बताया और कहा है कि 'कवि की दृष्टि प्रसर होनी चाहिए। उसकी सम्राज के भीतर की गूढ़ बातों की द्विपे से द्विपे रहस्य की उद्घाटन करना चाहिए और उसके गुण दोष की समुचित विवेचना करके दोष के निराकरण और गुण के संमर्जन और संरक्षण के लिए बहुरिकर होना चाहिए।'<sup>२</sup> हरिवंश जी ने मानव समाज की सुख से सुख भावनाओं को व्यक्त करना ही कवि का एक मात्र लक्ष्य नहीं बताया बल्कि - जिस में मनुष्य जीवन की जीवन्त सारा नहीं, प्रकृति के पुष्प-पाद की पीठ नहीं, जिसमें चारु चरित विभिन्न महान् मानवता का मधुर राग नहीं, उमीषता का सुन्दर स्वांग नहीं, वह कविता सलिल - रहित सरिता है। जिस में सुन्दरता विकसित नहीं, प्रतिभा प्रतिफलित नहीं वह कवि रचना कुकवि वचनावली है।<sup>३</sup> कवि ने केवल यह मान्यता बनाई कि नहीं बल्कि अपनी महाकाव्य प्रिय - प्रवास में प्रायः इसका प्रतिफलन भी किया है। प्रिय-प्रवास की दैतने से पता लग जाता है कि उसमें सुन्दर प्रकृति - श्रवण, उमीष मानवता और दैत प्रेम की मधुर भावनाओं से जोत-प्रोत है। उस काव्य कृति ने हरिवंश जी की समस्त <sup>काव्य</sup> मान्यताओं को पूर्ण किया है।

१- रसकल - भूमिका, पृ० १२४ ।

२- रस साहित्य और समीक्षाएँ - पृ० ५२ ।

३- सन्दर्भ - सर्वस्व - पृ० १४५ ।

हरिवंश जी ने बिद्वेदी जी की मांगि रस को भी ज़ख़्त दी है। परन्तु रस को उन्होंने काव्य में साधन के रूप में लिया है। उनकी मान्यता है कि तनुमय करने में कवि- हृदय बितवा किसी रस से अभिभूत होता है उतना ही वह दूसरे के हृदय को उस रस से काधित करता है - और यही कवि कर्म है।<sup>१</sup> बित काव्य कृति में सुन्दर, उज्ज्वल भाव होंगे उसी में कवि को साधारणीकरण की सिद्धि मिलती है। हरिवंश जी ने केवल रस पूर्ण व्यक्तित्व की ही काव्य का उदाण नहीं माना बल्कि उनका कहना था कि-

बहुलता सुन्दरता, उदारता ।  
समुच्चता भावुकता रवाछता ।  
सुधी उसी को कहते सुकाव्य है,  
विराजती ही जिए में सजीवता ॥<sup>२</sup>

उन उदाणों के अनुरूप अपनी अनुसृतियों के आधार पर हरिवंश जी ने काव्य का मान उज्ज्वल किया ।

### काव्य की आत्मा :

हरिवंश जी ने रस के अतिरिक्त अंकारों की खोज करने की बात भी कही है परन्तु वहीं तक कहाँ तक कि वे रस और भाव के वाक्ता होकर रहें । हरिवंश जी अंकारों की काव्य में साधन- रूप में स्वीकार करते थे । उन्होंने काव्य में अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना की महत्त्व दिया है। प्रतिभा सम्पन्न कवि- काव्य में व्यञ्जना का वाक्य लेते हैं और व्यञ्जना के कारण काव्य रचना उच्च कीटि-

१- बौलबाळ, पृ० ४८ ।

२- शरस्वती, पृ० ८९ फरवरी, सन् १९२९ ई० ।

की हो सकती है। हरिऔध जी की यह मान्यता भी प्राचीन मान्यताओं से कुछ है। विवेक-काल (विदेही- युग) विभिन्न प्रभाग काव्य की रचना में निभा जाता है परन्तु उस काल के प्रमुख कवि हरिऔध जी की यह मान्यता अपने ही की नयी मान्यता थी। इस मान्यता ने नयी काव्य चेतना की जन्म दिया। व्यंजना के साथ जो ध्वनि शब्द योजना के द्वारा काव्य में आता है, हरिऔध जी ने उसका महत्व भी स्वीकार किया है। वे उचित शब्दों के चयन को काव्य का जीवन मानते थे। इसी कारण उसकी मान्यता है कि - उपर्युक्त और सुन्दर शब्द कविता के पायों की व्यंजना के लिए बहुत आवश्यक होते हैं। एक उपर्युक्त शब्द कविता को सजीव कर देता है, और अनुपयुक्त शब्द मयंक का कलंक बन जाता है।<sup>१</sup> हरिऔध जी ने रीति को रस के सहायक के रूप में स्वीकार किया है। हरिऔध जी काव्य में प्रसाद गुण और भाषा शिल्प की विशेष महत्व देते हैं। उनका विचार है कि - जो रस प्रसाद- गुणमयी कविता में होता है, वन्ध में नहीं और प्रसाद गुण के लिए कौमल कान्त पदावली आवश्यक है।<sup>२</sup> इस मान्यता में कविने रस और रीति का सुन्दर समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार शब्द या भाषा कंकाल मात्र है क्यवा उनकी शरीर वह होबिद, भाव और विचार ही उनके (कविताओं के) प्राण हैं।<sup>३</sup> अतः इसके अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि हरिऔध जी ने काव्य में रस को सर्व माना है। ककार, ध्वनि और रीति को काव्य के कर्णों के रूप में स्वीकार किया है। हरिऔध जी ने रस विवेक की ओर भी ध्यान दिया है। रसकलस में वास्तव्य रस तथा कृत्तर रस का विशद विवेकन करके उन्होंने उस युग में उपलब्ध होने वाली विन्तन की व्यापकता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने रस के सीमित दृष्टिकोण को - एक विस्तृत दृष्टिकोण दिया है।

१- वैदेही कनवास, वज्र-व्य, पृ० ६ ।

२- रस साहित्य और समीक्षा, पृ० ५५-५६ ।

३- इन्दु, पृ० ३३ जुलाई १९१५ ई० ।

## काव्य प्रयोजन

हरिवंश जी ने काव्य में जन-हित की भावना पर विशेष बल दिया है। वह लोकहित से ब्रह्म काव्य की रचना को निरर्थक मानते हैं वही लिए उन्होंने कहा है कि - हमारे चौपदे कुछ कहें, मगर हित-फल के कहें हैं।<sup>१</sup> उस मान्यता के मूल में हरिवंश जी ने जीवन के मार्मिक तत्त्वों का समावेश किया है। काव्य से आनन्द की प्राप्ति न होकर देश-व्याप्ति और समाज का कल्याण होना अनिवार्य है। काव्य को मानव जीवन के आदर्श मूल का निरूपण करना चाहिए। लोक-मंगल की भावनाओं से औत्त-प्रौत्त साहित्य के लिए हरिवंश जी का निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

देती है भर भाव में सरसता कान्तीजि में मुग्धता,

लोती है तन-तम लोक उर का बालीक-माला दिला।

कानों में जिस में किमुन्य मन में है ठाल बाती सुधा।

हो दिव्या सविता - समान कविता देती महानन्द है।<sup>२</sup>

हरिवंश जी का ये विश्वास रहा है कि जिस काव्य में लोकमंगल का स्वर होगा उस काव्य रचना के बाद कवि की यश स्वयं ही प्राप्त होगा।

## काव्य-विषयः

हरिवंश जी ने काव्य के विषयों की ओर भी गंभीरता से सोचा है। उन्होंने समसामयिक युग की धारा के अनुरूप अपने काव्य-विषयों का चयन किया है। उनका समस्त काव्य जातीय गौरव और लोकिक प्रेम के प्रसंगों से परिपूर्ण है। उनकी यह मान्यता रही है कि - न वह साहित्य साहित्य है, न वह कल्पना कल्पना, जिसमें जातीय भावों का उद्गार न हो।<sup>३</sup> हरिवंश जी ने अपनी--

१- हरिवंश - चुनते चौपदे, दो दो धातें, पृ० ७ ।

२- वही - पारिजात, पृ० ५११ ।

३- वही - सन्दर्भ - सर्वस्व, पृ० १४५ ।

इसी मान्यता को कवि- कर्तव्य शीर्षक छैल में बहुत समझते हुए लिखा है कि-  
 कवि की प्रौढ़ छैलनी का प्रौढ़त्व और कवि की मार्मिकता का महत्व इसी में  
 है कि वह सुशुभ्र जाति को ज्ञाने, उसके रोम- रोम में आधुनिक प्रवाह प्रवाहित  
 करे, और उसको उस महान मन्त्र से दीक्षित करे, जो उसके सगौरव संसार में  
 अधिष्ठित रहने का साधन हो।<sup>१</sup> हरिवोध जी की इस मान्यता पर उनके गुरु आचार्य  
 श्रुतिवेदी तथा श्रुतिवेदी पण्डित के बाहर के स्वच्छन्दतावादी कवि श्रीपर पाठक  
 की विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। हरिवोध जी ने जातीयता को  
 काव्य का अन्तिम उद्देश्य नहीं माना है। बल्कि मानवता की जास्था को ज्ञाने का  
 एक मात्र साधन काव्य को माना इस सम्बन्ध में उनका विचार यह था कि- जिस  
 रचना ज्यवा कविता कलाप में जितनी अधिक मात्रा से मानवता का प्रदर्शन होगा,  
 वह कविता ज्यवा रचना उतनी ही अधिक मात्रा में महत्व की अधिकारिणी होगी।  
 हरिवोध जी ने देश जाति और समाज के जीवन की सरस अभिव्यक्ति को काव्य  
 की निधि माना है इस लिए उनका यह विश्वास था कि अगर कवि कुंठार रस की  
 ओर अधिक आग्रह करते हैं तो उन काव्योपयोगी उद्देश्यों की सिद्धि में बाधा पड़ती  
 है। उन्होंने कहा है कि - सब से विशेष चर्च की बात यह है कि इन दिनों कुंठार  
 रस का प्रवाह एक प्रकार से बन्द हो गया है, और सब ओर वैशानुराग, जाति-प्रेम  
 समाज-सुधार इत्यादि की लाने सुनार्वे दे रही हैं।<sup>२</sup> हरिवोध जी युग-दृष्टा कवि  
 थे। यही कारण है कि उनके काव्य में हमें प्रत्येक भाव मानव हित के अनुकूल मिलता  
 है। उन्होंने समसामयिक युग की बढ़कनी को सही चुनने पर जोर देते हुए साहित्य-  
 सन्देश के सम्पादक को लिखा था कि- सामयिकता में अधिक आकर्षण होता है,  
 उसकी अनुगामिता प्रत्येक हृदयवान् छैलक को करनी पड़ती है। परन्तु सामयिकता--

१- सरस्वती, पृ० १०१ फरवरी १९२१ ।

२- सर्व- सर्वस्व - पृ० १८७ ।

३- माधुरी - फरवरी १९२६ पृ० १५० ।

में उन विचारों, भावों वादों का पुट अवश्य रहना चाहिए, जो देश, जाति और लोक हित मूलक हों। हरिवंश जी की यह मान्यता पर श्रीपर पाठक की स्वच्छन्द मान्यता का प्रभाव भी परिलक्षित है। हरिवंश जी ने रुद्रिबद्ध नैतिक विषयों और कौरे वादों की काव्य में व्यवहारा की है। उनके नायिका-भेद के विवेचन से यह रूप स्पष्ट है। नायिका-भेद का विवेचन कौंबी, उर्दू, फ़ैब, भाषाओं के साहित्य में भी मिलता है। हरिवंशजी ने उसे सर्वसामान्य प्रवृत्ति के रूप में एक व्यापक सन्दर्भ में लिया है। उनका मत है कि- नायिका भेद के ग्रन्थों में उच्च कौटि के पुरुषों के वर्णन के साथ जैसे कब से कब पुरुषों का निरूपण भी किया गया है, उसी प्रकार पुण्य पतिव्रता स्त्रियों के साथ गणिकाओं का निरूपण भी किया गया है, कारण उसका यह है कि तुलना का अवसर हाथ आने पर ही हमें मछे बुरे का ज्ञान होता है।<sup>१</sup> हरिवंश जी ने प्राचीन परम्परा के अनुरूप नायिका-भेद का विवेचन नहीं किया है वरन् उन्होंने अपनी लोकहित विचार धारा के आधार पर एक नयी दिशा का निरूपण किया है। उन्होंने पति-प्रेमिका, परिवार-प्रेमिका जाति-प्रेमिका, जन्म-भूमि प्रेमिका, लोक प्रेमिका, धर्म-प्रेमिका और मध्यमा नायिका के स्वरूप का मौलिक रूप में वर्गीकरण उपस्थित किया है।

काव्य - भाषा :

काव्य की भाषा के सम्बन्ध में हरिवंश जी बहुत ही सज्ज रहते हैं। उनकी धारणा है कि- जहाँ कविता में सुन्दर भाव होना चाहिए, वैसे ही उसकी भाषा भी लीची सादी, लचकदार और स्त्री होनी चाहिए जो सुनते ही —

१- साहित्य-सन्देश - फरवरी १९४९, पृ० २६६ ।

२-हरिवंश - रसकलस, प्रेमिका पृ० १३५ ।

जी में जाह कर है, वीर एक बात को छोड़ों के जी में ठीक-ठीक बँटाल दें।<sup>१</sup> हरिऔध जी ने अपनी इस धारण के अनुरूप संस्कृत भाषा के सात्त्विक शब्दों के साथ-साथ तत्सम शब्दों के प्रयोग पर भी बल दिया है। हरिऔध जी ने मरु वीर बोलचाल की उच्चारणी को काव्य में सहायक माना है इसी लिए उन्होंने कहा है कि- यथार्थ कविता यही है, जो अधिकतर सरल वीर बोधगम्य हो वीर ऐसी कविता कही जायेगी जब उस में बोलचाल का रंग होगा।<sup>२</sup> हरिऔध जी ने प्रसाद गुण को काव्य में अनिवार्य रूप में स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने अपने वायुनिक महाकाव्य प्रिय-प्रवास में अपनी इस मान्यता को किसी सीमा तक लौढ़ भी दिया है प्रिय-प्रवास में हमें क्लिष्ट भाषा भी देखने को मिल जाती है जैसे :

सद्वक्त्रा- सद्वक्त्रता - गुणयुता- सर्वत्र- सम्मानिता ।  
रोगी वृद्ध अनौपकार - निरता उच्छास्त्र चिन्तापरा ॥<sup>३</sup>

हरिऔध जी ने अपनी इस क्लिष्टता के बावजूद भी बोलचाल की पदावली को महत्व देते हुए कहा कि- मैं क्लिष्टता का प्रतिपादन नहीं, मैं कौमल- कान्त पदावली का अनुरक्त हूँ, प्रिय-प्रवास का रचना का वीर उद्देश्य है, मेरे इस काल में सन्यता है या नहीं < < < यह बोलचाल नामक ग्रन्थ बतलावेगा।<sup>४</sup> हरिऔध जी की इस मान्यता का प्रमाण हमें पार्श्ववर्त्य विद्वान् हरिद के विचारों में मिल जाता है उसका विचार था कि कौनसी की महान काव्य रचनाओं का पर्याप्त अंश--

१- वायुनिक कवि, भाग - ५, मुद्रिका, पृ० १३ ।

२- बोलचाल - पृ० २१६ ।

३- हरिऔध- प्रिय-प्रवास, पृ०

४- इस साहित्य वीर समीक्षाएँ, पृ० ६७ ।



बोलचाल की भाषा से समृद्ध है।<sup>१</sup> विवेच्य काल में यह मान्यता हमें बदरीनाथ मट्ट के यहाँ भी मिलती है - कविता की भाषा ऐसी सरल होनी चाहिए जो सब की समझ में आ सके। बोलचाल की भाषा से अधिक सरलता और किरण मिलेगी।<sup>२</sup> हरिवंश जी काव्य में कोमल कान्त पदावली के पक्ष में रहे उनकी यह मान्यता रही कि भावों को दीप्त करने के लिए भी उचित शब्द योजना का होना अनिवार्य है वही लिए उन्होंने कहा कि- सुन्दर भाव जब मधुर कान्त पदावली के साथ होता है तो मणिकर्षक-योग हो जाता है।<sup>३</sup>

### कलंकार :

हरिवंश जी ने कलंकारों को काव्य के विकास में सहायक माना है। रीतिशालीन कवियों की तरह कलंकारों को काव्य में प्रधानता नहीं दी है। उनका विचार था कि- स्वाभाव की स्वाभाविकता का अपहरण कलंकारों का उद्देश्य नहीं है, स्वाभाविक सौन्दर्य को सुविकसित करना ही उनका ध्येय है, अपवाद की बात दूसरी है। इन कलंकारों के प्रयोग में जो कवि जितना ही कुशल पाया गया, उसका कविता कोशल लोक में उतना ही समादुक्त हुआ।<sup>४</sup> तात्पर्य यह कि हरिवंश जी ने न तो कलंकारवादी थे और न कलंकार विरोधी। काव्य के स्वाभाविक सौन्दर्य की वृद्धि में कलंकार जहाँ तक सहायक हो सकते हैं, उस सीमा तक वे उनके उपयोग के पक्ष में थे। यह दृष्टि अविकसित रीति-शालीन कवियों से भिन्न है। इससे पता चलता है कि विवेच्य काल तक जाकर हिन्दी कविता रचना के कृत्रिम उपकरणों को छोड़--

<sup>१</sup>- A great deal of the greatest English Poetry is made up entirely of words which people use in very ordinary speech. \* (Nature of English Poetry, P.109)

२- सरस्वती, फरवरी, १९१२ पृ० १११ ।

३- बोलचाल, पृ० ४१ ।

४- माधुरी, पृ० ७३, अगस्त सन् १९२३ ई० ।

पर स्वाभाविक हीन्दुत्व की ओर उन्मुख हो रही थी ।

### हन्द :

हरिवंश जी ने हन्दों के प्रति अपने उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उनका विचार था कि- सकेन्द्र और प्रतिभावान् पुस्तक जिस हन्द को हाथ में लेता उसी में कमत्कार बिखला सकता है।<sup>१</sup> हरिवंश जी ने रसानुकूल हन्द विधान और रचनागत लयात्मकता पर विचार करते हुए लिखा है कि- रसानुकूल हन्द गति की अपेक्षित है। हन्द की गति का तदनुकूल रस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।<sup>२</sup> उन विचारों से यह बात स्पष्ट है कि हन्द केवल भावों का अनुवर्ती नहीं बल्कि भावों का पोषक भी है। उन्होंने अपनी महाकाव्य प्रिय-प्रवास में हन्दों की कोई कद नहीं रखी है। यह काव्य अतुकान्त वर्णिक हन्दों ने लिखा गया है गया है। इस प्रकार की हन्द रचना के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि - हन्द की गिनी हुई मात्रा ज्यवा गिने हुए वर्ण उसका (कवि का) हाथ-पांव बांध देते हैं। उसी (कवि की) क्या मजाल कि वह उसमें से कीड़भात्रा घटा या बढ़ा देवे ज्यवा एक गुरु के लघु के स्थान पर या एक गुरु के स्थान पर एक लघु को रह देवे।<sup>३</sup> इस में हरिवंश जी ने हन्द सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं को तोड़ने का प्रयत्न किया है। उनकी हन्द सम्बन्धी धारणा स्वच्छन्दतावादी कवि कीबर पाठक से भिन्न होती है। उन्होंने त्रिवेदी मण्डल के नैतिकतावादी और उत्तिकृतात्मकता के घेरे में रक्तक भी अपने कुल और समाज की चङ्कनों को सुनकर अपने काव्य में उचित स्थान दिया है।

१- हन्दु, पृ० ३७, जुलाई १९१५ ई० ।

२- मही, पृ० ३८ जुलाई सन् १९१५ ई० ।

३- हरिवंश- प्रिय- प्रवास, धूमिका, पृ० ३२ ।

### श्री मैथिलीशरण गुप्त

काव्य-स्वरूप :

विवेच्य कालीन काव्य मान्यताओं की एक स्पष्ट झलक गुप्त जी के काव्य-सिद्धान्तों में परिलक्षित होती है। गुप्त जी ने परम्परा से कटा होकर काव्य-स्वरूप के नियारण का कार्य नहीं किया है। गुप्त जी की काव्य कृतियाँ को देख कर यह कहा जा सकता है कि वे प्रकृत कवय की अभिव्यक्ति को कविता मानते हैं। साकेत की उर्मिला के ये सव्य उस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

मेरा रोदन मकल रहा है, कहता है कुछ गाऊँ ।  
उपर गान कहता है, रोना बाये तो मैं आऊँ॥<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन काव्य-प्रवृत्तियों के नियारण में गुप्त जी तथा हरिवीथ जी ने विशेष रूप से भाग लिया है यही कारण है कि इन कवियों की काव्य-मान्यताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। यद्यपि इनकी काव्य-मान्यताओं में नयापन बहुत कम है परन्तु फिर भी उनके सिद्धान्तों में एक नयी दिशा का संकेत मिलता है। इनकी रचनाओं की नियमबद्धता को देखकर, इन पर प्राचीनता, नीरसता, एवं नैतिकतावाद का आरोप भी लगाया जाता है परन्तु यहाँ हम गुप्त जी के उन काव्यादर्शों की ओर ध्यान दें जिस से यह सिद्ध हो जाता है कि ये कवि काव्य-मान्यताओं के प्रति कहीं न कहीं से कुछ उदार दृष्टिकोण भी रखते हैं। डा० सुरेश चन्द्र गुप्त ने वायुनिक कवियों के काव्य सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए विवेच्य कालीन कवियों ने दृष्टिगत उदारता और लचीलेपन का उल्लेख किया है। उनके शब्दों में इस युग के कवियों ने - काव्य-प्रयोजन काव्य-वर्ण्य और काव्य शिल्प के विवेचन-

१- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पृ० २३६ मकल एवं ।

में नयी प्रेरणा और सामग्री ली है, ——एक ओर काव्य-जात्ना, काव्य-हेतु, काव्य-भाषा, काव्यानुभाव और काव्यालीन के विवेचन में अपने पूर्ववर्ती कवियों के सिद्धान्तों को विकसित एवं समृद्ध किया है और दूसरी ओर काव्य-मैद, नायिका-मैद, समस्यापूर्ति और काव्य के अधिकारी का प्रथम बार उल्लेख कर हिन्दी कवियों को काव्य-चिन्तन की नवीन दिशा दी है। अपनी मान्यताओं की संस्कृत, कौशी, मराठी तथा उर्दू से समृद्ध किया, और युग की आवश्यकताओं के अनुसार यथास्थान मौलिक सिद्धान्तों को समीक्षा की है।<sup>१</sup> विवेक काल के कवियों की काव्य-सिद्धान्त सम्बन्धी इस उदारता ने हिन्दी की वाचनिक कविता के स्वरूप विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

गुप्त जी द्विवेदी युग की वैयक्ततावादी और वादक्षेपादी मान्यताओं से प्रभावित थे इसी लिए उन्होंने अपने काव्य में जीवन के किसी वादक्षेप को छुपाने पर फल दिया है। काव्य का मूल धर्म वादक्षेप की प्रतिष्ठा है। उसमें व्यर्थ की बात नहीं होनी चाहिए। बलाकार को जीवन का संपूर्ण परिचय प्राप्त करना होता है :

हाँ रसा है जी वहाँ ली ली रसा,  
यदि वही हमने कहा ली क्या कहा ?  
चिन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ ।  
व्यक्त करती है कहा ली यह यहाँ॥<sup>२</sup>

गुप्त जी कीरी कला को काव्य में प्रयुक्तता नहीं देते हैं। वह प्राचीन वादक्षेपों के पक्षी हैं। उनकी दृष्टि में केवल उन्नी सीमा तक कवि को छूट है जहाँ तक सामाजिक स्वास्थ्य का संरक्षण बना रहे, कला सुन्दर तत्वों का निर्माण करे,—

१- डा० सुरेशचन्द्र गुप्त- वाचनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त पृ० १२५ ।  
(दिल्ली १९६०)

२- गुप्त जी - सोकेत, पृ० २० प्रथम सर्ग ।

जीवन के लिए उपयोगी दिशा का निर्देश करे तथा कवि को लोक - मंगल की प्रेरणा दे। गुप्त जी ने अपने इसी विश्वास पर काव्य-स्वरूप का निर्माण किया है। काव्य कला के सम्बन्ध में रवीन्द्र ठाकुर का मत भी ऐसा ही रहा है। मनुष्य के लिए सत्य और सुन्दरता के सजीव लोक का निर्माण ही कला का कार्य है।<sup>१</sup>

गुप्त जी के काव्य स्वरूप सम्बन्धी विचार गहन चिन्तन से प्रेरित रहे हैं उन्होंने कवि के अनुभव और विचारों पर भी कल दिया है - जिन्हें अपने छेत्तों में कभी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, उनके मानसिक विकास की पहले ही इतिवृत्ति हो चुकी होती है। अन्यथा एक अवस्था तक मनुष्य की बुद्धि पोषण प्राप्त करती ही है, नए नए अनुभव और विचार जागे, रहते हैं और अपनी सीमाओं में लुकील भी वृद्धि पाता है दृष्टांतों की झुरी बात है, परन्तु मेरे जैसे साधारण जन के लिए यह स्वाभाविक ही है<sup>२</sup> इस प्रकार गुप्त जी ने कवि के अनुभव और विचारों को काव्य में अनिवार्य बताया है। गुप्त जी ने कवि को काव्य साधना की प्रेरणा दी है।

काव्य-वात्सा : मैथिलीशरण गुप्त जी - गुप्त जी ने काव्य में रस का विशेष महत्व प्रदान किया है। रस से काव्य में जो स्वाभाविकता आती है उसे पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि - रस बिना कविता क्या है, ठीक है यह बात।<sup>३</sup> गुप्त जी ने अलंकारों को काव्य में प्रसुता नहीं की है क्योंकि उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि:

कविता से सज्जन कहा मैंने, वर मुक्त की,  
कुंठा में उपहार अलंकारों के तुम की।  
बोली तब वह कि मैं वास्तवी हूँ कब बनकी।।<sup>४</sup>

<sup>१</sup>- This build up of man's true world. The living world of  
<sup>२</sup>- कैमरित, निवेदन, पृ. १-३, the function of Art. Personality, P. 31

<sup>३</sup>- स्वदेश - संगीत, पृ. ३६।

<sup>४</sup>- मंगलपट, पृ. २६७।

गुप्त जी ने काव्य में कलुष रस और वीर रस को काव्य का अपसृष्ट माना है। गुप्त जी ने वीर रस को मानव-भावनाओं के उत्कर्ष में सहायक मानकर कहा है कि - भूत जाति को कवि हो जिलाते, रस-पुष्पा के योग से ।<sup>१</sup> वीर कलुष रस को गुप्त जी ने रस राज की संज्ञा दी है। उनकी कार,ण्य भारती शीर्षक कविता की यह पंक्तियाँ देखिए :-

कलुष रस के रौप्य से भिलता जितना मोद।

हौता क्या हास्यादि से उतना मी मोद ? ॥<sup>२</sup>

गुप्त जी ने मल-श्लिष एवं नायिका भेद का शुरु है ही विरोध किया है क्योंकि और शृंगारिका मानव मन से सत्त्व-गुण को मिटा देने वाली होती है। उन्होंने कहा है कि :

उद्देश्य कविता का प्रमुख शृंगार रस ही हो गया।

उन्मत्त हो कर मन हमारा अब उसी में खो गया ॥<sup>३</sup>

वस्तुतः गुप्त जी ने काव्य में मर्यादित शृंगार पर विशेष कल दिया है। गुप्त जी ने शृंगार रस के अंशों में से मल-श्लिष और नायिका भेद का सर्वथा विरोध न करके केवल उन्हीं को काव्य का प्रयोगनीय मानने की सिन्धा की है।<sup>४</sup> गुप्त जी ने अपनी इस मान्यता के द्वारा अपनी समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

**काव्य प्रयोजन :**

गुप्त जी की काव्य-प्रयोजन सम्बन्धी मान्यताएँ भी लोक जीवन के उपयोगी सत्त्वों पर आधारित हैं। काव्य के उपयोगी स्वरूप पर विचार करते हुए उन्होंने कहा है कि :

१- पद्य - प्रबन्ध, पृ० ५ ।

२-भारत - भारती - पृ० १२१ ।

३- सरस्वती, पृ० ६७० दिसम्बर सन् १९१४ ई० ।

है जिस कविता का काम होकर- लिख करना।  
 चक्षुषी से मन मनुष भाव का करना।  
 पहले तो कान्ता- सदृश हृदय को करना।  
 फिर प्रकटित करना विमल ज्ञान का करना।  
 हा ! उसे आप व्यभिचार प्रयोग बताते।।<sup>१</sup>

गुप्त जी की इस मान्यता में प्राचीन काव्य-शास्त्र की कान्ता - सम्मिलित वाली मान्यता की विश्वास है। गुप्त जी का ऐसा विश्वास था कि जो काव्य लोक-मंगल की भावना से पूर्ण होता है उस काव्य से आनन्द की प्राप्ति भी होती है वही छिपे उन्होंने कहा है कि- वही काव्य से विश्व के सौन्दर्य - स्वर्ग का अनुभव करा सकता है, क्योंकि वह हमें लोकोपर आनन्द देता रहा है।<sup>२</sup> गुप्त जी ने काव्य में मनोरंजन को भी अनिवार्य जग माना परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कौरा मनोरंजन कवि का कर्म न होकर उसमें उचित उपदेश का कर्म होना अनिवार्य है-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये ।  
 उसमें उचित उपदेश का भी कर्म होना चाहिये।।<sup>३</sup>

उस मान्यता के द्वारा गुप्त जी ने काव्य की लोकोपकारी भावना का समर्थन किया है। उनकी यह मान्यता नयी चेष्टा छिपे हुए है ।

#### काव्य विषयः

विवेच्य युग के दूसरे कवि गुप्त जी ने काव्य-स्वरूप पर बहुत अधिक विचार नहीं किया है, परन्तु उनकी मान्यता समसामयिक युग के अनुरूप है। -

१- पञ्च - प्रबन्ध, पृ० ६२ ।

२- छिन्दू, मुद्रिका, पृ० २१ ।

३- भारत-भारती, पृ० १७१ ।

गुप्त जी ने अपने निबन्ध में लिखा है कि- समय के अनुसार विषयों पर हमें कविता करना चाहिए ।<sup>१</sup> गुप्त जी ने काव्य के सामाजिक पक्ष पर बहुत बल दिया है । गुप्त जी की काव्यात्मक मान्यता में उनकी राष्ट्रीय विचारधारा की प्रेरणा भी किसी सीमा तक रही है। उन्होंने लिखा है कि :

मृत हो कि जीवित जाति का साहित्य जीवन -चित्र है।  
वह प्रष्ट है तो सिद्ध किए वह जाति भी अपवित्र है।<sup>२</sup>

गुप्त जी की मान्यताओं में नया और पुरानापन हमें यत्र-तत्र देखने को मिल जाता है। काव्य की लोक-भूमि पर छाने और युगानुरूप बनाने का श्रेय उनको दिया जा सकता है। इस प्रक्रिया के मूल में उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति झिलझिल पड़ती है। उन्हें प्राचीनता से मोह आवश्यक रहा है किन्तु उन्होंने नये सन्दर्भों का सर्वथा त्याग नहीं किया है।

#### काव्य भाषा : गुप्त जी -

गुप्त जी ने हरिवंश जी की भांति काव्य-भाषा की सरलता पर बहुत अधिक बल दिया है। संस्कृत के शब्दों को अकान्त पर गुप्त जी ने जोर दिया है। उनकी यह मान्यता है कि- मैं इस बात की मानता हूँ कि भाषा का सबसे बड़ा गुण सरलता है, पर वहीं वही संस्कृत के शब्द लेने ही पड़ते हैं बिना ऐसा किए मुझे ऐसे व्यक्त जनों का काम नहीं चलता । मेरी तो यह राय है कि कभी हिन्दी में संस्कृत के शब्द और भी सम्मिलित होंगे, बिना हुए उसका शब्द-संयम विपुल न होगा।<sup>३</sup> इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा के सन्दर्भ में गुप्त-

१- पंचम हिन्दी- साहित्य- सम्मेलन, लखनऊ, दूसरा भाग, पृ० ५४ ।

२- भारत-भारती, पृ० १२० ।

३- सरस्वती, पृ० ३६२ जुलाई सन् १९१२ ई० ।



जी अनुप्रास नहीं थे मानवीय भावों को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए जी शब्द भी सदाय ही चाहें थे किसी भी साहित्य या भाषा के ही उन्हें अपना लेना चाहिए। उन्होंने कहा है कि- किसी भी भाषा की योग्यता उसकी शब्द-सम्पत्ति पर अवलम्बित है। विपुल व्यंजनों के लिए विपुल शब्द भण्डार होना चाहिए।<sup>१</sup> गुप्त जी ने काव्य की सरलता सुधीयता, और मधुरता को काव्य का अनिवार्य अंग माना है। इसके अभाव में काव्य कदापि किसी मनोरम सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकता है। गुप्त जी के ये विचार अपनी पुरानी परम्पराओं से छटे हुए थे। भाषा-सम्बन्धी यह उदार दृष्टि विवेच्य काल की विशेषता है। इसके पूर्व में तत्कालीन कवियों की स्वच्छन्दताविता फलकती है।

### काव्य में अलंकार :

गुप्त जी ने भी काव्य में अलंकारों पर जोर नहीं दिया है। गुप्त जी काव्य में व्यंजनों की समृद्धि और प्रसादगुण पर बल देते थे। उन्होंने अलंकारों को काव्य की शोभा के रूप में स्वीकार किया है। अनुप्रास का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा है कि- शब्दालंकारों के पीछे अर्थालंकारों को धिगाड़ना ठीक नहीं। भाव को वदगुण्य रतकर यदि अनुप्रास आवे तो निस्सन्देह कविता की कर्णप्रियता बढ़ जाती है।<sup>२</sup> गुप्त जी की यह मान्यता भी काव्य के स्वाभाविक सौन्दर्य पर बल देती है। इस में सन्देह नहीं कि विवेच्य काल के कवियों का ध्यान क्रमशः काव्य के आन्तरिक पदों की ओर आकर्षित हो रहा था। स्वच्छन्दतावादी दृष्टि परम्पराओं की विरोधी होती है अलंकारों से सम्बद्ध पारम्परिक पारणा का परित्याग करके विवेच्य कालीन कवियों ने अपनी उन्मुक्त सौन्दर्यान्वैणी दृष्टि का ही परिचय दिया है।

१- सरस्वती, पृ० २६२ जुलाई १९१२ ई० ।

२- वही, पृ० ६७८ दिसम्बर १९१४ ई० ।

## काव्य में छन्द : गुप्त जी -

गुप्त जी ने तुकान्त छन्दों की सफल रचना की है अतुकान्त छन्द भी सूख लिये हैं। अतुकान्त कविता की तुकान्त रचना के समान ही महत्व देते हुए उन्होंने कहा है कि वैतुकी कविता का भी उतना ही आदर करने में प्रस्तुत है जितना तुक वाली का। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुप्त जी ने काव्य को छन्द का बन्दी नहीं माना है। गुप्त जी ने कृत्रिमता के परित्याग से काव्य में स्वाभाविकता की खोज करते हुए लिखा है कि- इस तरह की कविता में म ती मावों की सींच तान करनी पड़ती है न सव्दों की लौड़ - मरौड़। इस कारण कविता में एक प्रकार की जीवित्विता आप ही आप हो जाती है।<sup>१</sup> इस मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने प्राचीन परम्पराओं से मोह रहते हुए भी नये युग की परिवर्तनशील विचारधारा के अनुसार काव्य में नवीनताओं की खोज की है।

ऊपर जिन कवियों के काव्यसिद्धान्तों पर विचार किया गया है वे द्विवेदी- युग के प्रचलन स्तम्भ माने जाते हैं। श्री हरिवंश जी तथा गुप्त जी दोनों ही द्विवेदी - मण्डल के कवि रहे हैं। क्योंकि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परामूलक, नैतिकतावादी एवं सुधारवादी विचारधारा का अच्छा प्रभाव रहा है, लेकिन इन कवियों के काव्यगत सिद्धान्तों में कहीं- कहीं कुछ ऐसी बातें भी दिखलाई पड़ती हैं जिनका सम्बन्ध नये युग की नवीन चेतना से जुड़ता है। उदाहरण के लिए काव्य- विषय से सम्बद्ध उनकी मान्यताओं की हैं। ये कवि प्राचीन पौराणिक कथाओं की ज्यों का त्यों से छे छे के पक्ष में नहीं रहे हैं। इन्होंने उन कथाओं को नयी दिशा देने का प्रयत्न किया है।-

इनके ऐसे काव्य के नायक नवीन विचारधारावादी से स्वच्छन्द विस्तार पड़ते हैं ।  
 उन्होंने नये युग की गति-विधियों के अनुसार राष्ट्रीयता, स्वदेश प्रेम, और  
 सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध काव्य रचना करके अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का ही  
 परिचय दिया है। छन्द, रस, अलंकार, कथना काव्य - भाषा के सभी धर्म भी  
 उन्होंने नयी मान्यताएँ स्थापित की हैं। हरिवंश जी ने प्रिय-प्रवास महाकाव्य  
 की रचना लड़ी बोली में की है। उनका यह कार्य भाषा के क्षेत्र में एक क्रांति  
 कारी घटना है। वैयक्तिकता के क्षेत्र में रहते हुए भी हरिवंश जी ने शृंगार रस के  
 रसराजत्व की घोषणा की साथ ही नायिका भेद का निरूपण भी किया है  
 परन्तु यह नायिका - भेद रीति-कालीन कवियों से भिन्न था । रस को उन्होंने  
 व्यापकता प्रदान की है। अलंकारों के पुराग्रह का उन्होंने परित्याग किया है ।  
 अतुलान्त छन्दों और सहज भाषा के प्रयोग द्वारा उन्होंने हिन्दी कविता को  
 एक नया रूप देने का प्रयत्न किया है। अतएव कुछ निहाकर यह कहा जा सकता है  
 कि इन कवियों के कृतित्व में भी स्वच्छन्दतावाद के लक्षण विस्तारित होते हैं। जिस  
 सीमा तक उन्होंने परम्पराओं से विक्रीष्ट किया है उसी सीमा तक उनका काव्य  
 स्वच्छन्दतावाद के सन्दर्भ में पुनर्मुल्यांकन की अपेक्षा रखता है।

## हिंदूवैदी मण्डल के अन्य कवि

विवेच्य कालीन काव्य- प्रवृत्तियों के ऐतिहासिक विवेचन के सम्बन्ध में नाथूराम शर्मा शंकर, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, राचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, तथा गोपालशरण सिंह आदि की काव्य- मान्यताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती । अतएव हम उनके विचारों एवं मान्यताओं की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

### काव्य - स्वरूप-

नाथूराम शर्मा शंकर ने काव्य के स्वरूप के विषय में कोई मौलिकता नहीं दिखाई है। उन्होंने काव्य के वाचन और आन्तरिक रूपों के सम्बन्ध पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार काव्य वह रचना है जिस में प्रसाद गुण सम्पन्न तथा दौया-रक्षित क्लृप्त पदावली में रस से परिपूर्ण रमणीय अर्थ का भावन हो।<sup>१</sup> इस मान्यता में भारतीय वाचार्यों द्वारा मान्य काव्य लक्षणों जैसे तद्दीप्तो शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः क्वापी, <sup>२</sup> वाक्यं रसात्मकं काव्यम्<sup>३</sup> \* रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्<sup>४</sup> को उद्धृत किया गया है। शंकर जी का प्राचीन परम्पराओं के प्रति बहुत अनुराग है। वे आर्य-समाज के कट्टर समर्थक थे इसलिए उन्होंने काव्य में कला से अधिक विचारों को प्रश्रय दिया है। कला और साहित्य के सम्बन्ध में शंकर जी ने प्राचीन संस्कृत काव्य शास्त्र का सहारा लिया है। हिंदूवैदी युगीन कवि रीति काल के विरोधी थे। इस कारण उन्होंने प्रायः काव्य शास्त्र की अवहेलना की है।

१- डा० सुरेशचन्द्र गुप्त- वाचनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त, पृ० २०८-विर्ल

२- मम्मट, हिन्दी काव्य प्रकाश, पृ० १० ।

३- विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य वर्णन, पृ० २३ ।

४- पण्डित जगन्नाथ, रसगंगाधर, पृ० ६ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपना स्वर मल्लि काल से मिलाया था। विद्वैदी-मण्डल के कवियों ने कला और काव्य सम्बन्धी मान्यताओं के लिए संस्कृत काव्य-शास्त्र का आग्रह किया है। विवेच्य कालीन हिन्दी काव्य के विकास की ये बहुत ही पेचीदा और अन्तर विरोधी परिस्थितियाँ हैं। इस काल के कवियों ने समकालीन और पूर्ववर्ती साहित्य की मान्यताओं की अवहेलना करके अतीत के प्रेरणा ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। यह किसी साहित्य के विकास-सिद्धान्तों से अलग है। यही कारण है कि इस युग के कवियों के कला-सिद्धान्तों और काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं में कोई उत्कृष्ट नवीनता नहीं है। उनके सिद्धान्त और मान्यताएँ अधिकांश में पुराने काव्य-शास्त्रों का आधुनिक संस्करण प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में पुनरात्मनवादी प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से दिखाई पड़ती हैं।

काव्य के स्वरूप विवेचन में रामचरित उपाध्याय ने चौड़ी मौलिकता दी है। उन्होंने नारी और सांसारिक सौन्दर्य को मानव की लौकिक उपलब्धि कहकर काव्य से प्राप्त सुख को उन से अलग रखा है। उन्होंने काव्यानन्द को लौकिक आनन्द से महँस माना है। उनके विचार दृष्ट्य हैं :

मन। रमा, रमणी, रमणीयता  
 मिल गई यदि ये विधि-योग से ।  
 पर जिते न मिली कविता - गुणा,  
 रचिकता सिकता - सम है उसे।<sup>१</sup>

---

१- सरस्वती, प्र० २६६ मई १९१५ ई० ।

ठाकुर प्रसाद पाण्डेय ने काव्य में सम्भावनाओं के विवरण पर कल दिया है। उन्होंने सौंदर्य साहित्य की महिमा स्वीकार की है। उनकी दृष्टि में साहित्य मानव उन्नति का प्रधान स्त्रोत है :

है साहित्य प्रदान शक्ति मानव उन्नति की  
है यह दुर्लभ खान जाति के सुख सम्पत्ति की ।  
दर्पण है साहित्य देश के विधा, धरा का  
रीति, नीति, विज्ञान, ज्ञान, कृषि, कल, कौशल का।  
वस्तु मानसिक शक्ति- रूप साहित्य मित्य है  
जिस से होता दृष्ट पुरातन काल- कृत्य है।<sup>१</sup>

इस मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाण्डेय जी ने काव्य में जातीय भावना की देशकालोचित अभिव्यक्ति पर विशेष रूप से कल दिया है। इस मान्यता में पाण्डेय जी की जनसामयिक युग की नयी चेतना अभिव्यक्त हुई है ।

ठाकुर गोपीलशरण सिंह ने काव्य में मानवतावादी भावनाओं पर विशेष रूप से कल दिया है। साहित्य समाज और युग का दर्पण है उस पर तत्कालीन प्रभाव अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहते हैं। ठाकुर गोपीलशरण कुल- धर्म को काव्य का मुख्य अंग मानते हैं। परन्तु साथ ही वह काव्य की मूल शक्ति मानवता पर कल देते हुए कहते हैं कि :

मानव का जीवन ही अंग मैं,  
मानवता का माप हुआ।  
मध्य भावनाओं का आधार,  
बन कर काव्य- बलाप हुआ।<sup>२</sup>

१- पद्म - पुष्पाञ्जलि, पृ० ६० ।

२- सागरिका, पृ० ११० ।

उनकी यह धारणा सत्कालीन काव्य की सामाजिक चेतना को उजागर करती है।

### काव्य-आत्मा-

विशेष्य का के कवियों में रामचरित उपाध्याय, सत्यनारायण कविरत्न और ठाकुर गीपाठ छरण सिंह ने काव्य- की आत्मा के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। रामचरित उपाध्याय जी ने काव्य में रस और कलंकारों को समान रूप से महत्व प्रदान किया है। उनका विचार था कि काव्य की आत्मा रस और कलंकार है। इसी कारण उन्होंने कविता छूटि फुल्लकली शीर्षक में लिखा है कि :

स्तुति से, गुण से रस से, कलंकुला भी तथा कलंकुति से ।  
कविता ही या वनिता, दोनों राज को सुनाती है।<sup>१</sup>

इस मान्यता से यह बात स्पष्ट है कि कवि ने रस पर अधिक बल दिया है। रस की दृष्टि में कलंकारों का भी विशेष महत्व है परन्तु रस को उन्होंने काव्य में गौरवपूर्ण बताया है।

पं० सत्यनारायण कवि रत्न रस को ही काव्य का प्रमुख अंग मानते हैं। उनका विचार है कि रस दृष्टि से ही काव्य की आत्मा है इसी काव्यरूपा सरस होती है :

उज्ज्वल सरस धनश्याम अक धीमे रस धरसाय।  
जावो ब्रह्म भाषा उता हरी नरी लहराय।<sup>२</sup>

१- छूटि फुल्लकली - पृ० ४ ।

२- कन्दु, पृ० २४४ मार्च सन् १९१५ ई० ।

रस में कवि ने सरसता का वात्सर्व्य रस ले लिया है। उसने रस की महत्त्व प्रदान किया है।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने काव्य में रसशीलता पर बल दिया है। परन्तु साथ ही उन्होंने कर्त्तारों को रस के पीनक के रूप में स्वीकार किया है। उनका मत है कि- काव्यत्व रसात्मकता में है। वह रसना जिस में रस का परिपाक नहीं है, कर्त्तृक होने पर भी विशेष महत्त्व नहीं रखती।<sup>१</sup> कवि ने काव्य में रस के अतिरिक्त भावों की मधुरता पर भी विशेष बल दिया है।

#### काव्य हेतु --

विवेच्य युग के अन्य कवियों में रामचरित उपाध्याय, कविवर शंकर, लोचन प्रसाद पाण्डेय, तथा ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी के काव्य के हेतुओं के निर्धारण में विशेष रूप से भाग लिया है। रामचरित उपाध्याय ने काव्य शिक्षा पर अधिक बल दिया है। वे प्रतिभा और अध्ययन को काव्य शिक्षा का मूल बताते हुए कहते हैं कि:-

जट पट पत्र रचकर, कमी न कोई कवीन्द्र बनाता है।

काँ काँ अधिक करे पर, काक कमी भी न फिक्र होगा।।<sup>२</sup>

उपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति उपाध्याय जी ने प्रतिभा विहीन व्यक्ति को काक की संज्ञा दी है और कवि को फिक्र कहा है। उपाध्याय जी का यह विश्वास था कि अध्ययन से कवि के विचारों में प्रौढ़ता और गहनता आती है। और वह प्रतिभा सम्पन्न कवि है तो उसका काव्य किसी काव्य-पिशा को निश्चित भी कर सकता है।

१- वायुनिक कवि- भाग, ४, वाक्पथ ध्यान - पृ० ४ ।

२- सुक्ति पुष्पावली - पृ० २७ ।



कविवर संकर ने ईश्वर की कृपा से प्राप्त प्रतिभा की काव्य रचना का मूल मानते हुए कहा है कि :

दिन केर पिता, वर है सविता ।  
कर है कविता, कवि संकर की॥<sup>१</sup>

इस मान्यता से यह बात स्पष्ट है कि ईश्वर की कृपा से ही कवि के हृदय में कविता- सक्ति उत्पन्न होती है ।

लोक प्रताप पण्डित ने काव्य के मूल में प्रेरणा और अभ्यास दोनों का महत्व बताया है। उनका विचार है कि :

निरा मैं निमग्न हो जाता  
है यह सारा का विश काठ।  
मैं कैल जाता रहता हूँ  
करने को तब तब गुणगान ॥<sup>२</sup>

कवि की इस मान्यता में मौलिकता नहीं है बल्कि काव्य शास्त्र की परम्परा का समर्थन किया गया है यह मान्यता काव्य के साधना एवं अभ्यास की ही उद्दिष्ट करती है।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने काव्य में प्रतिभा की काव्य के प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकार किया है । उनकी मान्यता है कि- कवि अपनी प्रतिभा, सौन्दर्य भावना और कलाभूति के अनुसार कविता की सृष्टि करता है।<sup>३</sup> इस मान्यता से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि सौन्दर्य भावना की उपलब्धि में व्युत्पत्ति--

१- संकर - सर्वस्व- पृ० ३७ ।

२- भावक- मेवरी, पृ० १३ ।

३- आधुनिक कवि- भाग ४ आत्म कथन, पृ० १५ ।

जयवा लौक-दर्शन की सहायक तत्व मान्यता लेकर चला है। जो बात को उन्होंने समझाते हुए लिखा है कि- कविता लिखने में अध्ययन की अपेक्षा जीवन से मुझे अधिक प्रेरणा मिली है।<sup>१</sup> कवि ने अपनी इस धारणा में काव्य के अन्तर्गम पर अधिक बल दिया है। व्युत्पत्ति के अन्तर्गत कवि की नयी और महत्वपूर्ण स्थापना तो यह है कि वह फूली कदम्ब छताओं, और प्रकृति से प्रेरणा लेकर भी काव्य रचना कर सकता है जैसे :

फूली धुई कदम्ब छताएँ,  
तिली मालवी की छाताएँ,  
काली थीं छिड़ कर कीड़ाएँ  
नाच रही थीं उर में कविता,  
गुंज रहा था कान्गूर का स्वर,  
मैं छेटा था निब शय्या पर।।<sup>२</sup>

गोपाल शरण सिंह की यह मान्यता वास्तविक सिन्धी कवियों के लिए सब से पहले गयी दिशा का संकेत करने वाली रही है ।

#### काव्य-प्रयोजन:-

कविवर नाथूराम शर्मा शंकर ने अपनी समसामयिक युग के अनुरूप काव्य की लौक-हित के मूल साधन के रूप में स्वीकार किया है । उनका मत है कि कुत्सित कथानकों के परित्यक्त कर चुका है, शंकर सरस्वती का घर है परीषकारी ।<sup>३</sup> नाथूराम शंकर ने केवल मनोरंजन प्रदान करने वाले कौरे साहित्य की अवहेलना की है। वे कौरे मनोरंजन पूर्ण काव्य को कवि की संकीर्ण-हृदयता का परिपायक मानते थे।

१- जायनिक कवि- भाग ४, आत्म स्मरण, पृ० ५ ।

२- प्रयोगलि, पृ० १२६ ।

३- शंकर- सर्वस्व, पृ० १०५ ।

रायदेवी प्रसाद पूर्ण भी काव्य में लोक-मंगल की भावना को महत्व देते थे। उनका विश्वास था कि- ईश्वर किसी को काव्य करने की सामर्थ्य दे, तो लाकोपकारी विणयों की रुचि भी दे जिससे उसका कवित्व उफ़ल हो।<sup>१</sup> इस उक्ति से यह बात स्पष्ट है कि पूर्ण जी ने युग की चिन्तामारा के अनुसार लोक-हितकारी काव्य को ही विशिष्ट माना है।

रामचरित उपाध्याय ने केवल यश की लालसा को ही काव्य का मूल स्वर माना है। उपाध्याय जी ने कवि के अतिरिक्त कविता कराने वाले को भी यश का भागी माना है। उनकी मान्यता है कि-

दोनों ही कम हुए हैं, दोनों भी लीर हों रहे हैं भी।  
जो कविता करते हैं, या कविता को कराते हैं।<sup>२</sup>

कवि ने इस मान्यता में अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण किया है।

लोकन प्रसाद पाण्डेय ने काव्य से समाज-संस्कार की प्रेरणा प्रदान करने की बात कही है। उन्होंने काव्य को जीवन की वाचस्पद व्याख्या के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है कि- इस प्रकार की छोटी-छोटी पत्र-पुस्तकों की अतीत आवश्यकता है कि जिनके पढ़ने से बालकों के चरित्र का सुधार और उनके कलुषित मन का संस्कार हो जिस से समाज एवं देश, दोनों का उपकार हो सके।<sup>३</sup> इस मान्यता से यह स्पष्ट है कि कवि काव्य में जाजोपयोगी तत्वों को काव्य का मूल आधार मानता है। वह कहीं भी भैतिकता का अतिप्रयोग नहीं चाहता है।

१- नीति- कविता, पृ० " ८"

२- सूक्ति मुक्तावली, पृ० ३ ।

३- नीति- कविता, मुद्रिका, पृ० " १" ।

ठाकुर गीपाल शरण सिंह ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उपाध्याय जी की मान्यता का ही समर्थन किया है। उन्होंने कहा है कि- यदि मेरी कतिपय पक्तियाँ ने सरस कदर्या का स्पर्श किया तो मेरे लिए सुख अनुभव करना स्वाभाविक ही होगा।<sup>१</sup> यह उक्ति कवि के सरस कदर्या की परिचायिका है। इस में काव्य से प्राप्त आनन्द की अप्रत्यक्ष रूप से सराहना की है।

विवेच्य कालीन कवियों के काव्य सिद्धान्तों, उनकी मान्यताओं एवं धारणाओं को देखने से यह बात मही पारंगत स्पष्ट हो जाती है कि शत्रु युग के कवियों ने व्यापक और उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्होंने काव्य के समस्त वर्गों का परिशीलन नहीं किया है। इन कवियों ने अधिकतर अपने विचारों को संस्कृत काव्य-शास्त्र के आधार पर प्रस्तुत किया है। उनकी मान्यताओं पर प्राचीनता और नीरसता का आरोप भी लगाया जाता है। परन्तु यदि हम ध्यान पूर्वक देखें तो पता लगता है कि ये कवि का व्यादर्श की उपलब्धि के प्रति बहुत उदार और सजग रहे हैं। इन कवियों ने काव्य-रित्य के सत्त्वों की जो एक व्यवस्थित योजना की है उससे यह प्रमाणित हो जाता है कि उन्होंने परम्पराओं एवं मान्यताओं के घेरे में रहकर भी अपने काव्य-दर्शन का स्वयं निर्माण किया है। उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप महाकाव्यों की पुरानी कथा में नवीन उद्भावनाओं का उद्घाटन किया है। विवेच्य-काल के अधिकतर कवि कौरी नैतिकता-वर्तितृष्णात्मकता और नीरसता के घेरे में रहे परन्तु उपर्युक्त कवियों ने नैतिक मूल्यों के प्रति जाग्रही न होकर स्वच्छन्द भावधारा का नयी लहर के प्रभाव की भी कितनी सीमा तक बखाने का व्यापक प्रयत्न किया है।

## श्रीधर पाठक और अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि

विवेच्य काल के कवियों में पं० श्रीधर पाठक एवं रामनरेश त्रिपाठी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कि उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके मण्डल के प्रभाव से बाहर रहकर अपनी स्वच्छन्द काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी काव्यगत मान्यताएँ उदार एवं स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण पर आधारित हैं। उनकी रचनाओं में गतानुगतिकता के स्थान पर प्रतिभा का एक मौलिक उन्मेष दिखाई पड़ता है। रामदेवी प्रसाद पूर्ण, कनारारायण पाण्डेय एवं मन्मथ द्विवेदी जैसे कतिपय अन्य कवियों ने भी अपने आप को आचार्य द्विवेदी के मण्डल से पृथक् रख कर स्वच्छन्द भाव से काव्य रचना की है। हम इन कवियों पर यहाँ कुछ विचार करेंगे।

### श्रीधर पाठक

काव्य स्वरूप विषयक मान्यता -- पाठक जी ने काव्य-स्वरूप के विवेचन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है फिर भी उनकी रचनाओं को देखने और पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मौलिक काव्य-दृष्टि के सध्यन्त कवि हैं। श्रीधर पाठक के मौलिक विचारों का बयान हमें उनकी अनेक रचनाओं जैसे मनोविनोद, एकात्मतावीर्योगी, 'आन्त पथिक', 'देहरादून', 'भारत-गीत' और 'काश्मीर-सुनमा' में मिलते हैं। पाठक जी ने साहित्य में वस्तु और अभिव्यञ्जना को अनिवार्य मानते हुए कहा है कि- उत्तम विषय और उत्तम शैली में ये दोनों हम से साहित्य के आश्वर वात्मा और शरीर हैं। उत्तम विषय सदाजीवि होते हैं। जो कि उत्तम--

१- डा० सुरेश चन्द्र गुप्त - वाचुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृ० १२६।

प्रथम संस्करण - जुलाई १९६० - दिल्ली।

ऐस- ऐसी रूपी सवांग सुन्दर शरीर पाकर उसके रूप- माधुर्य से संसार को तदा मोहित किए रहते हैं, पाठक जी की इस मान्यता से यह बात मही-मांति स्पष्ट हो जाती है कि पाठक जी के अध्ययन एवं चिन्तन में बहुत गहराई रही है। उन्होंने काव्य को लोकमानव की परावर के रूप में माना है। पाठक जी यह मान्यता विवेक्य युग की एक नवीन उद्भावना के रूप में स्वीकार की जा सकती है।

### काव्य प्रयोग और काव्य की आत्मा :

श्रीधर पाठक ने काव्य- आत्मा के विषय में अधिक नवीनता का परिचय नहीं दिया है। बल्कि अपने पूर्ववर्ती कवियों की तरह रीति को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है। रीति को काव्य में महत्वपूर्ण सिद्ध करते हुए उन्होंने यह कहा है कि -

प्रेम पूरि रचना रुचिर, सुधा- मधुर पद पांति,  
कथन प्रया सुन्दर तथा, क्या उचित सब मांति।<sup>१</sup>

पाठक जी का यह विश्वास था कि इस भी काव्य में ज़रूरी है परन्तु इस की अभिव्यक्ति के लिए साधन रूप में रीति पर कुछ अधिक होना चाहिए। काव्य में माधुर्य और प्रसाद गुण का रहना भी ज़रूरी है क्योंकि अगर काव्य में प्रसाद गुण और माधुर्य गुण नहीं होगा तो कवि का भाव पाठक के हृदय पर अंकित नहीं हो पायेगा। भाव के अंगण के लिए काव्य में इन दोनों गुणों का होना ज़रूरी है।

---

१- श्रीधर पाठक, मनोविनोद, तृतीय सप्पट- पृ० २५ ।

श्रीधर पाठक ने उस मान्यता में भी स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण की बहुत अधिक परिचय न देकर केवल आधुनिक युग के कवियों की भाँति लोक-मंगल की भावना को प्रकट दिया है। उनके मतानुसार लोकवृत्ति की किसी उद्दिष्ट सत्य पर ले जाकर उन्नति की लीक में कसूर रहना बड़ी दामता का काम है। जो व्यक्ति उस दामता से विरहित है उसे साहित्य के कर्म-क्षेत्र में पैर न रखना चाहिए।<sup>१</sup> पाठक जी ने काव्य में शिव तत्व को अनिवार्य माना है। उन्होंने लोक मंगल की प्रेरणा को काव्य में प्रयोजन माना है।

#### काव्य - विषय :

पाठक जी ने काव्य के वर्ण्य विषय के प्रति अपने एक उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उनके काव्य में नवीन पदतियों का आग्रह है। पाठक जी के समस्त प्राचीनता और शक्तिकृतात्मकता को प्रकट देने वाले, विवेक्य काल की सबसे बड़ी विभूति, बिभूवेदी जी रहे किन्तु पाठक जी ने नवीनता की साधना को ही लक्ष्य माना। उन्होंने अपने काव्य में नये भावों का चयन करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने कवियों को देश-काल के अनुरूप काव्य रचना के लिए बाध्य किया। साथ ही प्रकृति-सौन्दर्य की भी प्रेरणा देकर काव्य में स्वच्छन्दता का आभास दिया। पाठक जी ने प्रकृति के द्वारा स्वच्छन्दतावादी काव्य का पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत किया है। विवेक्य काल की राष्ट्रीय भावना का प्रसार भी प्रकृति के द्वारा बहुत सज्ज और मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है जो हम से पूर्व नहीं हो सका। उनका कहना था कि :

---

१- पंचम- हिन्दी- साहित्य सम्मेलन, कार्यक्रम, सतरा भाग, पृ० १७।

घाटहु याही मैं सदा सुख दुःख सौच विचार,  
 त्यों जग के सभ नित्य अत नैमित्तिक व्यवहार,  
 कुल कीरति, ईश्वर निरति, साधुन चरित उदार।।<sup>१</sup>

इस कथन से यह बात स्पष्ट है कि पाठक जी कवि की युग धर्म के प्रति सजग रहने को अनिवार्य बताया है। उन्होंने युग धर्म के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देने के अतिरिक्त उसका ध्यान प्रकृति की ओर भी कराया है उसके लिए उनका कहना था कि-

सौं कवियन जी कही कलित सुरलोक निकारै,  
 याही कोँ अवलोक एक कल्पना बनारै।।<sup>२</sup>

पाठक जी का यह विश्वास था कि प्रकृति के नाना सुन्दर रूप देकर कवि के मन में कूठी कल्पनाओं का उन्मेषण हो सकता है। प्रकृति भी कवि की कल्पना सक्ति के उन्मेषण में बहुत सीमा तक सहायक हो सकती है। पाठक जी का यही दृष्टिकोण उन्हें विदेवी मण्डल के कवियों के घेरे से बाहर कर देता है और यहीं से वह विवेक्य युग की नीरसता और नैतिकता के छाँड़न से बच जाते हैं। इन के उस दृष्टिकोण में कुल-त्यागवादी प्रवृत्तियाँ भी परिलक्षित नहीं हैं। बल्कि उन्होंने अपनी उस मान्यता की स्थापना के द्वारा विवेक्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियों को और अधिक सुपुष्ट बनाया है। पाठक जी ने अपने काव्य में सबसे अधिक प्रकृति की रचनाएँ की हैं। उनके द्वारा चित्रित प्रकृति के समस्त किन मयूर और सुन्दर हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य है। :

१- ननीविनीद, तृतीय सण्ड, पृ० ६।

२- काश्मीर सुषणा, पृ० ६।



पुनि जब श्याम सघनवा घन घुमड़ात  
 गिरि बन बिलार मनवा सकहि दुरात  
 फल- फल कमकु विजुरिया सुपि जात  
 मनु कौठ सुरग मेहरिया उमकहि लुकात  
 मनु सुठि सोन लतरिया सम लहरात  
 मनु सुनि सवी चुनरिया - कौर लतात॥<sup>१</sup>

इस ग्रन्थ में पाठक जी ने अपनी मर्मस्पर्शी वामिर्व्यंगना के कौशल से इसे सरल और स्वाभाविक भी बना दिया है। कौशल उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग के कारण चित्रण में भी कौशलता और सरसता आ गई है। पाठक जी अपनी एक स्वच्छन्द दृष्टि रही है उन्होंने पूर्व- प्राप्त साहित्यिक मान्यताओं एवं प्रवृत्तियों को स्था-स्थान पर अवसाया और उनसे छान उठाया है परन्तु इसके साथ ही उन में नवीन सिद्धान्तों के सूजन की भी पूर्ण प्रतिभा थी। उन्होंने प्रकृति के काव्यगत महत्व, भाषा, छन्द तथा कर्तारों के चयन में मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है।

### काव्य - भाषा :

पाठक जी ने इस भाषा और सड़ी बोली दोनों में ही रचनाएँ की हैं। पाठक जी ने सड़ी बोली बान्धोलन के चलने पर पूरी निष्ठा के साथ उसको विकसित किया। सड़ी बोली को काव्य-भाषा का गौरव देने में पाठक जी के प्रयत्न बहुत महत्वपूर्ण और मौलिक हैं। काव्य की भाषा के संबंध में भी उन्होंने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने सड़ी बोली को महत्व दिया है और साथ ही यह भी कहा है कि- इस से यह सात्पर्य नहीं कि इस भाषा का अभी किसी प्रकार का संघर्ष सड़ी बोली पक्ष में न होने पावे। कवि अपनी रुचि के अनुसार अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ऐसे शब्द व पद उस भाषा के भी व्यवहार--

में ला सकता है जिनसे उसके कान में ठीकीचर पुन्वराता सम्पादित होती हो, किन्तु ऐसे प्रयोगों का बार-बार अनियन्त्रित व्यवहार निन्द्य है।<sup>१</sup> पाठक जी की इस मान्यता से यह बात स्पष्ट है कि वे काव्य में भाषा की क्या सम्भव सुदृढता पर अधिक बल देते हैं। पाठक जी ने सड़ी बोली और कच्चा भाषा दोनों का जादर किया है परन्तु शुद्ध भाषा के रूप पर बल दिया है। पाठक जी ने संस्कृत और ओड़ी भाषा के शब्दों का भी हिन्दीकरण किया है इसी कारण उनकी भाषा अधिक समृद्ध हो गई है। पाठक जी ने अपनी मौलिक काव्य-सृष्टि द्वारा सड़ी बोली काव्य को प्रशस्त किया है। पाठक जी की इस स्वच्छन्दता के कारण ही उनके काव्य का अधिक महत्त्व है। पाठक जी ने हिन्दी भाषा के स्वतन्त्र विकास को महत्त्व दिया है। पाठक जी काव्य में शुद्ध भाषा, प्रयोग, शब्दाडम्बर, ग्राम्यता, अश्लेष पद-प्रयोग के विरोधी थे क्योंकि वह काव्य की भाषा की सुदृढता और समृद्धि की और तन्त्र रही है। काव्य भाषा-संस्कार के प्रति उनकी उन्नता उस उक्ति में स्पष्ट है- किसी-किसी का कहना है कि बाबू मेथिलीशरण गुप्त कब कवि नहीं हैं लेकिन मेरी समझ में तो वे उत्कृष्ट कवि हैं। वे ग्राम्य भाषा का प्रयोग नहीं करते और उनकी कौमल कान्त पदावली मनोहारिणी पाती होती है।<sup>२</sup> इस उक्ति में पाठक जी ने काव्य भाषा में ग्राम्यत्व का विरोध किया है। पाठक जी ने काव्य-भाषा की श्लीषता और सरसता पर भी बल दिया है। उनका विचार था कि- जिस प्रबन्ध में प्रचलित वाक् पद्धति के विरुद्ध शब्द व्यवहार होता है और मुहावरों की परिद्धता रहती है उसमें सरसता अवश्य शून्य होती है। और विषय और भाव उत्कृष्ट होने पर भी रसिकता नहीं जाती।<sup>३</sup> मुहावरों के-

१- प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, उत्तरांचल, कायेंकुन, प्रथम भाग, पृष्ठ २६ ।

२- उत्तरांचल, पृष्ठ ७ ।

३- प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कायें विवरण, दूसरा भाग, पृष्ठ ३१ ।

ज्माव में भाषा सौन्दर्य में कृति नहीं होती है अतः भाषा सौन्दर्य मुहावरों के प्रयोग द्वारा ही संभव होता है।

युग की मांग और वास्तुनिकता के सच्चे पारखी होने के कारण पाठक जी ने गद्य और कविता की भाषा की एक दूसरे के निकट होना बहुत जरूरी समझा क्योंकि उन्होंने वह ज्ञान लिया था कि योरीण की भाँति भारत में भी गद्य और पद्य की भाषा एक दूसरे से इतनी दूर नहीं रह सकती है। पाठक जी के इस दृष्टिकोण से सही-बोली की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योग प्राप्त हुआ है। काव्य-भाषा के मंच से ब्रजभाषा को हटाकर उसके स्थान पर सही-बोली की प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया विवेक्य युग की महत्वपूर्ण घटना रही है। इसके मूल में इस काल के स्वच्छन्दतावादी कवियों की विद्रोह - भावना और उदारता का योग है।

### हृन्द सम्बन्धी मान्यताएँ :

पाठक जी काव्य में हृन्द के बन्धनों को अनिवार्य नहीं मानते थे। इस दृष्टि से भी उन्हें स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक माना जा सकता है। पाठक जी हिन्दी काव्य की प्राचीन रुढ़ियों से बूझते और अपनी मौलिक चुक-चुक के कारण उन परम्पराओं को नहीं दिया भी दी है। पाठक जी की यह धारणा थी कि- कवि के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह हृन्द शास्त्र के विस्तृत नियमों को पढ़े। कविता पहले जाती है हृन्द शास्त्र पीछे।<sup>१</sup> इस धारणा से यह बात भी भाँति स्पष्ट हो जाती है कि पाठक जी हृन्दों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। इसी उदार दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप उन्होंने विभिन्न भाषाओं के —

हन्दों को भी अपनी काव्य में स्थान दिया है। उन्होंने उन हन्दों का भारतीयकरण किया जो हिन्दी काव्य की प्रकृति के अनुकूल हो सकते थे। उन्होंने कहा है कि बंगला, पराठी, द्रविड़, फारसी, जैमी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं के कोई हन्द यदि हिन्दी में सरसता के साथ आ सकें तो उनका ग्रहण की अनुचित न समझना चाहिए।<sup>१</sup> उस दृष्टिकोणगत नवीनता के कारण पाठक जी का काव्य हन्द की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध दिखलाई पड़ता है। उन्होंने लोक भाषा के हन्दों जैसे ठावनी, रौला, खली आदि का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए ठावनी हन्द दृष्टव्य है :

निष्ट खैला प्रान्त चिप अति मन्द गति फिरता हूँ,  
विष्ट खसीप महा जंगल में परिभ्रमण में करता हूँ  
ज्यों- ज्यों जागे हूँ फा अन्तरहित यह देश  
बढ़ता ही जाता है प्रति पद दीर्घ विशेष विशेष ।।<sup>२</sup>

इस प्रकार पाठक जी ने लोक- प्रचलित हन्द एवं सरल तथा सरस भाषा का प्रयोग कर स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रारम्भ किया। लोक हन्दों के साथ-साथ लोक- भाषा की मिठास को भी काव्य में लाने का उन्होंने प्रयत्न किया, जो वाचलकर आयावादी कवियों ने उन हन्दों का परिष्कार करके उन्हें अपनी अनुकूल भाषा हिन्दी के आधुनिक गीति- काव्य पर उन लोक- हन्दों का प्रभाव दिताई पड़ता है

१- हिन्दी ग्राम- साहित्य- सम्मेलन, कार्य- विवरण, दूसरा भाग, पृ० ३९ ।

२- एकान्तवासीयांगी, पृ० २ ।

### काव्यानुवाद विषयक मान्यताएँ :

पाठक जी स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ से प्रभावित थे। इसी लिए उन्होंने हिन्दी की पुरानी परम्पराओं के विरोध में स्वच्छन्दतावादी काव्य - प्रवृत्तियाँ को आरम्भ किया। इस दिशा में उनके तीन काव्यानुवाद उल्लेखनीय हैं। प्रथम अनुवाद दि हरमिट नाम की पुस्तक का है। जिसे पाठक जी ने एकान्त-वासी योगी के नाम से सन् १८८६ ई० में प्रस्तुत किया है। एकान्तवासीयोगी का प्रेम स्वच्छन्दतावादी भावना पर आधारित है पाठक जी का दूसरा अनुवाद शान्त पथिक है। यह भी गोल्डस्मिथ के दि टैक्टर का अनुवाद है। यहाँ अनुवाद भी सड़ी बोली और रौला हृन्द में प्रस्तुत किया गया है। पाठक जी का तीसरा अनुवाद ऊजड़ ग्राम दि डेजेर्ट्स किलेज) का अनुवाद है। यह क्रम भाषा में है। वैयक्तिक अनुभूतियाँ से परिपूर्ण चित्रण के कारण इस काव्यानुवाद ने भी विवेच्य युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा को प्रशस्त किया है। काव्यानुवाद के संघर्ष में पाठक जी की यह मान्यता रही है कि एक देश के काव्य का जिस में कि वर्तमान की जातीय भावों विशेषण हों दूसरे देश की भाषा के पदों में अनुवाद कर पूर्ण रूप दिशा देना एक यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन कार्य है।<sup>१</sup> इस मान्यता में पाठक जी के उदार दृष्टिकोण का परित्यक्त मिलता है। दूसरी के आधार पर उन्होंने उपर्युक्त तीन काव्यों का सफल अनुवाद किया है। इन अनुवादों के सम्बन्ध में उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि अधिक भाग अनुवाद का पंक्ति प्रति पंक्ति है, इसी कारण घुटि इस में विशेषतर होगी।<sup>२</sup> पाठक जी ने शान्त-पथिक की भूमिका में भी --

१- ऊजड़ ग्राम, दिज्ञप्ति से उद्धृत।

२- वही, वही।

यह कह दिया है कि- काव्य की प्रत्येक पंक्ति का उतना ही रूपान्तरण मूल भावों का सर्वथा विश्वसनीय प्रतिफलन नहीं होता।<sup>१</sup> इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पाठक जी अनुवाद कार्य को बुराह समझते हैं परन्तु फिर भी वह उस में अभिव्यञ्जना की स्वतन्त्रता को अनिवार्य मानते हैं। पाठक जी ने अपने तीनों अनुवादों की भूमिका में इस बात को स्पष्ट कर दिया है। पाठकों को मूल रचना की भाषा न जानने पर भी रुचि रहे इस कारण उन्होंने कहीं-कहीं परिवर्तन भी किया है, परन्तु उस से उस ग्रन्थ की सजीवता में कहीं भी अन्तर नहीं आया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पाठक जी के विषय व्यापक थे जिन में समाज-सुधार शिष्टा-प्रसार, प्रकृति सौन्दर्य, देश-प्रेम, और नारी जीवन की विविध प्रवृत्तियाँ समाहित थीं। पाठक जी ने नवीन भाषा, नूतन भाषा, नये उत्साह और अभिव्यक्ति कौशल से विवेच्य युग के जातीय जीवन में नये प्रवाह का संचार किया। पुराने कवि भी उनके सम्मुख रहे हैं केवल आदर्श रूप में उनकी थोड़ा बहुत कहीं काव्य में ग्रहण भी किया है लेकिन उनका अनुवाद नहीं किया है यही कारण है कि उनके काव्य-संबंधी मान्यताओं में यत्र-तत्र हर्म मौलिकता दिसलाई पड़ती है। उनके काव्यों में प्रेम का जैसा स्वच्छन्द प्रसार दिसलाई पड़ता है और प्रकृति की जैसी आत्मीयतापूर्ण भावों की मिलती है, उसके आधार पर उनकी स्वच्छन्दतावादी शैली का बोध प्राप्त किया जा सकता है। उनके द्वारा अनुदित स्कान्तवासीयोंगी, ऊजड़ ग्राम, तथा आन्त पथिक नामक कृतियों में प्रेम के सात्त्विक रूप एवं ग्रामीण अंचल के सौन्दर्य की--

१-

"Being throughout a line for line rendering of a terse and philosophical poem, it can not claim to be a very faithful reproduction of Original (आन्त पथिक, प्रीफेस से उद्धृत)

प्रतिष्ठा हुई है। प्रकृति के सजीव एवं अनुरागपूर्ण किन काश्मीर-सुषमा में भी प्राप्त होते हैं। काश्मीर सुषमा उनकी मौलिक कृति है। जिस के आधार पर विवेच्य काशीन काव्य में स्वच्छन्दतावाद का अच्छा मूल्यांकन किया जा सकता है। शम्व और माया के बीच में भी उन्होंने नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इस मनीनता और विविक्तता सामाजिकता तथा कलात्मकता का कारण ही सुकल जी ने कहा है कि- श्रीधर पाठक सच्चे स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक हैं।<sup>१</sup> इस में सन्देह नहीं कि पाठक जी के काव्य सिद्धान्तों एवं मान्यताओं ने स्वच्छन्दतावादी काव्य का स्तम्भ सहा कर दिया है। उन्होंने काव्य की समसामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप बताया है। यही कारण है कि उनके काव्य ग्रन्थ में मौलिकता एवं प्रातिशीलता के साथ-साथ आस्था पूर्ण भी हैं।

---

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२८ ।

## रामनरेश त्रिपाठी

### काव्य स्वरूप :-

रामनरेश त्रिपाठी ने काव्य की जन-साधारण की सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया है। जिसके कारण उनके काव्य में अधिक सरलता और स्वाभाविकता है। त्रिपाठी जी का समस्त काव्य ग्राम्य जीवन पर आधारित है। विवेच्य युग के तब तब से पहले कवि हैं जो उस विज्ञा में अग्रसर हुए हैं। उनका विचार था कि "स्वाभाविकता कविता का प्राण है।" इस मान्यता से यह बात स्पष्ट है कि त्रिपाठी जी काव्य में कृत्रिमता के विरोधी रहे हैं। उन्होंने सरल-स्वच्छन्द जीवन को मूल आधार बनाकर काव्य रचना की और इस क्षेत्र में नवीन दिशाओं का संकेत किया है। ग्राम्य-जीवन के प्रति उनका विशेष मोह रहा है जिसके परिप्रेक्ष्य में उन्होंने स्वप्न, पथिक, मिलन, जैसे सप्न काव्यों की रचना की। इन तीनों सप्न काव्यों में दाम्पत्य प्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना है। उनके कथानक मौलिक रूप से कवि कल्पना की उपज हैं। उन्होंने काव्य में नीतिकतावाद की अवहेलना की है। उनका स्वदेश-प्रेम प्रकृति से लेकर इस देश के जन-जीवन तक फैला हुआ है। त्रिपाठी जी ने यह भी माना है कि "कविता प्रकृति का गान है, वह मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है।" प्रकृति प्रेम, देश भक्ति, जन-कैमध और एकान्त - प्रणय ही त्रिपाठी जी के काव्य के मूल तत्त्व रहे हैं। त्रिपाठी के इन तत्त्व को उनके काव्य में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :

१- कविता - कौमुदी, भाग ३, पृ० १०३ ।

२- वही, वही, पृ० ६६ ।



प्रतिष्ठाण नूतन वैद्य बनाकर रंग- विरंग गिराला।  
राध के सम्मुख थिरक रही हैं नम में वारिद माला।  
नीचे नील समुद्र पतंगर ऊपर नील गगन हैं।  
घन पर बैठ कीच में विवह यही चाहता मन है।<sup>१</sup>

वैद्य भक्ति तथा स्वाधीनता का संदेश भी उनके काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है।

देव आश्रम- बलिदान तुम्हारा मांग रहा है आज कीरवर।  
दिग्विजयी वीरों के वंशज युवकों। उठो संगठित होकर।<sup>२</sup>

त्रिपाठी जी ने काव्य को जन जीवन की वस्तु बनाने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य का लक्ष्य, राष्ट्रीयता का प्रसार है। वे पराधीनता और दरिद्रता की दयनीय परिस्थिति से देश को मुक्त कराने के लिए युवक युवतियों का आह्वान करते हैं। त्रिपाठी जी के लिए सन्ध्याजी के स्थान पर कर्मठ व्यक्ति पूज्य है। उनके काव्य में कर्मठ, और आस्थावान नर- नारियों का चित्रण हुआ है। मिलन, की विजया और आनन्द पथिक का नायक पथिक, स्वप्न, की तुलना सभी कर्मठ निष्ठावा और राष्ट्र की नृजि के आकांक्षी हैं। वे पात्र देश के प्रति केवल मानसिक उत्साहमूर्ति ही व्यक्त नहीं करते हैं बल्कि संघर्ष करते हैं और अपने को बलिदान कर देते हैं।

त्रिपाठी जी ने काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत अधिक विस्तृत और व्यवस्थित रूप से कुछ विचार नहीं किया है। तीन सष्ठ काव्यों, दो चार फुटकर निबन्धों अथवा मूषिकावर्ग के आधार पर ही उनके काव्य स्वरूप सम्बन्धी--

१- पथिक, पृ० १५।

२- सरस्वती में प्रकाशित रचना, पृ० १३३ एवं १६०५।

मान्यताओं का चयन किया गया है। काव्य रूपों के प्रति उनके मन में कोई बाग्रह नहीं बिताई पड़ता है। उन्होंने मुक्तक, गीत गजल और सण्ड काव्यों की रचना समान रूप से की है। उनकी रचनाति वस्तुतः उनके सण्ड काव्यों के कारण है। जिन में कोई न कोई कहानी लेकर रचना की गई है। त्रिपाठी जी की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने तत्कालीन सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिवेश के अनुसार मौलिक कथार्थों की उद्भावना की है।

### काव्य - वात्सा :

प्रस्तुत सन्दर्भ में पं० रामनरेश त्रिपाठी के विचार इस प्रकार हैं जिस रचना को चुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो, उस रचना की कविता कहना ही क्यों चाहिए ? रस स्वाभाविक है कलकार यदि रस का सहायक हो तो स्वाभाविक नहीं तो अस्वाभाविक है।<sup>१</sup> त्रिपाठी जी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में काव्य गीतों की प्रेरणा ली है उन्हें सहजता से मौल्य रहा है और लड़ियों को भ्रस्तक उन्होंने तोड़ने का प्रयत्न किया है। परन्तु काव्य में वे रस की उपेक्षा नहीं कर सके हैं। इस विषय में उनकी यह मान्यता दृष्टव्य है : ' किसी ने रसात्मक काव्य को काव्य कहा है, किसी ने अपत्कार युक्त उक्ति को काव्य कहा है, किसी ने मनोहर कर्म उत्पन्न करने वाले शब्दों को काव्य कहा है, और किसी ने शब्द और कर्म दोनों को काव्य कहा है यह तो ठीक है कि शब्द और कर्म परस्पर अभिन्न हैं, इसलिए शब्द और कर्म दोनों मिलकर ही काव्य कहलाता है। पर शब्द और कर्म का शरीर मात्र है, काव्य की वात्सा तो रस है।<sup>२</sup> त्रिपाठी जी इस मान्यता से यह स्पष्ट है कि उन्होंने काव्य में रस को महत्व दिया है। वह कलकारों, और उक्ति कलकार के कट्टर विरोधी भी नहीं हैं। उन दोनों को भी वह काव्य के --

१- कविता कांमुदी, भाग १, पृ० १२७ ।

२- कविता कांमुदी, भाग १, पृ० १-२ सूचिका ।

लिए अनिवार्य रूप में स्वीकार करते हैं। अलंकार प्रधान काव्य की जिपाठी जी ने अधिक गौरव प्रदान नहीं किया है, बल्कि वे काव्य के आनन्द में अलंकारों का थोड़ा सा महत्व स्वीकार करते हैं ।

जिपाठी जी ने काव्य में कला से अधिक विचारों का महत्व दिया है। उनके समसामयिक कवियों की भांति उनका काव्य भी सामाजिक चेतना की भाव-भूमि पर विभित है। जिपाठी जी ने कला की उपेक्षा भी नहीं की है। उनका कवित्व विचारों और उपदेशों के नीचे नहीं दबा नहीं है। कला और विचार उनके काव्य में एक दूसरे के सहयोगी बनाकर जाये हैं कहीं भी एक दूसरे का विरोध और संघर्ष नहीं है ।

### काव्य हेतु :-

विषेय कालीन कवियों में रागनरेश जिपाठी की काव्य-हेतु सम्बन्धी मान्यताएँ मौलिक नहीं हैं । उन्होंने अधिकांश में परम्पराओं को ही स्वीकार किया है। काव्य रचना के लिए जन्मास, अध्ययन और काव्य-शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने कहा है कि- किसी-किसी में कविता शक्ति स्वाभाविक होती है, ऐसे जन थोड़े ही जन्मास से अच्छे कवि हो सकते हैं जिन में कवित्व शक्ति बीज-रूप में नहीं रहती उनके कवि बनने में बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है < < < < < कुछ कविता शक्ति प्राप्त हो जाने पर कवि को उचित है कि वह काव्य के और कानों का शान प्राप्त करे, सत्कवियों की संगति करे<sup>१</sup> जिपाठी जी अपने उपर्युक्त सिद्धान्तों में मौलिक नहीं हैं लेकिन अपने चित्रण में वे बहुत मौलिक और वास्तविक रहे हैं। वे विचारक या काव्यशास्त्री नहीं, बल्कि सरल-सहृदय कवि हैं-

इस लिए काव्य सम्बन्धी गम्भीर वाद विवादों में उन्होंने विशेष भाग नहीं लिया है। अपने काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं में भी उन्होंने काव्य-विद्वान्त सम्बन्धी गम्भीर बातें नहीं उठाई हैं। उन्होंने केवल अपने काव्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला है। साहित्य के विवेचन और सृजन के सन्दर्भ में त्रिपाठी जी उपन्यासकार प्रेमचन्द की भाँति दित्तलार पड़ते हैं। प्रेमचन्द की भाँति वे अपने विचारों में परम्परावादी प्रतीत होते हैं लेकिन अपने चित्रण में वे बहुत आधुनिक और व्यापक वादी हैं। कई स्थलों पर तो उन्होंने पुरानी परम्परा से हट कर बात कही है उन्होंने कविता को ईश्वर प्रदत्त नहीं, स्वाभाविक प्रवृत्ति कहा है। अभ्यास से इस में सौन्दर्य और कला की वृद्धि की जा सकती है। उनकी ये मान्यताएँ आधुनिक हैं।

### काव्य - विषय :-

विवेच्य युग की रचनाओं में विविधता, जीवन की गूढ़ मार्मिक या रमणीय परिस्थितियाँ फलकाने के लिए नूतन कथा-प्रसंगों की कल्पना या नवीन उद्भावनाओं की प्रवृत्ति बहुत कम मात्रा में दित्तलार पड़ती है। त्रिपाठी जी ने विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य का उत्कृष्ट रूप समारे सामने रखा है। उन्होंने कल्पित प्रबन्धों की ओर ध्यान दिया है। सरलता स्वाभाविकता तथा साजगी की दृष्टि से उनके कल्पित प्रबन्ध स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को प्रमाणित करते हैं। 'मिलन', 'पथिक', और 'स्वप्न' श्रृष्टिकीरचना करके त्रिपाठी जी ने मानव जीवन की सहज-संवेदनाओं और रसात्मक अनुभूतियों का जैसा स्वच्छन्द चित्रण किया है, वह अत्यन्त मधुर और देश-प्रेम की भावनाओं से जीत-प्रीत है। इन काव्यों में त्रिपाठी का प्रकृति-वर्णन, सौन्दर्य प्रेम तथा देश प्रेम के विन्न मिलते हैं जो उनके मौलिक विचारों की परिपक्वता करने में सहायक हैं। राष्ट्रियता और लोक जीवन त्रिपाठी जी के काव्य का आधार है। उन्होंने काव्य में निराशावादी एवं फुलत-स्थानवादी प्रवृत्तियों को प्रकट नहीं दिया है। लोक जीवन के गहन अध्ययन और कम्बो--

सम्पर्क के कारण उनमें कहीं निराशा नहीं है। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में- उनके काव्य में विद्रोह का स्वर है अनास्था या बराजकला नहीं है।<sup>१</sup> उन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों के स्थान पर लोक जीवन के स्वतन्त्र कथानक लिए हैं जो नये विकास के सूचक हैं। उनकी इसी स्वतन्त्र भावना तथा नवीन उद्-  
भावनाओं के विषय में बाबाय्य बुकल ने भी कहा है कि- "कल्पित आस्थाओं की और, यह कुकाव स्वच्छन्द मार्ग की अभिलाषा सूचित करता है।"<sup>२</sup> त्रिपाठी जी द्वारा कल्पित ये काव्य कथारें उनकी मौलिक सूक्त सूक्त की परिवर्धिका हैं। जो कि बुकल जी ने कहा है, इसी त्रिपाठी जी की स्वच्छन्द मनोवृत्ति का भी बीज होता है।

द्विवेदी मण्डल के कवियों जैसा हायावादी कवियों का देश-  
प्रेम भावनाओं तक ही सीमित हैं। उन्हें एक प्रकार की देवकी की अनुभूति है जिसे  
क्षिप्राग्ने के लिए द्विवेदी मण्डल के कवि पुरातन का आश्रय लेते हैं। हायावादी कवि  
रहस्य और सूक्ष्म कला का सहारा लेते दिखाई देते हैं। लेकिन इस युग के स्वच्छन्द-  
तावादी कवि विशेषकर त्रिपाठी जी वर्तमान में रहकर अपने आप को राष्ट्रीय  
मुक्ति आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लेते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों की राष्ट्रीय-  
यता अधिक यथार्थ आधुनिक और व्यापक है। श्रीधर पाठक की राष्ट्रीयता का  
विकसित रूप हमें त्रिपाठी जी में मिलता है और त्रिपाठी जी की राष्ट्रीयता का  
परिपुष्ट रूप तुमका कुमारी चौहान, मातंगलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन  
दिनकर आदि बरकती कवियों में मिलता है। इन कवियों में स्वच्छन्दतावादी राष्ट्रीय  
प्रवृत्तियों का विकसित और प्रौढ़ - रूप मिलता है।

१- डा० रामविलास शर्मा- प्राति और परम्परा, पृ० ३२ ।

२- बाबाय्य रामचन्द्र बुकल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२८ ।

त्रिपाठी जी ने स्वदेश की मुक्ति कराने के लिए युवकों के सामने संघर्ष और बलिदान का उद्देश्य रखा है। आधुनिक हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम उन्होंने राष्ट्रियता की संकीर्णता को सामा से निकाल कर मानवता तक विस्तृत करने का प्रयास किया है :

रक्षित रहने की मुक्त पर  
मनुष्यता का नाम ।  
उठने वाले हैं ईश्वर के  
कर असंख्य अविराम ।  
अस्थि - चर्मस्य कंकालों में  
जो कुछ बल है- शेष,  
संघर्ष कर रिपु रक्षित करुंगा अपना प्यारा देश।<sup>१</sup>

आर्यसमाज ने कुरीतियाँ और बर्मे काड़ का तो खण्डन किया, किन्तु उत्तर भारत में पवित्रतावादी, नैतिकतावादी प्रवृत्तियों को बहुत बढ़ावा दिया। इन प्रवृत्तियों का तत्कालीन कवि और लेखकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। हिन्दूधर्म मण्डल के कवि मूलतः आर्य-समाज से ही प्रभावित रहे हैं। ये प्रवृत्तियाँ किसी जागरूक व्यक्ति को या तो वर्तमान युग के अत्यन्त-शीघ्र और विषमता से अतीत की ओर ले जाती हैं, अथवा सन्ध्यासी बना देती हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में इन प्रवृत्तियों और उसके परिणामों का विरोध किया है। पाठक जी के काव्य में यह स्वर मधुर है लेकिन त्रिपाठी जी के काव्य में विरोध का यह स्वर बहुत तीव्र है। वे कर्तव्य के नाम पर भागने वाले व्यक्ति को कायर समझते हैं। मातृभूमि केवल बर्तन करने, आपस ब्यारने या सन्ध्यासी बनने से मुक्त नहीं हो सकती है- उसके लिए--

१- विलन, पृ० ११ प्रथम सर्ग ।

तो निरन्तर कम, त्याग और बलिदानों की आवश्यकता है। त्रिपाठी जी ने काव्य-विषयों की पुरानी परम्परा से हटकर कहा है कि- प्राचीन कवियों से टकरा लेना छोड़कर हिन्दी कवियों को बीरवीर रतावीर की मानसिक अवस्था के अनुसार बिल्कुल नवीन विषय-विलास में लिप्त होना चाहिए।<sup>१</sup> त्रिपाठी जी के उस कथन से यह बात स्पष्ट है कि काव्य में लोकहित के अनुसार गम्भीर और उपयोगी विषयों का चयन महत्वपूर्ण है। त्रिपाठी जी की देश-प्रेम प्रिय रहा है उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

यह प्रत्येक देशवासी का उत्कर्षव्य कटत है ।

करै देश-सेवा में अर्पण उसी जितना श्रुत है॥<sup>२</sup>

< < < < < < < < < <

जिसने भी तुम पाया उसका रुद्धम विमोहक गान।

हुवा उसी का देश-प्रेम से पूरण स्थायित प्राण॥<sup>३</sup>

इस प्रकार त्रिपाठी जी के काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण में विवेच्य युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हैं। उनकी अधिकतर काव्य-मान्यताएँ मौलिक और सरल हैं ।

### काव्य प्रयोजन :-

काव्य प्रयोजन के सम्बन्ध में त्रिपाठी जी की मान्यता इस प्रकार है : हम ऐसे कवियों से सादर निवेदन करते हैं कि वे लोक-हित को लक्ष्य में रखकर कविता लिख सकें तो लिखें ।<sup>४</sup> त्रिपाठी जी के इस कथन से यह बात स्पष्ट है कि काव्य --

१- कविता-कौमुदी, धैराज - ज्योष्ठ, संवत् १९८१, पृ० ८१ ।

२- पथिक, पृ० ५६ ।

३- मिलन, पृ० ६६ ।

४- कविता कौमुदी, कार्तिक - मार्गशीर्ष, पृ० ३५७ ।

समसामयिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। पुराने श्रृंगार कवियों ने जो कुछ लिखा है वह कला की दृष्टि से चाहे किता ही उत्कृष्ट हो परन्तु त्रिपाठी जी काव्य में ऐसी घोर कला के कट्टर विरोधी रहे हैं। क्यों कि ऐसी काव्य रचना को त्रिपाठी जी केवल पाण्डित्य प्रदर्शन का एक मात्र नमूना समझते थे इसी कारण उन्होंने अपने काव्य में समयानुसृत विषयों का सरल और स्वामा-  
निक रूप प्रस्तुत किया है। काव्य-प्रयोजन के सम्बन्ध में त्रिपाठी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि 'मैंने बाजकल के नवयुवकों के विद्वेषितमय हृदय को चित्रित करने का प्रयत्न किया है बाजकल एक और तो देश का दुःस दैन्य करुण रस उत्पन्न कर रहा है, दूसरी ओर शौन्दर्य - श्रृंगार और सुख के लिए प्रकृति का बोधोत्पन्न है। नवयुवकों का मार्ग श्रृंगार और करुण रस के बीच का है। कुछ हृदयों के लिए दोनों ओर प्रवृत्त आकर्षण है। त्रिपाठी जी ने जीवन में कर्तव्य और प्रेम को समान स्थान दिया है। वे शौन्दर्य का महत्त्व स्वीकार करते हैं। उनके काव्य में लौकिक प्रेम और व्यावहारिक राष्ट्रियता का स्वाभाविक और आकर्षक चित्रण है। अपने काव्य को उन्होंने नैतिकता के द्वार से अलग कर रखा है और उदात्त प्रेम का मयूर सम्मिश्रण है। उनके काव्य में प्रकृति भी अनिवार्य रूप में रही है। ग्राम्य जीवन की ओर भी वे इसी प्रकृति प्रेम के कारण अग्रसर हुए हैं, लेकिन वहाँ उनका सहृदय और यथार्थवादी कवि, प्रकृति के स्थाप पर उस जीवन के दारुण दुःखों, विषमताओं शोषण आदि का चित्रण करने लगा है। इतनी गहरी सामाजिकता और सहानुभूति पूर्ण जीवन-दृष्टि इस युग के किसी दूसरे कवि में नहीं है त्रिपाठी जी काव्य प्रयोजन सम्बन्धी विचारों में युग के सबसे बड़े स्वच्छन्दतावादी और राष्ट्र-कवि हैं।

#### काव्य - भाषा

त्रिपाठी जी ने काव्य-शिल्प की ओर अपनी विशेष रुचि दिखाई है। त्रिपाठी जी की शब्द-चयन की कुशलता असाधारण है। जिस --



प्रकार का व्यवहार है उसी प्रकार की शब्दावली कवि की जिह्वा पर बनायाव  
जा गई है। उन्होंने अपने तीन खण्ड काव्यों में सड़ी बोली का प्रयोग किया है।  
पाठक जी भाषा से अधिक भावों की महत्त्वपूर्ण मानकर कहें हैं उनका विचार था  
कि-“भाषा तो शरीर मात्र है, प्राण तो भाव है।” भावों की ओर विशेष  
ध्यान रखते हुए भी त्रिपाठी जी भाषा के कार्य-सौन्दर्य में उदात्तक मानते हैं।  
इसी कारण उनकी भाषा एवं भाव बहुत सरल और स्वाभाविक है। उनकी यह  
मान्यता कि- प्रसाद गुण से रहित काव्य की तो काव्य कहना ही न चाहिए।<sup>१</sup>  
इस से यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने भाषा की सरलता एवं वस्तुता से विशेष  
मोह रखा है। उन्होंने पुरानी भाषा की सुदृढ़ियों को तोड़ने का मरजक प्रयत्न  
किया है। उनकी इस प्रवृत्ति से स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बोध होता  
है। उन्होंने काव्य में मुहावरों के प्रयोग पर भी कल दिया है। त्रिपाठी जी ने  
कहीं - कहीं अच्छे मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ  
दृष्टव्य हैं :

साते हैं गम और वासुकी से ही प्यास बुझाते ॥<sup>२</sup>

< < < < < < < <

सौकर लौती है दुनियाँ, मैं हाथ बागकर लौती ॥<sup>३</sup>

< < < < < < < <

मिलने की उठती हूँ। लौतिन आँसु प्रेम उठ जाती ॥<sup>४</sup>

भाषा और भावों का सुन्दर चित्र भी उनके काव्य में सम्मिश्रित है  
उदाहरण के लिए निम्नांकित द्वन्द्व दृष्टव्य हैं।

१- स्वप्नों के चित्र, अपनी कहानी, पृ० २ ।

२- कविता कौमुदी, भाग १, भूमिका, पृ० ३ ।

३- पथिक, पृ० ४३ ।

४- वही, पृ० ४६ ।

५- वही, पृ० ४६ ।

साण में उमड़ - धुमड़ गर्जन कर ।

घिर आवे पन पौर ।

बला विषम विदितास फ़ाँजन

बुद्धों को ककरीर ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में उनकी यह नीतिकता स्वच्छन्दतावादी काव्य का बोध कराती है। भाषा की इस नवीनता एवं स्वच्छन्दता का विकास शाखावादी काव्य में जाकर हुआ है।

काव्य में छन्द :

काव्य के सृजित छन्दों, उपमाओं एवं विषयों में त्रिपाठी जी की मनोवृत्ति रही नहीं है। त्रिपाठी जी ने लड़ी बोली में नये-नये छन्दों का प्रयोग करके स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का परिचय दिया है। त्रिपाठी का विचार है कि कवि को एक योजना के लिए शब्दों का कुछ रूप में प्रयोग करना चाहिए ।<sup>२</sup> इस से स्पष्ट है कि ठीक-ठीक मिल जाने पर छन्द पढ़ते समय कानों की बहुत मधुर लगता है। छन्दों पर उनका पूर्ण अधिकार है दिखलाई पड़ता है । हिन्दी के पुराने - नये छन्दों के अतिरिक्त कतिपय उर्दू छन्दों का भी व्यवहार किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है ।

जब शाम आ रही है बिड़िया ली उत्तारने,  
दिन भर थके हुए से पदो लो ठहरने,  
बहने लीं ऊँचाई किरने पहाड़ियों की ।  
गाने लीं कतारें गुंजाव फाँड़ियों की ॥<sup>३</sup>

१- मिलन, पृ० २२ ।

२- कवि-कौमुदी, पैरास - ज्येष्ठ १९८१, पृ० ७६ ।

३- मानसी, द्वितीय संस्करण, पृ० ६५ ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह ज्ञते हैं कि त्रिपाठी ने काव्य स्वरूप, काव्य वात्सा, काव्य-प्रयोजन तथा कवियों के विषय संबंधी मान्यताओं में अपनी मौलिक छुक-छुक का परिचय दिया है। उन्होंने लौकिक प्रेम और व्यावहारिक राष्ट्रीयता का स्वरूप हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य का स्वरूप सरल एवं स्वाभाविक है। प्रसादमयी भाषा के कारण उनके प्रेम की उदात्त भावनाएँ हृदय की स्पर्श करने में सफल हैं। प्रकृति की रुढ़ परम्परा को तोड़कर उन्होंने प्रकृति को काव्य में स्वतन्त्र स्थान दिया। नारी का उच्च आदर्श भी उन्होंने अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। श्रीधर पाठक के उपरान्त विवेच्य युग में इतनी विशुद्ध और प्रबल स्वच्छन्दतावादी भावना रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में ही आ सकी है। फलतः त्रिपाठी जी की काव्य मान्यताएँ स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण हैं। उनके काव्य सम्बन्धी मौलिक मान्यताओं ने छायावाद के लिए नया पथ तैयार किया है।

### हायावाद के आरम्भिक कवियों की काव्य दृष्टि

विवेच्य काल के अन्तिम वर्ण में सन् १८९४ ई० के लगभग हिन्दी-काव्य में एक नयी कलात्मक दृष्टि का उन्मेष हुआ । काव्य की यह नयी भाव-भूमि थी, जिसने ऋग्वेदी युग की कल्पना विहीन एवं नीरस कविता का विस्फार किया । इस काव्य धारा ने हिन्दी काव्य को एक नयी दिशा प्रदान की । यह हिन्दी कविता का अत्यन्त कलात्मक आन्दोलन था। इसलिए काल्पनिक अणु की रचना करने में इन कवियों को यथेष्ट सफलता मिली । विवेच्य-काल में हायावादी कवियों ने काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के विषय में बहुत कम कहा है । लेकिन जागे चलेकर इन कवियों ने अपनी मान्यताओं को अपने काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं तथा ऐत्यों द्वारा स्पष्ट किया है। जो हमारे अध्ययन की सीमा से परे है । इसलिए यहाँ इन कवियों के काव्य और कला सम्बन्धी विचारों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

हायावाद के उद्भव और उन्मेष में स्वच्छन्दतावाद का योग महत्वपूर्ण रहा है । विवेच्य काल के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ही वस्तुतः हायावाद का पथ प्रशस्त किया । जागे चलेकर स्वच्छन्दतावाद हायावाद में घुल-मिल गया। विवेच्य काल और हायावाद युग की सन्धि-रेखा व्यापक होते हुए भी सूक्ष्म है। जिन्हें हम स्वच्छन्दतावादी कवि कहते हैं उनकी कृतियों में हायावाद की कलक दिखाई पड़ती है। प्रताप, निराला एवं पन्त की जो रचनाएँ युग की परिधि में आती हैं उनमें हायावाद की अपेक्षा स्वच्छन्दतावाद का रंग अधिक है। पन्त की तो हायावाद युग में भी मूलतः स्वच्छन्दतावादी रहे हैं । प्राकृतिक सौन्दर्य एवं नारी के प्रति अनुरागपूर्ण दृष्टि, मानव के प्रति सहानुभूति, कल्पना की ऊँची उड़ान और स्वच्छन्द चिन्तन का जो वैशिष्ट्य उनके काव्य में उल्लेख्य होता है वह--

सब स्वच्छन्दतावादी ही हैं। प्रताप, पन्त, निराला तथा कुटुम्बर बाण्डेय आदि छायावादी कवि स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों के पोषक रहे हैं। प्रताप जी ने काव्य को कला से कला करके स्वतन्त्र रूप में स्वीकार किया है। उनके विचार से काव्य कला से भिन्न है। प्रताप जी काव्य में मानव हृदय की सुन्दर अनुभूतियों को तबत्र सुन्दर रूप में रखने के समर्थक रहे हैं। उन की काव्य संबंधी यह धारणा काव्य आत्मानुभूति की मौलिक अभिव्यक्ति है। - वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी है। प्रताप जी ने स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरह काव्य को मुख्य तथा कला को गौण माना है। अनुभूति को महत्व देकर उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाया है। उनके काव्य में मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई है। उनका यह भी स्वच्छन्दतावादी है। उन्होंने प्रेम पथिक महारणा का महत्व और फरमा तीन सण्ड काव्यों की रचना की है। इन तीनों सण्ड काव्यों में विवेच्य कठिन स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरह मानवीय दृष्टि का विकास हुआ है। प्रेम-पथिक में काव्य के मौलिक स्वरूप तथा प्रेम के उदात्त स्वरूप को प्रस्तुत करके उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए निर्माकित शब्द दृष्टव्य हैं जिसमें प्रेम के क्लौकिक रूप की ओर संकेत किया गया है :

आ प्य का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।

किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके बागे राह नहीं।।<sup>१</sup>

उनके काव्य में मानव प्रवृत्तियों के सुन्दर चित्रण, प्रकृति के मनोहारी वर्णन, शीन्दर्याकन, प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति, नयी रूपका दृष्टि, प्रणय-उपमा, मानवतावाद तथा भाषा शब्द आदि से सम्बद्ध छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। परन्तु इन सब का माध्यम से प्रताप जी स्वच्छन्दतावादी<sup>एव</sup> विरोधी-

१- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध ग्रन्थ संस्करण, पृ० ४२ भारतीय मण्डार ।

२- प्रेम- पथिक, पृ० ६ ।

रूप में भी हमारे सामने आये हैं ।

विवेक्य युग के छायावादी कवियों में निराला जी ने भावानुभूति की दृष्टि से नये- नये आवागम लीये हैं। भाषा शुद्ध, अभिव्यक्ति आपि दीर्घों में भी उन्होंने आधुनिक हिन्दी काव्य को नयी दिशाएँ दी हैं। उनकी कृतियाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को भी परिशोधित करती हैं। उन्होंने काव्य के स्वरूप विषय में स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरह अपनी मान्यता दी है कि साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उसके प्राणी के रंग से रंगीन होकर वे जीव साधारणों को भी रंग देती हैं।<sup>१</sup> कवि ने अनुभूतियों की शुद्धता और कौशल अभिव्यक्ति पर बल देकर स्वच्छन्दतावाद को सुदृढ़ बनाया है। निराला ने लोक-धर्म के प्रशस्तीकरण को काव्य का मूल धर्म माना है। उन्होंने युग चेतना की अनुभूति पर भी विशेष बल दिया है। उनके मतानुसार काव्य में स्वतंत्र विचारों का प्रथम होना चाहिए परन्तु उन स्वतन्त्र विचारों को युग चेतना की अनुभूति के अनुसार मंगलकारी रूप में व्यक्त होना जरूरी है। निराला का प्रकृति चित्रण भी मौलिक है। विवेक्य युग की रचना जुही की कही स्वच्छन्दतावादी काव्य की अत्यन्त निधि है। कवि ने विमन - बन बत्तरी पर ली कली को नायिका के रूप में चित्रित किया है ।

निराला ने प्रेम के सुहृद तथा स्मृत दीर्घों रूपों को प्रस्तुत किया है। उनकी बहुवस्तु - स्पर्शनी प्रतिमा है। उनमें छायावादी काव्य दृष्टि का उन्मेष है। उन्होंने काव्य-रचना विषयक पारम्परिक रुढ़ियों को तोड़कर एक स्वच्छन्द-

मार्ग अपनाया जो उनकी स्वच्छन्दतावादी रुचि का परिचायक है। उनका व्यक्तित्व विद्रोही और प्रसार है। पन्त जी ने उनके व्यक्तित्व का संपादन उन शब्दों में किया है।

छन्द बंध धुन लौढ़, फौड़कर पर्यंत कारा,  
अकल रुढ़ियाँ की, कवि, तेरी कविता पारा,  
मुक्त, अक्षय, अन्ध, रजत निम्कर ही निःसृत,  
गलित उलित आलौक राशि, विर अन्तुष्य अविजित।  
स्फटिक छिछाई से तुने बाणी का मन्थिर  
शिल्पि, बनाया, ज्योति मल्ल निज यश का पर विर।।

पन्त जी ने काव्य के स्वरूप निर्धारण में मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होंने काव्य की नये समाज के निर्माण का एक साधन माना है। उन्होंने कहा है कि- साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गंभीर व्याख्या है।<sup>१</sup> पन्त जी की यह मान्यता वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद की परिलक्षित करती है। उन्होंने युगानुरूप रचना को प्रेष्ठ माना है। उनके काव्य की मौलिक प्रतिभा के विषय में डा० शिवदान सिंह के विचार द्रष्टव्य हैं : पन्त काव्य को यदि समय रूप से देखें तो उसकी सुरुभ सौन्दर्य दृष्टि और सुकुमार उपाच करुणा हिन्दी साहित्य में अनन्य है। लौक्यमल की साधना करने वाले इस महाकवि जैसी युग-जीवन की व्यापक आर्थिक-सांस्कृतिक समस्याओं की चेतना भी अन्यत्र दुर्लभ है।<sup>२</sup> पन्त जी के काव्य में प्रकृति प्रणय, और सौन्दर्य के साथ-साथ सामाजिक न्यायवाद

१- गद्य- पथ, पृ० २०५ ।

२- डा० शिवदान सिंह, हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, प्र० संस्करण पृ० ४५३ ।

एवं सुदृढ भाव-बोध की भी अभिव्यक्ति हुई है। उनकी रचना ग्रन्थि प्रकृति प्रेम की दृष्टि से उत्कृष्ट है। भाषा, शब्द, अलंकार विधान, तथा भावामिव्यंजना की नूतन प्रणाली की दृष्टि से भी उन्होंने काव्य में नयी राहें निकाली हैं उन्होंने रचना के पारम्परिक उपादानों की नया संस्कार दिया है। उनके काव्य-स्वरूप एवं काव्य-शिल्प में नयी पद्धतियाँ उपलब्ध होती हैं। भाषा में रागात्मकता और बिनात्मकता, अलंकारों में सूक्ष्म साकेतिकता, शब्द में विषयानुरूपता, आदि पर बल देकर उन्होंने छायावादी काव्य को प्रौढ़ता प्रदान की है। उनकी काव्य रक्षा के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ अमानान्तर रूप से देखी जा सकती हैं।

विविध युग में पाण्डेय जी की गणना छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि बनाने वाले कवियों में की जाती है। उनकी मौलिकता काव्य के स्वरूप निर्धारण में है। उनकी यह मान्यता रही है कि- मौलिकता का अभाव व्यक्तित्व का बाधक है जो कवि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बिना व्यक्तित्व दिखाए, कवि-प्रतिपदि किसी को नहीं मिल सकती। वह व्यक्तित्व चाहे भाव में हो, शब्द में हो या प्रकाशन रीति में हो, पर कविता में हो जरूर जिसकी कविता में व्यक्तित्व नहीं उसे कवि नहीं, अनुकरणकारी कहना चाहिए।<sup>१</sup> इस में व्यक्तित्व और मौलिकता से पाण्डेय जी तात्पर्य काव्य में अनुभूति की नवीनता से है। क्योंकि मौलिक व्यक्तित्व से सम्पन्न रचना में जीवन की गहराई एवं सत्यता होती है। इसीलिए उन्होंने यह भी कहा है कि -

---

१- श्री शारदा, सम्पादक नर्मदा प्रसाद मिश्र, कुलार्थ, सन् १९२० ई० पृ० २७८।



हँव्याँ, क्यूया तब पदापालः  
सदा बताते बस सत्य- बात ।  
संतार में गण्य तदा जनन्य  
मी सत्कर्म ! ही तुम यन्य वन्य॥<sup>१</sup>

काव्य प्रयोजन में श्री पाण्डेय जी ने अपने मौलिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्होंने तानन्द और लोक-हित को काव्य प्रयोजन मानते हुए कहा है कि- कवि की अवस्था बदली रहती है। उसी के अनुसार उसकी कविता के उत्कर्ष और उद्देश्य में भी विचलन आ जाती है<sup>२</sup> पाण्डेय जी ने प्रकृति को एक यत्न स्वच्छन्द तथा रागात्मक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। उनकी कविताएँ प्रेम मूलक रही हैं। सन् १९१७ ई० में प्रकाशित, जांचू रचना में स्वच्छन्द काव्य का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है।

मेरे जीवन की लघु तरणी,  
आँसों के पानों में तर जा  
मेरे उर का छिपा खजाना,  
अँकार का भाव पुराना,  
तप्त श्वेत धुआँ में ढर जा।<sup>३</sup>

---

१- छन्दु, जुलाई सन् १९१२ ई० संकेत - सप्तक शीर्षक कविता से यद्धुत ।

२- पावुरी, फरवरी सन् १९२२ ई० पृ० १७६ ।

३- सरस्वती, सन् १९१७ ई० पृ० ४३१ ।

इस रचना में कवि की वैयक्तिकता के साथ सुख दुःख की अनुभूति का भी पूर्ण समावेश है। पाण्डेय जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ पूरी मात्रा में विस्तारित पड़ती हैं ।

विवेच्य काल के हायावादी कवियों की काव्य-दृष्टि जारम्भिक अवस्था ही में विकलार्थ पड़ती है। कभी हायावाद का पूरी तरह से उन्मेष भी नहीं हो पाया था किन्तु जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है हायावाद स्वच्छन्दतावाद की पीठ पर ही आया। अतएव विवेच्य काल के हायावादी कवियों में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ पूरे वर्ग पर दिस्तार्थ पड़ती हैं। स्वच्छन्दतावाद का मूल्यार्क्य करते समय इस काल के हायावादी कवियों की जारम्भिक रचनाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

### स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण : अन्य कवि

इफनारायण पाण्डेय ने अपने सड़ी बोली के काव्य में देश- दशा, समाज दशा, स्वदेश प्रेम आदि का चित्रण किया है। उनकी सड़ी बोली का काव्य स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों और काव्य- सिद्धान्तों से प्रभावित रहा है। पाण्डेय जी की काव्य- दृष्टि भी हिन्दूवेदी मण्डल के कवियों से भिन्न है। उनका काव्य का उद्देश्य सरलता और उदारता का समन्वय है। उनके काव्य में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं है। नये काव्य- विषय और नूतन अभिव्यञ्जना की दृष्टि से वे स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने काव्य में सड़ी बोली के व्यावहारिक स्वरूप पर अधिक बल दिया है। अन्य कवि काव्य- धूमि के लिए मौलिकता की सौज ही करते रहे हैं। स्वदेश- प्रेम और राष्ट्रीय स्वाभिमान उनकी अधिकांश कविताओं का विषय रहे हैं। उदाहरण के लिए उनका निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

कहते हैं सब लोग हमें, हम दोन हीन हैं भिदगुह हैं ।  
कुछ भी जो हम लोग अभी बच्चे होने के हक्क हैं।  
सब हैं, वैभव नहीं रहा पर बुद्धि हमारी हीन नहीं।  
पौरुष कन हैं, मगर धुर हैं मनुष्यत्व से हीन नहीं॥<sup>१</sup>

हिन्दूवेदी मण्डल के कवियों की तरह पाण्डेय जी के काव्य में शक्तिवृत्तात्मकता, नीरसता तथा उपदेशात्मकता नहीं है। इस लिए स्थान-स्थान पर वह --

---

१- इफनारायण पाण्डेय, पणा, पृ० २२ ।

कवि, कविता का चन्दन देते हुए चले हैं। उनका दुःखवाद कभी-कभी कठारता की ओर भी ले जाता है लेकिन उनकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ और कौमलता उन्हें नैतिकतावादी काव्य-दृष्टि से बचाये रखती है। ये वैयक्तिकता और कौमलता उन्हें काला काव्य से मिली है। पाण्डेय जी का दुःखवाद हायावाद के सम्पर्क से निराशावाद में परिणत हो गया है। काव्य-शिल्प के सम्बन्ध में उन्होंने अतुल्य छन्दों का भी उत्कृष्ट प्रयोग किया है। भाषा और रचना में वे संकीर्णता के विरोधी रहे हैं। पाण्डेय जी का प्रकृति-प्रेम भी वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को परिचित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। उनका प्रकृति चित्रण प्राचीन परम्पराओं से कुछ दिसलाई पड़ता है। उनका नीरिक्ताण मौलिक है। इसी लिए उनका काव्य हायावादी काव्य की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

मन्नन बिबूवेदी गजपुरी भाव, भाषा और छन्द आदि सभी दृष्टियों से परम्परायुक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों की श्रेणी में रहे जाते हैं। उनकी भावनाएँ उन्मुक्त हैं। उनके काव्य में एक सज्ज स्वभाविकता और सरलता है। उन्होंने अपने प्रकृति चित्रण की स्पष्टता से बचाने का भरसक प्रयत्न किया है। उन्होंने अपनी मौलिक सूक्त-कृत के द्वारा काव्य क्षेत्रों में नवीनता भरी है। उनके काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोण भी है। काव्य में विषयों की नवीनता के प्रति उनका विशेष प्रकार का मौह रहा है। मौलिकता और नवीनता के प्रति जाग्रह होने के कारण ही उन्होंने मैपीलियस बीनापार्ट पर बड़ी शोकपूर्ण कविता की रचना की है। इतने छोटे और साधारण से विषय को लेकर काव्य रचना करना वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी कवियों की ही उपलब्धि है। उस प्रकार की मौलिक-

और सुन्दर रचनाओं ने ही स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को विकसित होने में सहायता की है। इसीलिए मित्र जी ने भी उस रचना के विषय में यह कहा है कि- नैपोलियन बोनापार्ट पर लिखी गई रचना शोकपूर्ण है। उन्हें वर्तमान में विश्वव्यापी आतारता दिखाई दी है। परन्तु इस आतारता के पीछे एक यस्ती है, निराशा नहीं है। इसी लिए इस रचना ने आतारतावादी काव्य का प्रभाव भी दिया है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरह मन्नन बिह्वेदी गजपुरी को भी भारत देश और उसकी प्रकृति से अगाध प्रेम रहा है। उनकी देश-भक्ति का एक छन्द दृष्टव्य है :

जाग दिखाई पड़ते हैं जो सुमन सुभग सोना शाली ।  
 बल आता ही उन्हें तोड़ने वह देता जाता माली ।  
 अथवा मुझे सुला देना उस प्यारे करने के तीर ।  
 जिसका बल पीकर जाता था, वह नृप ऐनिक बन्धी कीर ॥<sup>१</sup>

मन्नन बिह्वेदी गजपुरी ने भारत देश की प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त भारत की दीन-हीन दशा पर भी रचनाएँ की हैं। प्रकृति के माध्यम से वे देश के अतीत गौरव का स्मरण करते हैं ।

बसावे गंगा कहां गया है, प्रताप पौरुष विभव सारा ?  
 कहां युधिष्ठिर, कहां है अर्जुन, कहां है भारत का कृष्ण प्यारा ॥<sup>२</sup>

१- रामचन्द्र मिश्र, श्रीपर पाठक तथा उनका पूर्व स्वच्छन्दतावाद काव्य, पृ० ३५८ ।

२- मन्नन बिह्वेदी गजपुरी, बोनापार्ट के अन्तिम दिन, सरस्वती जून १९१३ पृ० ३२

३- वही, हिमालय, सरस्वती, जून, जून १९१५ छं० पृ० ६९३ ।

मन्मथ बिष्टाजी का यह प्रकृति चित्रण परम्परा से बिल्कुल मुक्त  
दिखाई पड़ता है। कवि ने उस हृदय में अपनी सामाजिक चेतना की प्रकृति में  
आरोपित किया है। उनकी काव्य दृष्टि के माध्यम से भी तत्कालीन स्वच्छन्दतावादी  
काव्य द्वारा तो कुछ और प्राप्त किया जा सकता है।

### स्वच्छन्दतावादी काव्य-दृष्टि

रीति काल के अन्तिम चरण में आकर कविगण स्वयं यह सोचने लगे थे, कि कविता की स्थिति ठीक नहीं है। उसमें सुधार और परिवर्तन की होने की आवश्यकता है।

ढेर सौ बनाय, पैलत समा के बीच  
लौगन कवित करिबो खेल करि जानी है।

< < < < < < < < (कवि ठाकुर)

एती फुठी फुनी बनाई और कहाई कवि ।  
ताहु में कहँ कि हमें शारदा का वर है॥

रीति काल के कवियों के इस अस्तित्व का सब से बड़ा कारण यह था कि कविता का स्वर बहुत संकीर्ण हो गया था। कविता के विषय थिथक कर नारी के कानों पर आ टिके थे। दीर्घ काल तक एक ही प्रकार के रूपकों और उपमाओं के प्रयुक्त होने से काव्य में नवीनता नहीं रह गई थी।

जब हिन्दी क्षेत्र में स्वामी दयानन्द का पवित्रतावादी आन्दोलन चला, तब कवियों को अपने अतीत से ग्लानि होने लगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन कवियों ने अपना स्वर रीति-काल से न भिन्नकर, भक्ति काल से जोड़ने का प्रयत्न किया। उन में तत्कालीन सामाजिक चेतना का भी अभ्युदय हुआ। भारतेन्दु की कविता में जो विचार व्यक्त हुए हैं वे भारत-यूरोप के संघर्ष का अनिवार्य परिणाम थे। वे विचार एक नवीन चेतना से उद्भूत हैं। जब देश जयना--

मनुष्य पर संकट जाया हो तब कवि की समाजोपयोगी कार्यों की प्राप्ति में लग जाना चाहिए । भारतेन्दु से ही काव्य में उपयोगितावाद का आन्दोलन आरम्भ हुआ । रीति कालीन कलावाद ने इस काव्य के सामने समर्पण कर दिया। इस से यह बात स्पष्ट हो गई कि काव्य में मुख्य वस्तु विचार है, शिल्प नहीं ।

द्विवेदी कुनि कविता का उद्देश्य व्यावहारिक उपयोगितावाद रहा तत्कालीन कवि अधिभूत दैनिक जीवन में जाने वाले विषयों को लेकर काव्य रचना की ओर उन्मुख हुए दैनिक जीवन के विषय उपयोगी तो होते हैं किन्तु उन में आकर्षण का अभाव होता है वे जीवन की घटनाओं को भूलाने के बदले पाठक को उस की ओर भी याद दिलाते हैं। इसीलिए द्विवेदी पण्डित के कवियों की रचनाओं में शक्तिवात्मकता अधिक है। ऐसा जान पड़ता है कि, जो बात गद्य में कही जा सकती हो, वही तुकबन्दी बना ली गई है।<sup>१</sup> उन्नीसवीं शताब्दी में देश में सांस्कृतिक नवोत्थान की जी लहर उठी थी, उससे प्रेरित होकर कविगण निवृत्ति और पायावाद से भाग रहे थे। वे कई मनुष्य और नारी, दोनों के मूल्यों की लोच में ऊपर उठना चाहते थे। लेकिन काव्यपदा की उपेक्षा और अत्यधिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण ने उनकी कविता को नीरस और रूखा बना दिया । इस युग में माणा भी तैयार नहीं थी इस कारण कविगण अपनी संभावनाओं का पूरी तरह उपयोग नहीं कर सके ।

१- विनयमोहन शर्मा, साहित्य, शोध, समीक्षा, पृ० १० भारतीय साहित्य  
मन्दिर सन् १९६९ ।



द्विवेदी युग रीति काल की प्रतिक्रिया का फल कहा जाता है। रीति कालीन कवियों ने अधिकांश में नारी के कामिनी रूप को ही चित्रित किया है। इसकी प्रतिक्रिया में द्विवेदी युगीन कवियों ने नारी के कामिनी रूप का तिरस्कार किया नर और नारी के बीच जो परस्पर आकर्षण होता है, द्विवेदी युग के कवियों ने अपने पवित्रतावादी दृष्टिकोण और नैतिक बन्धनों के कारण उसकी उपेक्षा की है। उसका परिणाम यह हुआ है कि इस काल की रचनाओं में चित्रित की गई नारियाँ, या तो सती- सावित्री हैं, देवियाँ हैं, वधवा वीर छात्राणियाँ, जो अपनी निर्भीकता और तेज से नारी- जाति में उत्तम प्रेरणा भरती हैं। द्विवेदी युगीन कवियों ने शील पर बहुत बल दिया है। इस से हिन्दी साहित्य में कुछ प्रशंसनीय चरित्र पैदा हुए हैं। कविता का सामाजिक फलन विस्तृत हुआ है। काव्य के नूतन द्वाित्तियों का जन्म-जन्म होने लगा। कवि जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करने में तत्पर हुए। द्विवेदी स्कूल के कवियों ने उस कविता का परिष्कार किया जिसका कोई सामाजिक उपयोग न हो। उन कवियों ने कविता का उद्देश्य पुण्य का बल और पाप का ह्रास पौणित्त किया। कार्य समाज का यह नारा सत्य की जय, फूट की दाय साहित्य ने अपना लिया।<sup>१</sup> कविता के इस उपयोगितावादी दृष्टिकोण से कला का ह्रास हुआ। कविता की कोमलता समाप्त हो होने लगी। अत्रत्यता रूप से द्विवेदी युगीन काव्य धर्म, नैतिकता और सुधार के प्रचार का साधन बन गया।

काव्य प्रेमी कविता में सामाजिकता के पक्षपाती तो थे लेकिन एकदम उपयोगितावादी कविता, प्रचार बन जाती है। कल्पनाहीन और कला की दृष्टि से दुर्बल इस काव्य के समानान्तर चलने वाला स्वच्छन्दतावादी काव्य न तो कला विहीन था न सामाजिकता से हीन। काव्य के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी

बान्दीजन ने विद्वेदी स्कूल के पवित्रतावादी दृष्टिकोण को अपने काव्य पर आरोपित नहीं किया। इन कवियों के काव्य का मूल स्वर नैतिकता का समर्पण नहीं है।

विद्वेदी स्कूल के नैतिकतावादी कवियों और स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य संबंधी दृष्टिकोण में मूल अंतर चित्रण-भूमि का है। विद्वेदी स्कूल के कवियों ने वर्तमान की दासता से छुटकारा पाने के लिए अतीत का वाक्य लिया है। सामाजिक कुरीतियों और पीछड़ेपन को दूर करने के लिए नैतिकता और धार्मिक पुनरुत्थानवाद का अवलम्ब ग्रहण किया है। वर्तमान का प्रत्यक्ष चित्रण उनके काव्य में बहुत कम हुआ है। भारत-भारती आदि ग्रन्थों में ही प्राचीन गौरव का वर्णन अधिक है। वर्तमान का कम है। उसके विपरीत स्वच्छन्दतावादी काव्य में देश-उसके लोग, पशु, पक्षी, फल, नदी, नाले, सम्पदा और उसकी प्राकृतिक सुगंध का वर्णन है। राष्ट्रीय गौरव का यह रूप जो अधिक व्यापक और सजीव है स्वच्छन्दतावादी काव्य में संक्षेप रूप में अंकित हुआ है। उस काल में एक ऐसे कर्म और सजीव व्यक्ति का चित्रण मिलता है- जो कर्म रत है। निकम्मे और कोरे उपदेशों की इस काव्य में उपेक्षा की गई है। रामनरेश त्रिपाठी का अधिक इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य उस सामाजिक मनुष्य की हाँस के लिए प्रयत्नशील पिताई देता है जो, अपने राष्ट्रीय सम्मान के लिए संघर्ष करे। अपनी कर्म व्यक्तित्व से देश की अकर्मण्यता, पीछड़ेपन और कुरीतियों को दूर करे और इस देश की प्राकृतिक सम्पदा का राष्ट्रीय निर्माण के लिए उपयोग करे। इन कवियों का उद्देश्य नैतिक पुनरुत्थानवाद और पवित्रतावाद न होकर कर्मवाद है।—

यही मूल दृष्टि और नाय भूमि स्वच्छन्दतावादी काव्य की द्विवेदी स्कूल के कवियों के काव्य से जुड़ा कर देती है। स्वच्छन्दतावादी कवियों की सामा-  
जिकता अधिक व्यावहारिक और समाजीकृत होती है। इन कवियों ने हिन्दी काव्य  
को एक नया मार्ग दिखाया है कि काव्य में विचार और कला दोनों का साथ-  
साथ निर्वाह किया जा सकता है। काव्य में विचारों की प्रमुखता देनी चाहिये-  
उपदेशों की नहीं। श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में हरिवंश और मैथिली-  
शरण गुप्त के ज्ञान काव्य-प्रतिभा मले ही न हो, लेकिन सामाजिक चेतना और  
युग चेतना के क्षेत्र में निश्चित ही ये कवि मैथिलीशरण गुप्त हरिवंश आदि से  
बहुत आगे रहे हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य की जायार-भूमि द्विवेदी गणक के  
कवियों ने उतनी नहीं तैयार की जितनी कि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने। स्व-  
च्छन्दतावाद के कलात्मक पक्ष का विकास हमें हायावाद में मिलता है और सामा-  
जिक पक्ष सुमन कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नदीन, मासुम हारुन नदीन,  
तथा रामनरेश त्रिपाठी पिनकर आदि में व्यक्त हुआ है।

कला का प्रत्येक बान्धव कला सम्बन्धी धारणाओं में  
परिवर्तन उपस्थित करता है। साहित्य में अब भी नयी प्रवृत्तियों का उत्थान होता  
है तब उनके पीछे जाने वाली बालीकता भी नवीन हो जाती है। भारत-भू-भू  
में बालीकता की जो परिपाटी थी वह द्विवेदी युग में नहीं रही। स्वच्छन्द-  
तावादी काव्य की कोई स्वतन्त्र बालीकता पद्धति विकसित नहीं हो सकी किन्तु  
स्वच्छन्दतावादी कवियों की विचार-दृष्टि निश्चय ही द्विवेदी-युगीन कवियों  
की दृष्टि से भिन्न रही है। स्वच्छन्दतावादी कवि साहित्य की पाश्चात्य विचार-  
धारा से अधिक प्रभावित हुए थे। द्विवेदी-युगीन नैतिकतावादी कवियों की भाँति--

ये कवि यौरप से जातकित नहीं थे। उन में भारतीयता के प्रति आग्रह रहा है लेकिन यौरप के प्रति दुराग्रह नहीं है। विवेक्य युग में, रुढ़ काव्य परम्पराओं से जलन हटकर, अपना रूप संवारने वाले स्वच्छन्दतावादी काव्य की भाषा ही नहीं बढली बल्कि उसकी मूल बेतना में भी अन्तर लाया। कई पाश्चात्य आचार्यों और देश की तत्कालीन परिस्थितियों ने इस धारा की कविता को अपने पूर्ववर्ती और समसामयिक काव्य से जलन कर दिया है ।

स्वच्छन्दतावादी कवियों का दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य व्यक्तिवाच्य रूप से शक्तियों का वागार है। जिन से नूतन सृष्टियाँ रही जातो हैं वतएव उसकी प्रत्येक सृष्टि को व्यक्ति-की स्वतन्त्रता मिलती ही चाहिये ।<sup>१</sup> नये परिवर्तन मनुष्य के इसी आत्म-विश्वास से जन्म लेते हैं, वतः एही परिवर्तन और क्रांतियों स्वभाव से स्वच्छन्दतावादी होती हैं। यौरप से नये ज्ञान-विज्ञान के वागमन के साथ भारत की बेतना में एक प्रकार का भूकम्प ला- ला गया । भारतीय मनुष्य के अन्दर अनेक प्रकार की विज्ञासार्थ एक साथ जाग पड़ी । सौन्दर्य का आवरण हटाने की कामना स्फुरित होने लगी । परिचित से निष्ठ कर अपरिचित की ओर जाने का साहस भारतीय मनुष्य करने लगा। रुढ़ियों और शास्त्रों की मर्यादा तोड़कर नया मानव उसकी ओर खम बढाने लगा, जहाँ जाने की इससे पूर्व वाक्षा नहीं थी।<sup>२</sup> स्वच्छन्दतावादी कविता का यह प्रयास उस नयी मानवता की व्यक्ति-का प्रयास था जिसका जन्म-भारत- यौरप के सम्पर्क से हुआ था। उस में पश्चिम की उदारता, स्थायीमता और मानवतावादी विचार-धाराओं का समन्वय था। स्वयं वाचार्य - बिबूवेदी जी और उनके सहयोगी --

१- पिनकर, छायावाद की भूमिका, पृ० ३३ ।

२- पिनकर, छायावाद की भूमिका, पृ० ३६ ।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में राष्ट्र को नये और विस्तृत  
क्षेत्रों में लिया गया है। इन कवियों का राष्ट्र जाबलफौर्ड डिक्शनरी की परिभाषा  
तक सीमित नहीं है।<sup>१</sup> बल्कि इनकी राष्ट्रीयता का अर्थ भावना से है। राष्ट्रीय-  
यता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है।<sup>२</sup> इस युग के राजनीतिक नेताओं और कवियों का  
विचार था कि हमारे बीच, कार्य एवं द्रविड़ संस्कृति एवं मुसलमान संस्कृति तथा  
विभिन्न वर्गों और भाषाओं के नाम पर किये उत्पन्न कर्तव्य वाली रैतारें अंग्रेजी  
द्वारा सींची हुई हैं। मूलतः हम सब भारतवासी एक हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य  
में राष्ट्रीयता का यही रूप और स्वर मिलता है।

लेकिन १८ वीं शताब्दी के कवि लेखकों की राष्ट्रीयता का रूप इतना विस्तृत नहीं था। उनकी राष्ट्रीयता किसी धर्म तथा किसी प्रदेश तक ही सीमित थी। मॉरिस घटजी बंगाल की ही राष्ट्र मानने लगे थे। कालिदास-

१- यह जाति जिसके एक ही पूर्वज हों, जो एक भाषा बोलती हों, जिसका एक इतिहास, एक संस्कृति हो और जो एक ही शासित सीमित राज्य भूमि में रहती हो, राष्ट्र के अन्तर्गत जानी है।

२- आचार्य विनय मोहन खर्मा, साहित्य, शोध, समीक्षा, पृ० ३

“ तभी तो भारत, जिसमें अनेक छोटे-छोटे राज्य समा गये हैं उनके जातिवादी नाजाय्जीबी और फर्नों के होते हुए भी ।

हैं वे ।<sup>१</sup> कश्मीर से कन्याकुमारी तक कच्छ से आसाम तक भारत को एक राष्ट्र समझने की भावना बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ आई । हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता का वास्तविक स्वरूप स्वच्छन्दतावादी काव्य के द्वारा ही स्पष्ट हुआ है। हिन्दू मुस्लिम एकता के धर्म में एक उदाहरण लीजिए -

हिन्दू- मुस्लिम भाई- भाई, आबो छिल- पिल हो कुर्बान।<sup>२</sup>

भारतेंदु और खूबेदी युग के नैतिकतावादी कवियों के काव्य में मुसलमानों के अपमानों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इस वर्ग के कवियों ने मुसलमानों को प्रायः सभानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा है। ये कवि मुसलमानों को इस देश का अभिन्न का मानने से हिचकते विचरते हैं लेकिन स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवियों का यह नैतिकतावादी रंकीर्ण दृष्टिकोण नहीं है। ये कवि मूलतः मानवतावादी हैं। इन कवियों ने धार्मिक और जातीय भेद भाव को राष्ट्रीयता के मार्ग का अवरोध घोषित किया है। इतने पूर्व साम्प्रदायिक और जातीय एकता के प्रवर्तक हिन्दी काव्य में बहुत कम मिलते हैं। इस काल की एकता- भावना का एक रूप ये हैं :

१- बंकिम ने अपना प्रसिद्ध गीत आमार बांग देश को लक्ष्य करके लिखा था जिस की एक पंक्ति थीं सप्त कोटि कण्ठ कमल कलकट विनाय लेकिन जब भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इस गीत को कराते। असल भारतीय महत्त्व मिठा। सप्तकोटि के स्थान पर त्रिशककोटि कर दिया गया। साहित्य, जीव, समीक्षा, से उद्धृत, पृ० ४ ।

२- हिन्दी की आधुनिक राष्ट्रीय कविता, मासमहाल चतुर्वेदी, पृ० ६ ।

बैन, बौल, पारसी, यकूबी, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई।  
 कौटि-कौटि कण्ठों मिलकर कह दी हम सब हैं मार्ल-मार्ल।।  
 युक्त भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही।  
 उस से बढ़कर या ऐसा ही दुनियाँ में है जगत नहीं।।<sup>१</sup>

स्वच्छन्दतावादी कविगणों ने अपनी राष्ट्र की सुगमा को बड़े  
 स्निग्ध भाव से चित्रित किया है। विवेक्य युग में रामनरेश त्रिपाठी, तथा  
 श्रीधर पाठक का राष्ट्र प्रेम स्वच्छन्दतावादी छाया प्रवृत्तियों को परिलक्षित  
 करता है। रामनरेश त्रिपाठी और श्रीधर पाठक का राष्ट्र प्रेम इन पंक्तियों  
 में देखने योग्य है।

उपर मैं हिय राशि सम सर्वाङ्ग शिखर है।  
 जिसके प्रकृति-विकास रम्य क्रान्तु हम उत्तम हैं।  
~~जीव-जन्तु फल-फूल सत्य ब्रह्मसुत अनुभव हैं।~~  
 पृथ्वी पर कोई देश भी उसके नहीं समान है  
 उस दिव्य देश में जन्म का हमें कतुल अभिमान है।।<sup>१</sup>

२ २ २ २ २ २ २  
 यही स्वर्ग सुरलीक यही सुर जानन सुन्दर।  
 माहे उमरस की लौक यही कतु कतुत पुरन्दर।।<sup>२</sup>

विवेक्य काल के उत्तरार्ध में १९१४ ई० के आसपास उस प्रवृत्ति का  
 व्युत्पन्न होता है जिसे छायावाद कहते हैं। छायावाद में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों  
 का आभास रहा है। छायावादियों में वस्तुओं की नये दृष्टियों से देखने की  
 जो जिज्ञासा थी चीजों के भीतर छुकर उनके सूक्ष्म रहस्यों को उद्घाटन का जो —

- 
- १- कप्तारायण पाण्डेय, हिन्दी की आधुनिक राष्ट्रीय कविता, पृ० १३।  
 २- रामनरेश त्रिपाठी- हिन्दी की राष्ट्रीय कविता, पृ० १३।  
 ३- श्रीधर पाठक- काश्मीर सुगमा, पृ० ६।

११

कौतुकल और उत्सुकता थी उसमें कल्पना की प्रसारित की प्रेरणा मिली। कविता में इस विचार की प्रभुता की जाने लगी कि कल्पना की प्रभुता के बिना कोई कविता नहीं लिखी जा सकती। छायावादियों ने सौन्दर्य की उपलब्धि के लिए उत्सुक प्रयत्न किए। उन्होंने कविता का उद्देश्य सौन्दर्य वृष्टि बताया, ज्ञान क्या समाय सुधार नहीं।

छायावाद की रहस्य भावना छायावादियों की बौद्धिक विज्ञान का परिणाम थी। उन की बौद्धिक शक्ति का परिचय हस्ती के नये विज्ञान शब्दों के नवीन ज्ञान और भाषा के नूतन संस्कार में भी है। छायावाद ने फर्स समझी जाने वाली लड़ी बोली को गलाकर मोम कर दिया। छायावादी कवियों में अतीत की और पैतृ की वापस और जीवन के कल्पनाशील स्तर पर चलने का भाव दिखाई पड़ता है। रोमान्टिक आन्दोलन का मूलधार भावुकता है। यह वर्तमान से अत्यन्त दूर होकर अतीत और कल्पना के लोक में लौ जाता है। छायावाद वस्तुतः रोमान्टिक आन्दोलन रहा है। इस में अनुनाति की वैयक्तिकता कल्पना शीलता एवं पीड़ा और निराशा की वृष्टि प्रधान है।



**પ્રીયા જ્ઞાપ્ય**

### विवेच्यकाल : नवीन प्रवृत्तियों का उन्मूलन

पिछले अध्याय में मैं अपने विवेच्य कालीन हिन्दी कविता की पूर्व परम्पराओं ? नवीन सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों और उस पर पड़ने वाले पार्श्वगत्य प्रभावों का अध्ययन किया है। साथ ही कला की दिशा में उन नये प्रयोगों का भी उल्लेख किया है जो भाषा, शैली, छन्द आदि की दिशा में किए गये।

प्रस्तुत अध्याय में मैं अपने स्वच्छन्दतावादी काव्य की विषय वस्तु का विवेचन किया है। काव्य के प्रारम्भिक विषय युग की रचना- प्रवृत्तियों में परिवर्तन होने पर भी एकदम बदल जाते हैं। स्वच्छन्दतावादी बान्दीछन से प्रभावित विवेच्य कालीन कविता ने अपनी पूर्व परम्पराओं को एकदम तिलांजलि नहीं दी बल्कि उन्हें नये ढंग और नये सन्दर्भों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। पौराणिक और ऐतिहासिक परिवर्तों पर उस युग में भी रचनाएँ हुईं। उस युग की कई कृतियों की विषय-वस्तु पौराणिक हैं। आधुनिक हिन्दी कविता की प्रसिद्ध महाकाव्यात्मक कृति कामायनी का कथानक भी पौराणिक ही है। लेकिन इन सभी काव्य ग्रन्थों का संपूर्ण सन्दर्भ अपने पूर्ववर्ती काव्य ग्रन्थों से भिन्न है। इन में ईश्वर और देवत्व के स्थान पर मानव और मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। उस युग में मनुष्य की आधुनिक चेतना ने उसे उसकी भावुकता संस्कोरवादिता और परम्पराओं से ऊपर उठाकर उसके लिए स्वतन्त्र चिन्तन का मार्ग प्रशस्त किया है। फलस्वरूप, देवी-वरिचों में मनुष्य की पहिना को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। देवी-कार्य कलाओं में मानवीय जीवन संघर्ष और जीवन पद्धति को देखने का प्रयत्न मिलता है। यही कारण है कि इस युग के राम, कृष्ण, राधा, आदि पात्रों का चित्रण मानवीय घरातल पर किया गया है। उनमें देवत्व कम है और जितना भी है वह आरोपित या लगता है।

युग की नयी सामाजिक और बौद्धिक चेतना ने कवियों की जागरूक और व्यापकवादी दृष्टि प्रदान की। फलस्वरूप हिन्दी काव्य में युगीन समस्याओं का अधिक गम्भीरता विस्तार और गहराई से चित्रण किया जाने लगा। उस युग के काव्य-क्यों में देश के संपूर्ण नवजागरण की भाँकी मिलती है। नारी उस युग के काव्य का ही नहीं बल्कि साहित्य का भी मूल विषय रही है। नवजागरण के नेताओं का यह विश्वास था कि, बिना नारी जीवन के सुधार और उद्धार के बिना, इस देश और समाज का कल्याण संभव नहीं है।<sup>१</sup> उस युग के काव्य में नारी - जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। कुशाग्रत एवं वार्षिक और सामाजिक रुढ़ियों के विरुद्ध उस युग के काव्य का स्वर बहुत तीव्र है।

उस युग के काव्य का प्रकृति-प्रेम-स्वदेश-प्रेम की ओर ले जाता है। भारत माँ, उसके निवासी देश की नदियाँ, पर्वत, वन, पेड़ - बौंधे, पशु पक्षी इस युग के कवियों के लिए प्रेरणा और वन्दना की वस्तु रहे हैं। उस प्रकृति-प्रेम ने स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रियता को जन्म दिया और उसे विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।<sup>२</sup>

उस युग में सौन्दर्य और प्रेम के उपादान भी बदले हुए लगते हैं। नये युग में नये सौन्दर्य बोध को जन्म दिया है। विकासभावना और सामाजिक संकीर्णता के महत्व से निरुक्त कर कवि सुले और स्वच्छन्द वातावरण में साँस लेते प्रतीत होते हैं। उनके काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों को भी प्रकट दिया गया है।

१- स्वामी दयानन्द सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश, पंचम समुल्लास -

पृ० ८६। अजमेर (सं० १९६० वि०)

२- डा० नामवर सिंह - आधुनिक हिन्दी काव्य की मूल प्रवृत्तियाँ, पृ० २५।

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य कालीन कविता की इन नवीन प्रवृत्तियों का अनुशीलन किया गया है। यह प्रवृत्तियाँ इस युग के कवियों के स्वच्छन्दतावादी काव्य शोध का परिचय कराती हैं। अनेक आलोचकों ने विद्वेदी कालीन कविता की पुनरुत्थानवादी और शक्तिवृत्तात्मक काव्य की संज्ञा दी है। किन्तु इस युग में अनेक सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण एक प्रकार के नव-जागरण का भी अन्वुदय हुआ था। इस समय के कवियों और उनकी काव्य कृतियों पर इस जागरण की स्पष्ट छाप है। पुरानी सृष्टियाँ और परम्पराएँ टूटती सी दिखने लगती हैं नवीन जीवन मूल्यों का विकास हो रहा है। इस समय की प्रमत्त और मुख्य काव्य-रचनाओं में इस नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा का स्पष्ट प्रयत्न हुआ है। इस काल के कवि पुनरुत्थानवादी होते हुए भी अन्तिम द्रष्टा हैं। काव्य रचना की दृष्टि से उनकी ऐसी शक्ति-वृत्तात्मक अवस्था है किन्तु उनकी रचनाओं में क्रमशः सुजन-शिल्प की वे प्रवृत्तियाँ भी प्रस्तुत हुई हैं जिनके कारण छायावाद का उदय और विकास सम्भव हुआ। छायावाद का विकास की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी काव्य की आली कड़ी है।<sup>१</sup> इस युग के समस्त कवियों के पुनरुत्थानवादी भी नहीं कहा जा सकता जैसा कि आरम्भ के अध्याय में उल्लेख किया गया है, विवेच्य काल के कवियों का एक वर्ग विद्वेदी मण्डल से बाहर के कवियों के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। उनकी काव्य चेतना स्वच्छन्द अनुभूतियों एवं प्रकृति तथा प्रेम के स्वच्छन्द चित्रण को लेकर विकसित हुई है। वस्तुतः इसी वर्ग के कवियों ने विवेच्य कालीन कविता को स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों से किशोरित किया। उनकी रचनाओं में विषय और शिल्पात्मकता ज़रूरी अधिक मात्रा में विद्यमान है।

### नवीन काव्य क्या है--

विवेच्यकाल नवजागरण और संक्रान्ति का युग है। उस में पुराने जीवन-मूल्यों और मान्यताओं के बहिष्कार का संघर्ष गति पकड़ने लगा था। नवीन मूल्यों की सोज का सक्रिय प्रयत्न किया जा रहा था, जिससे कि पुराने मूल्यों के स्थान पर उनकी स्थापना की जा सके। लेकिन नये मूल्यों का स्पष्ट <sup>स्वरूप</sup> किसी के सम्मुख नहीं था। स्वच्छन्दतावादी काव्य में नवीनता के प्रति एक सख्त जाग्रत है। अतिशय भावुकता के स्थान पर कुछ बौद्धिक सुक-सुक भी पिलाई पड़ती है। विवेच्य काल में परम्परागत मान्यताओं का बुद्धि और तर्क के माध्यम से विश्लेषण करके उसे सख्त और बुद्धिमत्त बनाने के सकल प्रयत्न बारम्बार हुए अप्रत्यक्ष रूप से यह अड़मान्यताओं और प्राचीन संस्कारों के विरुद्ध संघर्ष था, जिसका उद्देश्य था मानव की गरिमा की स्थापना करना। विवेच्यकालीन काव्य में अवतारवाद के ऐतिहासिक पुनरुत्थान, काल्पनिक देवी कृत्यों एवं घटनाओं के बहिष्कार, दुरवर्तियों में भी सद्गुणों की सोज, पौराणिक कथाओं के प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण और अलौकिक तथ्यों पर मानवीय प्रवृत्तियों के आरोप की प्रवृत्तियाँ विवेच्य कालीन कवियों की स्वच्छन्दतावादी भंगिमा की परिचायिका है।

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन एक साहित्यिक आन्दोलन ही नहीं बल्कि यह एक कलात्मक आन्दोलन भी है। भारतवर्ष में कला की भावना नहीं नहीं है। आधुनिक काल तक जाते जाते कला-विषयक मान्यताएँ बदल गई हैं। जिन्हें पारम्परिक साहित्य की देन माना जा सकता है। हिन्दी साहित्य में रीति-काल को भी कलात्मक आन्दोलन का काल कहा जा सकता है लेकिन आधुनिक काल का एवं तत्कालीन कलात्मक आन्दोलनों में पर्याप्त अन्तर है। पुराना कलात्मक आन्दोलन पुरानी रुढ़िग्रामीण प्रतिष्ठित मान्यताओं का परिपालन मात्र था। परन्तु आधुनिक कलात्मक --

बान्दोलन व्यक्तिगत अनुभूतियाँ का परिणाम है। इसी वैयक्तिकता के कारण आठवीं शताब्दी की कविता में विविधता बाने लगी। व्यक्तिगत प्रतिभा की व्यंजना के कारण साहित्य में गीति-तत्व का महत्व बढ़ने लगा। गीति-तत्व और कला, के बढ़ने और विकसित होने का कारण केवल पाश्चात्य साहित्य ही नहीं है बल्कि उस समय का वातावरण और परिस्थितियाँ भी इस विकास के अनुकूल रही हैं। आधुनिक बान्दोलन में पाश्चात्य रुढ़ियाँ और साहित्यिक पाठित्य की गंध नहीं थी। मौखिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने के कारण विवेच्य कालीन कवि यथार्थ की और फुके और छोटी छोटी वस्तुओं को भी अपने काव्य का विषय बनाकर रचना करने लगे। उदाहरणार्थ पं० सत्यनारायण कविरत्न की निम्नलिखित ग्रामीण जीवन विषयक रचना ली जा सकती है:-

रखी जहाँ सींची जाये, वहाँ गोहूँ जौँ लहराय,  
सरणीं चुनन प्रकुल्लित साहँ, अलि माला मँहराय ।  
प्रकृति दुखल छरा चारण कर, बानन अपना लोल,  
हाव भाव मानहुँ बतलावँ, ठाढ़ी करँ कलोल।  
परदा लोदत श्रीकृष्णक वल्लु जल नहिँ कहुँ कड़ि जाय,  
सरपी और फाँवरा कर गहि, भयारी लाटहिँ वाय।  
परदा गहँ राम जाये कहि, गाय गीत ग्रामीन,  
जीवन हैत वैत सेतन कहुँ, जीवन नित्य नवीन ॥<sup>१</sup>

जन- जीवन का ऐसा सहानुभूतिपूर्ण <sup>चित्रण</sup> इस काल के काव्य की अपनी विशेषता है। यहाँ तक आचार काव्य की विषय-वस्तु लगभग बदल गई है। बदली हुई विषय-वस्तु के अनुसार भाषा-शैली और रचना के दूसरे उपादानों में भी परिवर्तन संभव हो सका है।

### पौराणिक- देवी- देवताओं के नये स्वरूप:-

व्यक्ति और समाज के जीवन में परिवर्तन हर युग में होते हैं।  
इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर जीवन- मूल्यों का विकास होता है। आधुनिक काल  
में पुरानी आस्थाएँ टूटी और नयी आस्थाओं का जन्म हुआ। हमारे साहित्य में  
पहले प्रायः तपस्व कथाएँ महाभारत और पुराणों से ली थीं। इन कथाओं में जीवन  
के पुराने दृष्टिकोण और रुढ़िगत मान्यताओं की प्रतिष्ठा थी। परम्परागत मान्य-  
ताओं के अतिरिक्त साहित्य के लिए कोई नयी भाव-भूमि नहीं रह गई थी। भारत  
में विज्ञान और औद्योगिक सभ्यता के आविर्भाव ने भावुकता पर संकुश लगाना आरम्भ  
कर दिया। अन्य- विश्वास और रुढ़ियों का मूल कारण हमारी भावुकता और  
किसी वस्तु के प्रति हमारी अतिशय कटा होती है। आधुनिक युग में बौद्धिक चिन्तन  
की प्रगतिशीलता की जाने लगी जो वस्तु या घटना बुद्धिमत् और तर्क सम्मत नहीं है उसे  
स्वीकृति मिलना सख्त संभव नहीं रहा।<sup>१</sup> साहित्यकार बहुत संवेदनशील होता है।  
वह युग की गड़बड़ों की सबसे अधिक पहचानता है। यदि उस युग में भी कवि मजि-  
काल कथा रीति- काल का भाँति देवी- देवताओं का चित्रण करते रहते तो उस  
युग के जागरूक पाठक उसे अस्वीकार कर देते। लेकिन विवेच्य काल के कवियों ने  
पौराणिक महापुरुषों और देवी - देवताओं के जलौकिक और कल्पकारी स्वरूप  
का वर्णन न करके उन्हें इस युग के नये सन्दर्भ से जोड़ने का प्रयत्न किया। इससे प्राचीन  
पौराणिक चरित्र अधिक मानवीय हो गये हैं। विवेच्य कालीन कवियों ने जीवन के  
लिए नये मूल्यों और नवीन जीवन शोध की प्राप्ति के लिए संघर्षरत मानव को नयी  
आस्था, नये विश्वास, नये स्वर, और नया दृष्टिकोण प्रदान किया। पुराने काव्यों  
में कवियों ने प्रधान वर्ण्य - विषय के लिए राम- सीता, कृष्ण और मध्यकालीन-

वीर पुरुषों को पुनः । परन्तु बीसवीं सताब्दी के काव्य में सामान्य मनुष्य की प्रभुता दी जाने लगी । इसका परिणाम यहाँ हुआ कि विवेच्य कालीन कवियों ने व्यवहार जगत में तो राम और कृष्ण को ईश्वर माना परन्तु उनके काव्य में वे आदर्श महापुरुष मात्र ही रहे । डा० श्रीकृष्ण लाल के शब्दों में " वायुनिक काल में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार और बुद्धिमत्ता के प्राधान्य से जब अंध-भक्ति के स्थान पर तार्किक शक्ति का प्रभाव बढ़ा तब शिक्षित और विचारवान पुरुषों को ईश्वर के अवतारवाद में अविश्वास होने लगा । प्रिय- प्रवास के कवि ने उसी कारण कृष्ण के प्रसिद्ध अतिमानुषिक कार्यों को एक दैत्य और समाज - शैवक के स्वाभाविक और मानुषिक कार्यों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । पुराणों के कृष्ण से ईश्वरत्व निकाल कर उनकी आदर्श मानव रूप में पुनः सृष्टि की ।<sup>१</sup> कवियों के ईश्वर प्रेम में भी मानवतावादी भावना की प्रचुरता हो गई । विवेच्य काल के महाकाव्य 'प्रिय- प्रवास' की महान्तम उपलब्धि उसका मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है । मैथिली-शरण गुप्त जी<sup>२</sup> मर्यादावादी कवि न रहे हैं किन्तु उनके काव्य में भी त्वच्छन्दतावादी दृष्टि दिखाई पड़ती है । उनका समस्त काव्य प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का काव्य है परन्तु वह अपने युग की चेतना से भी प्रभावित है । रामायण और महाभारत प्राचीन काल से भारतीय साहित्य के प्रेरणा स्रोत रहे हैं । राम-कथा की कथा- वस्तु युग- चेतना के अनुरूप बदलती रही है । गुप्त जी के काव्य में राम एक युग - पुरुष के रूप में चित्रित हुए हैं । यह चित्रण पुनरुत्थान युग की नयी चेतना का परिणाम है, गुप्त जी के राम, सीता, कैकेयी, हनुमान् समस्त चरित्रों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अलौकिक न होकर केवल एक आदर्श मानवता का रूप लिए हुए हैं । उनका काव्य उस परम्परा की कड़ी है जिसके द्वारा पुनरुत्थानवाद-

१- डा० श्रीकृष्णलाल - वायुनिक हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृ० ४६ ।



को प्रभय मिला परन्तु जिसके परिणाम स्वरूप यह भी कहा जा सकता है कि निवृत्ति का स्थान प्रवृत्ति ने लिया, कर्त्ताकर्मता का लौकिकता ने, कन्धविश्वासी का बुद्धि द्वारा सण्डन हुआ और मानवीयता का मण्डन गुप्त जी ने पौराणिक कथाओं तथा देवताओं को मानवीय साँवे में डालकर उन्हें विश्वसनीय रूप दिया। साहित्यिक दृष्टि से गुप्त जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी युग - काव्य के उदय का प्रभाव भी लक्षित होता है।<sup>१</sup> गुप्त जी ने कैकेयी के चरित्र में भी लाक्षण की सर्वथा निष्कृति करके उसे उज्ज्वल रूप में वर्णित किया है। उन्होंने कैकेयी द्वारा किए गए उस कुकृत्य से पूर्व की पृष्ठ भूमि को उदात्त रूप देकर, राम के प्रति कैकेयी के प्रेम के अनेक सुन्दर और मार्मिक उदाहरण प्रस्तुत करके और बाद के चित्रकूट प्रसंग में भी उसके अपने मुक्त से ही उसे विकसित कराके बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उसके कलंक के धब्बे को धोने का प्रयत्न किया है। चित्रकूट प्रसंग में उल्लानि और परमात्माप से भरी उसकी वाणी उसके मातृहीन कन्दय की निश्छिन्नता की और संकेत करती है-

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी ।  
रघुकुल में भी थी एक अमागिन रानी ।  
निज जन्म - जन्म में सुने जीव यह मेरा  
धिकार उसे था महास्वार्थ ने धीरा ॥<sup>२</sup>

गुप्त जी ने अपने पात्रों के चरित्र को विकसित नहीं किया है बल्कि उनकी (पात्रों) जो रैसाई की हैं वे ही उनके वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने के लिए पर्याप्त हैं। इसी प्रकार गुप्त जी का दूसरा बौद्धिक वर्णन दौपदी वीर-हरण प्रसंग का है। दुःशासन द्वारा नग्न किए जाने के प्रयत्न से कातर होकर दौपदी कात्त स्वर्-

१- डा० इन्द्रनाथ मदान- मैथिलीशरण गुप्त : गंगा के कवि, पृ० २७२

साहित्य सन्देश, पृ० फरवरी, १९४५ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त- सरस्वती, पृ० ३७२ जनवरी १९१८ ।

से भगवान की पुकारती है साथ ही उसकी मर्त्सना करती हुई उसके पाप के भीष्ण परिणाम को भी उपस्थित करती है। वह दुःशासन को शक्तिहीन कर देती है।

रे नर, आगे नरक, वन्धि मैं हूँ निज मुख की लाली देख,  
सड़ी पंचमुख शव पर नग्न कराला काली देख।<sup>१</sup>  
जिसका परिणाम कवि ने यह दिखाया कि-  
सहसा दुःशासन ने देशा अन्धकार सा चारों ओर,  
जान पड़ा अम्बर -सा वह पर, जिसका कोई ओर न छोर  
आकर अकस्मात् अति भय- सा उसके भीतर पैठ गया-  
कर जुड़ गए और पद काँपे, गिरता- सा वह बैठ गया।<sup>२</sup>

यह एक मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक वर्णन है। कवि ने इसमें किसी जलौकिक शक्ति का समावेश करने की अपेक्षा यह बताया है कि द्रौपदी के आक्रोश पूर्ण गर्जन से दुःशासन में हीनता का संसार हुआ फलतः उसका उत्साह ठण्डा हो गया और वह काँप कर बैठ गया। इस प्रसंग का यह जौष्टिक एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण विवेच्य युग में स्तुत्य है। गुप्त जी का यह वर्णन स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को परिलक्षित करता है। क्योंकि विवेच्य काल सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी आन्दोलनों का, साहित्यिक दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी दृष्टि के उदय का, दार्शनिक दृष्टि से रुढ़ियों के विरोध का और नैतिक दृष्टि से बुद्धिवाद के विकास का तथा मध्य वर्गीय समाज के विकास का काल था।<sup>३</sup> इस काल की पौराणिक काव्य कथाओं में प्राचीन रुढ़ियों के स्थान पर बौद्धिकता और तर्क का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ है। ऊपर हरिबांध जी और मैथिलीशरण जी गुप्त के काव्यों के संबंध में जो विवेचना की गई है उससे नवीन बौद्धिकतावादी दृष्टि का बोध होता है जिसके मूल में स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन निहित है।

१- मैथिलीशरण गुप्त - तरस्वती, पृ० २७३ नवम्बर १९०६ ।

२- " " " " पृ० १८३ अस्त १९११ ।

३- डा० विजयेन्द्र सातक र भारतीय जागरण के अग्रदूत, साहित्य सन्देश पृ० २६४ जनवरी १९५९ ।

### प्राचीन महापुरुष : नवीन परिवेश में

विवेच्य कालीन संक्रान्ति काल का काव्य है। इस कारण हम विवेच्य युग की समस्त काव्य-कृतियाँ में प्राचीन विश्वासी, परम्परावादी और मान्यतावादी का बहिष्कार सा दिलाई देता हैं। उनके स्थान पर नये भावों का प्रभाव भी स्वाभाविक है। वीर गाथाकाल भक्ति-काल और रीति-काल से चली आ रही परम्परावादी ने एक नया मोड़ लिया। कवियों ने पृथ्वीराज रासो, बीसल देव रासो आदि के वीर चरित्रों के दरबारी चित्रण तथा कृष्ण की रासलीला जैसे प्राचीन विषयों को छोड़कर काव्य के लिए नये विषय चुने और साथ ही पुराने देवी देवताओं का भी नवीनीकरण किया। नवयुग में बुद्धि की प्रधानता को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए हरिदास जी ने कृष्ण को सामान्य समाज सेवी एवं मानव रूप में वर्णित किया। कृष्ण जन-सेवी नेता हैं तो राधा भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर अपना सर्वस्व उत्तर्ग करने वाली वह भारतीय नारी हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन की नारी का मुक्त रूप बनकर प्रतिबिम्बित हुई हैं। जहाँ एक ओर सुर की राधा चौरह सहस्र वीर तन एकें लेकर आध्यात्मिक परिवेश में रीने और जाँसू बहाकर कृष्ण की विलास-लीलाओं की स्मृति करने के लिए ही है वहाँ दूसरी ओर हरिदास की राधा वह लोक मंगलकारी विवेक "प्यारं जीव जग दित करै गैह चाहै न आवै" विवेच्य कालीन स्वच्छन्दतावादी भाव चेतना से प्रेरित है। हरिदास जी ने कृष्ण को ईश्वर के रूप में चित्रित न करके एक महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित किया और उस चित्रण में कृष्ण का चरित्र नये युग की मनीषा के अनुरूप है। कवि ने महापुरुष श्रीकृष्ण का एक आदर्श समाज सेवा का रूप प्रस्तुत दिया है। संकट के समय एक आदर्श व्यक्ति के जो कर्तव्य होते हैं श्रीकृष्ण में उनका समावेश है :

अपूर्व वादज्ञ दिला नरत्व का ।  
 प्रदान की है पशु को मनुष्यता ।  
 दिला उन्होंने धित की समुच्चता  
 बना दिया मानव गौप- वृन्द को ॥<sup>१</sup>

प्रिय- प्रवास के कवि ने समसामयिक युग की नवीन चेतना को ग्रहण किया है।  
उसने भक्ति- युगीन कवियों की भांति केवल भगवान के चरित्र का गुणगान तथा  
अपने पापों के प्रति प्रायश्चित्त करने वाली मनोवृत्ति ही नहीं अपनाई अपितु उसके  
आध्यात्मिक और भावनात्मक चिन्तन में भी नवीनता है। उसके ईश्वर प्रेम में मानव-  
तावादी भावना की प्रवृत्ति हो गई है। हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण के कार्यों को एक  
महान आत्मा के कार्यों की भांति चित्रित किया है :

जो देखते कुछ शुष्क - विवाद होता ।  
 तो शान्त श्याम उसको करते सदा थे ।  
 कौहं बली नि-बली को यदि था सताता ।  
 वे तिरस्कृत किया करते उसे थे ॥<sup>२</sup>

विवेच्य काल के कई कवियों में इस प्रकार की नवीन मानवतावादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। उन्होंने काव्य के परम्परागत निम्न - क्षेत्र का बहिष्कार करके नये पाँचों ओर नयी भाव-भूमि की ओर ध्यान दिया है। विवेच्य कालीन काव्य की पौराणिक कथाओं में नवीनता उसी प्रवृत्ति के कारण आई है। मैथिलीशरणमुख-

१- महाकवि - हरिवंश<sup>२</sup> - प्रिय- प्रवास, पृष्ठ पत्र २४

२- वही ५, ११, ११ पृ० १६६ पन्ना ८३ ।

सच्चे अर्थ में उदारतावादी कवि हैं। धार्मिक संकीर्णता उनमें नहीं है। उन्होंने अपनी काव्य 'रंग में मंग' में राम का चरित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

लौक सिद्धा के लिये अवतार था जिसने लिया,  
निर्विकार निरीह छोकर नर सवस कोतुक किया।।<sup>१</sup>

गुप्त जी की यह एक विशेष उपलब्धि रही है कि उन्होंने राम और कृष्ण को कथानायक बनाकर उनके माध्यम से वर्तमान समस्याओं, नये दृष्टिकोण से व्याख्या की है। और नव-निर्माण के लिए प्रेरणा दी है। पार्श्वात्थ संस्कृति के कुप्रभावों से बचने और जातीय अभिमान को जागृत करने के लिए गुप्त कवि ने अपनी भारत-भारती में भारतीयता का गुणगान किया है।

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, उसके निवासी आर्य हैं।  
विषा सला काश्ल सभी के जो प्रथम आचार्य हैं।<sup>२</sup>

गुप्त जी का यह गुण बौध्द भक्ति साहित्य की मूल चेतना, ईश्वर की निर्भेदा और सामंजस्य सत्ता, नीरसता एवं कौरी नैतिकतावादी दृष्टि के सम्मुख एक नये भाव की जन्म देता है। राम गोपाल चौहान के शब्दों में नवीन परिस्थितियों की ओर रुझाव में अपने प्राचीन को देखने, उससे प्रेरणा ग्रहण करने की प्रवृत्ति विवेच्य कालीन कवियों में सबसे अधिक रही है। उन कवियों ने इतिहास और पुराणों से ऐसे वाद्यों और गौरवशाली चरित्रों की अवतारणा की जो समसामयिक संघर्ष में संलग्न मानव को आत्मबल और प्रगति की दिशा दे सके। उन्होंने वर्तमान समाज के पुरातन अंध-विश्वासों, सामाजिक कुरीतियों एवं रुढ़ियों से संघर्ष करते हुए जीवन की प्रगति की दिशा की ओर से ले जाने वाले पार्श्वों का चित्रण किया।<sup>३</sup> अतएव विवेच्यकालीन काव्य के अनुशीलन से यह बौध्द सत्य ही होता है कि उस काल की काव्य कृतियाँ बदलते हुए युग और उसके नवीन चिन्तन से प्रभावित रही हैं। प्राचीन पौराणिक चरित्रों में नवीन चेतना का संघार आकस्मिक नहीं है।

१- मैथिलीशरण गुप्त- रंग में मंग, पृ० ७।

२- वही - भारत भारती, पृ० १६

३- डा० रामगोपालन चौहान- आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १६।

## काव्य में लोकहितकारी भावना

बीसवीं शताब्दी का समाज और राष्ट्र प्राप्ति की ओर जगसर हो रहा था और दासता से मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहा था। व्यक्ति और समाज दोनों अपना अपना दायित्व अनुभव कर रहे थे। देश में धार्मिक और सांस्कृतिक क्रान्ति हो रही थी। राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलनों ने इस क्रान्ति को स्थायित्व और विस्तार प्रदान किया। पुरानी मान्यताओं और मूल्यों की जड़े खोखली हो चली थी। स्वर्ग की कल्पना धूमिल हो चुकी थी और ईश्वर प्राप्ति के पुराने मार्ग तिरौसहत हो रहे थे।<sup>१</sup> फलस्वरूप देवताओं का स्थान मानव को मिलने लगा। इस युग के काव्य में देवी-देवताओं के स्थान पर सत्य मानव की लोच का प्रयत्न किया गया। काव्य में स्वर्ग और देवी-देवताओं का वर्णन समाप्त होने लगा। उसका स्थान परती और मानव ने ले लिया इस समय कवियों और लेखकों का पुरानी चली आती हुई मान्यताओं पर चलना कठिन था। समसामयिक युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर काव्यगत रुढ़ियों का परित्याग करके विवेकवादी कवियों ने सामान्य मानवता को अपने काव्य का विषय बनाया। इन कवियों को दृष्टि अपने चारों ओर के जीवन पर पड़ी और इनका काव्य दुःखी मानव जीवन की अभिव्यक्ति करने में समर्थ हो सका। मानवता के प्रति रीति-कालीन हिन्दी कवियों का दृष्टि-कोण बहुत संकीर्ण था। उनके लिए समस्त पुरुष नायक थे और स्त्रियाँ नायिकाएँ। इस छासोन्मुखी युग में मानव व्यक्तित्व के केवल उसी एक रूप की अभिव्यक्ति संभव हो सकी रीति-काल से पहले भक्ति काल में भी मानव व्यक्तित्व की साहित्य कौन में पूर्ण अभिव्यक्ति धार्मिक वातावरण के कारण न हो सकी किन्तु विवेक काल में-

१-

A. R. Desai - Social Back ground of Indian Nationalism.

Page 175. Bombay. (1959)

प्रथम बार मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया और झुगारिकता एवं धार्मिकता की संकीर्ण कारा में दीर्घ - काल से चन्दनी मानवता की मुक्त करने का प्रयास किया, काव्य उच्च वर्गीय जीवन मात्र का प्रतिबिम्बित न होकर निम्न वर्ग के जीवन का भी चित्रण करने लगा । शोषण के बीच जीवन यापन करने का अक्षिप्त त्रास कृष्णों और श्रमिकों का जीवन अथ विवेच्य कालीन कवियों का प्रिय- प्रवास बन गया ।<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन कवियों की काव्य कृतियों में यह मानवतावादी दृष्टिकोण विस्तृत रूप से तीन रूपों में मिलता है :

- १- दुःखी मानवता के प्रति सहानुभूति के रूप में ।
- २- नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण के रूप में ।
- ३- मानवता की सेवा के द्वारा ईश्वर प्राप्ति के भावना के रूप में ।

#### दुःखी मानवता के प्रति सहानुभूति

विवेच्यकालीन कवि आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचारों से दुःखी थे । उन्होंने अपने काव्य में इस अभाव-पूर्ण और दुःखी से ग्रस्त जीवन का चित्रण किया और हजारों दुःखी मनुष्यों की भावनाओं और विचारों को ध्वनित किया । मैथिलीशरण गुप्त ने कृषक जीवन के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये । गुप्त जी की भारत - भारती समसामयिक युग की सुन्दर गाँधी है। गुप्त जी नैतिकतावादी और परम्परावादी होकर भी देश की ज्वलन्त समस्याओं की भली- भाँति समझते थे । -

---

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, प्रथम संस्करण, पृ० १०८, कामपुर

उन्होंने समाज में शोषित एवं पीड़ित किसानों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया और साथ ही राजनीतिक बत्याचारों का नग्न चित्रण भी प्रस्तुत किया । भारत-भारती का नायक क्लृप्ता किसान आर्थिक शोषण है कष्ट एवं दबा हुआ है। उस पर महाजन, पुलिस जमींदार के बत्याचारों का बोझ है । उसकी स्थिति बहुत दयनीय है :

पानी बनाकर रजा का, कृषि कृषक करते हैं यहां  
फिर भी जानने मूल से दिन रात मरते हैं यहां॥  
सब बेचना पड़ता उन्हें निज जन्न वह निरुपाय है।  
बस चार पैसों से अधिक पड़ती न दैनिक लाय है।<sup>१</sup>

विवेच्य काहीनकवियों ने पीड़ित मानवता की स्थिति के विषय में ऐसे भीषण एवं मार्मिक दृश्यों की अपने काव्य में अंकित किया है कि रुबय विदीर्ण हो उठता है -

बपक रही सब और मूल की ज्वाला है घर-घर में ।  
मांस नहीं है, निरी चांस है क्षण अस्थि-पंजर में ।  
जन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।  
कौंस नहीं किसी का साथी, अपना और भित्ताना॥<sup>२</sup>

< < < < < < < < < < < < < <  
लुत्तों नहीं करौड़ों ऐसे हैं मनुष्य दुःख पाते ।  
जीवन भर जो जठरानल में जल-जलकर मर जाते ॥  
हाय, हाय कर लोग सार्न को निराहार जो जाते।  
एक बार भी रात विवत में पेट नहीं भर पाते॥

१- मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, पृ० ६६ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी - पथिक, पृ० ४४ ।

३- वही " " " " पृ० ४५ ।



त्रिपाठी जी ने देश की उन्नति और सामाजिक अग्रगति का मूल कारण दरिद्रता बताया है। भूले व्यक्ति की कोई नैतिकता नहीं होती है। उसे सद्गुणों की शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है जबकि उसके पास खाने की वस्त्र नहीं है- पहनने की वस्त्र और रहने की घर नहीं है। देश के उन करोड़ों भूले नंगे, निरीक्ष और अवशाय व्यक्तियों की सदाचार का उपदेश देना भ्रूतता है। त्रिपाठी जी सबसे पहले उनकी दरिद्रता का उन्मूलन करना चाहते हैं। भारतीय जीवन में व्याप्त संपूर्ण अशुद्धता और अनैतिकता की जड़ें जन-जीवन की दरिद्रता हैं। जब तक दरिद्रता का उन्मूलन नहीं होगा यहाँ सामाजिक और नैतिक सुधार संभव नहीं है। त्रिपाठी जी ने अपने मिलन- नामक सप्ताह काव्य में भी किसानों और समाज के गरीब लोगों का मार्मिक चित्रण किया है -

छातों नहीं करोड़ों की है -

सुत से दुर्लभ न पेट

मिलता नहीं जन्म भर उनकी

खाने की घर पेट

दिल्ली नहीं किसी के मुँह पर

प्रसन्नता की रेख

भ्रमते हुये पेट- चिन्ता में

पड़ते हैं सब देश ॥<sup>१</sup>

सद्गुण जो मनुष्य जीवन की उन्नति का साधक हैं। उसकी ही उन्नति का खल ली पेट हुआ साधक है।<sup>२</sup> भारतीय किसानों की पारिवारिक दरिद्रता का चित्रण गुप्त जी ने भी बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है --

१- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन, पृष्ठ ५६ ।

२- वही ॥ - पथिक पृष्ठ ४५ ।

मारी जर्नी की दुर्दशा हम से कही जाती नहीं ।  
 लज्जा भवाने की लही जो वस्त्र भी पाती नहीं ॥  
 कमनी पड़ी है और शिशु- उसके कदम पर मुल धर ।  
 देता गया, विन्तु वे माँ- पुत्र दोनों हैं परे ॥<sup>१</sup>

< < < < < < < <

बाहर निकलना माँत है, आधी अन्धेरी रात है ।  
 आः शीत कैसा पड़ रहा है, घर सराता गात है ।  
 तो भी कृष्णक ध्वन जलाकर सेत पर हैं जागते ।  
 यह लाभ कैसा है जिस का लाभ खस भी त्यागते ॥<sup>२</sup>

विवेच्य कालीन कवियों को इस अस्वाभाविक मानव से उल्लेख सहायुक्ति है।  
 सामाजिक चित्रण और जीवन दृष्टि की इस बदली हुई नयी लहर को स्वच्छन्दतावाद  
 का नाम दिया गया है । इस परम्परा के काव्य - ग्रन्थों में सियाराम शरण  
 गुप्त का अनाथ (१९१७ ई०) गयाप्रसाद शुक्ल सनेही का कृष्णक- कृन्धन (१९२६ ई०)  
 प्रसिद्ध है। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने भी किसानों की दयनीय दशा का चित्र प्रस्तुत  
 किया है। सेत, बर्षा न होने के कारण सूख रहे हैं उस निराशा में किसानों का  
 मन तड़प - तड़प कर बाढ़लों की पुकार उठता है ।

सुठे बाकी रे बाढ़ली । बाकी, आकी,  
 तुम्ही जाके दो बार जाँस बसाकी,  
 दुःखी हैं तुम्हारे कृष्णक दुःख कटाकी

---

१- मैथिलीशरण गुप्त - भारत- भारती, पृ० ६८ चिरगाँव फाँसी ।

२- वही " - वही, पृ० १५

न पुत्र बन पड़े तो पिबली गिराजी  
न रीशों हम धज्जियां तुम उड़ा दो  
किसी याँति आपसि से तो छुड़ा दो।।<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन कवियों ने सामाजिक कुप्रथाओं की खोल खालीयना ही नहीं की बल्कि समाज के पीड़ित वर्गों के प्राणियों के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित की। पूर्ववर्ती काव्य में सामान्य मानव के हितों का स्थान नहीं था। वे उपेक्षित रहे। बौद्धिकता और नवीन दृष्टिकोण के सम्मिश्रण के साथ ही काव्य में उन्हें नये रूप में प्रस्तुत किया गया। कवियों की इस प्रवृत्ति को स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण माना जा सकता है। आगे चलकर हायावाद और प्रातिवाद में इस प्रवृत्ति का अच्छा विकास हुआ।

---

१- गया प्रसाद शुक्ल सप्तशती - कृष्णक- कन्दन, पृ० ११ चिरगांव भाँसी ।

## मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की भावना तथा नये मानव की प्रतिष्ठा

जन सेवा का आदर्श राष्ट्रीयता की प्रथम स्थिति होती है। जन-जीवन के जीवन-स्तर को उच्च किये बिना किसी राष्ट्र में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार नहीं हो सकता है। योरोप में औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही राष्ट्रीयता की जड़ें पड़बूत हुई हैं। इस परिवर्तन से पूर्व फ्रांस आदि के दार्शनिक राष्ट्रीयता के लिए जन-सेवा पर विशेष बल दे रहे थे। काम्टे के अनुसार मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास में सुधार केवल मानवहितवादी धर्म के प्रचार द्वारा ही संभव है। सामाजिक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हमारी राजनीतिक नीतिज्ञता पर आधारित ही हमारे नैतिक मानकपद्धत सही हों, फूसी का वितरण न्यायोचित ढंग पर हो, पारिवारिक जीवन के आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा हो एवं विवाह संबंधी विचारों के दृष्टिकोण का विकास हो। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति मानव सद्गुणियों के विकास द्वारा ही सकती है और यह विकास मानवहितवादी धर्म के प्रचार द्वारा ही संभव है।<sup>१</sup>

पीड़ित-मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति के विचारों की विवेच्य कालीन कवियों ने, जिन में हरिऔध, मेघलिशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा मुकुटपर पाण्डेय के नाम भी प्रमुख हैं, अपने काव्य में स्थान तो दिया है लेकिन ये कवि धीरे-धीरे ईश्वरवादी हैं। इस कारण उन कवियों ने काम्टे के अनीश्वरवाद की अपने काव्य में कहीं भी स्थान नहीं दिया है। काल में १६ वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में इसके अनुयायियों की संख्या फ्रांस से भी अधिक बढ़ गयी थी।<sup>२</sup> हिन्दी

१- Encyclopedia Britannica, Page 194 (Six Edition)

२- Priya Ranjan Sen - Western Influence in Bengali Literature, Page 142  
(Publication Calcutta Univer)

यै विवेककाल के कवियों ने उन सिद्धान्तों की धारे - धीरे मान्यता दी । इस युग के कवियों ने मान्यता की सब से बड़ा आदर्श माना है । यहाँ तक कि इस युग के कवियों के काव्य ग्रन्थों में ईश्वर की आदर्श मानव हो गया है । हरिऔध जी ने प्रिय- प्रवास, त्रिपाठी जी ने मिलन, गुप्त जी ने यशोधरा, और साकेत आदि रचनाओं के द्वारा इसी मानववर्त्म की स्थापना का प्रयत्न किया है । इस युग के अन्य कवि सरस्वती में प्रकाशित फुटकर कविताओं के द्वारा स्वर्ग की धरती पर लाने के लिए प्रयत्नशील दिखलाई पड़ते हैं । हरिऔध की राधा मानव सेवा में ईश्वर का रूप देखती है वह दीन- हीन लोगों की सेवा को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ भाषा समझती है :

विश्वात्मा जी परम प्रभु हैं रूप तो हैं उसी के  
सारे प्राणी सारे गिरि लता वेलियां वृक्ष माना ।  
ऐसा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा ।  
मानवीयेता परम प्रभु की भक्ति सर्वश्रेष्ठ है॥<sup>१</sup>

हरिऔध की राधा ही जन सेवा में रत नहीं है बल्कि उनके कृष्ण भी इसी भावना से जीत- जीत है :

रोगी दुःखी विपद - आपद में पड़ों की ।  
सेवा छदैव करते निज- हस्त से थे ।  
ऐसा निकैत कृष्ण मैं न मुझें दिलाया ।  
कौन जहाँ पुहित हो पर से न होवे॥<sup>२</sup>

१- हरिऔध - प्रिय प्रवास - पृ० २५६ ।

२- यही - यही - पृ० १६७ ।

अन्य भक्त कवियों में भी इस गवीन विचार धारा के ज्ञात स्वरूप नवीन मानव-  
तावादी दृष्टिकोण मिलता है। क्योंकि मानवता को किसी भी सीमा तक शृंगार  
और धर्म की बेदी पर बलि नहीं दिया जा सकता। विवेच्य कालीन कवियों ने  
स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को किसी सीमा तक अपने काव्य में स्थान दिया  
है। और मनुष्य का मनुष्य के रूप में समुचित आदर किया है इसी से काव्य में  
मानवतावाद का क्रमशः विकास हुआ, नारी जो पीड़ित वर्ग में गिनी जाती थी  
वह पुरुषों की एकमात्र न रह कर स्वतः अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास करती  
दिखाई देती है, और अन्त में मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना  
का विकास हुआ।<sup>१</sup> रामनरेश त्रिपाठी के काव्य की नायिका विषया जन-सेवा  
को अपना सभ से बड़ा मुक्त समझती है। मानव सेवा में ही वह अपने दाम्पत्य प्रेम  
की पूर्ति समझती है :

सेवा धर्म मुख्य है जग में  
लोक-शान्ति-प्रद काज  
एक दीन ने प्रकट प्रेम की  
धार फलट दी आज  
प्रियतम को डूँडना जहाँ में  
है उन्मत्त प्रयास  
वास्तव में दीन-जनों के  
सुख में उसका वास।<sup>२</sup>

त्रिपाठी का एक कसरा सण्ड स्वप्न है उस में भी त्रिपाठी जी ने निस्साहाय,  
निरुपाय एवं दीन-हीन मानव के बीच प्रभु के दर्शन कराये हैं।

१- डा० रवीन्द्र उहाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर कांग्रस ज्ञाव, पृ० ११६।

२- रामनरेश त्रिपाठी - भिलन, पृ० ७० पद १६। चौथा सर्ग।

पर हरि के पद- पद- कहाँ है ?

क्या उरिता के सुन्दर तट पर ?

नहीं, निराशा नाच रही है,

जहाँ भयानक भूरि पैर धर

निस्सहाय निरुपाय जहाँ हैं,

कैंठे चिन्ता -मग्न दान जन

उनके मध्य सहे हरि के

पद- पद- के मिलते हैं दर्शन॥<sup>१</sup>

मानव सेवा से ईश्वर की प्राप्ति का भाव हमें गुप्त जी के काव्य से भी मिलता है :-

गलिताजों का गंव उगाये,

जाया फिर तू जलत जगाये,

छट कर मैंने तुझे छटाया,

बार बार तू आया ॥<sup>२</sup>

विशेष्यकाल में मनुष्य को मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयत्न जारी रहा है । कहा गया है कि मनुष्य स्वयं देवता है उसके साथ पूर्ण रूप से मानवीय व्यवहार होना चाहिए । मानव को उपेक्षित करके देवताओं की प्राप्ति के उच्छुक सैतानिक जीव दयनीय हैं। उस युग के काव्य में सर्वप्रथम मनुष्य की सामर्थ्य का बोध होता है । मनुष्य का अपना भी अस्तित्व है वह नियति के हाथों की कठपुतली मात्र नहीं है । गुप्त जी ने उन लोगों के प्रति गहरा आकौश प्रकट किया है। जो मनुष्य को देवताओं के नाम पर शताब्दियों से पशुओं की भाँति शोषित कर रहे हैं। ये मनुष्य भारत के करोड़ों जन्तु हैं जिन्हें हमारे साहित्य में प्रथम बार सहानुभूति और समानता मिली है--

१- रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्न, पृ० २१, पद २८ (पहला सर्ग)

२- मैथिलीशरण गुप्त- सरस्वती, नवम्बर, सन् १९१८ ई० स्वयंसागत पृ० १३७ ।

गांधी जी ने ईश्वर हरिजन का नाम दिया और कवियों ने उसे स्वीकार करके उन्हें, हरिजन बनाने का सतत प्रयत्न किया है। विवेच्य युग की धर्म साधना सर्वधी भावना अधिक व्यापक और उदार है। उनकी धार्मिक भावना केवल राम और कृष्ण के गुण-गान तक ही सीमित नहीं रही बल्कि ईश्वर उनकी रचनाओं में आध्यात्मिक शक्ति का रूप धारण कर लेता है। यह शक्ति मनुष्य-प्रेम दीन दुष्टियों की सेवा एवं सर्वज्ञ-सिद्ध प्राकृतिक पदार्थों के उन्मय में व्यक्त होता है। त्रिपाठी जी के निम्नांकित शब्द में देखिए:-

मैं दुंदुता तुमने था जब कुंज हन में ।  
तु सौगता मुझ था तब दीन के सदन में॥  
तु बाह धन किसी की मुझ की पुकारता था ।  
मैं था तुम, बुलाता संगीत के मदन में॥<sup>१</sup>

त्रिपाठी जी की यह धार्मिक मनोदृष्टि मानवता की सेवा और विश्व-प्रेम की प्रेरणा प्रदान करती है। विवेच्य युग के दूसरे कवि मुकुटवर पाण्डेय सांसारिक कर्तव्यों के अनिवार्य मानते हैं और उनके पालन में मुक्ति की आशा करते हैं वे घर में ही मुक्ति और घर में ही निर्वाण मानते हैं।

घर ही मैं सब योग मुक्ति की  
घर ही था निर्वाण॥<sup>२</sup>

और जागे वह दीन-हीन मानवता में ईश्वर के दर्शन भी करता है

दीन हीन के अश्रु नीर में  
पतितों के परिताप में

-----करता था तू जान॥<sup>३</sup>

इस प्रकार हिन्दी काव्य में नवीन-चेतना के प्रभाव के परिणाम स्वरूप एक मानवता-वादी दृष्टिकोण विवेच्य कालीन कवियों के काव्य में र्जित मिलता है। इस काव्य में मानव का <sup>मानव</sup> रूप में बाहर हुआ है। साथ ही मानवता का विस्तार भी हुआ है।---

१- रामनरेश त्रिपाठी -

२- मुकुटवर पाण्डेय- सरस्वती, १६१७ विश्वकोष, पृ० १७३ ।

३- वही - वही, वही पृ० १७३ ।



विवेच्य काल की यह प्रवृत्ति भी स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती है । काव्य में देव चरित्रों की प्रतिष्ठा और गुणगान की मध्ययुगीन प्रवृत्ति यहाँ आकर समाप्त हो जाती है और मनुष्य के सहज-रूप की प्रतिष्ठा का <sup>आरम्भ</sup> क्रम हो जाता है । आगे चलकर इसी प्रवृत्ति ने काव्य में मानवतावाद की धारणा को साकार किया ।

### भारती उसकी समस्याएँ

भारतेन्दु साहित्य में समाज के प्रति पर्याप्त जागरूकता दिखाई पड़ती है। प्रत्येक भारतेन्दु युगीन काव्य में जिन सामाजिक एवं राजनीतिक चेतनाओं की अभिव्यक्ति हुई है वे विवेच्य युग में और भी अधिक व्यापक एवं सशक्त रूप में प्रस्तुत की गई हैं। विवेच्य कालीन कवियों ने सामाजिक कुप्रथाओं की केवल जाहलना ही नहीं की है बल्कि इन कुप्रथाओं से पीड़ित प्राणियों के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित की है। इस युग में अछूतोंदार तथा दहेज प्रथा आदि कुछ नये सामाजिक विषयों को भी कविता का प्रतिपाद्य बनाया गया है। भारतेन्दु युगीन कविता की अपेक्षा विवेच्य कालीन कविता में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। कांग्रेस के स्वतन्त्रता आन्दोलन, कृषक एवं दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन तथा विज्ञान की उन्नति के कारण इस युग के साहित्यिकों में एक जागृति दिखाई पड़ती है। उन्होंने बौद्धिक दृष्टिकोण से धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन किया है। इस जागृति में स्वामी दयानन्द, तथा लोकमान्य तिलक जैसे मनीषियों का योगदान है। इन लोगों ने भारत के लोथे हुए गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए व्यक्त परिश्रम किया, उच्च संस्कृत साहित्य के अध्ययन और पुरातत्त्व की सीखों ने भी भारत का मान और महत्त्व पश्चात्त्य देशों की दृष्टि में बहुत ऊँचा किया। देश में संगीत, चित्रकला, और स्थापत्य कलाओं के उन्नयन के लिए पुनर्जागरण हुआ, इन आन्दोलनकारी कलकों का परिणाम यह हुआ कि हमारे साहित्य में नई चेतना उत्पन्न हुई, रीति कालीन श्रृंगारिक भावना का बहिष्कार हुआ साहित्य में उपेक्षित पात्रों को स्थान दिया गया साहित्य की विविध विधाओं में सामाजिक जीवन के अविच्छिन्न के लिए नैतिकता का दृष्टिकोण अपनाया गया।<sup>१</sup>

---

१- डा० मुरारी लाल शर्मा- द्विवेदी युग के काव्य में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना

यदि कोई कविता पूर्ण समाज दर्शी होने का दावा कर सकती है तो वह विवेच्य कालीन कविता ही है। यद्यपि काव्य में सामाजिक दृष्टि का उन्मीलन भारत-पु युगीन काव्य में हो चुका था परन्तु इस का विकास विवेच्य कालीन काव्य में संभव हो सका है। विवेच्य कालीन कवि अपने समसामयिक युग एवं परिस्थितियों की ओर से जागरूक और सतर्क रहे हैं। मीथिलीशरण गुप्त के शब्दों में -

‘ भारतीय जीवन कुरीतियों का केन्द्र बन गया था सभी गुणों से हीन और रुढ़ियों से जर्जर या प्रतीत होने लगा था ।

हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा

ध्रुव धर्म - पथ में कु- प्रथा का जाल सा बिछा रहा ।।’

अतएव गुप्त जी ने अपने काव्य के माध्यम से देश को इस हीन भावना से ऊपर उठाने और उसमें नयी शक्ति का संचार करने का भ्रष्टक प्रयत्न किया। कवि की मूल दृष्टि सुधारवादी रही है वह कभी व्यंग्य की वाणी और कभी करुणा विगलित कण्ठ से देश की दरिद्रता दुर्मिता पीड़ित कृषकों और श्रमिकों की स्थिति का वर्णन करता है। उन्होंने कहीं कहीं नैतिक और धार्मिक रुढ़ियों, तथा संस्कृति के प्रति अनास्था आदि दोषों की निन्दा की है। गयाप्रसाद शुक्ल समेही ने समाज के शोणित पीड़ित वर्ग पर अनेक कविताएँ लिखी हैं। इस दिशा में रामनरेश त्रिपाठी का प्रयत्न भी उल्लेख है। उन्होंने मिलन तथा पथिक जैसे काव्यों में भारतीय समाज की तत्कालीन परिवेश में चित्रित किया है। इन कवियों को पढ़ने से ऐसा बोध होता है कि विवेच्य कालीन काव्य सच्चे अर्थों में समाजोन्मुखी रहा है।

## नारी :-

आज की भारतीय नारी एक और सती- सीता सावित्री, और दमयन्ती के आदर्श चरित्र पढ़ती है, दूसरी ओर वह उस नये समाज और नई दुनियाँ को देखती है जो उसके कोई ऐसी चीज माँगता छूतीत होता है जिस की सहायद सीता, सावित्री या दमयन्ती से कभी अपेक्षा नहीं, की गई थी । एक ओर वह रामायण व महाभारत की कथाओं द्वारा आदर्श गृहणी और आदर्श माता आदि के नैतिक उपदेश सुनती है दूसरी ओर वह ग्रोसोप में हुए नारी- जागरण के आन्दोलन व संघर्ष का इतिहास पढ़ती है राष्ट्र निर्माण में भाग लेने वाली आधुनिक नारियाँ के वृत्तान्त भी वह पढ़ती है और वह दुविधा में पड़ जाती है। क्योंकि पहले भारतीय नारी समाज बहुत पिछड़ा हुआ था और उस का जीवन बहुत सीमित था अतलिये नारी अज्ञान की पराकाष्ठा पर थीपरन्तु अब पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी संस्कृति भारतीय जीवन में प्रवेश कर चुकी है । युग - परिस्थितियाँ बदल गई हैं । आधुनिक काव्य के नेता पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि से नारी जाति की शोचनीय स्थिति बर्णित नहीं थी । महिला परिषद के गीत में उन्होंने नारी की अज्ञानता की ओर इशारा करते हुए कहा है कि -

पढ़ती थी वेद तक जहाँ महिला सदैव थी।

नारी- समूह है वही अज्ञान हमारा॥<sup>१</sup>

कान्यकुब्ज बकला विलाप में तो द्विवेदी जी ने नारी- जीवन की वेदना को मुखरित सा कर दिया है । मनुस्मृति में लिखा है यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः \* अर्थात् जिस समाज में नारी या मातृ जाति की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं । मनु की उक्त वाणी की पुष्टाई देते हुए रामचरित- मानस की डील गँवार श्लोक पशु नारी विषयक धारणा पर कान्यकुब्ज बकला विलाप

---

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी - सरस्वती, डिसेम्बर, १९०६ ई० ।

में प्रहार किया है :

महामलिन से मलिन काम बन करती रहती हैं दिन- रात,  
दुखी देल पाते पिता पुत्र को व्याकुल ही कृश करती जात।  
हैं मगधान हाथ ! तिस पर भी उपमा कैंसी पाती हैं ।  
ढील तुल्य ताउन अधिकारी हमीं बनाई जाती हैं।<sup>१</sup>

गुप्त जी ने नारी शिक्षा पर कल दिये हैं उन्होंने भारत-भारती में नारी शिक्षा  
की अमिवार्य और उन्नति का मूल बताते हुए कहा है :

सोचो नरों से नारियाँ किस बात में हैं कम दुर्ह ।  
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम दुर्ह ।  
हैं धन्य वेरी तुल्य गाथा - किंवदंती वे सर्वथा ।  
कवि हो चुकी है विजयका विजया मधुरवायी यथा।।<sup>२</sup>

८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८  
क्या कर नहीं सकती भला यदि शिक्षिता हैं नारियाँ।  
रण - रंग, राज्य, सु धर्म - रक्षा कर चुकी सुकुमारियाँ।  
लक्ष्मी लक्ष्या, वायनाधार्य, मवानी, पदमिनी ।  
ऐसी औरों देवियाँ हैं आज जा सकती गिनी।।<sup>३</sup>

नारी में असीम शक्ति, धैर्य और साहस है। उसकी तीन दशा और वैयर्थ्य भाव को  
दूर करने का प्रयास रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'मिलन' काव्य में किया है। उन्होंने  
वैयर्थ्यता को नारी की वृद्धता का कारण कहा है। उनके अनुसार उस वैयर्थ्यता को  
हटा कर ही उच्च नारी समान की कल्पना की जा सकती है -

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी - काव्यकुसुम अकला विलाप, बंक ८ १९०६ ई०

पृ० १४। प्रयाग साहित्य सम्मेलन ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती- (वर्तमान संस्करण) पृ० १३० ।

३- वही - वही - ( वही ) पृ० १३६ ।

उन के ऊपर पड़ी हुई है  
 कृत्या वति प्रकूल ।  
 उसे हटाने ही से होगा  
 उन्नति का बूढ़ मूल॥ १

शिक्षित नारी के द्वारा समाज के बहुत से दोष दूर हो जाते हैं त्रिपाठी जी की विजया ने आदर्श प्रस्तुत किया है :

उस के गानों ने उपजाये  
 सुदृढ़ साहसी शूर ।  
 मिटा विरोध, समाज से हुआ  
 बंध, व्यंघ, दुल दूर ।  
 उसके गान जवान श्रवणकर  
 कायरपन भितार ।  
 होते थे स्वदेश-सेवा में  
 मरने को तैयार॥ २

त्रिपाठी जी की दृष्टि में नारी समाज कोन हीन या बकला नहीं है। उन्होंने नारी में बहुत शक्ति देखी है। उन का ख्याल है कि कठिन से कठिन कार्य भी अगर नारी के द्वारा हो तो वह सरल हो जाता है। उसमें अनेक गुण हैं। त्रिपाठी जी के स्वप्न जाव्य की सुमना नायक बसन्त को युद्ध में जाने की प्रेरणा देती है। बसन्त कैसे जाता अगर सुमना उस को साहस और धीरज न बंधाती । वह बसन्त को कई प्रकार से से समझा कर राजी करती है। उसे प्रेरणा देती है -

१- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन - पृ० ७२ । हिन्दी मन्दिर प्रयाग ।

२- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन - पृ० ७३ । (वीधा सर्ग)

तुम में सच्चरित्रता, प्रतिभा  
 ज्ञान, योग्यता, धैर्य, पराक्रम  
 सैवामाव, सहानुभूति है  
 वतः नाथ ! कर प्रकट परिक्षा  
 पहले निज घर से सुधार ला  
 तुम क्यों करते नहीं उपक्रम ?  
 केवल मनसा की तरंग में  
 क्यों लौते ही जायु नरुण्युम <sup>१</sup> ॥

गया प्रताप शुक्ल सनेही अपने दौल में कसूटे हैं। भारतीय समाज की कुरीतियों पर उनकी ऐतनी सूझ बली । उनके काव्य में संस्कार, व्यंग्य के साथ कला भी है । सनेही जी के शब्दों में दलैय प्रया समाज में लगी हुई वह आग है जिस में समस्त समाज जलता है :

यह दलैय की आग सुवंशी में दलकाई ।  
 प्रलय बन्धि ही वही आग चारों दिशि धाई ।  
 घर उजाला बन बना रही कर रही सफाई ।  
 ताप रहे हम मुदित लम्कते होली धाई ॥ <sup>२</sup>

विवैध्य युग के श्री रामचरित उपाध्याय ने भी समाज की वीक कुरीतियों जैसे परदा- प्रथा, अनैसर्गिक विवाह, बाल विधवा आदि पर व्यंग्य किए हैं :

यदि स्त्रियाँ शिदा पाती ताँ परदा सिस्टम होला दर ।  
 और शिदात हों, वे धारण क्यों करती चूड़ी-सिन्दूर ॥ <sup>३</sup>

विवैध्यकाल के एक वनाम कवि श्री केशवराम फड़से ने भी परदे के विरोध में एक मनोरंजक तर्क दिया है:

१- रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्न - पृ० ४० (द्वितीया सर्ग)

२- गयाप्रताप शुक्ल सनेही - सरस्वती, (आस्त १९१५, पृ० ६८)

३- श्रीरामचरित उपाध्याय - कविता संग्रह - पृ० १२ ।

नत शितान्त जोड़े जब नारी  
निकले छोकर पय संचारी ।  
दिलाती है तब वह बेवारी-  
मानों प्राणी विवादचारी॥<sup>१</sup>

श्री माधुराम शर्मा शंकर जी कवि होने के साथ-साथ सुधारक भी थे । तत्कालीन समाज और उसके दोषों पर उनकी दृष्टि गई है। शंकर जी ने विधवा विवाह का औचित्य बताने के लिए ही गर्म- सण्ड रहस्य में एक गर्म में ही विधवा हो गई बालिका का जन्म हो लेकर समाज सेविका बनने तक का दुःखपूर्ण संकल किया है। उस काल के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी भारत- भारती में छोटी-छोटी कविताओं के द्वारा नारी समाज की कुछ कुरीतियाँ जैसे बेजौड़ विवाह तथा बर कन्या विक्रय पर अपने दिल के कापोटे फाँड़े हैं। बेजौड़ विवाह पर वह कहते हैं :

प्रतिवर्ष विधवा - वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही ।  
रौता कभी आकाश है फटती कभी छिलकर पड़ी  
हा ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?  
फिर भी नहीं हम होइते हैं बाल्य - वृद्ध विवाह कौ॥<sup>२</sup>

एही प्रकार बर कन्या- विक्रय पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं -

बिकता कहीं बर है यहाँ, बिकती तथा कन्या कहीं ।  
क्या अर्थ के लागि हमें जब दृष्ट आत्मा भी नहीं ?  
हा ! क्यों, तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ हैं-  
बिकार, फिर भी तो नहीं सम्पन्न और समर्थ हैं॥<sup>३</sup>

१- श्री केशवराम फड़से- परदा, मयाँदा, बकटूर, १९१४, पृ० १६ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - भारत- भारती (वर्तमान सण्ड) पृ० १४० ।

३- वही - - - ( ११ ( पृ० १४० ।



उक्त विवेचन से तत्कालीन कविता की सामाजिक चेतना का कुछ साँप होता है। देश में चारों ओर राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागृति की एक लहर सी व्याप्त थी। अतएव तत्कालीन कवियों ने उतसे यथोचित प्रभाव ग्रहण किया और अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक जागृति में योग प्रदान किया। उस स्थिति से हिन्दी कविता की पारम्परिक विषय-भूमि के बदलने में भी पर्याप्त सहायता मिली। भारत-सु युग की तुलना में विवेच्य काल अर्थात् विवेदी युग में काव्य के लिए अवैदाकृत कहीं अधिक नवीन विषय चुने गए। उस विषयगत नवीनता के मूल में तत्कालीन सामाजिक आन्दोलनों का बहुत हाथ रहा है। विषय की नवीनता ने भाषा और शिल्प की नवीनता के लिए भी प्रेरणा प्रदान की। और कुल मिलाकर हिन्दी कविता पुरानी रुढ़ियों से एक सीमा तक मुक्त हो गई।

## नारी का नवीन रूप

आधुनिक युग में नारी भी पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में भाग लेने लगी। नारी पुरुष की कामवासना की पूर्ति का ज़ायन मात्र न रहकर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना दायित्व सम्भालने लगी। वह पुरुषों की सहकर्मिणी बन गई। बतएव नारी के प्रति जो सीमित संकुचित दृष्टिकोण था उसे विवेक्य काल के कवियों ने विकसित किया। उन्होंने नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का मौलिक रूप हमारे सम्मुख रखा। नारी के प्रति उच्च भावना के दर्शन हम सब से पहले रामनरेश त्रिपाठी के स्वप्न, पथिक और मिलन नामक काव्यों में होते हैं। ये तीनों काव्य नारी के प्रति उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। त्रिपाठी जी के इन तीनों काव्यों में नारी प्रेमिका के अतिरिक्त समाज सेविका, वीर देश-प्रेमिका भी है। इन तीनों काव्यों में नायिका के संभोग और वियोग की अवस्थाओं का रुढ़िगत वर्णन कहीं नहीं मिलता है। मिलन काव्य की नायिका (विजया) पति से बला होने पर निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा में लग जाती है :

विजया सत्य प्रेम से अपना  
करके काया- कल्प ।  
कली लौक- सेवा करने को  
होकर दृढ़ संकल्प ।  
उस दिन से देता न किसी ने  
फिर उसका वह रूप  
वैश पड़ी वह एक गाँव में  
सन्यासिनी - स्वरूप।<sup>१</sup>

---

१- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन, (चौथा सर्ग) पृ० ७१ ।

त्रिपाठी जी ने भारी का चित्रण शक्ति के छोट के रूप में किया है । उन्होंने स्त्रियों को रण सौत्र में खाने को आमंत्रित किया है । विजया अपने पति के साथ निकलती है और क्रान्तिकारिणी दुर्गा की भाँति त्रिशूल धारण किए दीन-हीन कृषकों एवं श्रमिकों के लिए संगठन करती है-

लिय त्रिशूल -हाथ में करने

चली देश उद्धार ।

गाँव -गाँव में लगी धूमने

सेवा व्रत उर धार॥

ध्दार - ध्दार पर जाकर विजया

करुणा प्रेम निधान ।

सब को लगी जगाने गाकर गाकर

देश भक्ति -मय- गान॥<sup>१</sup>

स्वप्न की नायिका सुमना का व्यक्तित्व बहुत कर्मील है। वह पुरुष का वेण धारण करके विदेशियों से राष्ट्र की रक्षा करती है। अपने पति को पातृ धूमि की रक्षा के लिये उत्तेजित करती है और नवयुवकों में क्रान्ति के बीज बोती है:-

जाकर धन- जन पर पड़ता है

निर्भय रण- दुन्दुभी बजाकर ।

तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के

क्या बैठे रहते हैं घर पर ?

जाता है जब फैल देश में

कोई विषम रोग संक्रामक

जबवा ऊपर जा पड़ता है

जब भीजण दुर्मिदा बरानक

जब जनता पुकार उठती है

आहि- आहि स्वर से अति कातर

तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के

क्या बैठे रहते हैं घर पर ?॥<sup>२</sup>

त्रिपाठी जी के स्वप्न की नायिका (सुमना) का व्यक्तित्व कर्मशील है। वह जीवन वाच आर्क का भारतीय संस्करण प्रतीत होती है।<sup>१</sup> वह अपने पति की नातु भूमि की रक्षा के लिये तैयार करती है। त्रिपाठी जी का यह मौलिक दृष्टिकोण है इस मौलिकता के कारण ही विवेच्य कालीन कवियों में उन्हें स्वच्छन्दतावादी कवियों की अग्रिम पंक्ति में रखा जाता है। उनकी औजस्य वाणी का एक और उदाहरण दृष्टव्य है।

अपने शयनागार बन्द कर,  
दिये नवाँढावों ने तत्क्षण,  
पाँध दिये पतियों की कटि में -  
अति कलाश्रयो में रणकंकण॥<sup>२</sup>

हरिवोध जी नैतिकतावादी कहे जाते हैं किन्तु उन्होंने भी अपने काव्य में जनक स्थलों पर मौलिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इनके नारी सम्बन्धी विचार भी मौलिक हैं। अतएव इस दृष्टि से उन्हें स्वच्छन्दतावादी कवियों की श्रेणी में भी रखा जा सकता है। उनका महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' जो आधुनिक युग की महान कृति समझा जाता है, नारी के प्रति नवीन और उच्च भावनाओं का सशय नमूना है। हरिवोध की राधा-राध-विलास की प्रतिकृति नहीं है वरन् मौलिक मानस दृष्टि है। वह समाज की रक्षा एवं सेवा में संकल्प का साकार रूप है:

विश्वात्मा जी परम प्रभु हैं रूप तो हैं उती के।  
सारे प्राणी सरि गिरि उता धलियों वृद्धा नाना।  
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।  
मायोपेत परम प्रभु की भक्ति सबधिना है।<sup>३</sup>

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १११ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्न, पृ० ४०

३- महाकवि हरिवोध - प्रिय-प्रवास, पृ० २५६ ।

विवेच्य कालीन कवियों के नारी संबंधी विचार बहुत नये और विकसित रूप में हमारे सामने आये हैं। उनके काव्य में नारी पुरुषों के मार्ग की दिष्ण नहीं है वरन् उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए उसकी सहायिका के रूप में है। रामनरेश त्रिपाठी के स्वप्न काव्य की नायिका अपने पति के मानवीय गुणों की प्रशंसा करती है और उसे इस बात के लिए उत्तुब्ध करती है कि वह अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ में गँवाए-  
बलिष्क मानवता की सेवा में व्यतीत करे। इन नये विचारों का कवि ने बहुत सुन्दर शब्दों और प्रभावपूर्ण शैली में लिखा है :

तुम में सच्चरित्रता, प्रतिभा,  
ज्ञान, योग्यता, धैर्य, पराक्रम  
शैवामाव, उद्यमभूति है  
अतः नाथ! कर प्रकट परिश्रम  
पहले निज घर से सुधार का  
तुम क्यों करते नहीं उपक्रम ?  
केवल मनसा की तरंग में  
क्यों लौते हो वायु निरुपम ? १

कवि विधाता को नारी की रचना के लिए धन्यवाद देता है क्योंकि कवि का ऐसा विश्वास है कि नारी के द्वारा मनुष्य की समस्त सुखों की प्राप्ति हो सकती है :

मन कहता है, इस मूल पर  
सकल सुखों की नारी है निधि  
इस संसृति के संचालन को  
नारी रचकर धन्य हुआ विधि। २

१- रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्न, पृ० ४० ।

२- वही - वही पृ० २४-२५ ।

विवेच्य काल से पूर्व नारी के प्रति कवियों का एक बहुत ही सीमित दृष्टिकोण रहा उसे केवल किलास का एक साधन समझा गया परन्तु धीरे- धीरे इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। विवेच्य युग के सपर्य कवियों ने अपनी प्रतिभा से नारी को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया। इन कवियों के काव्य में नारी केवल विरह विधुरा ही नहीं हैं वह समाज सेविका के रूप में अवतरित हुई हैं :

विजया ने प्रण किया सुदृढ़ हो  
कर प्रयत्न भरपूर ।  
तन मन से इस दीन देश का  
कष्ट करूँगी दूर।।<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नारी को पुरुष के समान अधिकार दिए। यह कवि पार्श्वनाथ ऐलर्को और कवियों से प्रभावित थे। उनके सामने पार्श्वनाथ विद्वानों के नारी संबंधी विचार आदर्श के रूप में थे। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नत नहीं हो सकता जब तक उसकी आधी जनसंख्या उपेक्षित और अशिक्षित रहेगी, प्रत्येक कार्य क्षेत्र में स्त्री और पुरुष को समान रूप से क्रियाशील होना चाहिए। जिस देश में स्त्रियाँ पुरुषों से पिछड़ी हुई होंगी वह देश सम्यता और संस्कृति की अन्मजात विशेषताओं से वंचित रहेगा।<sup>२</sup> नारी विधायक इस आदर्श से प्रेरित होकर हरिजीव जी, भैरवलीशरण गुप्त, तथा रामनरेश त्रिपाठी ने नारी को अपने काव्य में नये वासन पर प्रतिष्ठित किया है। इन कवियों के नारी चरित्र साधारण नहीं है। उन में किसी सामान्य नारी की अपेक्षा विवेक और कर्म की मात्रा अधिक है उदाहरण के लिए हम त्रिपाठी जी के स्वप्न नामक काव्य की नायिका सुमना का चरित्र ले सकते हैं। यह मानवता की महिमा बताकर अपने पति (जसन्त) को सेवा के लिये तैयार कर देती है :

१- रामनरेश त्रिपाठी - भिन्न - पृ० ७१ ।

२- हैकिन के संस्मरण - कलारा जेंट किन - पृ० १६ मास्को १९५६ ।

सेवा है महिमा मनुष्य की  
 न कि अति उच्च विचार उच्च-बल  
 मूल हेतु रावि के गौरव का  
 है प्रकाश ही न कि उच्चस्थल  
 गुमना की मार्मिक भावों से  
 हुआ बसन्त विशेष प्रभावित।।<sup>१</sup>

इस प्रकार हरिबांध की राधा भी कृष्ण के विरह में कम और दुःखी मानवता की सेवा में अधिक लीन दिखाई देती है। उसके प्रेम के वायाम भी विस्तृत हैं। वह अपने कार्यों और खलिदान से समाज को सुखी बनाना चाहती है। हरिबांध जी के शब्दों में श्रीराधा की यह जूझी मर्मांगी देखने योग्य है:

वै जाया थीं सु-जन शिर की शासिका थीं छर्छी की ।  
 कंगारों की परम बिधि थीं जौनवी पीड़ितों की ।  
 दीनों की थीं बहिन, जननी थीं आयाश्रितों की ।  
 वाराध्य थीं स्या-जन की प्रेमिका विश्व की थीं ।।<sup>२</sup>

हरिबांध जी के उक्त विचारों में जापुनिकता और मौलिकता है। विवेच्य काल के लोक कवियों ने नारी के ऐसे ही नवीन रूप की प्रतिष्ठा की है। जिससे तत्कालीन नारी नागरण का भी बोध होता है।

परिस्थितियाँ युग को जन्म देती हैं और गुणिन कवियों के कंठ में परिस्थितियों के गान मुखरित होते हैं। विवेच्यका नवजागरण का युग था। सुधारों की एक लहर सी चल रही थी। देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ नारी स्वातंत्र्य के बीज भी उग रहे थे। हमारे साहित्य में भी नये विषयों और नयी विचारधारा के प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठे थे। समाज अपनी कमजोरियों और कुरीतियों को अनुभव कर रहा था। साहित्य

१- रामनरेश त्रिपाठी- स्वप्न- पृ० ४१-४२ ।

२- महाकवि हरिबांध- प्रिय-प्रवाच पृ० २६८ ।

भी अपने पुराने चौड़े उत्तार फेंकना चाहता था। विवेक्य काल के कवियों ने इस कथार्थ को अपनी रचनाओं में सुब चित्रित किया। विवेक्य युग के पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी<sup>१</sup> नेतिक्ता, वादरवादिता, इतिवृत्तात्मकता तथा नीरसता का आरोपण किया जाता है किन्तु उन्होंने भी नारी संबंधी पारम्परिक धारणा से छटकर उसकी महिमा और उपयोगिता के चित्र खींचे। धृष्टार वल्लीलता आदि के संकुचित एवं संकीर्ण धरे से निकल कर उन्होंने नारी के प्रति आदर का भाव व्यक्त किया। उन्होंने नारी के मुख से ही बहलाया :

जहाँ हमारा आदर होता वहीं देवता करते वास ।  
जहाँ निरादर होता वह घर छो जाता है सत्यानाश।<sup>२</sup>

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान एवं आदर मिला है। उन्होंने नारी को किसी प्रकार भी पुरुष के हीन नहीं माना है। उनके काव्य में बहुत से उपेक्षित नारी पात्रों को भी स्थान मिला है उनकी समस्त रचनाओं में नारी के उदात्त स्वरूप के दर्शन होते हैं। उनकी आरम्भिक रचना रंग में भंग में नारी त्याग तथा वीरत्व की भावनाओं से जौत-बौत है उदाहरण के लिए यह हाड़ारानी का यह बलिदान लीजिए :

महण जो पति ने किया था अतीव उर्मन में,  
और पीला जाज भी जो था हरिजा - रंग से ।  
वह उली कर से स्वपति का शीश रेतकर गौद में,  
मिल गई नन्दन - चिता के ज्वाल - जालामौद में।<sup>३</sup>

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी + काव्य कुब्ज अन्ता किलान - सरस्वती १९०४ जनवरी

पृ० १४८ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त- रंग में भंग, पृ० २२, (७५)



जयद्रथ क्षत्र की उठती क्षत्रिय्यु को युद्ध के लिए प्रेरित करती है । शकुन्तला में नारी के प्रति सम्मान की भावना छिपाई होती है जो पीढ़ी होकर व्यापक होती गई है। सैन्धवी में नारी असहाय होकर भी आत्म सम्मान से युक्त है। गुप्त जी ने एक और नारी के कलाणकारी रूप को प्रदर्शित किया है तो दूसरी ओर उसका सौन्दर्य विधान करते हुए उन्होंने अच्छी प्रातिशीलता का परिचय दिया है। बाह्य शारीरिक वर्णन तक ही उनका चित्रण सीमित नहीं है। अन्तः सौन्दर्य की ओर भी उनकी दृष्टि पड़ी रही है। गुप्त जी का नारी सौन्दर्यांकन बड़ा भव्य और उदात्त है ।

### धार्मिक समस्याएँ : रुढ़ियों और जाठम्बरों का विरोध

धार्मिक जीवन के द्रोह में कार्य-समाज का सुधारक स्वर प्रभु भा परन्तु फिर भी भारतीय हिन्दू समाज कोकौं रुढ़ियों से ग्रस्त रहा। अतएव उस युग के कवियों ने मूर्ति पूजा, धार्मिक जन्म विश्वासों, रुढ़ियों और बड़ परम्पराओं पर व्यंग्य किए हैं। व्यंग्य का स्वर महाकवि शंकर में बहुत तीव्र है। शंकर जी का व्यंग्य वाकौश में बरल जाता है। कवि के लिए यह धार्मिक जीवन असाध्य है। उस वातावरण में उसका मन घुट रहा है। और वह इसी प्रकार से इस जीवन को बदलना चाहता है। शंकर जी कवि होने के साथ साथ सुधारवादी भी थे। अपने समय के प्रभु कार्य समाजी नेता थे। उन्होंने पुनरुत्थानवाद की और विशेष ध्यान नहीं दिया है बल्कि समाज की कुरीतियों एवं धार्मिक जन्मविश्वासों को दूर करने में अपनी शक्ति और प्रतिभा का उपयोग किया है। शंकर जी के काव्य में नारी सिद्धांत पर भी विशेष बल दियाई पड़ता है। वे मूर्ति-पूजा के पौर विरोधी हैं। बहुदेववाद पर उन्होंने व्यंग्य किये हैं। हिन्दुओं के वर्तमान धार्मिक जीवन से वे सन्तुष्ट नहीं हैं शंकर जी के काव्य से लगता है कि वे वर्तमान धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में सुधार नहीं बल्कि पूर्ण परिवर्तन चाहते हैं। उन्होंने इस विषय पर अपने काव्य में विशेष बल दिया है। शंकर जी की दृष्टि में मूर्ति-पूजा अवहनीय है। उनकी व्यंग्य स्तुति देखिए -

ऐल विशाल महीतल फोड़ बड़े तिन की तुम तीड़ बड़े हो।

है लुहकी जलवार बड़ापड़ स घर गोल मटील गड़े हो॥

प्राणविहीन स्लेवर पार विराज रहे न लिले न बड़े हो।

है जड़देव शिलासुत शंकर भारत पे कर कोप बड़े हो॥<sup>१</sup>

१- महाकवि शंकर- शंकर - सर्वस्व, पृ० ८१ ।

शंकर जी सनातनी पण्डों के प्रति भी उठ खड़े हैं:-

जाति- पाति के धर्म काल में उलझे पड़े गंवार  
 मैं उन सब को छुलका-टूटा करके रसाकार ।  
 वैतरणी का डेका लूंगा देकर बाड़ी मूँव,  
 धर धर काटकर बालसिकल पर बिना बाड़ी मूँव॥<sup>१</sup>

जार्ज सम्राज के सुधारवादी प्रयत्नों का प्रभाव कई विविध कालीन कवियों पर पड़ा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जाति-वाद तथा धार्मिक बाहुल्य से विद्रोह किया है और उसे किसी सीमा तक दूर करने में सफलता भी प्राप्त की है। गुप्त जी ने अपने काव्य में समाज सुधार तथा धार्मिक रुढ़ियों को दूर करने का समर्थन किया है, लेकिन वे शंकर जी की भांति इस व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन करने की तैयार नहीं हैं। शंकर जी मूर्ति पूजा के पौर विरोधी थे और गुप्त जी मूर्तिपूजक दोनों दृष्टिकोण एक दूसरे के विरोधी हैं। इसलिए गुप्त जी ने जार्ज सम्राज के मूर्ति-पूजा विरोधी तथा वर्ण विरोधी अभियान का समर्थन नहीं किया है। इसके लिए गुप्त जी के अपने संस्कार उद्धारवादी हैं। यही - यही गुप्त जी ने जार्ज-सम्राज के वर्ण-विरोधी बान्धोलन पर व्यंग्य किये हैं :

देख- पडा उन्मत्त करने की पूर्ण कलंगा टेक।  
 पियज लीकर भी सब का लाना लाऊँ बिना विवेक।<sup>२</sup>

भारतीय समाज प्राचीन कव्य परम्पराओं और पुरानी चली जाती हुई परम्पराओं से सदैव जकड़ा रहा है गुप्त जी के शब्दों में:-

१- नाथूराम शंकर शर्मा- संवत्सर, सरस्वती, १९०८ पृ० १६६ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - भारत - भारती - पृ० १४० (वर्तमान संस्करण)

उस ओं दुष्प्रिय तो बुकें हैं तब सनाव उरीर के ।  
 संसार में रहता रहे हैं हम फकीर लकीर के ।  
 क्या नाम दासों के समय की रीतियां हम तोड़ दें ।  
 वे रुग्ण तो तो क्यों न हम भी स्वस्थ रहना छोड़ दें॥<sup>१</sup>

गुप्त जी ने मन्दिरों - मठों के महन्तों की छीलाओं पर भी एक तीली और व्यंग्य  
 पूर्ण दृष्टि डाली है:-

जब मन्दिरों में राम जनियाँ के बिना चलता नहीं ।  
 वल्लील गीतों के बिना वह भक्ति फल फलता नहीं ,  
 वे कीरहरणादिक वहाँ प्रत्यक्ष छीला जाल हैं,  
 भक्त स्त्रियाँ हैं गोपियाँ गौस्वामि ही गोपाल हैं॥<sup>२</sup>

कवि ने तीर्थ स्थानों के पण्डों की भी ललकारा चुनाई है क्योंकि ये जाडम्बर और  
 छल से समाज के पीछे लोगों को पथ- भ्रष्ट करते हैं-

वे तीर्थ- पण्डे हैं जिन्होंने स्वर्ग का ठेका लिया,  
 है विन्य कर्म न एक ऐसा ही न जो उनका किया ।  
 वे हैं जपिया के पुरोहित, जपिधि के जाचार्य हैं,  
 लड़ना भगड़ना और बढ़ना मुख्य उनके कार्य हैं॥<sup>३</sup>

जी सुमित्रानन्दन पन्त की तत्कालीन रचनाओं का स्वर भी सुधारवादी है । उन्होंने  
 सारी परम्पराओं, संकीर्णताओं एवं धार्मिक रुढ़ियों से छल होकर सरल जीवन के  
 अनुकूल बनने की चेतावनी दी है-

१- मैथिलीशरण गुप्त- भारत-भारती, पृ० १४० (वर्तमान संपुट)

२- वही - वही , पृ० १२८ ।

३- वही - वही , पृ० १२७ ।

जीवन बन जीवन अनुसूत ।

रह भित पिल पुन उल्लिख - कर्णी सब मिटा कवय का झूल ।

बर्हभाव तब समतल में रह स्वयं बनकर सब - जगत अनुसूत ॥<sup>१</sup>

विवेच्य कालीन कवि एक और ती पार्थिक रुढ़ियाँ और सामाजिक कुरीतियाँ पर व्यंग्य कर रहे थे, और कपरी क्रांति के पय पर चलने के लिए जनता का जाग्रत कर रहे थे। कतिपय की सब कुछ समझने वाले लोगों से वे जागे रहने का वाक्य कर रहे थे। विवेच्य कालीन कविता में यह स्वर जहाँ-तहाँ सुनाई पड़ता है:

चलो उदा करना ही तुम को ज्ञेय है।

खड़े रहो मत, कर्म मार्ग विस्तीर्ण है।

चलने वाला पीछे की ही छोड़ता।

धारी बाघ और बापका वृन्द की ॥<sup>२</sup>

इस समय आदर्श मार्ग की स्थापना के लिए कई काव्य लिखे गये । "प्रिय-प्रवास" में कृष्ण के माध्यम से लोक नायक का और राधा के माध्यम से लोक सेविका का मार्ग प्रतिष्ठित किया गया है। हरिऔध जी ने सामाजिक कल्याण का सन्देश देने की सद्बुद्धि से बहुत से चौपदे लिखे हैं जो चौंसे चौपदे और चुपड़े चौपदे में संगृहीत हैं। बापि उमान और कैस की उन्नति ही कवि की एक मात्र प्रेरणा है। वही प्रकार मुकुटवर पाण्डेय ने अधिक और ताड़ नक के माध्यम से नीति निर्देश किया है-

क्या अधिक ने दण्ड बाध-तक । तु है उपारता की खान।

तु झोटा है तो इस से क्या, तेरा तो है कवय महान ॥

कवयसीन जी बड़ा हुआ तो मत केवल मू का मार ।

सक-दय ही बस कर सकता है इस का का सच्चा उपकार ॥<sup>३</sup>

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पैतावनी, मयाना, नवम्बर १९१७ पृ० ६११ ।

२- जयदेव प्रसाद - कल्याणालय, पृ० ६ ।

३- मुकुटवर पाण्डेय - महारा और दण्डता पृ० ४१ सरस्वती, जून सन् १९१७ ई० ।

नैतिकतापूर्ण कविता समसामयिक युग और समाज की आवश्यकता थी। देश के जीवन में जागरण की लहर व्याप्त थी। सामाजिक क्षेत्र में पश्चिम के बुद्धिवाद ने क्रांति कर दी थी। पट्टी और पातण्ड, अस्पृश्यता और निरक्षरता, भ्रष्ट विवाह दहेज, अन्धविश्वास और अज्ञान का जाल छिन्न विन्न लौटा जा रहा था। वार्षिक क्षेत्र में उपासना और भक्ति की आठम्बरपूर्ण विधियाँ पर अलक्ष्य और कार्यसमापन ने जमकर कुलाराधना किया था। मूर्ति पूजा, उच्च निम्न भावना आदि सामाजिक एवं धार्मिक रीतों पर भी आक्रमण किया गया था। जाति, समाज और देश की भक्ति और सेवा ही जीवन में धर्म का रूप धारण कर रही थी। इस काल के कवि समाज के आगस्त्य प्राणी के रूप में देश और जाति के उत्थान के लिए काव्य-रचना कर रहे थे। जीवन में व्याप्त संपूर्ण दुर्गुणों पर आघात और सद्गुणों का आश्रयण इस काल के कवियों का उद्देश्य रहा है। समाज कल्याण के जो भी संभव उपाय हो सकते थे उनका इस युग के काव्य में चित्रण मिलता है। इस युग की कविता में सुधारवाद का स्वर प्रसृत है। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों के प्रति ये कवि विद्रोही हैं।

विवेच्य काल के कवियों का मुख्य उद्देश्य आहत जनता का चित्रण प्रतीत होता है। सामाजिक जागृति और सुधारवादी आन्दोलनों के कारण ऐसा होना एक हद तक स्वाभाविक भी था। इस युग की कविताओं में नवीन सामाजिक चेतना और सुधारवादी दृष्टि के कारण एक प्रकार की स्वचन्द्रता दिखाई पड़ती है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस काल के कवियों की प्रवृत्ति सम्पूर्ण आत्म-निर्भरता की ही प्रवृत्ति रही है। इस काल में हमें उस प्रकार की काव्यधारा के भी दर्शन होते हैं जिसे विमर्शी-प्रधान कविता कहते हैं और स्वचन्द्रतावादी काव्य में जिसका विशेष महत्त्व है। वैयक्तिक संवेदनाओं की भावात्मक अभिव्यक्ति करने वाली कविता का उद्धार भी वस्तुतः इसी युग में हुआ था। विद्रोही-मण्डल के बाहर के कवियों ने राष्ट्रवाद तथा सुधारवाद की प्रवृत्ति से व्यासंनय कला करते हुए उस प्रकार की आन्तरिक भावात्मक कविता का पथ प्रस्तुत किया। विवेच्य काल के अन्त तक पहुँच कर यह प्रवृत्ति अत्यन्त ग्रीढ़ रूप में सामने आई।

## स्वदेश प्रेम की भावना, राष्ट्रीयता का उदय और विकास

विवेच्य काहीन कविता में वृत्तर भारत का चित्र मिलता है। उस से पूर्व हिन्दी काव्य में राष्ट्र का अर्थ राजीय या प्रान्तीय रहा है। कन्याकुमारी से कसीर और आलाम से काठियावाड़ तक का संपूर्ण भारत हिन्दी काव्य का विषय नहीं रहा है लेकिन उस युग के काव्य में संपूर्ण भारत एक राष्ट्र है। उसके सभी निवासी भारतीय हैं। इसके नदियाँ, पर्वत, जन जाति से सभी की प्रेम है। भारत को एक सूत्र में धारण का सक्रिय प्रयत्न इस काव्यमयार से आरम्भ हुआ है।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता की पूर्ण धारणा हिन्दी काव्य के लिए नहीं थी। भारत की जैकॉ रूपों में भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी देखा था परन्तु उसे एक राष्ट्र के रूप में बीसवीं शताब्दी के कवियों ने ही चित्रित किया है। काव्य में देश-भक्ति का अस्तित्व ही राष्ट्रीयता नहीं है बल्कि राष्ट्रीयता की भावना एक सापेक्ष भावना है जो इतिहास की घटनाओं के द्वारा निर्धारित होती है। राष्ट्रीयता की भावना युग की देन है, उस देश को जब अंग्रेजों ने जीत कर एक केन्द्रीय शासन के अधीन किया। उन्होंने संपूर्ण देश को एक प्रकार की राजनीतिक इकाई में बाँटा। रेल, डाक, सार और यातायात के आधुनिक साधनों के माध्यम से एक प्रदेश की दूरी दूसरे प्रदेश से बहुत कम हो गई। देशव्यापी एक इतरे के निरुद्ध आये। देश में एक नये वर्ग का जन्म हुआ जिसे मध्य वर्ग अथवा प्रोफेशनल का नाम दिया जाता है। राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने का बहुत कुछ श्रेय इस वर्ग को है। इससे पूर्व की राष्ट्रीयता का अर्थ बहुत संकुचित और राजीय रहा है। संपूर्ण भारत को—

१-

Dr. A. R. Desai - Social Back ground of India Nationalism.

Page. 162. Third Edition. 1959 Bombay.

एक इकाई में देखने और चित्रित करने की मायना वायुनिक युग की देन है। पृथ्वीराज रासो की राष्ट्रीयता और श्रीधर पाठक ज्यवा रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीयता में मूलभूत अन्तर है। रासो की राष्ट्रीयता बहुत संकीर्ण है। वह वायुनिक सन्दर्भ में राष्ट्रीयता के किसी पक्ष को प्रतिपादित नहीं करती है।

जब देश में राजनीतिक दैतना बार्ह और राष्ट्रवाद का जन्म हुआ तो मुसलमान सत्तक रहने लगे सर सैयद अहमद साँ जैसे जातीय नेता ने भी मुसलमानों को राजमणि पर चलाया और राष्ट्रमणि के पथ को घातक बनाया।<sup>१</sup> उस विवेक को ठेकर भारत में साम्प्रदायिक भावना फैलने लगी। मुसलमानों में हासी और इस्माल जैसे कवि जाति को जगाने उठे तो हिन्दुओं में बंकिम और भारतेन्दु। बंकिम काल में हिन्दु राष्ट्रीयता के बड़े कवि और उपन्यासकार हैं। बन्देमातरम् की मूल भावना सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है।<sup>२</sup> भारतेन्दु की कविता में राजमणि और देश-मणि एक साथ रही है। भारतेन्दु युग के काव्य में विदेशी शासन के प्रति रोष और तीव्र दोनों ही मिलता है -

जोय राज तुत राज सबै तुत मारी ।

वै यम विदेश चाँकि जात यही अति ख्वारी।।<sup>३</sup>

भारतेन्दु जी ने देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अव्ययपन को देख कर अतीत का गौरव-गान करते उनके उन्नयन की चेष्टा की है। भारतेन्दु जी ने वहाँ एक ओर अँग्रेजों को प्रशंसा की है वहाँ देश की दयनीय दशा का भी --

-----

१- डा० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में जाति पृ० ६५ ।

२- वही, - वही पृ० ६७ ।

३- मैथिलीचरण गुप्त - जब भारत, पृ० ११ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाश ।



सापेक्ष चित्रण किया है :

भीतर भीतर एक रस चुनै, बाहर से तन मन मन चुनै।  
बाहर बाहर मैं लसि तेज, क्यों लसि । सजन महि करेज॥<sup>१</sup>

उस प्रकार विवेच्य युग में देश भक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति झटो-बड़ी मुक्तक प्रवन्ध सभी प्रकार की रचनाओं द्वारा हुई। विवेच्य युग की राष्ट्रीय भावना को हम दो भागों में बाँट सकते हैं :

(१) देश-भक्ति की धारा- उस में भारत भूमि भारतीय संस्कृति तथा भारत देश की लोक सुन्दर अनुभूतियाँ हैं। उसमें वन्दना के गौरव के जन और जागरण के तथा अभियान के तथा गीत गुलरित हुए हैं ।

(२) राष्ट्रवाद की धारा- यह नैतिक एवं सांस्कृतिक पदा है। उस में राष्ट्र की नीति और संस्कृति का स्वरूप चित्रित है। इस प्रकार काव्य में प्रातिशील कवियों ने राष्ट्रध्वजा के तत्वों का वर्णन भी कराया है। वन्दना गीतों की परम्परा भी बीच पाठक के 'हृद वन्दना' से शुरू हुई । पाठक जी ने इस कविता में भारत का मानवीकरण तथा देवीकरण दोनों ही किया है । कवि का देश-भक्ति में अनुराग है। उसने भारत के लक्षि शौर्य, मन-बैभव, विद्या, ज्ञान धर्म भक्ति आदि की भावना के साथ साथ राष्ट्रियता की भावना को भी अपने काव्य में गुलरित किया है । पाठक जी में अन्य भावनाओं की अपेक्षा राष्ट्रियता की भावना बूट-बूट कर मरी है । प्रकृति के सुन्दर चित्रों में पाठक जी ने अपनी प्रासादिक अभिव्यक्तियों के द्वारा उनकी अधिक सजीव और रंगीन बनाया है ।

कौन्सल हूँ कल- कौलनी- री, हुक प्यारे हरे-पट पारे वली ।  
 मोरी मैना सुनैना रलीलेन की, सौ पोंदा पोंद के प्यारे, वली ।  
 जहाँ मोरा मचावन - लीरा, बलीरा, पपीहा पिया- रट- वारे वली ।  
 जन के लुन बाँके सदा के बनी, बन- जीजन जान तिहार वली ॥<sup>१</sup>

का एक नमूना दृष्टव्य है :-

गिरिवर नू - भंग धारि, गंगवार कण्ठहार  
 सुर-पुर - अनुहार, विश्ववाहिका - विहारी  
 उपवन जन वीधि - जाल सुन्दर मोह पट- दुलाल  
 काष्ठिभाल किम्बाडलि माळिकाटलिनाठली ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार १६ वीं शताब्दी के अन्तिम-वर्ण से जो चारा श्रीधर पाठक ने प्रारम्भ की वह वाज तक गतिशील है। पाठक जी ने हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम राष्ट्र की एक एकाई के रूप में चित्रित किया है। अपने काव्यके माध्यम से उभरती हुई नवीन मानव संस्कृति को मुक्तित करने का प्रयत्न किया है। इस युग में पाठक जी ही स्वभाव से ही कवि हैं जो युग की पुनरुत्थानवादी और नैतिकतावादी भावना से बने रहे हैं। उन्होंने भारत को एक कुटुम्ब के रूप में चित्रित किया है। उनका काव्य धर्म निरपेक्ष काव्य की भेणी में जाता है :

यह जी भारत भूमि हमारी  
 जन्य - भूमि हम सब की त्यारी  
 एक गैर हम विस्तृत भारी  
 प्रजा कुटुम्ब- तुल्य है भारी ॥<sup>३</sup>

१- श्रीधर पाठक- वनाष्टक, मनोविनोद, पृ० ६३-६४

२- श्रीधर पाठक- भारत प्रशंसा, पृ० ३

३- महावीर प्रसाद द्विवेदी- जन्य-भूमि-भारत-भूमि, सरस्वती, फरवरी, मार्च

“भारत-गीत” का स्वर जैव कवियों के कण्ठ से भी निकला । रायदेवी प्रसाद पूर्ण ने अपने काव्य-स्वदेशी कुण्डल में इस भाव की सुन्दर छंद से व्यक्त किया है :

बन्दे - बन्दे मातरम् उदा पूर्ण विनये ।  
 श्री देवी परिवन्दिता या निज - पुत्र जनेन  
 या निज- पुत्र- जनेन पूजिता मान्याङ्गुपा  
 या पुत्र- भारतवर्षा वैश्व- वसुपति- स्वाम्या  
 तामममुत्पादैन हुने जनेन स्वच्छन्दै  
 बन्दे जनहित करी मातरम् बन्दे बन्दे ॥<sup>१</sup>

विवेक युग में भारत-भूमि की प्रशस्तियों का गायन मुक्तस्वर से किया गया है ।  
 मातृगान, मातृभूमि (रूपनारायण वाण्डेय) हमार देश (लॉचन प्रसाद वाण्डेय)  
 मातृभूमि (गोपाल शरण सिंह) जन्मभूमि भारत (रामनरेश जिवाठी) मातृभूमि  
 (मन्त्र द्विवेदी गजपुरी) जमनी (धियाराम शरण गुप्त) मातृभूमि (मिथिलीशरण  
 गुप्त) आदि कृतियाँ इस कोटि के काव्य का खूब उदाहरण प्रस्तुत करती हैं ।  
 श्री गुप्त ने भारत माँ की सम्पूर्ण गुणों से युक्त स्तुति मूर्ति मानते हुए कहा है कि-

नीलाम्बर परिधान हरितपट पर सुन्दर है।  
 सूर्य बन्द युग मुकुट गैल्ला रत्नाकर हैं।  
 बन्दो विविध विहंग, शेषफन सिंहासन है।  
 करते अभिषेक पद्यादि हैं बलिहारी इस देश की  
 है मातृ भूमि तू सत्य ही स्तुति मूर्ति सर्वेश की ॥<sup>२</sup>

गुप्त जी ने समसामयिक युग में स्वातन्त्र्य शासन का आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है-

१- रायदेवी प्रसाद पूर्ण - स्वदेशी कुण्डल, पृ० ६९

२- मिथिलीशरण गुप्त - मातृभूमि - तरस्वती, मार्च १९१९, पृ० १८९ ।

राजा प्रजा का पात्र है, वह एक प्रतिनिधित्व पात्र है  
यदि वह फजाबापाहक नहीं तो त्याज्य है ।  
हम दूसरा राजा चुनें जो सब तरह सब की जुने ।  
कारण प्रजा का ही अल्ल है राज्य है । ९

राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए गुप्त जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से भी अपना प्रयत्न किया है :

वहाँ तक जाया की है जाँच ।  
 वहाँ तक वे ली हैं हम पाँच  
 किन्तु यदि करें दूसरा जाँच  
 गिने ली हों एक।ही पाँच॥१॥

रामनरेश त्रिपाठी ने भी भारत की अपनी जन्म-भूमि मानकर उसके सौंदर्य सौन्दर्य से प्रभावित होकर कुछ सुन्दर रचनाएँ की हैं। जन्म भूमि भारत के सौन्दर्य पर गुग्गु होकर त्रिपाठी जी ने कहा है कि :

जिसके तीनों और नहोंपरि रत्नाकर है।  
उपर में छिमराशि रूप सर्वांश शिखर है।  
जिस में प्रकृति विकास रत्न कस्तुरि कम उत्तम है।  
जीव - जन्तु फल फूल शस्त्र अद्भुत अनुपम हैं।  
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।  
इस दिव्य देश में जन्म का हमें बहुत अभिमान है॥

१- अधिलेखन गृह- साहित्य- सर्वेक्षक वर्ग १९०५ ई० पृ० १६४ ।

२२      २३      २४      २५      जावरी १६०५ पु० ३४५ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी - जन्मभूमि भारत, सरस्वती, १९१४ ई० पृ० १५३ ।

भारत की प्रशस्ति के गीत प्रायः सभी विवेच्य कालीन कवियों ने गाये हैं। उनका यह गीत विशेष दृष्टव्य है। जिसमें श्रीधर पाठक ने स्वदेशी की कल्पना प्रकृति सुन्दरी के वास्तव पर ली हुए तिलक के रूप में की है:

स्वर्गिक शीश फुल पृथ्वी का  
प्रेम मूल प्रिय लौकिक जयी का  
सुलालित प्रकृति नटी का टीका  
ज्यों निशि का राक्षस ।  
जय जय प्यारा ! भारत देश।<sup>१</sup>

स्वच्छन्दतावादी धारा के प्रमुख कवियों में श्रीधर पाठक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। विवेच्य कालीन कविता में स्वदेश की महिमा एवं राष्ट्रियता की भावना का प्रसार वास्तवः एक नवीन विषय प्रकृति के रूप में हुआ था। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृमृमि में इस प्रकृति को परिपुष्ट होने का अच्छा अवसर भी मिला। तापे अपस्तुर्ता और नयी उपमाओं से अलंकृत काव्य रचना श्रीधर पाठक का मूल उद्देश्य रहा है।

गुप्त की ने गांधी जी की अहिंसक राजनीति से प्रेरणा लेकर भारत के नवजागरण का गान किया है। उन्होंने देश की जड़ता और कर्मण्यता के वातावरण से मुक्त कराने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय जागरण इन कवियों का मूल उद्देश्य रहा है।

बरे भारत ! उठ जाहें लोल ।  
उड़कर यन्त्रों से, सगोल में घूम रहा सुगोल  
अवसर तेरे लिए सड़ा है  
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है  
तेरा कर्म जो बड़ा है  
फल फल है अनमोल।।

देश में चारों ओर नव जागरण का प्रसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में बड़े पैमाने पर हो रहा था। सांस्कृतिक दृष्टि से मानव सेवा देश सेवा और सर्व की भावना का प्रसार हो रहा था। सामाजिक दृष्टि से सुधारों को लाने तथा राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र और जन अधिकार मांगने की चेतना इन गीतों की मूल प्रेरणा थी। इस प्रकार के गीत मैथिलीकरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही सत्यनारायण कविरत्न, सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश मिश्रा आदि कवियों ने लिखे हैं। सन् १९१४ ई० के लगभग हिन्दी में अभियान गीतों की भी परम्परा बनी। ये अभियान गीत छायावादी युग में पूर्ण बीज के साथ अवतरित हुए हैं। प्रसाद और निराला के अभियान गीतों में बाण भी बनी नवीनता है। ये गीत राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच आरम्भ हुए और राष्ट्रीयता के उत्कर्ष के साथ अपनी पूर्णता पर पहुँचे। उदाहरण के लिए सनेही जी की यह रचना में स्वाभिमान और स्वदेशभिमान की भावना को उद्बुद्ध करने की प्रेरणा दी है:-

वह है गुणी या निर्गुणी, वह रंक या बीमान है,  
वह है निरक्षर पढ़े या उद्वेग भरा विद्वान है।  
वह विप्र, दासिय, वेश्य है या झूठ बतुद ज्ञान है  
वह शैल ही है या कि सेयद, मुगल या कि फतान है।  
जिस को न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है  
वह नर नहीं, वह निरत है और मृतक समान है।<sup>१</sup>

विवेक काल में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों में राष्ट्रीयता का प्रातिशील स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इन कविताओं के दो रूप हैं। पहला रूप सांस्कृतिक है जिस में राष्ट्र के अतीत गौरव का गान है और वर्तमान के प्रति --

---

१- गयाप्रसाद शुक्ल सनेही - स्वाभिमान और स्वदेशभिमान, पृ० १६ ।

दीप्त एवं जाकीर की भावना द्वारा रूप राष्ट्रनैतिक है जिसमें राष्ट्र के जीवन की धड़कन उसकी संघर्ष चेतना मुक्तकृत हुई है। राष्ट्रीय मुक्ति के मोर्चे की भाषाओं के प्रति विद्रोह की भावना, विध्वंस की प्रेरणा और सत्याग्रही वीरों के उत्साह और उत्साह की अभिव्यक्ति भी इन रचनाओं में हुई है।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में अतीत के गौरव का स्वर मुख्य रहा है। गुप्त जी ने अपनी भारत-भारती में भारत के अतीत गौरव का उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किया है :

जहाँ हजारी भी कभी संसार में सर्वत्र थी,  
वह सद्गुणों की कीर्ति मानों एक और कलत्र थी।।<sup>१</sup>

वार्ध-संस्कृति और भारतीय सभ्यता के प्रति गुप्त जी की गहरी वास्था रही है। उस संबंध में डा० सत्येन्द्र का कथन है कि राष्ट्रीयता कवि का विशेष उद्देश्य रहा है। पर कवि संस्कृतिसून्य राष्ट्रीयता का पोषक नहीं क्योंकि भारतीय संस्कृति की एक अपनी विशेषता है जिस में स्नेह, प्रेम, करुणा से संबंधित राम, कृष्ण बुद्ध के दिव्य सन्देश और उपदेश हैं और व्यास, बुद्ध और गांधी के जीवन दर्शन से गुप्त ने अपने दूसरे पदा मानवतावाद का भी आर्कलन किया है।<sup>२</sup> भारत-भारती में मूल स्वर देश की वर्तमान अवस्था और अयोग्यता का चित्रण है। इसमें अतीत के गौरवगान एवं वर्तमान के अवपतन की मर्त्यता के स्वर ही नहीं बल्कि भविष्य की कल्पना का स्वर भी मिश्रित है-

हम कौन से क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,  
बाबू विचारों, बाबू मिलकर ये समस्याएँ हली।  
चिन्ता नहीं जो व्याप-विस्तृत चिन्त्रका का कलाह हो,  
चिन्ता हनी है जब न जलका फिर नवीन विकास हो।।<sup>३</sup>

१- मैथिलीशरण गुप्त- भारत-भारती, पृ० २।

२- डा० सत्येन्द्र- गुप्त जी का राष्ट्रीय कविताएँ (लि.) साहित्य सन्देश-पृ० ४६  
१९६५।

३- मैथिलीशरण गुप्त - भारत - भारती - पृ० ४।

विवेच्य युग में राष्ट्रीयता का दुहरा राजनैतिक पदा भी सुन उभर कर  
जाया है। तत्कालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में विद्रोह की भावना और वीरता  
की अभिव्यक्ति की है। गुप्त जी के शब्दों में :

बन्धायियों का राज्य भी क्या कमल रह सकता की  
बासिर कौन शासक राज्य है जिनका की।<sup>१</sup>

< < < < < < <  
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रुढ़ियाँ जो हों पुरी ।  
बनकर विवेकी तुम दितावी एवं जैसी जातुरी।<sup>२</sup>

रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी सण्ड काव्य भिन्न में वीरों के हृदय में उत्साह भरने का  
प्रयत्न किया है। इस काव्य के नायक की यह वीरतापूर्ण वाणी बाव भी हर्ष  
वाकर्णित करती है।

अस्थि- चर्न- मग कंकालों में  
जो कुछ बच है शेष ।  
संबय कर रिपु- राक्षि कलंगा  
बपना प्यारा देश ।  
रण - मेरी बनने वाली है  
करने के रिपु - नाक ।  
शीघ्र देश में देखेगी तू  
विजया । विजय- प्रकाश।<sup>३</sup>

---

१- मैथिलीकरण गुप्त- भारत- भारती - पृ० ४ ।

२- वही - वही - पृ० १६० ।

३- रामनरेश त्रिपाठी - भिन्न- पृ० १५ ।



कभी वीर गांधी के जीवन से भी विवेक्य युग के कवि प्रेरणा ग्रहण करते हैं।  
संगार रुपी कर्मवीर में कुम्हने की प्रेरणा गुप्त जी के निम्नलिखित छन्द का मूल  
स्वर है :

संगार की समर स्थली है वीरता धारण करी।  
जीवन समस्यार्य जटिल हैं किन्तु उन से मत डरो  
वर वीर बन कर जाय अपनी विजय भाषार्य करी।  
मर कर जियो बन्धन धिवर पशुवन न बीते जी मरी॥<sup>१</sup>

सन् १९१७ ई० की रूसी क्रान्ति ने भी विवेक्य काठीन कवियों को प्रभावित  
किया है। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही की इस क्रान्ति में भी नवयुग की आका- किरण  
दिताई की है :

फैले हैं यह भाव नया युग लाने वाले,  
वीर क्रान्ति का उलट फेर कराने वाले,  
काल में सतयुग रूप धर लाने वाले,  
समता का सन्देश सैन्य सुनाने वाले॥<sup>२</sup>

सनेही जी ने जाति वीर जातीयता के तत्त्वों को भी सूक्ष्म विवेकन किया है :

ऐक्य, राज्य, स्वातन्त्र्य यही ती राश्ट्र-का हैं।  
धिर यह टांगी -सदृश जुड़े हैं रंग-रंग हैं।  
सत्य रंग सब मनुष्य मिले हैं एक रंग हैं।  
व्यक्ति कुटुम्ब समाज सब मिले एक ही धार में ।  
मिला शान्ति पुनः राश्ट्र के पावन पारावार में॥<sup>३</sup>

१- मैथिलीशरण गुप्त- कर्मवीर बनी, १९१४ ई० पृ० १८५ सरस्वती ।

२-गयाप्रसाद शुक्ल सनेही त्रिशूल - राश्ट्रीयगीत, पृ० ३१० सरस्वती १९१७ ई०

३- वही - जातीयता : राश्ट्रीयगीत, पृ० ६५ सरस्वती १९१७ ई० ।

राष्ट्रीय जागरण के कारण विवेच्य युग के काव्य में व्यापकता आई ।  
राष्ट्रीयता की भावना ने हमारे कवियों को विवश किया और उनके काव्य में  
उस चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई रायदेवी प्रताप पूर्ण की वाणी राज-भक्ति के  
साथ-साथ देश-भक्ति और सत्कर्मा की भी प्रेरणा देती है :

परमेश्वर की भक्ति है, मुख्य मनुज का धर्म,  
राजभक्ति भी चाहिए, सच्ची सहित सुकर्म ।  
सच्ची सहित सुकर्म, देश की भक्ति चाहिए।  
पूर्ण भक्ति के लिए, पूर्ण वाचक चाहिए।<sup>१</sup>

इस प्रकार विवेच्य कालीन काव्य में ईश्वर भक्ति, राज-भक्ति और  
देश-भक्ति का सामूहिक भाव ऐनीडेन्ट के ईश्वर, सम्राट और देश के लिए सेवा  
का स्वरण बिखरता है। इस युग में कांग्रेस की भी अधिकृत नीति सदैव ब्रिटिश  
राजतन्त्र में राजभक्ति के साथ स्वशासन प्राप्त करने की रही थी। सन् १९१७ ई०  
तक कांग्रेस ने राजभक्ति के प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं।<sup>२</sup> फलतः विवेच्य कालीन काव्य  
में तीनों भावनाएँ किसी न किसी रूप में मिलती हैं। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) ने  
राष्ट्रीयता एवं सन्ध्या पर अमिट भाव डाला था।<sup>३</sup> रामनरेश बिपाठी के पथिक  
मिलन, और स्वप्न, मैथिलीहरण गुप्त के शक्ति, तथा हरिऔध जी के प्रिय-प्रवास  
में देश-भक्ति और राष्ट्रीय गौरव की भावना का प्रसार बिखराई पड़ता है ।  
रामनरेश बिपाठी समाज के सच्चे दुःख चिन्तक हैं उन्होंने जनता की उसकी शक्ति  
का आभास कराते हुए कहा है कि-

अपना शासन आप करो तुम यही शक्ति से युक्त है।  
पराधीनता से बड़ जंग में नहीं दूसरा युक्त है।<sup>४</sup>

१- रायदेवी प्रताप पूर्ण - स्वदेशी कुण्डल, पृ० १६२ सरस्वती १९१५ ई० ।

२- महाभारत सीता रम्या - कांग्रेस का इतिहास, अध्याय ३, पृ० १४८ ।

३- डा० श्रीकृष्ण लाल - वायुनिक हिन्दी साहित्य का विकास- पृ० २६ ।

४- रामनरेश बिपाठी - पथिक- पृ० ४८ ।

त्रिपाठी जी ने जनता को स्व-शासन और स्वाधीनता का पाठ ही नहीं पढ़ाया बल्कि उन्होंने जनता को उसके कर्तव्यों की शिक्षा भी दी है। उन्होंने कहा है कि मातृभूमि के प्रति हमें कर्तव्यों से विभुत नहीं होना चाहिए :

जिस पर गिरकर उदर धरी से तुम ने जन्म लिया है,  
जिसका लाकर जन्म तुम्हारा- हम- नीर लसीर पिया है ।  
जिस पर चढ़े हुये, रोले। धर बना रहे सुल पाये,  
जिसका रूप विलीक तुम्हारे दृग - मन प्राण जुड़ाये  
वह समझ की पूर्ति क्यामयि माया- तुल्य मही है।  
उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है।।<sup>१</sup>

श्री मैथिलीशरण गुप्त, के 'वैतालिक', 'स्वदेश संगीत भारत-भारती', 'रंग में पंग', 'जयप्रिय सय', 'विश्व भट', 'अकृतता', 'विद्यान', 'शक्ति' 'वक्- संसार' में देश-भक्ति और देश प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप देने को मिलता है। जयप्रियसय में अभिमन्यु का चरित्र आत्म बलिदान की फाँकी प्रस्तुत करता है। 'पंगलाघाट' में राष्ट्रवादी चेतना के गीत उसी व्यापक राष्ट्रीय भावना और विकासशील युग चेतना के स्वन्दन की स्पर्श करते हैं। गुप्त जी भारत-भारती में तो कहीं-कहीं राष्ट्रीयता तथा विभिन्न संस्कृतियों के मेल भाव है ऊपर विश्व-प्रेम दर्शन के आदर्श की सामने रखते विशास पढ़ते हैं।

सब से बड़ा गौरव यही तो है हमारे ज्ञान का,  
जाने चराचर विश्व की हम रूप उस भगवान का ।  
समकाली न भारत भक्ति केवल मुनि के ही प्रेम का ।  
चाही सदा निज देशवासी धन्युओं के दीप की।।<sup>२</sup>

१- रामनरेश त्रिपाठी - पथिक- पृ० २६ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - भारत- भारती - पृ० १६५ ।

राष्ट्रीय जागरण के कारण विवेक्य युग के काव्य में व्यापकता आई ।  
राष्ट्रीयता की भावना ने हमारे कवियों को विवश किया और उनके काव्य में  
उस विन्तक की अभिव्यक्ति हुई रायदेवी प्रताप पूर्ण की वाणी राज-मणि के  
साथ-साथ देश-भक्ति और उत्कर्ष की भी प्रेरणा देती है :

परमेश्वर की भक्ति है, मुख्य मनुष्य का धर्म,  
राजभक्ति भी चाहिए, सच्ची उचित कुर्म ।  
सच्ची उचित कुर्म, देश की भक्ति चाहिए।  
पूर्ण भक्ति के लिए, पूर्ण जाणकि चाहिए।<sup>१</sup>

उस प्रकार विवेक्य कालीन काव्य में ईश्वर भक्ति, राज-भक्ति और  
देश-भक्ति का सामूहिक भाव ऐनीबोन्ट के ईश्वर, सम्राट और देश के लिए सेवा  
का स्वरूप दिखाता है। इस युग में कांग्रेस की भी अधिकृत नीति सदैव ब्रिटिश  
राजतन्त्र में राजभक्ति के साथ स्वायत्तता प्राप्त करने की रही थी। सन् १९१७ ई०  
तक कांग्रेस ने राजभक्ति के प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं।<sup>२</sup> कला: विवेक्य कालीन काव्य  
में तीनों भाषनाएँ किसी न किसी रूप में मिलती हैं। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) ने  
राष्ट्रीयता एवं सत्यता पर काग्रेस भाव छोड़ा था।<sup>३</sup> रामनरेश विपाठी के पथिक  
मिलन, और स्वयं, मैथिलीचरण गुप्त के तावैत, तथा हरिऔष की के प्रिय-प्रवास  
में देश-भक्ति और राष्ट्रीय गौरव की भावना का प्रकार दिखलाई पड़ता है ।  
रामनरेश विपाठी समाज के अपने युग विन्तक हैं उन्होंने जनता को उसकी शक्ति  
का आभास कराते हुए कहा है कि-

जसा जावन जाय करी तुम यही शक्ति है तुम है।  
पराधीनता से बड़ संघ से नही बहरा तुम है।<sup>४</sup>

१- रायदेवी प्रताप पूर्ण - स्वर्देशी कुम्हल, पृ० १५३ पारम्परी १९१५ ई० ।

२- नदटापि सीता हमारा = कांग्रेस का उद्दिष्ट, अध्याय १, पृ० १४८ ।

३- डा० श्रीकृष्ण ठाठ - वायुनिक हिन्दी साहित्य का विकास- पृ० २६ ।

४- रामनरेश विपाठी - पथिक- पृ० ४८ ।

हरिऔध जी ने अपने प्रिय-प्रवास महाकाव्य में राधा और कृष्ण के माध्यम से अपने युग की नवीन प्रेरणा और नया सन्देश दिया है। पराधीनता के युग में 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण का स्वल्प नवीन्यता प्रदान करने वाला एवं कर्तव्य के प्रति सजग करने वाला है। प्रिय-प्रवास की राधा का की गलियों में विपुल की सरिता प्रवाहित नहीं करती है अपितु -

वे हाथा धीं सुन सिर की छासिका धीं कर्तों की ।  
 कंगारों की परम निधि धीं लौंछणी पोड़ितों की॥  
 दीनों की धीं बलि, जनी धीं बनायाशिकों की ।  
 बाराध्य धीं ह्व अवनि की प्रेमिका विश्व की धीं॥<sup>१</sup>

हरिऔध जी के कृष्ण भी जहाँ अपनी सुखि से कृष्णों के लौंछनों को प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर अपने कौल तथा विपुल परिण से लोक रादालों का बंध करके उनके जीवन को सुखी बनाते हैं। माता-पिता एवं राधा के लिये उनका सन्देश प्रेम की व्यक्तित्व एवं संकुचित परिधि को त्याग कर विश्व प्रेम के रूप में प्रसारित होती है। कृष्ण के माध्यम से देश-प्रेम और समाज-प्रेम की भी सुन्दर अभिव्यक्ति 'प्रिय-प्रवास' में हुई है वह दृष्टव्य है :

घातें यही सरस थे करते विहारी ।  
 छोटे बड़े सकल का हित चाहते थे।  
 अत्यन्त प्यार किया मिलते सबों से ।  
 वे थे सहायक बड़े दुःख के दिनों में॥<sup>२</sup>

इस प्रकार हरिऔध ने राधा-कृष्ण के चरित्र को समासमयिक युग के अनुरूप नवीन रूप में चित्रित कर एक नयी क्रान्तिकारी वाक-भूमि प्रदान की है। कवि की यही दृष्टिकोणगत नवीनता स्वच्छन्दतावादी काव्य का बीज कराती है,।

१- हरिऔध - प्रिय-प्रवास - पृ० ४६ ।

२- यही - यही - पृ० १६६ ।

नये-नये विषयों की अंगिकृति इस समय के काव्य में नयी दीप्ति दिला करती है।  
 देश-प्रेम समाज-प्रेम, सांस्कृतिक जागरण तथा धर्म बला और दर्शन इस काल के  
 कवियों के प्रिय - विषय हो गए थे । इनमें प्राचीन एवं मकीन मूल्यों के समन्वय  
 की भावना तथा राजनीतिक चेतना की सफल अभिव्यक्ति भी मिलती है। नव-  
 विकसित और उभरती हुई राष्ट्रीयता के लोक रूप इनकी कविता में मिलते हैं ।  
 इस लिए इन कवियों के वर्णन में भी विविधता है । शायबादी युग में राष्ट्रीयता  
 का एक निश्चित रूप नितर कर सामने आया था । इसलिए वहाँ राज-मन्त्रि और  
 ईश्वर मन्त्रि राष्ट्रीयता का ज्ञा नहीं है। इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन का ऐसा  
 प्रकार और विस्तार नहीं हुआ था और फिर उसका कोई लक्ष्य भी निश्चित नहीं  
 था, राज- मन्त्रि और राष्ट्रीय आन्दोलन की ज्ञा कभी हुई थी । विवेच्य युग के  
 कवियों पर इस राष्ट्रीय नीति का प्रभाव पड़ना आवश्यक था । बाव के कवियों  
 प्रभाव फलतः निराशा आदि पर राजमन्त्रि का प्रभाव नहीं है। इसलिए उनकी राष्ट्रीय-  
 यता अधिक प्रेरणास्फूर्त और अनुकरणीय है। विवेच्य कालीन काव्य में राष्ट्रीयता  
 की भावना पर विचार करते हुए डा० श्रीकृष्ण लाल ने कहा है कि- १६ वीं शताब्दी  
 से पूर्व भारतीय साहित्य में जन्म भूमि क्या राष्ट्र पर कोई कविता नहीं थीं ।  
 संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र समझने की भावना कभी थी ही नहीं । जन्म- भूमि  
 क्या मातृ-भूमि नाम की वस्तु तो थीं आवश्यक परन्तु हम अपने गाँव को ही जन्म  
 भूमि मानते थे। भारतवर्ष को जन्म- भूमि मानना हमने पश्चिम से सीखा भारतवासी  
 तो कबल दो ही बातें समझते थे व्यक्ति और मानव । समाज नाम की एक और  
 भी वस्तु हमारे यहाँ थीं, परन्तु यह राष्ट्र क्या जन्म- भूमि से बहुत दूर थी ।  
 इसी लिए भारत में राष्ट्रीय साहित्य का नितान्त आव था।<sup>१</sup> विवेच्य कालीन  
 कवियों ने इस आव की पूर किया । उनके काव्य में राष्ट्रीयता के साथ देश की  
 राजनीतिक तथा वार्षिक चला का भी बँका हुआ । इस प्रवृत्ति ने विवेच्य कालीन---

कवियों को आयावादी कवियों से बना कर दिया है। स्वदेश प्रेम की प्रकृति विवेच्य की मुख्य प्रकृति है जिसका वर्णन कवियों ने कई रूपों में किया है। जिससे देश प्रेम की भावना का क्रमशः विकास हुआ है। और जिसके परिणाम स्वरूप मातृ-भूमि के प्रति प्रेम और बड़ा की भावना का उदय हुआ है।

### प्रकृति के माध्यम से देश-प्रेम की भावना का विकास

विवेच्य कालीन कवियों ने अपनी कविता में मानव की अधिक महत्त्व प्रदान किया है। उनके काव्य में प्रकृति मानव की सख्ती और सहायोगिनी के रूप में चित्रित हुई हैं। प्रकृति के माध्यम से समाज और मानव जीवन के सुधारने के सक्रिय प्रयत्न इस युग के काव्य में हुए हैं। इनके काव्य में प्रकृति प्रेम-का एक निश्चित उद्देश्य रहा है और इसका स्वरूप निरन्तर विकसित होता गया है। यही प्रेम धीरे-धीरे राष्ट्र प्रेम में परिवर्तित हो गया है। सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का आभास हमें स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रकृति वर्णन से होता है। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीयता जन-जीवन तक जा रही है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक के प्रकृति वैभव, हिमालय के शौन्दर्य और उसकी महत्ता का विस्तृत वर्णन हमारे पूर्व हिन्दी काव्य में कभी नहीं हुआ। उन कवियों ने प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के दौरे में एक महीन अध्याय का सुनपात किया था। उसका कभी तक ठीक प्रकार से मूल्यांकन नहीं किया गया है।<sup>१</sup>

हिन्दी काव्य और उसके राष्ट्रीय उत्कर्ष की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रकृति चित्रण बहुत महत्वपूर्ण है। प्रकृति की राष्ट्रीय रूप देने में भीतर पाठक को प्रेरित है। पाठक को प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रिय भावनाओं को जागृत किया है। भारत-गीत में उनका प्रकृति प्रेम उनके इसी विस्तृत दृष्टिकोण का परिचायक है।

---

१- डा० फैरीनारायण शुक्ल- आधुनिक काव्य धारा, पृ० ४१ ।

भारत हमारा कैसा सुन्दर गुहा रहा है।  
 सुधि माछ पे खिनाल्य चरणी पे सिन्धु - वंचल ।  
 उर पर विशाल - छिरिता चित- हार - हार- वंचल ।  
 नणि नन्दन बद्ध - नील - मन का विस्तीर्ण - पट वंचल॥<sup>१</sup>

पाठक जी प्रकृति के वैभव को देख मन ही मन प्रसन्न हैं और ऐसे वैभवशाली देश भारत की वन्दना करते हुए कहते हैं कि -

हारा सुदृष्ट वैभव मन को लुभा रहा है ।  
 हे वन्दनीय भारत। तमिनन्दनीय भारत ।  
 हे न्याय बन्धु निर्मय, निर्वन्दनीय भारत।  
 मेरा भवत्व हारा तुझ में समा रहा है॥<sup>२</sup>

प्रकृति के माध्यम से देश के लिए अनुराग भाव की अभिव्यक्ति करना विवेच्य काष्ठ की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। पाठक जी के छपु काव्य कस्मीर सुगमा का उद्देश्य भी प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता उसके वैभव और सौन्दर्य का वर्णन करना रहा है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण की खाने का सतत प्रयत्न किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जाँची और सुकान नहीं उगले हैं, वे मध्यम स्वरों के कवि हैं। उन्होंने अपने राष्ट्र की सुगमा को बड़े स्निग्ध भाव से चित्रित किया है। उन कवियों के प्रकृति-भाव वर्णन ने राष्ट्रीय कविता को नयी भाव-भूमि और नयी दिशा प्रदान की है ।

विवेच्य कालीन स्वच्छन्दतावाद काव्य सौम्य और स्निग्ध है। उस काव्य में सीमा और फुलाहट नहीं है। काव्य की प्रेरणा और देश के दिव्य वैभव का वर्णन उन कवियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसलिए अपने समकालीन विद्रोही स्कूल के कवियों--

१- जीवर पाठक- भारत गीत- पृ० ६५ ।

२-जीवर पाठक- भारत- गीत, पृ० १० ।



की भाँति उन कवियों ने समाज और धर्म पर विष्वन्त्यक प्रहार नहीं किये हैं। इन कवियों की रचनाओं में राष्ट्र के स्वरूप और अक्षय तत्वों का वर्णन है। पं० मासनलाल चतुर्वेदी एक भारतीय आत्मा ने उन्हीं दिनों (१९२०) में प्रकृति के माध्यम से राष्ट्र-प्रेम की सरल अभिव्यक्ति की है। जो अपनी रचनाओं में धीरे-धीरे राष्ट्र-प्रेम के अक्षय तत्व की ओर बढ़ते गये हैं। लेकिन आरंभ में उन्होंने स्वरूप के प्रेम-वर्णन पर बल दिया है :-

जिस दिन रत्नाकर की लहरें, उनके चरण भिगाने आये  
जिस दिन रैल- शिखरियाँ उनको, रजत मुकुट पहिनाये आये,  
जो मैं वहीं मैं बड़ न सकूँगी- बोकलीली - प्रण करती हूँ सखि  
मैं नर्मदा बनी उनके, प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि।।<sup>१</sup>

रामनरेश त्रिपाठी ने मानसी में प्रकृति के अक्षय तत्व का वर्णन किया है। यह प्रकृति-प्रेम भारतीय आत्मा और प्रजापति की प्रकृति वर्णन की झलक में आ जाता है। यह प्रकृति वर्णन का विकसित रूप है। इसका सर्वाधिक विकास हमें उत्तर छायावादी काव्य में मिलता है। इस युग में (१९०१-१९२०) ऐसे अक्षय वर्णन और प्रकृति के साथ आत्मीयता स्थापित करने की परम्परा आरम्भ होती है परन्तु छायावादी काव्य की कौतुक और विश्वास की भावना, स्वच्छन्दतावादी काव्य के 'वन्तिम प्रहर' (१९१५-२० ई०) में प्रस्फुटित हुई है। उदाहरण के लिए पं० रामनरेश त्रिपाठी की निम्नलिखित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं :

लाल चन्द की सिद्धी जब तू ।  
स्पर्श- सदन से संसता है।  
पृथ्वी पर मवीन जीवन का,  
नया विकास विकसता है।  
जो मैं जाता है किरनोँ में,  
फुलकर केवल पत्तनर में,  
बरस पड़ूँ मैं उस पृथ्वी पर,  
विस्तृत सीमा- सागर में,<sup>२</sup>

१- मासनलाल चतुर्वेदी- हिन्दी की आधुनिक राष्ट्रीय कविता से उद्धृत - पृ० १४।

२- रामनरेश त्रिपाठी - मानसी, पृ० ६।

प्रकृति के संबंध में सिद्धेदी स्कूल के कवियों में हरिऔध जी और गुप्त जी के चित्रण में बहुत कुछ नवीनता है। लेकिन उनमें स्वच्छन्दतावादी कवियों जैसी कलात्मकता और तन्मयता का अभाव है। हरिऔध जी तथा गुप्त जी ने भी प्रकृति का मानवीकरण किया है लेकिन उनके वर्णन में नैतिकतावादी प्रवृत्ति अधिक है।

हरिऔध का 'पवनप्रसन्न प्रसंग' एक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने इस प्रसंग में प्रकृति का बहुत सुन्दर मानवीकरण किया गया है। लेकिन उनके इस काव्य में याचना का स्वर प्रभु है। प्रकृति के साथ स्वच्छन्दतावादी कवियों जैसी तन्मयता इसमें नहीं है।

प्रसाद जी का 'प्रेम पथिम' और चन्ति जी की 'ग्रन्थि' नामक काव्य कृतियाँ इसी युग में प्रकाशित हुईं। इन दोनों ही काव्यों में स्वच्छन्दतावाद अपने पृष्ठ रूप में दिखाई पड़ता है। 'प्रेम-पथिम' में प्रकृति प्रेमी-प्रेमिका की मानसिक भावनाओं की पृष्ठभूमि रही है। प्रकृति के साथ सार्मजस्य और तन्मयता का यह नया रूप है, जो इससे पूर्व हिन्दी काव्य में नहीं मिलता है :-

छोटे-छोटे कुंज तलहटी गिरि कानन की शल्य मरी ।

भर देती थी हरिपाठी ही हम दोनों के हृदयों में ।

< < < < < <

व्याम अष्टमी का जो तारों का रहता था परत हुआ ।

उसमें तारे भी चुक जाते जब गिनते थे हम दोनों ।।

बीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी का प्रकृति प्रेम राष्ट्रीय गौरव को जगाने वाला है। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाली गौरवशाली परम्परा से सिद्धेदी - स्कूल के कवि पीछे रह गये हैं। इसके लिए हम कवियों का --

नैतिकतावादी - पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण उत्तरदायी है। हरिबाँस जी में सकारणता है लेकिन उनमें विराट प्राकृतिक वैभव और सहानुभूति का अभाव है। उनके प्रकृति चित्रण में अधिकांश में कृत्रिम और आरोपित अनुभूति के दर्शन होते हैं:-

जी पुष्पाँ के मधुर इस को साथ सानन्ध के  
पीते होंके अमर - अमरी सौम्यता तो दिताना ।  
थोड़ा सा भी न कुसुम छिछे और न उद्विग्न वे छाँ  
झीड़ा हार्थ न कलुषमयी कैलि में हो न बाधा ।<sup>१</sup>

गुप्त जी के प्रकृति प्रेम में उपयोगितावाद है। उपयोगितावाद कोई बुरी चीज़ नहीं है, लेकिन जहाँ उपयोगिता कला पदा को उभारने में दे वहाँ सत्यता का अभाव हो जाता है। गुप्त जी प्रकृति के माध्यम से मनुष्य को निःस्वार्थ की सीख देते हैं :-

हम लफ्फा -लफ्फा कहते हैं, किन्तु सीप क्या कहती है ।  
कुछ भी नहीं, सोलकर भी मुँह बंद नीरव ही रहती है।  
उसके आश्रय की क्या चाह ।  
ताक रहे सब तेरी राह।<sup>२</sup>

विवेककाल के स्वच्छन्दतावादी और खूबेपी स्कूल के कवियों के प्रकृति प्रेम के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग में प्रकृति-प्रेम विकास की वस्तु नहीं रह गया था। प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित होने लगे थे। इस युग के काव्य में प्रकृति-प्रेम राष्ट्रीय प्रेम के प्रतीक के रूप में भी व्यक्त हुआ है। कर्तव्य परायणता, निःस्वार्थता और मानव कल्याण के लिए प्रकृति को माध्यम के रूप में चुना गया। प्रकृति राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार का स्त्रोत बन गई। इस युग में देश के लिये हुए स्वाभिमानी को जगाने के लिए दो प्रकार के प्रयत्न हुए।-

पहला प्रयत्न कार्य- संस्कृति के गरिब- गान के द्वारा देश की हीन भावना को दूर करने की दिशा में किया गया। काव्य की यह प्रवृत्ति एक सीमा तक पहुँचकर पुनरुत्थानवादी होकर रह गई। पवित्रतावादी, नैतिकतावादी दृष्टिकोण कला के विकास के लिए अधिक उपयुक्त नहीं होता है। सामाजिक दृष्टि में यह प्राप्ति एक सीमा तक तो सहायक होती है किन्तु इसके बाद यह प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करने लगती है। हिन्दी के नैतिकतावादी काव्य के साथ भी यही हुआ। राष्ट्रीय जागरण और एकता का दूसरा रूप राष्ट्र के विराट् प्राकृतिक वैभव का वर्णन करके, देशवासियों के लिए कर्तव्य और एकता के पथ का निर्माण करना था। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने यह दूसरा कार्य किया। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि का प्रकृति- प्रेम, राष्ट्र- प्रेम का पर्याय है। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय गरिमा और वैभव का, वर्णन उन कवियों ने किया है, वह बहुत सख्त और स्वाभाविक है।

### प्रकृति : मये वर्ण्य विषय के रूप में

मानव चरित्र के विकास के साथ-साथ प्रकृति का भी विकास हुआ। प्रकृति मनुष्य से भी पुरानी है। मनुष्य ने जब होश संभाला तो अपने को प्रकृति के बीच धिरा हुआ पाया। प्रकृति मनुष्य के जीवन का सदैव है जाहन्मन रही है। प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति से प्रेम भी करता था और मय भी खाता था परन्तु धीरे-धीरे प्रकृति के प्रति मनुष्य का मय समान्त होता गया और मनुष्य के हृदय में प्रकृति के प्रति स्नेह और ममत्व पैदा होता गया। प्रकृति के विभिन्न नयनाभिराम रूपों ने मानव हृदय को सौन्दर्यानुभूति एवं मस्तिष्क को मावनापूर्ण चिन्तन का विस्तार दिया है। ऐसी दशा में, काव्य जो हृदय और मस्तिष्क की समन्वित अभिव्यक्ति है - प्रकृति से अछूता नहीं रह सका है।<sup>१</sup> मनुष्य ने जब पहले काव्य लिखा तो उसमें प्रकृति के प्रति प्रेम और ममत्व दिखाई देता है। मानव ज्ञान के विकास के साथ प्रकृति सम्बन्धी धारणाएँ एवं विश्वास भी बदलते रहे हैं। परिणाम स्वरूप प्रारम्भ से विवेच्य युग तक काव्य में प्रकृति विभिन्न रूपों में चित्रित हुई है। संक्षेप में इस विवेचन को हम इस प्रकार बाँट सकते हैं :

- १- जाहन्मन के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण ।
- २- उदीयन के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण ।
- ३- कर्तकरण के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण ।
- ४- मानवीकरण के रूप में प्रकृति चित्रण ।
- ५- नीति और उपदेशों के लिये किया गया प्रकृति चित्रण ।
- ६- बाध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिये किया गया प्रकृति चित्रण ।

प्रकृति को जाहन्मन रूप में चित्रित करना हिन्दी के महाकाव्यों की एक विशेषता रही है। परन्तु हमें देखना यह है कि विवेच्य युग के कवियों ने प्रकृति-

को किस प्रकार अपने काव्य में नये- नये रूपों में चित्रित किया है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति चित्रण का एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। उन्होंने प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से काव्य का विषय बनाया है। डा० विभुवन सिंह के शब्दों में "हिन्दी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा ने जिस प्रकार साहित्य की नौक रुढ़ियों पर प्रहार किया उसी प्रकार उसने प्रकृति को भी शास्त्रीय मूल्यों से मुक्त किया।<sup>१</sup> विवेक्य कालीन काव्य में वस्तुतः प्रकृति एक नये रूप में लह लह करती है। उस समय के कवियों ने उसे एक स्वतन्त्र विषय के रूप में लिया और उससे रसायुक्ति एवं तादात्म्य स्थापित किया। उदाहरण के लिये जीधर पाठक जी काश्मीर-सुषमा को ले सकते हैं जिस में पाठक जी ने प्रकृति को सतहरी एवं <sup>एक</sup> मात्र पंगिनी के रूप में देखा है :

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सवारति।

फल- फल फलति पेष छनिक छवि छिन-छिन वारति॥

विमल- वन्युसर मुकुरन पक्ष मुल- विम्व निहारति

वपनी छवि पै मोहि वाप ही तन- मन वारति॥<sup>२</sup>

उपर्युक्त उदाहरण में प्रकृति नवीढ़ा नायिका के रूप में चित्रित हुई है। इस प्रकार का प्रकृति चित्रण तत्कालीन साहित्य के एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रकृति ने अभिव्यक्ति की दिशा में पा-पा पर सहायता दी है।

विवेक्य कालीन कवियों ने प्रकृति के वायु से देश प्रेम की भावना को भी व्यक्त किया है। रामनरेश त्रिपाठी तथा जीधर पाठक का नाम इस दृष्टि से विशेष रूप से लिया जा सकता है। प्रकृति को बालम्बन रूप में चित्रित करने वाले कवियों में जीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी उल्लेखनीय हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने--

१- डा० विभुवन सिंह - वायुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दधारा, पृ० १०६ ।

२- जीधर पाठक - काश्मीर सुषमा, पृ० ५-६ ।

तपह काव्य पथिक में प्रकृति का मानवीकरण सुन्दर ढंग से किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द में नावती कुछ वारिद-माला का यह भिम्ब लीजिए :

प्रतिराण नूतन वेण बनाकर रंग विरंग निराला ।  
रवि के सम्मुख धारक रही है नम में वारिद-माला ॥  
बीचे नील समुद्र कनौहर ऊपर नील गगन हैं।  
घन पर बैठ बीचे में विचरुं यही वासता मन हैं ॥<sup>१</sup>

मानवी करण की दिशा में भिपाठी जी ने जी सहज एवं रम्य चित्रण किया है वह विवेच्य युग की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। कवि ने चपला या उष्णा से सहज रूप में जी प्रश्न किये हैं उनके कारण प्रकृति के वे उपादान जीवन्त हो उठे हैं। उसमें एक कर्तृत्वहीन और जिज्ञासा का भाव भी निहित है :

घन में किस प्रियतम से चपला  
करती है विनाय छल-हंसकर ?  
किसके लिये उष्णा उठती है  
प्रतिदिन कर श्रृंगार कनौहर ॥<sup>२</sup>

विवेच्य काल में ही काव्य रचना के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले कवि श्री सुनिमा-नन्दन पन्त में भी यह प्रवृत्ति विलक्षण पड़ती है। वे प्रकृति मटी के सौन्दर्य के प्रति मुग्ध हैं :

कवि की चपल कंगुलियाँ से हूँ मेरे कान्छी के तार।  
कौन जान यह भावक व्यकुट - राग कर रहा है गुण्ठा ॥<sup>३</sup>

१- राननरेश भिपाठी- पथिक, पृ० १७ ।

२- वही - स्वप्न - पृ० २८ ।

३- सुनिमानन्दन पन्त = ग्रन्थि, पृ० १४ ।

धीरे-धीरे कवि का प्रकृति से तादात्म्य इतना बढ़ा कि उसने उसे नारी रूप में कल्पित और वर्णित करना प्रारम्भ कर दिया। पन्त जी की सन् १९२० ई० की 'हाया' कविता प्रकृति की नारी रूप में विभित करने का सजग उदाहरण है। कवि को यह क्रम बनिता ही दिताई देती है। उही कारण भावुक कवि तात्प-विनोद होकर पूछ बैठता है :-

कहाँ कौन हो कमयन्ती हो तुम तरु के नीचे लौह ?  
छाय ! धुन्धे भी त्याग गया क्या जलि । नल तो निष्ठुर लौह !  
पोछे पर्व की शय्या पर तुम विरक्ति हो, मुझ - हो ?  
विजल- विपिन में कौन पड़ी हो विरह- मलिन दुत विबुरा लौह !

यह प्रकृति का यह सजग मानवीय रूप है जिसका हायावादी काव्य में चरम उत्कर्ष हुआ । स्वच्छन्दतावादी काव्य में परवर्ती कवियों के लिए प्रकृति-वर्णन के नये-नये मार्ग सुझाये। परम्परागत प्रकृति वर्णन के स्थानपर एक नवीनता का सवार किया प्रकृति का संवेग पौराणिक नायिकाओं से स्थापित करने का प्रयत्न इस युग में आरम्भ हो गया था जो हायावाद में जाकर और पुष्ट हुआ। बाह्य अवसर प्रसाद की आरम्भिक कृतियों में भी प्रकृति के प्रति एक विशिष्ट रागात्मक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। विवेक काल के उत्तरार्ध में १९१० ई० बाद से उनकी ऐसी रचनाएँ सामने आने लगी थीं जिन में प्रकृति की कल्पना नारी रूप में मिलती है। उदाहरण के लिए उन्ध्यातारा शीर्षक रचना में सांध्यकालीन प्रकृति की फाँकी दृष्टव्य है :

कामिनी निकुर मार जति धन- नील  
तारें मणिमय तारा लौहत लहील,  
अन्त तारंग लंग माला विराजति,  
फेनिल गम्भीर सिन्धु निनाद बोलित,  
हरि कुसुम नै नाविक विमि भयभीत



पीय पय दशकहिं छतत सप्रीत,  
संतार तरंग छसि भीत तिमिं जन  
निरास छयय पारि सतापिय मन,  
छान्ति निशा महिणी को राजबिन्दु रूप  
सुमधिं छतत संध्या- तारा सुम मुष।।<sup>१</sup>

इसमें कवि की मध्य कल्पना के दर्शन होते हैं। ऐसी कल्पना रीति काव्य में दुर्लभ है। बिन्दुवेदी - युगीन क्षतिवृष्टात्मकता भी इसमें नहीं मिलती है। भारत नामक कविता में हिमालय का वर्णन करते समय भी प्रसाद जी ने अपनी कल्पनाशीलता का अच्छा परिचय दिया है :

हिम गिरि का उत्तुंग श्रृंग है सामने ।  
तड़ा बतावा है भारत के गर्व को।  
पड़ती उस पर जब माला रवि - रश्मि की ।  
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में।।<sup>२</sup>

बिन्दुवेदी युग के अधिकांश कवियों ने प्रकृति की वस्तु-नाम वर्णन मात्र समझ लिया था। किन्तु बिन्दुवेदी- युग में ही प्रकृति के जीवन्त रूप के चित्रण की परिपाटी [२२] हुई। प्रसाद जी के कानन- कुसुम नामक संग्रह की कई कविताओं में इस नयी प्रवृत्ति की कानि भी मिलती है। विवेक्य युग के श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय आदि प्रायः समस्त कवियों में प्रकृति के प्रति एक व्यापक एवं रागात्मक दृष्टि दिखाई पड़ती है। इन सभी कवियों ने प्रकृति का चित्रण परम्परा से सहकर किया है। उन्होंने प्रकृति को शुद्ध आलम्बन के रूप में लिया है। उसका मानवीकरण किया है। इसी लिये उनके काव्य में पर्याप्त ताज़गी है।

१- जयशंकर प्रसाद - कानन कुसुम - पृ० ७ ।

२- जयशंकर प्रसाद - हनु में प्रकाशित कविता, सन् १९१२ ई० तण्ड २ ।

विवेच्य काल के प्रसिद्ध कवियों में आचार्य बिभूवेदी, हरिवीरजी एवं मैथिलीशरण गुप्त का स्थान अग्रगण्य है। इन कवियों ने भी अपने काव्य में प्रकृति चित्रण किया है। किन्तु ये अधिकांश में पुरानी रुढ़ियों की सीमाओं से बंधे रहे हैं। अतएव उनके काव्यों में प्रकृति - वर्णन परम्परा से मुक्त नहीं है। परम्परा पालन ही इन कवियों का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। इनके विपरीत इस काल के वे कवि जो बिभूवेदी - मण्डल से बाहर के कवि कहे जाते हैं, रुढ़ियों और पुरानी परम्पराओं को पीछे छोड़ कर रचना के स्वच्छन्द पथ पर अग्रसर होते रहे। उनके काव्य में सर्व नयी शिल्पकी भावकृति हुई मिलती है। प्राचीन रुढ़ियाँ जो काव्य से चिपकी हुई थीं स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उन्हें एकदम उलग कर दिया। उन्होंने भावों की सूक्ष्म व्यञ्जना की ओर ध्यान दिया। विषय के अनुरूप नयी शैली ग्रहण की। इन कवियों ने छायावादिता, कल्पना के उद्देश्य और नये छंद के वाक्य विन्यास, तथा गीतात्मकता को अपनाकर अपने काव्य में नये प्राण फूँक दिये। रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के दर्शन पूर्ण रूप से होते हैं। आगे चलकर छायावादी युग में इस प्रवृत्ति का अच्छा प्रसार हुआ।

### प्रणय का उदात्त स्वरूप

प्रेम सर्वत्र ही काव्य की प्रेरणा का स्रोत रहा है। संसार का कोई भी साहित्य इस शक्ति से अछूता नहीं रह सका है। प्रेम एक अतिव्यापक शब्द है उसे अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहन बताया गया है।<sup>१</sup> डा० रामेश्वर शण्डेलवाल के अनुसार प्रेम के खूदास रूप हो सकते हैं - मजि, प्रणय अथवा दाम्पत्य, वात्सल्य, प्रकृति प्रेम, देश-प्रेम, विश्व मैत्री, मानव प्रेम, कुटुम्ब प्रेम, जडा, सैन्य सैनिक प्रेम, सुदम के प्रति प्रेम और स्कूल के प्रति प्रेम।<sup>२</sup> बालीय काल के कवियों ने अपने को राष्ट्रवाद, मानवतावाद तथा उच्चतर जीवन मूल्यों की ओर मोड़ लिया था। समाज की रुचियाँ में जैसे जैसे परिवर्तन हुआ प्रेम के रूप में भी परिवर्तन होता गया यही कारण है कि विवेच्य काल के कवियों में प्रेम एक उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है। रीतिकाल जैसा संकुचित दृष्टिकोण उनके यहाँ नहीं मिलता है। उनके काव्य में स्वदेश, विराट् प्रकृति और अलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम की गहरी छलक मिलती है। डा० त्रिभुवन सिंह ने इस काल के कवियों पर विचार करते हुए लिखा है कि परम्परागत रुढ़ियों के प्रति जब साहित्य के अन्दर विरोध की छहर दौड़ने लगी तथा स्वच्छन्द विचारों को साहित्य में स्थान मिलने लगा तो प्रेम के स्वरूप में भी परिवर्तन आया विवेच्य काल में प्रेम को लेकर नौ विभिन्न धाराएँ फूँटीं उन में राष्ट्रीय रहस्यवादी तथा स्वच्छन्द प्रेम की धारा थी जिससे देश का समस्त वातावरण गुंजायमान हो उठा।<sup>३</sup>

विवेच्य काल के देश में जागरण का काल था। उस समय सारे नेता तथा समाज सुधारक देश की हीन दशा को सुधारने और आजादी को प्राप्त करने में लगे थे।

---

१- Love, affection, favour, kindness, kind or tender regards, Sport, Pastime, Joy, delight, glances. (Shri Aptey-Sanskrit-English Dictionary, P. 330, 1988.)

२- डा० रामेश्वर शण्डेलवाल तरुण- वापुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य,

पृ० ११३- १३६ ।

३- डा० त्रिभुवन सिंह - वापुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० ८६-८७ ।

गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र रूप धारण कर रहा था। देश में अतृप्तयोग आन्दोलन, किसान आन्दोलन तथा सत्याग्रह आदि के कारण उथल-पुथल मच रही थी। ऐसे समय कवि के लिये यह बहुत कठिन था कि वह समाज, देश सब की ओर से आर्यो बन्द करके प्रेम की गीत बजावने लगता और कल्पना लोक में डूबा रहता। परन्तु पृथ्वी की विरन्त शक्ति की अपनी भीतर से फैलना भी सम्भव था। इस काल के कवियों ने प्रणय भाव की अभिव्यक्ति ती की परन्तु उत्तम एक बदली हुई परिष्कृत रुचि विसलाई पड़ती है। विवेक्य कालीन कवियों ने कृपार और विलास से पूर्ण प्रेम के स्थान पर उच्च मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा की है। इस युग में वनक प्रसाधानक, काव्य लिखे गये हैं। जिनमें प्रसाद जी का प्रेम पथिम (सन् १६१४ ई०) रामनरेश त्रिपाठी का मिलन (सन् १६१७ ई०) पथिक (सन् १६२० ई०) तथा पन्त जी की ग्रन्थि (सन् १६२० ई०) उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। पं० श्रीधर पाठक ने एकान्तवासीयोगी द्वारा प्रेम का स्वच्छन्द किन्तु उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया था। इस कृति पर विचार करते हुए डा० शितिकण्ठ मिश्र ने लिखा है कि - रीति ग्रन्थों के उदात्त पर आधारित संयोग - धियोग का वर्णन न करके उन्होंने प्रेम की एक ऐसी लोक-प्रचलित कहानी चुनाई जो सब के हृदय की अपनी कहानी थी। वह कहानी ही नहीं मानव जीवन का विरन्त सत्य है। किसी के प्रेम में योगी होकर प्रकृति के एकान्त दौत्र में कुटी बनाकर निवास करना एक मार्मिक भावना है जो सभी देशों के सभी हृदयों को समान रूप से स्पर्श करती है। लंगैण्ड में बढ़ती हुई मार्मिकता के विरुद्ध किसी एकान्त दौत्र में प्रेम की पूजा का संकेत देने के लिए ही सरमिट की अवतारणा हुई थी यह प्रेम कहानी रुढ़ि - पुनः लोक गीतों से मेल लाती है।<sup>१</sup>

एकान्तवासी योगी का भाव विवेक्य काल के लघुकव्यों प्रेम-पथिम, मिलन, तथा पथिक एवं ग्रन्थि में फलित हुआ है। प्रसाद ने प्रेम को कवय-

१- डा० शितिकण्ठ मिश्र - लड़ी नौली का आन्दोलन, पृ० १२।

की विशाल और निःस्वार्थ वृत्ति माना है। उन्होंने लिखा है -

पथिक प्रेम की राम जौली भूल भूलकर चलना है।  
बनी बाँस है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिड़े हुए हैं।  
प्रेम - यज्ञ में स्वार्थ और वाचना स्वन करना होगा।  
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विधारी होने का फल पावोगे।<sup>१</sup>

प्रसाद के प्रेम-पथिक की इन पंक्तियाँ ने समसामयिक काव्य में एक युग परिवर्तन की सूचना दी। यह एक प्रबन्धात्मक काव्य था परन्तु विषय की मौलिकता और मिठास के कारण जनता को अपनी ओर खींचने में सफल हुआ। नीचे की पंक्तियों के सम्पुट वाचना और शृंगार युक्त रीति-काव्य नतमस्तक हो जाता है। बाद में लिखित युग में प्रसाद का प्रेम-पथिक नव जीवन, नये आदर्श, नये दृष्टिकोण तथा नये मानव मूल्यों को लौंच लाया :-

उस पथ का उद्देश्य नहीं है  
मान्य मकन में टिक रहना,  
किन्तु चले जाना उस हृद तक,  
जिसके बाये राह नहीं ॥<sup>२</sup>

विवेक्य काल के दूसरे प्रमुख कवि रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम की महिमा को बताते हुए कहा है कि -

गन्ध विहीन फूल हैं- जैसे चन्द- चन्दिका- हीन।  
यों ही फीला है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन॥  
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम बरकत बरौक।  
रसकर का प्रतिविम्ब प्रेम है प्रेम हृदय- जालौक।<sup>३</sup>

---

१- कवशंकर प्रसाद- प्रेम-पथिक - पृ० ११ ।

२- वही - वही - पृ० १३ ।

३- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन - पृ० ४०५ ।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम का एक नया रूप भी हमारे सम्मुख रखा जो अन्य कवि न रख सके । समस्त कवियों ने अपने अपने काव्य में स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन किया है। त्रिपाठी जी के काव्य में वैवाहिक जीवन के बाद प्रेम का सूत्रपात हुआ है जब कि और कवियों ने विवाह से पूर्व प्रेम का वर्णन किया है। त्रिपाठी जी के पथिक में पति-पत्नी का प्रेम है :

मग्न हुआ मैं एक, पथिक फिर सन्निभ मुझ से बौला।  
प्रिये! तुम्हों ने तो पहले यह खूब प्रेम का लौला।  
हृदय खोलकर मधुर प्रेम का वस्तुतः रूप दिखाया।  
रूप दिखा सौन्दर्य-उत्पन्नक तुम ने मुझे बनाया।<sup>१</sup>

त्रिपाठी जी ने नारी को भी महत्व दिया है उन की नारी रीति काष्ठ की नायिका न होकर समाज ऐविज है उनकी नारी मर्यादा या मानवतावाद की प्रेरणा का स्वागत रही है। स्वयं काव्य में सुमना अपने पति से कहती है :

तैवा है मर्यादा मनुष्य की  
न कि अति उच्च विचार उच्च- कल  
मूल हेतु रवि के गरिब का  
है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल।<sup>२</sup>

इस महान तपस्या की रसात्मकता भी त्रिपाठी जी की नायिका सुमना ने ही प्रदान की है। इस कारण त्रिपाठी जी ने नारी सौन्दर्य का सांत्विक एवं सरल किन्तु सीधा है जिसे अन्य कवि चित्रित करने में एकल नहीं हो सके हैं । इससे उनकी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का पता चलता है :

१- रामनरेश त्रिपाठी - पथिक, पृ० ७६ ।

२- वही - स्वप्न, पृ० ६४ ।

जिसके नेत्रों में चरित था  
सच्चरित्र उन्नत पवित्र मन  
जिसकी भाँही में छिपा था  
सरल प्रकृति- संभव मोलाका  
जो सत्कवि की एक पंक्ति ही  
सुन्दर थी उदर्य है प्राणित ॥<sup>१</sup>

### पुण्य का नया सम्झना-

निवैद्यकालीन कवियों के प्रेम वर्णन और प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में एक नवीनता दिखाई पड़ती है। उनकी प्रेम विषयक चारणा उत्तरदायित्वपूर्ण है। उन्होंने प्रेम को मानव मन की एक मूल प्रवृत्ति के रूप में प्रधानता अकर दी है परन्तु जीवन की समस्त आवश्यकताओं की भी ध्यान में रखा है। रीति-कालीन कवियों का प्रेम वर्णन जो केवल परम्परागत था, उससे उस युग का प्रेम नितान्त भिन्न है। इस काल के कवियों का प्रेम लोभी प्रेमास्थानों में वर्णित प्रेम की भाँति स्वच्छन्दतावर व्यापक है। आधुनिक काल में कई प्रेमास्थान लिखे गए। उनमें प्रताप का 'प्रेम-पथिक' (१९१४ ई०) रामनरेश त्रिपाठी का 'फिलन' (१९१७ ई०) 'पथिक' (१९२० ई०) तथा पन्त की 'ग्रन्थि' (१९२० ई०) प्रमुख प्रेमास्थानों के रूप में आईं। ये मध्यकालीन प्रेमास्थानों की परम्परा से अलग बहकर हैं। हममें झुंझार और विरस की तुलना में मानवीय गरिमा अधिक है। इन कवियों ने प्रेम और वेदना का स्वरूप नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पन्त जी की वेदना नायक- नायिकाओं की पीमा तोड़कर संपूर्ण जगत में व्याप्त हो गई है। यह विस्तृत दृष्टिकोण निश्चित ही हिन्दी काव्य में नवीन प्रवृत्ति का सूचक है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में सहज मानवीय प्रवृत्ति की जो अभिव्यक्ति हुई है, पन्त जी की यह काव्य कृति इसका एक प्रमाण है :

वेदना । कैसा करुण उद्गार है ?

वेदना ही है अखिल आशाण्ड यह,

तुलिन में, तृण में, उपल में, छहर में

तारकी में ध्यौम में है वेदना।<sup>१</sup>

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम को जीवन के प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। इनमें प्रेम एक सख्त मानवीय गुण के रूप में है। देवी-देवताओं और जाध्यात्मिक प्रेम के स्थान पर मानवीय प्रेम का काव्य का आधार स्तम्भ है यह प्रेम अधिक सख्त और गरिमायुक्त है। प्रेम शताब्दियों तक बहुत संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। मजि काल में प्रेम क्लीक और जाध्यात्मिक अर्थ में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ। रीतिकाल में उसका अर्थ और संकीर्ण हो गया। वह पुरुष और नारी के बीच वासनायुक्त संबंधों तक सीमित हो गया। धीरे-धीरे यह नायक-नायिका की वस्तु होकर रह गया। इसी व्यापिकरण के कारण प्रेम समाज में एक समझा शब्द समझा जाने लगा। मजि कौन-नाम से लगने लगे । लेकिन विवेक्य कालीन कवियों ने प्रेम को नया अर्थ-गौरव और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की।<sup>२</sup> प्रेम को नायक-नायिका के संकीर्ण वासना संबंधों से निकालकर मानवता की विस्तृत माय-भूमि पर सड़ा कर दिया:

किसी मनुज का देश आत्मकल कोई चाहे कितना ही

करे प्रतीक्षा, किन्तु हिमालय - ता ही जिस का हृदय रहे ।

और प्रेम करुणा गंगा- यमुना की धारा बही नहीं ।

कौन कहेगा उसी महान ? न भूलें उस में जन्तार है।।<sup>३</sup>

सामाजिक और मानवीय मूल्यों के संबंध में प्रेम युग के कवियों का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत और उदार रहा है। उन कवियों ने काव्य में संकुचित दृष्टि और अनुदारता--

१- सुमित्रानन्दन पन्त- ग्रन्थि - पृ० ३७ ।

२- डा० रघुवंश - हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० १० दिल्ली (१९५८)

३- प्रसाद - प्रेम- पथिम - पृ० ३ ।



को दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया है। उन्होंने हर प्रयत्न को मानवीय पराक्त पर सुलझाने का प्रयत्न किया है। लौकिक जीवन के सहज और सामान्य प्रश्नों की ओर उन का ध्यान विशेष रूप से गया है। प्रसाद जी मानवीय प्रेम की लीज में हैं। यह प्रेम किसी प्रेमिका का नहीं है बल्कि एक सच्चे मित्र का प्रेम है। प्राचीन काल से भारतेन्दु युग तक प्रेम केवल नारी-पुरुष संबंधों तक ही रहता। वह पुरुष अपने को लीपाग्यजाली समझता था, जिसे किसी नारी का सच्चा प्रेम प्राप्त होता था, किन्तु यहाँ लीपाग्यजाली पुरुष दख है जिसे प्रेममय सच्चा मित्र मिला ही। यहाँ वाक्य प्रेम का सन्दर्भ लिखल बदल गया है ।

कन्द्य लौलकर मिलने वाले बड़े भाग्य से मिलते हैं ।

मिल जाता है जिस प्राणी को सत्य प्रेममय मित्र नहीं ।

निराधार मय- शिंघु बीच वह कर्णधार को जाता है।

प्रेम - नाव लेकर जी सचमुच पार लगाता है।।<sup>१</sup>

प्रेम की भाँति विरह का दर्शन भी विस्तृत हुआ है। विरह का चित्रण उस युग में मानवीय पराक्त पर हुआ है। विरह जीवन का एक सख्त गुण मान लिया गया है। रीति काल में विरह, आत्म, दुःख और दारुण संतर्पों का प्रतीक था, लेकिन स्वच्छन्दतावादी काव्य में उस का सन्दर्भ बदल गया है। विरह यहाँ जीवन है। विरह का जीवन में होना बहुत आवश्यक है। इसके जीवन में पूर्णता आती है। प्रेम बिना विरह के पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता है :-

मिलन वन्त है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है ।

विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है।।<sup>२</sup>

१- प्रसाद - प्रेम पथिक - पृ० ६ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी - पथिक - पृ० १६ ।

विवेच्यकालीन कवियों में श्रीराम नरेश त्रिपाठी, हरिवर्ष जी तथा गुप्ता जी ने प्रेम को नये सन्दर्भ में देखा है। उन्होंने प्रेम की संकीर्णता को तोड़ और उसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। त्रिपाठी जी, हरिवर्ष जी तथा गुप्ता जी इन तीनों ही कवियों के काव्य में नायिकाओं के प्रेम-प्रसंग एवं नवीन रूप में आते हैं। उनका प्रेम विकसित होकर अन्तः देश प्रेम से विश्व-प्रेम तक पहुँचता है। मिलन काव्य की विजया अपने प्रियतम को मन-मन में हँसते फिरना उन्मत्ता का प्रयास समझती है। उसकी पारणा है कि दीन-सीने के सुत में ही प्रियतम का निवास है :

सेवा- कर्म मुख्य है जा मैं

लोक - शान्ति - प्रद काज ।

एक दीन ने प्रकट प्रेम की

पार फलट दी बाज ।

प्रियतम को हँसता क्यों मैं

हैं उन्मत्त प्रयास ॥

वास्तव में है दीन- ज्यों के

सुत मैं उसका वास ॥<sup>१</sup>

< < < < < < < < < < < < < <

विजया ने प्रण किया सुपुङ्गु ली

कर प्रयत्न मरपुर ।

तब मन से उस दीन देश का

कष्ट कभी दूर ॥<sup>२</sup>

१- रामनरेश त्रिपाठी - मिलन- पृ० ७० ।

२- वही - वही - पृ० ७१ ।

हरिबाँध जी के प्रिय- प्रवास में तो राधा- कृष्ण के वियोग का मूल कारण है परोपकार और सेवा की भावना । प्रेम और कर्तव्य अथवा वात्सल्य और लोकहित का संघर्ष ही राधा और कृष्ण के विरह का मूल कारण बनता है । कृष्ण परोपकार, सेवा, व्रत, एवं कर्तव्य भावना को सर्वोच्च समझते हैं । जब मैं अपनी व्यक्तिगत हित की साधना में निरत रहने की अपेक्षा ध्युहारिका में लोकोपकार करना उनको अधिक प्रिय रहा है। 'प्रिय- प्रवास' की राधा भी पुष्पीदाम के समान विकसित सुन्दरी है । वह राकेन्दु - बिम्बानना है, तन्वंगी है, शोभा-वारिधि है किन्तु उस अपार सौन्दर्य के साथ विशाल हृदय वाली है। वह कृष्ण के जाने पर सारे ब्रज की वियोगाकुओं में नहीं सुबोती है बल्कि यह सुनकर कि कृष्ण लोक-कल्याण में निरत है वह भी अपना संपूर्ण जीवन के त्याग, उपकार तथा सेवा में लगा देती है। उसके व्यक्तित्व का उदार रूप पवनवृत्ती प्रसंग में दृष्टव्य है ।

तेरी बैठी मृदु पवन से सर्वथा शान्ति आयी ।  
कोई रागी अधिक क्या मैं जी कहीं भी पड़ा हौ।  
तू तू मेरे विपुल दुःख की मूल के घोर लोके ।  
सौभाग्य सारा कृष्ण उसका शान्ति सर्वांग होना॥<sup>१</sup>

राधा, पवन, की सेवा, त्याग, उपकार की शिक्षा देती है और उपद्रव-शून्य होने को कहती है। उसका समस्त सन्देश इस बात का साक्ष्य है कि राधा उदात्त गुणों से सम्पन्न भारतीय नारी है जो केवल प्रेमिका नहीं, लोक- प्रेमिका है । हरिबाँध जी के सम्मुख अपनी प्रिय- देश का स्पष्ट चित्र था इस कारण कवि ने रीति-कालीन नायिका को जन- नायिका और कृष्ण को जन-नायक में परिवर्तित कर दिया । हरिबाँध ने काव्य में एक नया मोड़ दिया । उन्होंने राधा से स्वयं कहलवाया है कि-  
म्यारें जीवें जगहिल करें गेह बाहे न जावैं॥<sup>२</sup>

१- हरिबाँध - प्रिय- प्रवास, पृ० ३१ ।

२- वही - वही पृ० ६३ ।

राधा की छोक- कल्याण भावना, उनका विश्व- प्रेमिका का स्वरूप उनकी भावसिक्त वृत्तियाँ का विकास मन को सर्वस आकर्षित कर लेते हैं । राधा के प्रेम में हरिवंश की नारी विजयक उल्लेख धारणा देखी जा सकती है। उनकी दृष्टि में नारी सौन्दर्य प्रेम में निहित है। कवि ने राधा का चरित्र इस प्रकार उद्घाटित किया है । :-

दीनों की थीं भगिनि जनी थीं क्षायाक्षि की,  
वाराह्य थीं ज्वनि ह्व की, प्रेमिका विश्व की थीं।।<sup>१</sup>

---

१- हरिवंश - प्रिय - प्रवास - पृ० २१ ।

### व्यक्तिगत अनुभूतियों का समावेश

स्वच्छन्दतावादी काव्य में गीति-तत्त्व का सर्व उपभोक्ताओं में विकास हुआ है। गीति तत्त्वकायह रूप उस से पूर्व हिन्दी काव्य में कभी नहीं रहा। यह हिन्दी काव्य में एक नवीन प्रवृत्ति के रूप में प्रविष्ट हुआ, जिस पर युग-प्रवृत्तियों का गहरा प्रभाव रहा है। गीत का प्रयोग हिन्दी में बहुत पुराना है। लेकिन गीति-काव्य का सर्वप्रथम प्रयोग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में छायन प्रसाद पाण्डेय ने किया। पाण्डेय जी ने कविता कुसुम माला की भूमिका में लिखा है - काव्य के तीन प्रकार हैं- गीति काव्य ब्रज काव्य, और दृश्य काव्य। गीति-काव्य गीत छेड़ी नव्यतम विकास है। गीति-काव्य परित्यक्त से आया हुआ विधान है। कौकिली जिसकी वहाँ संज्ञा थीं लिरिक। लिरिक के अर्थ का विकास होता रहा है।<sup>१</sup> हिन्दी में लिरिक के अर्थ का विकास और परिपक्व हुआ है। योरेप में जिस युग में (१८ वीं और १९ वीं शताब्दी) लिरिक काव्य का विकास हुआ है, वह युग औद्योगिक क्रान्ति की सकलता और चरमोत्कर्ष का युग रहा है।<sup>२</sup> लिरिक संग का विकसित और नवीन रूप है। गीति-काव्य भी गीति का विकसित और वायुनिक रूप है।<sup>३</sup> इस का यह अर्थ नहीं है कि गीत विहीन हो गया, गीत बाध भी है, लेकिन गीति-काव्य की प्रेरणा और आधार-भूमि का कार्य गीत ने ही किया है। वायुनिक चेतना और व्यञ्ज के बढ़ते हुए महत्व ने गीति काव्य को विकसित किया है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने व्यञ्ज की गरिमा और राष्ट्र की भक्ति

१- छायनप्रसाद पाण्डेय - कविता कुसुम माला, भूमिका, (काशी १९११)

२- George Lukacs - Studies in European Realism. P. 155. London (1950)

३- छायनप्रसाद प्रसादी - गीति काव्य का विकास, पृ० १११ वाराणसी

के गुणगान के लिए गीति-काव्य का विस्तार किया। गीति-काव्य एक ओर लोक जीवन की भाव-भूमि पर विकसित हो रहा था, दूसरी ओर इस पर पश्चिम के रोमांटिक कवियों के काव्य की गहरी छाप रही है। यह हिन्दी काव्य के लिए बिल्कुल नया परिस्थितियाँ रही हैं। इस युग में लोक जीवन की सीधी तुलना और पश्चिम की हवा का संगम हो रहा था और इस नवीन परिस्थिति का प्रभाव हमारे संपूर्ण साहित्य पर है।

गीति-काव्य में व्यक्तिगत चेतना का विकास हो रहा था। यह व्यक्तिगत चेतना नवीन औद्योगिक सभ्यता की देन थी। मजि-काल के कवियों की भाँति इस युग का कवि अपने आपको देव, नीच अक्षम और सामर्थ्यहीन मानने को तैयार नहीं था ईश्वर का स्थान व्यक्ति की क्षेत्र सामर्थ्य और पराक्रम ले रहा था, स्वदेश और जन इस युग के गीति-काव्य के प्रमुख विषय रहे हैं। गीति-का विषय प्रेम और सौन्दर्य हो रहे हैं लेकिन यह प्रेम नायिका से बढ़कर स्वदेश और मानव- प्रेम में बदल गया है। नारी सौन्दर्य का स्थान प्रकृति में ले लिया है। इस युग के गीति काव्य ने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का कार्य किया है।

गीति काव्य में राष्ट्रीयता का बीज प्रसार गहरा और विस्तृत होता गया है। पारसेन्दु युग की राष्ट्रीयता में अतृप्त स्थिति का वर्णन है। इस युग के कवि देश की दुर्दशा का वर्णन तो करते हैं लेकिन इस वर्णन में बड़ी निरुत्साही है। हम कुछ कर नहीं सकते हैं इसलिए ये कवि ब्रिटिश सरकार की बन्दना करते हैं कि, आप हमें संकट से उबारें क्योंकि ईश्वर से प्रिय और प्रार्थना करके सन्तुष्ट कर लेते हैं। इस युग के गीति-काव्य में राष्ट्रीयता नैतिकता और सामाजिकता का पद अधिक प्रकट और मुख्य रहा है। राजनीति का प्रभाव नगण्य है, लेकिन विद्वेषी-युग के उपरान्त में राजनीति प्रमुख हो गई है। और सामाजिक पदा गौण हो गया है।<sup>१</sup>

बीसवीं शताब्दी में गीति काव्य का विकास दो प्रमुख धाराओं में हुआ है। राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की धारा तथा व्यक्तिगत चेतना की धारा स्वच्छन्दतावादी कवियों की चेतना की प्रथम उका है। हायावादी कवि व्यक्तिगत चेतना की पैदावार है। ऐसे गीति-काव्य का प्रथम विकास हायावादी काव्य में हुआ है। हायावादी गीति-काव्य राष्ट्रीय चेतना से रहित नहीं है। लेकिन उसमें प्रमुखता व्यक्तिगत चेतना की है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी गीति-काव्य और हायावादी गीति-काव्य में यही बूझ अन्तर है। ऐसे हायावादी गीति-काव्य, स्वच्छन्दतावादी गीति-काव्य की कगली कड़ी है। पं० श्रीधर पाठक, राम-नरेश त्रिपाठी आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने गीति-काव्य के माध्यम से भारतीय जीवन के प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पन्नता का वर्णन किया है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य दो प्रकार का है एक तो गाँवों के जीवन से सम्बन्धित प्राकृतिक सौन्दर्य जैसे तैल-तल्लिहान, बाग, क्रीड़ा, ताल-तटिया, फूल पाँये आदि जो जीवन के साथ विधित होते रहते हैं, दूसरे वन्य, प्राकृतिक सम्पदा पर्वतीय और जलगत सौन्दर्य जो अपने आप में पूर्ण हैं।<sup>१</sup> स्वच्छन्दतावादी कवियों के गीति काव्य में भारत की प्राकृतिक सुगन्धा का स्वतन्त्र चित्रण है। हिमालय विन्ध्याचल आदि पर्वतों गंगा, यमुना, सिन्धु नर्मदा आदि नदियों का इस काव्य में बहुत वर्णन है। इसके अतिरिक्त फसल आदि फूल कौकल, कंस, पपीहा, खंजन आदि पक्षियों, वनस्पति, पावत आदि षट् - कृतुओं की सुगन्धा के बिना से इस युग का गीति काव्य भरा हुआ है। श्रीधर पाठक के भारत-गीत, काश्मीर सुगन्धा, आदि काव्य ग्रन्थों में राष्ट्रीय चेतना प्राकृतिक सुगन्धा के माध्यम से सुगन्धित हुई है। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में यह चेतना प्रकृति और कर्तव्यों का रूप ग्रहण कर लेती है। हायावादी गीति --

काव्य में जाकर यही चेतना व्यक्तित्व हो जाती है । लेकिन छायावादी का मैं  
यह चेतना अपने सामाजिक परिवेश में <sup>आत्मकृत्याश्रमा</sup> नकीम, मासलाल वतुर्वेदी, तुमका कुमारी  
जीधान और निराला के तीव्र स्वरों में मुखरित होती है। उन कवियों के गीतों  
में व्यक्ति का दर्द, वेदना, चेतना, आक्रोश, शास्त्र, दुःखता आदि सामूहिक हो  
गयी है। यही प्रवृत्ति उन कवियों को छायावादी नीति- काव्य की व्यक्तित्व  
चेतना से अलग कर देती है। आठे अध्याय में नीति- काव्य पर विस्तार से प्रकाश  
डाला गया है ।



**पाँसा वध्याय**  
\*\*\*\*\*

## द्वितीय अध्याय की दिशा में नये प्रयोग

### काव्य रूप

(ब)

पिछले अध्याय में विवेच्यकालीन स्वच्छन्दतावादी काव्य की नवीन स्वच्छन्दतावादी भाव सामग्री का विवेचन किया गया है। यह एक प्रकार से आलोच्य काव्य के भाव पदा का विवेचन रहा है। प्रस्तुत अध्याय में कला-पदा का अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत करना उद्देश्य है। विवेच्य काल में किये गये नये प्रयोगों के आधार पर हमने काव्य के स्वरूपविभेद, भाषा, उत्तम प्रयुक्त नये-पुराने छन्द और कर्तकारों का विवेचन किया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक शक्तियाँ, उसके प्रवृत्तिगत विकास और विशेषताओं पर हमने अधिक ध्यान दिया है। यह एक मान्य तथ्य है कि काव्य की विष्णय वस्तु उसके सम्पूर्ण कलापदा और भाषा में परिवर्तनकारी सिद्ध होती है। इस के विपरीत कलापदा और भाषा नयी विषय वस्तु का निर्माण नहीं कर सकते हैं। इस लिए हमने कलापदा का विवेचन करते समय भी विवेच्य कालीन काव्य को उसके सामाजिक परिवेश और समतामयिक राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में देखने का प्रयत्न किया है। बिना इस सन्दर्भ के किसी वायुनिक साहित्यिक विषय का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता है।

### आधुनिक महाकाव्यों की प्रेरक शक्तियाँ --

साहित्य के विविध अंगों के विकास की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है। साहित्य की विविध विधाओं की जितनी उन्नति इस युग में हुई उतनी पहले कभी नहीं हो सकी। वर्तमान युग गद्य का युग है कविता का नहीं है। काव्य छन्दय पदा का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ काव्य में बुद्धिमत्ता का प्राधान्य हुआ, वहीं काव्य नीरस हो जाता है। लेकिन आज के वैज्ञानिक और औद्योगिक युग के इस युग में छन्दय की ककार मद्धिम पड़ती जा रही है। युग के तीव्रकारी परिवर्तनों और मशीनों की गड़गड़ाहट के नीचे मानव की कौनसे भावनाओं की आवाज़ दब गई है। इस के साथ ही हमारे जीवन में ज़ेक जटिलताएँ आती जा रही हैं, जिनका समाधान भावनाओं से नहीं बल्कि बुद्धि और तर्क से ही किया जा सकता है। इसलिए गद्य की आवश्यकता दिन- प्रति- दिन बढ़ती जा रही है और काव्य का महत्व घटता जा रहा है। इस का तात्पर्य यह नहीं है कि काव्य का इस युग में कोई उपयोग ही नहीं है। जब तक मानव जीवन में कौनसे भावनाओं का अस्तित्व है तब तक काव्य का भी अपना अस्तित्व है। काव्य ने प्रारम्भ से १६ वीं शताब्दी तक साहित्य का प्रतिनिधित्व किया है। आज वह स्थान गद्य ने ले लिया है। यह परिवर्तन युगानुरूप हुआ है। गद्य ने अब युग का प्रतिनिधित्व आरम्भ किया महाकाव्यों की परम्परा समाप्त होने लगी है। यूरप में भी यही हुआ और हमारे देश में भी यही हो रहा है। यह युग छन्दय काव्यों फुटकर कविताओं और गीतों का युग है। महाकाव्यों के लिए आज का कवि नायक का तलाश कर्ता है करेगा। नायक बिहीन काव्य तो हो सकता है किन्तु नायक के अभाव में महाकाव्य को रचना नहीं हो सकती है। महाकाव्यों की--

समाप्ति के साथ काव्य का साम्राज्य भी उगम समाप्त हो गया है ।

भारतेन्दु युगीन कविता में तत्कालीन विविध परिस्थितियों के सजीव चित्रण देखने को मिलते हैं। समाज सुधार देश भक्ति, और भारतीय संस्कृति के गौरव की ओर जनता का ध्यान कराते हुए उन्होंने जातीय चेतना का मार्ग प्रस्तुत किया । भारतेन्दु भारतीय पुर्जागरण के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। साहित्य एवम् ही किसी न किसी रूप में मानव का ही चित्रण करता रहा है। लेकिन भारतेन्दु युगीन साहित्य ने सामाजिक उत्तरदायित्व आग्रहपूर्वक अपना लिये। वस्तुतः भारतेन्दु ने साहित्य को जन साधारण की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर हिन्दी साहित्य की अतीव भावनाओं का झूट ही नहीं सोला बल्कि वायुनिक और पुरातन चेतना का भेद भी स्पष्ट कर दिया था । उन्होंने अपने युग के भारत और बाह्यो देखी भारतीयता का विशद चित्रण किया है । भारतेन्दु साहित्य की यही विशेषता उन्हें रीतिकालीन कवियों से अलग कर देती है । यथार्थ को देखने की उनके पास नवीन दृष्टि है वे उल्टे कतराते या बचते नहीं बल्कि कविता में उसे स्थान देते हैं। उनके काव्य ने वह सब कुछ आत्मसात् किया जो उस समय चारों ओर व्याप्त था । अकेले भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में जितनी नवीन विधाओं का प्रयोग किया वह बाद में कोई अकेला साहित्यकार नहीं कर सका । यह नवीन स्थान का युग था इस में कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, आदि क्षेत्र में साहित्य की उन्नति हुई । प्राचीनता और नवीनता का मणिकान्धन योग है । कविता के क्षेत्र में प्राचीन काव्य भाषा, शृंगार, भक्ति नीति विषयों के साथ ही नवीन परिस्थितियाँ - प्रभुत सामाजिक राजनीतिक और राष्ट्रीय भावों को भी स्थान मिला है ।

लेकिन जتنا सब कुछ होते हुए भी उन साहित्यकारों के पास तत्कालीन परिस्थितियों और क्रान्ती के अनुचित समाधान का कोई मार्ग --

नहीं था, वे सौँहें हुई जाति को जगाना चाहते थे, पूत राष्ट्र में प्राणी का संचार करना चाहते थे लेकिन उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था मजबूर होकर उन्होंने अतीत की शरण ली इस स्थिति के कारण काव्य में पुरातत्त्वानवादी दृष्टि और पलायनवादी प्रवृत्ति का विस्तार हुआ ।

भारतेन्दु काल में जीवन और मरणा के द्वन्द्व में संघर्ष चल रहा था । जीवन के नये मूल्यों में स्थायित्व न था । इस कारण महाकाव्य की आशा फीरी कल्पना मात्र थी । इस युग के कवि मुक्तकों, नाटकों, निबन्धों तथा कथा-निर्माण की रचना में प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे साथ ही भारतेन्दु युगीन कलाकार महाकाव्योचित भाषा का स्वरूप भी निर्धारित न कर सके थे । उस समय खड़ी बोली और ब्रज भाषा का संघर्ष चल रहा था ।

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग के बाद <sup>महत्त्वपूर्ण</sup> ब्रिटेनी युग का आरम्भ हुआ । यह युग हिन्दी के वर्तमान महाकाव्यों के लिए सिद्ध हुआ भारतेन्दु ने पारश्वात्य सभ्यता एवं संस्कृति का सर्वदा विरोध न करते हुए सामंजस्य स्थापित किया । भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने भारत के स्वर्णिम अतीत की और जनता का ध्यान आकर्षित किया और अपने देश, साहित्य और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना जाग्रत की । ब्रिटेनी युग में अतीत प्रेम की इसी प्रवृत्ति ने राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में क्रांति करने का प्रयास किया । इन परिस्थितियों का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा । फलतः साहित्य में भी अतीत के उज्ज्वल चित्र होंगे गर । इस अतीत प्रेम का पिग्बर्न मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' उपाध्याय जी के 'प्रिय- प्रवास', और 'वैदेही बनवास' जैसे प्रतिनिधि काव्य ग्रन्थों से होता है । इन ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन में अतीत की वर्तमान में ढालने के सफल प्रयत्न किये गये हैं। पौराणिक आचार भूमि पर --

लिखे गये इन ग्रन्थों में आधुनिक चेतना और समस्याओं का समन्वय किया गया है ।

इन महाकाव्यों पर तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का प्रबल प्रभाव है। नव जागरण काल में उत्तीत काल की भावना का प्रसार स्वाभाविक है। इस युग के प्रमुख कवि गुप्त जी, तथा हरिऔध जी की दृष्टि उत्तीत की ओर जाना स्वाभाविक है । इन कवियों ने हिन्दू - संस्कृति के प्रतीक राम और कृष्ण को आधुनिक युग के अनुरूप प्रस्तुत किया । सन् १९२४ ई० में हरिऔध जी ने प्रिय-प्रवास की रचना लड़ी बोलों में की । यह लड़ी-बोली का सर्वप्रथम महाकाव्य है । 'प्रिय - प्रवास' का सर्वप्रथम महाकाव्य है । प्रिय व प्रवास प्रत्येक दृष्टि से विवेच्ययुग की नवीन और प्रौढ़ रचना है । इस में आचार्यों द्वारा कथित काव्य के सभी लक्षणों का पूरा निर्वाह ही नहीं बल्कि उनके लक्षण - अलग प्रयोगों में समतामयिकता की युगान्तर्दशी दिशा भी है । प्रिय-प्रवास का कथानक भीमद भागवत के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के मथुरा गमन से सम्बन्धित है । हरिऔध जी कोई दूसरा विस्तृत विख्यात प्रयोग भी चुन सकते थे परन्तु उनकी कुशलता रही है कि उन्होंने युग की ज्वलन्त आवश्यकताओं का संगति-कौण स्थापित करने वाला कथानक चुना है। विदेशी शासन के विरुद्ध आन्दोलन करने वाली भारतीय जनता और नेताओं के समक्ष यह एक सुन्दर आदर्श था कि वे अपने व्यक्तिगत और मान-वोचित रागों को अपने सीने में दबाकर उस सर्वोच्च निष्ठा का परिचय दें जो देश, जाति, विश्व के हित में मानव की त्याग तपस्या का सर्वोच्च उदाहरण बन सके ।<sup>१</sup> कवि ने 'प्रिय - प्रवास' में उसी त्याग तपस्या की स्थिति छाने के लिए --

१- डा० प्रतिपाल सिंह - बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्ध) के महाकाव्य, पृ० १३५ ।

कृष्ण के मधुरा गमन और गोकुल के विरह की प्रमुख कथा ही है। इस तपस्या की कलौटी पर सरे उतरने वाले नाम श्रीकृष्ण को प्रस्तुत किया है जिनके समस्त व्यक्तिगत प्रेम की तपन से अधिक लौकिकता का प्रश्न है। लोक रक्षा के भाव को प्रसारित करने के लिए ही हरिजीव जी ने प्रिय- प्रवास का आयोजन किया। इस में कृष्ण तथा राधा अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता को पीछे छोड़कर समष्टि के हित की और कड़ते पिछाई देते हैं। इस प्रकार राधा का परिवर्ण भी सारी पुरानी परम्पराओं को छोड़कर नये रूप में सामने आया है। वह न विवाहपति की व्रतित यौवना राधा है, न सूर की समर्पित राधा, उन्में देव और बिहारी की वाचस्पत्या राधा की गन्ध भी नहीं है, और न रत्नाकर की राधा की तरह धिर - पड़ाऊ वाग्रह है और न मागवत् की वह राधा है जो इन्द्रियों के छात्त्विक भाग की भाव- भूमि पर आसक्त है।<sup>१</sup> हरिजीव की राधा आज के वैज्ञानिक युग की वह शिक्षित एवं सत्य भारतीय नारी है जो देश और मानव जाति की मछाई के लिए अपनी व्यक्तिगत समता को तत्न करके कसती है।

अपारे जीवें जग हित करै गेह बाड़े न जायें।।<sup>२</sup>

हरिजीव जी ने युग की उपलब्ध समस्याओं से प्रभावित होकर प्रिय- प्रवास में लोक सेवा, देश-पति, और विश्व प्रेम जैसे नवीन तत्त्वों को समाहित किया है। राधा का व्यक्तिगत प्रेम धीरे- धीरे देश-पति और विश्व प्रेम में परिणत हो जाता है। हिन्दुवेदी - युग के राष्ट्रीय जागरण काल में देश को अपनी उन्नति के लिए अपनी स्वार्थ की बाँध देने वाले लोक सेवा में निरत पर- --

१- डॉ० शिवकुमार - हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० ४४३ पृ० ४०२६६९

२- महाकवि हरिजीव - प्रिय - प्रवास, पृ० ६४।

नारियाँ की जरूरत थी उसकी पूर्ति प्रिय- प्रवास के कृष्ण और राधा ने की है :

सच्चे स्नेही जननिजन के देश के श्याम जैसे  
राधा बैठी सदय- कदवा विश्वमानुषा ॥  
है विश्वात्मा, भारत- भुव के तर्क में और तार्क्य ।  
ऐसी व्यापी विरह- कटना किन्तु लौट न लौवे ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हरिदास ने प्रिय- प्रवास में नवीन तथ्यों के समावेश के द्वारा पुराने प्रधानक की बुद्धिमान बनाया है । उसने युग की नवीन आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के लिए हरिदास ने प्राचीनता की बुद्धि सम्मत व्याख्या की है । भारत के अतीत के सहारे कवि ने वर्तमान के लिए मार्ग प्रशस्त किया है ।

इस युग का दूसरा महाकाव्य साकेत है। हिन्दूधर्म की प्रेरणा से इस महाकाव्य के द्वारा उपेक्षित नारी उर्मिला के चरित्र का उज्ज्वल रूप हमारे सामने आया है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में साकेत में अंकिता उर्मिला की मूर्ति अद्भुतीय है :

लक्ष्मण के शर की लगी बनाकर टांकी,  
मने विरहिन की एक मूर्ति है बांकी,  
बांसु नयनों में, हंसी कदन में थांकी,  
कांटे समेटती, फूल छींटती भांकी।<sup>२</sup>

१- महाकवि हरिदास- प्रिय - प्रवास, पृ० ५४ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, सर्ग ११, पृ० ३२१ ।



किन्तु गुप्त जी ने केवल उर्मिला की मूर्ति ही अर्पित नहीं की बल्कि कैकेयी का उद्धार भी किया है। माँझी के कण्ठ कमल की खोल दिया है। जाकेत में गुप्त जी की दृष्टि अतीतानुसी रही है। हिन्दू जाति की सत्कालीन पुर्नजा को देखकर कवि ने उसका ध्यान अतीत की ओर आकृष्ट किया है। ऋग्वेदी युग की राजनीतिक और सांस्कृतिक नेतृता जाकेत महाकाव्य में मुखरित हुई है :

जय अयकार किया मुनिर्यो ने,  
दस्युराज यो ध्वस्त हुआ । साम्रा  
कार्य- सन्ध्या हुई प्रतिष्ठा,  
कार्य- धर्म आश्वस्त हुआ ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार नवीन विचारों और नव-जीवन की समस्याओं को आत्म-ज्ञात करता हुआ महाकाव्य बागे बड़ रहा है। उसमें अतीत और वर्तमान के मूल्यों का सुन्दर सामंजस्य है। देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में आपसवाद की योजना के लिए विवेच्य काल में रामनरेश त्रिपाठी ने मिलन और पथिक दो सण्ड काव्यों की रचना की। दोनों सण्ड काव्यों के कल्पना प्रधान होने के बावजूद भी उन में देश और समाज चित्रित हैं। इन काव्यों का मूल स्वर समाज सुधार है। मिलन में प्रजा विदेशी शासन से पीड़ित हैं, और पाथ की विदेशी शासन से मुक्ति की प्रेरणा भी है। पथिक में स्वदेशी शासन के बर्ताव और अन्याय के प्रति विद्रोह के रूप में जन्म भूमि के लिए मरने का आह्वान है। नायक नायिका जहाँ एक ओर प्रेम करते हैं वहीं दूसरी ओर जन-सेवा के समसामयिक कार्यों में संलग्न हैं। इन सण्ड काव्यों में देश की दशा, वर्तमान पालन की दृढ़ता, आत्मकल की महिमा और आत्मत्याग की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इन कवियों के माध्यम से सत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों को बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई उनके रचयिता का यही उद्देश्य भी था। पाव और नाया रैली आदि की दृष्टि से भी इन काव्यों में आधुनिकता के सत्व विद्यमान हैं।

### महाकाव्य

प्राचीन समाज के साथ महाकाव्य भी समाप्त हो गया ।<sup>१</sup> लेकिन ऐसा एवम नहीं होता है । साहित्य में कोई परम्परा न छोड़ता से बनती है और न वासानी से मिटती ही है । महाकाव्य की परम्परा भारतीय साहित्य में अताव्दियाँ पुरानी है । हर युग में अच्छे - बुरे महाकाव्य लिखे जाते रहे हैं । इस लिए अब हम यह कहते हैं कि महाकाव्यों का युग समाप्त हो गया तो, इसका अर्थ यह होता है कि, उनका कोई मविष्य नहीं है और महाकाव्यों का स्थान, उपन्यास, नामक एक नयी गव किया ने ले लिया है।<sup>२</sup> महाकाव्य का अपना एक महत्व रहा है महाकाव्य द्वारा समाज की जैसी पूर्ण अविव्यक्ति हुई है वैसी उपन्यास द्वारा न तो कभी हुई है और हो सकती है । महाकाव्यों के फर्क तथा उस समाज के बीच जिस में वे रहते थे, एक सम्बन्ध रहता था जो अब विरुप्त हो चुका है ।<sup>३</sup> रामायण महाकाव्य अथवा संस्कृत के इतने अन्य महाकाव्य किसी एक पात्र का उत्तम चित्र प्रस्तुत नहीं करते हैं जैसा कि संपूर्ण समाज का यह ऐसा समाज है जहाँ व्यक्ति का समाज और प्रकृति के विरुद्ध विरोध नहीं है । ये पात्र समाज का काँ हैं । प्रकृति से उनका झुझ नहीं है और न वे प्रकृति पर अनुत्प प्राप्त करने की आकाशाँ ही रहते हैं । ये पात्र व्यक्तिगत नहीं बल्कि प्रतिनिधि पात्र हैं । उनके संपूर्ण गुण और दोष व्यक्तिगत नहीं बल्कि संपूर्ण समाज के गुण दोष हैं।

महाकाव्य एक आत्म निर्भर समाज की उपज है । उस समय के सुत-दुत, जय-पराजय, व्यक्तिगत नहीं होती बल्कि वे समष्टिगत मूल्य हैं । इस --

---

१- राल्फ फाक्स - उपन्यास और लोक जीवन, पृ० २० ।

२- वही - वही, पृ० २८ ।

३- वही - वही, पृ० २८ ।

लिए व्यक्ति का समाज से हन्य नहीं होता है । लेकिन आज के समाज में व्यक्ति और समाज के बीच का सन्तुलन नष्ट हो गया है । व्यक्ति समाज से और मानव प्रकृति से मुद्रात है ।<sup>१</sup> प्राचीन महाकाव्यों रामायण और महाभारत में पुराण और वास्तविकता कुल मिलाकर स्काकार हो गये हैं । जित कु में ये दोनों महाकाव्य लिखे गये थे । इस कु का कोई परम्परागत इतिहास नहीं था । प्रकृति और जलौकिक शक्तियों के साथ में मनुष्य के भाग्य का नियंत्रण रहता था लेकिन आज स्थिति बिल्कुल भिन्न है । मानव स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है । देवी-देवता और जलौकिक पुरुषों से उसकी जास्था उठ गई है । आज उसे कुछ विश्वास है कि प्रकृति का कोई का उसके लिए रहस्य और अज्ञेय नहीं है । और उही विश्वास ने एकम भिन्न परिवेश में सोचने की बाध्य कर दिया है । उन्हीं नयी परिस्थितियों ने जाधुनिक महाकाव्यों की विषय-वस्तु और शिल्प में जापुल परिवर्तन ला दिया है ।

‘प्रिय - प्रवास,’ ‘साकेत’ और ‘कामाक्षी’ के पात्र पुराने महाकाव्यों की भाँति पूर्ण प्रतिनिधय चरित्र नहीं हैं लेकिन उनका अपना व्यक्तिगत चरित्र भी है । प्रिय - प्रवास की राधा और कृष्ण में जलौकिकता नहीं है । वे इस युग के जावर्श पात्र लाते हैं । हिन्दी के कृष्ण मज्ज कवियों में हरिऔध ने भिन्न और नवीन परिवेश में उनका चित्रण किया है । साकेत के राम, लक्ष्मण, कैकयी भरत, उर्मिला जादि रामचरित मानस से उर्वधा भिन्न पराक्त पर चित्रित किये गए हैं । उनकी चित्रित करने की दृष्टि जाधुनिक है । उही जाधुनिक दृष्टि में इस युग के महाकाव्यों की विषय-वस्तु और शिल्प की दृष्टि से युगानुरूप और --

सह्य बना दिया है। यहाँ इसी दृष्टि से इन महाकाव्यों के विनाय में संदीप में विचार किया गया है।

### प्रबन्ध काव्य --

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी में महाकाव्य का नये रूप में विकास हुआ है। इसमें उद्देश्य और भावनाओं का सामान्य जीवन के पराकट पर विधान हुआ है। महाकाव्य की पुरानी मान्यताएँ इस युग में टूट गई हैं। उन्हें इस युग में निभाना संभव भी नहीं है। महाकाव्य खामती युग की उपज थी। इस युग के मूल्य और मान्यताएँ इतनी तीव्रगामी और अन्तरविरोधी नहीं थी, लेकिन आज का युग बहुत तीव्रगामी और अन्तरविरोधी मूल्यों वाला है। इस में महाकाव्य की रचना के योग्य नायक मिलना संभव नहीं है। इस युग में महाकाव्य का स्थान उपन्यास ने ले लिया है।<sup>१</sup> इस लिए आधुनिक युग की समस्याओं पर कोई महाकाव्य नहीं लिखा जा सका है। जो महाकाव्य लिखे गये हैं उनका कथानक पौराणिक है। 'प्रिय- प्रवास' 'लोकेश' और 'कामायनी' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इन तीनों महाकाव्यों का कथानक पौराणिक है लेकिन इस कथानक को प्रस्तुत करने का ढंग आधुनिक है। पुरानी कथा- वस्तु के पीछे दृष्टि आधुनिक हो रही है। इस में नवीन और आधुनिक दृष्टि से सामाजिक, धार्मिक तत्त्वों का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण किया गया है। कर्तृकृत्ता लीकृत्ता के रूप में चित्रित हुई है। देवीय पात्र मानवीय पात्रों के रूप में चित्रित हैं। इन महाकाव्यों पर युगिन परिस्थितियों तथा सुधारवादी आन्दोलनों जैसे - (गांधीवाद, राष्ट्रीय आन्दोलन, तथा नव- जागरण) का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन महाकाव्यों में--

---

१- राल्फ फाक्स - उपन्यास और लोक जीवन, पृ० २७ दिल्ली ।

शैली, शिल्प भी विषय-वस्तु के अनुसार बदल गया है। इन महाकाव्यों में धर्म और ईश्वर दोनों गौण हो गये हैं और मनुष्य तथा मानवीय मूल्य मूल्य हो गये हैं। यही उस युग के महाकाव्यों का मूल स्वर है।

### महाकाव्यों में वायुनिक दृष्टि :-

पुराने महाकाव्यों के ढाँचे में नये महाकाव्य नहीं बना सकते हैं। हिन्दी महाकाव्यों का यह नयापन युग-विशेष के निर्माण में भी किसी सीमा तक सहायक हुआ है। इस नवीनता के आधार पर ही स्वचन्दतावादी काव्य का प्राचाद उड़ा दिया जा सका है। इस नवीनता या वायुनिकता को इन निम्नांकित पारार्यों में धाँट सकते हैं।

- १- धार्मिक
- २- सामाजिक
- ३- राष्ट्रीयता
- ४- नव-जागरण जन्म नवीन चेतना
- ५- शैली - शिल्प का नवीन और वायुनिक रूप

तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव हरिऔध जी के महाकाव्य प्रिय-प्रवास पर स्पष्ट परिलक्षित है। वायुनिक युग की मार्ग के अनुरूप कृष्ण एक आदर्श नेता और राधा एक समाज-सेविका के रूप में चित्रित हुए हैं। बौद्धिक जाग्रह के कारण कवि ने इन दोनों (कृष्ण, राधा) से अलौकिक रूप निकाल दिया है। और इसके स्थानपर उन्हें मानव जीवन के अत्यन्त निकट लाकर उड़ा कर दिया है। उनकी अतिमानवीय प्रवृत्ति के निकल जाने पर भी वे चरित्र बहुत स्वाभाविक एवं सुन्दर हैं। इस नवीन कल्पना के द्वारा हरिऔध ने कृष्ण के परम्परागत रूप के विरुद्ध ऐसे लोकोत्तर--

चरित्र- सम्पन्न व्यक्ति की कल्पना की है जिसे आदर्श मानकर संपूर्ण विश्व उन्नति के पथ पर कायर हो सकता है । कृष्ण का चरित्र मानवीय गुणों से युक्त है उसकी एक कर्माँकी दृष्टव्य है गाँप और ग्वाल कृष्ण के सम्बन्ध में कहते हैं :-

विचित्र ऐसे गुण हैं क्लेन्दर्भ ,  
स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है ।  
निबद्ध ही है जिन में नितान्त ही  
ज्ञानुरागी की विमुग्धता ॥<sup>१</sup>

हरिबीर जी ने कृष्ण का ही ऐसा उत्कृष्ट और उदात्त रूप नहीं लींचा बल्कि राधा भी नये दृष्टिकोण के अनुरूप ही है । रीति- कालीन कवियों की झुंकार में इसी राधा की विवेच्य युग के कवि हरिबीर जी ने क्लृणता के गढ़ से उठाकर उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर एक नये मार्ग की लोज की है । इस महा-काव्य में राधा बुद्धि और विवेक की सज्ज प्रतिमा है । उसका स्वच्छ और गुणों से युक्त रूप दृष्टव्य है :

तो देती थीं कलह- जनिता व्याधि के दुगुणों को ।  
थो देती थीं मलिन - मन की व्याप्ति कालिमार्य ॥  
हो देती थी कदय - तल में क्षीज भावज्ञता का ।  
वे थीं चिन्ता - विवित - गृह में ज्ञान्ति धारा बहाती ॥<sup>२</sup>

१- हरिबीर - प्रिय- प्रवास, पृ० एकादश सर्ग

२- हरिबीर - प्रिय- प्रवास, पृ० २६८ सप्तदश सर्ग ।

विवेच्य युग का दूसरा महाकाव्य गुप्त जी का साकेत है । इसमें नवीन सत्त्वों के समावेश द्वारा पौराणिक कथानक को बुढ़ियाही बनाया है। युगानुरूप नयी धार्मिक, सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान है । साकेत के राम कार्य- संस्कृति के रक्षक है :

निज- संस्कृति - समान आर्या की अग्र रक्षा करते थे ।<sup>१</sup> हरिजोष के कृष्ण की तरह साकेत के राम नहीं हैं क्योंकि गुप्त जी का मूल हृदय उन्हें मानवीय रूप ही दे सका परन्तु इस इतना धोड़ा कि वह तुलसी के राम से अधिक मानवत्व के निकट ला सका है । गुप्त जी ने अधिकांश जलौकिक घटनाओं को एक लौकिक रूप प्रदान किया है । साकेत में चित्रित सुमित्रा, माण्डवी, कैकेयी तथा उर्मिला के चरित्र इसका सगुण प्रमाण है :-

स्वत्वा की भिन्ना कौन ? दूर रहे उच्छा रसी ।

उर में अपना रक्त बहे, कार्य- भाव उदीप्त रहे।।<sup>२</sup>

< < < < < < <

स्वामी, निज कर्तव्य करो तुम निरीश्वर मन से ।<sup>३</sup>

विवेच्य युग के महाकाव्य प्रिय- प्रवास में हरिजोष जी ने रामा और कृष्ण की अवतार के रूप में चित्रित न करके उन्हें समाज- सेवक एवं समाज- सेविक के रूप में चित्रित किया है । हरिजोष जी ने लुढ़ीवादी वातावरण में --

१- मेथिलीशरण गुप्त- साकेत, पृ० २७८ सर्ग ११ ।

२- वही, वही, पृ० ७५-७६ सर्ग ४ ।

३- वही, वही, पृ० २६५ सर्ग १२ ।

भी काव्यगत नहीं सामाजिक चेतना को महाकाव्य में लाने का सफल प्रयत्न किया। प्राचीन राधा अपूर्ण थी इस महाकाव्य में हरिवंश ने उसे पूर्ण नारीत्व का गौरव प्रदान किया। प्रिय-प्रवास की राधा एकान्त प्रेमिका नहीं है बल्कि उसका हृदय दुःख से अधिक संवेदनशील हो उठा है। उस में प्य के आन्त पथिकों के पुत्र दुःख की भी अनुसृष्टि है।

कौड़ कलान्त कृष्ण ललना सेत में जी दिलावे।  
धीरे-धीरे परस उसकी कलान्तिर्या की पिटाना॥  
जाता कौड़ अलद यदि हो ध्याम में तो उसे ला।  
छाया छदारा सुचित करना, तप्त भूतांगना को॥<sup>१</sup>

राधा का यह रूप उज्ज्वल, उत्कृष्ट और उदात्त है। राधा के चरित्र में सामाजिकता छूट छूट कर भरी है। विवेक और संयम पर राधा की आस्था है। वह आधुनिक विचारों की पोषिका तथा रुढ़िभुक्त समाज की शैविका है। विवेच्य युग में देश की उन्नति के लिए अपने सुख स्वार्थ की बलि देने वाले, लोक-सेवा में निरत नर-नारियों की आवश्यकता थी, युग की उही आवश्यकता की पूर्ति हरिवंश ने 'प्रिय-प्रवास' की राधा और कृष्ण के माध्यम से की है जो निर्मासित छन्द में दृष्ट्य है :

एच्चे स्नेही जवनिजन के देश के श्याम जेरे।  
राधा जेही सदाय - हृदया विश्वभ्रानुरक्ता॥  
हे विश्वात्मा, भारत, मुग के जंक में जीर जाये।<sup>२</sup>

~~येही आधी प्रिय-प्रवास - कलान्तिर्या कौड़ न लोवे॥~~

१- महाकवि हरिवंश - प्रिय-प्रवास, पृ० ६६ अष्ट सर्ग

२- यही, - यही - पृ० ५४ सर्ग १७ ।



प्रिय - प्रवास की राधा बुद्धि और विवेक की सबल प्रतिमा है - वह अपने अपार दुःख में भी धैर्य नहीं खोती है । प्रिय-प्रवास की राधा नये दृष्टिकोण की धोतक है । डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा के कथन में यह बात अधिक प्रमाणित है : कृष्ण से अलग होने पर राधा के प्रेम का उदासीकरण मानव जाति एवं समस्त लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है ।<sup>१</sup> आधुनिक हिन्दी काव्य में यह दोनों चरित्र नवीन दृष्टिकोण का परिचय देते हैं ।

नवीनता 'प्रिय-प्रवास' की तरह 'साकेत' महाकाव्य में भी गुप्त जी की दृष्टि की और उन्मुख दिखाई देती है । गुप्त जी की नवीनता उर्मिला (साकेत की नायिका) के रूप में मुखरित हुई है । गुप्त जी ने उर्मिला को मानवीय आपारखिता पर ही निर्मित किया है । उसके (उर्मिला) उदात्त प्रेम में वैयक्तिकता का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है । उसके मानविक भावों में व्याधिवाद की प्रशानता है । वही कारण उसको स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है । विमर्शित हृन्द में उसके व्यक्तित्व का प्रस्फुटन दृगटव्य है :

दोनों और प्रेम फलता है ।

सति, फांग भी जलता है, दीपक भी जलता है।।<sup>२</sup>

गुप्त जी ने उर्मिला के स्वरूप में मानवता की सुरक्षित किया है । इस चरित्र के द्वारा कवि को सामाजिकता भी परिचित है ।

प्रत्येक महाकाव्य में अपने युगानुरूप विचारों को ग्रहण करता चलता है । उसमें तत्कालीन सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक, तथा साहित्यिक, -

१- डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १६१ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पृ० १२६ ।

प्रवृत्तियाँ का सजीव चित्रण रहता है । विवेच्य युग में हरिबाँध प्रत्यक्ष रूप से देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग नहीं ले सकते थे इस कारण उन्होंने अपने महाकाव्य प्रिय- प्रवास के नायक (कृष्ण) नायिका (राधा) के माध्यम से नवयुवकों में देश-भक्ति का संसार किया । कृष्ण का रूप गांधी जी की कर्मठता से कुछ मिलता है । 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण केवल प्रेमी नहीं हैं उनमें राष्ट्रीयता की भावनाएँ हैं । वह समाज में, देश में शान्ति के पुजारी हैं उन्हें शान्ति - पंग करने वालों पर क्रोध है । उनका विश्वास है कि :

नामा नहीं खल के लिये मही ।

समाज- उत्साहक वण्ड योग्य है ।

कु - कर्म - कारी नर का उद्धारना ।

सु- कर्मियों की करता विवन्ध है ॥<sup>१</sup>

हरिबाँध जी की राधा की कल्पना में भी समसामयिक युग के नारी आन्दोलन की कान्की है । 'प्रिय-प्रवास' की राधा युग की युवावस्था के रूप में स्वीकार करती चलती है । आधुनिक युग में नारी पुरुषों के साथ-साथ बाहर की दुनिया में जुम्मे घर की चारदीवारी को छोड़ कर समाज के दौत्र में कार्य करे यही भाव राधा के चरित्र के रूप में मयूर एवं शिष्ट बन गया है :

प्यारे आवे सु- बदन कहे प्यार से गीद लेवें ।

ठंडे होवें नयन- दुल हों दूर में मोद पाऊँ ।

एक भी है भाव कम उर के जीर र भाव भी है ।

प्यारे जीवें जग- हित करे गेह चाहे न आवें ॥<sup>२</sup>

१- हरिबाँध - प्रिय- प्रवास, पृ० १८३ ।

२- हरिबाँध - प्रिय - प्रवास, पृ० २५३ ।

आधुनिक युग की समस्याओं से प्रभावित होकर ही श्री मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में देश- सेवा देश- भक्ति तथा विश्व- प्रेम जैसे नये तत्त्वों को मुखरित किया है । विवेच्य युग में गांधी जी के नेतृत्व में जनता विदेशी शासन से मुक्ति के लिए छटपटा रही थी और प्रजासत्तु शासन के लिए आन्दोलन कर रही थी साकेत में गुप्त जी ने इस भाव को प्रेरणा दी है :-

राजा हमने राम, तुम्ही को है चुना,  
करा न तुम यों हाथ । लोभित बनसुना ।।<sup>१</sup>

कवि ने समाज के विविध आन्दोलनों (ग्राम सुधार, अक्षतोद्धार, आदि) की मार्गश्री भी दी है :

कृषि -कृषक निज बीज - वृद्धि का रखते हैं जीवित इतिहास ।  
राज- घोष में देता मैंने आज नया गीर्वाण -विकास ।।<sup>२</sup>

इस प्रकार साकेत महाकाव्य में गुप्त जी ने राष्ट्र की सामाजिक समस्याओं के स्वर को मुखरित किया तथा विवेच्य युग की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व किया है ।

विवेच्य युग में कौन महापुरुष जैसे राजा राममोहन राय, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, तथा विवेकानन्द आदि कौनों सुचारु सांस्कृतिक नव जागरण के लिए प्रशंसनीय कार्य कर रहे थे । उन्होंने अपने परिश्रम से प्राचीन-

---

१- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पृ० ८६ ।

२- वही = वही, पृ० २०५ ।

भारतीय संस्कृति के समीप उज्ज्वल विद्य जनता के उन्मुख रहे । उनके कार्यों से भारतीय जनता में राष्ट्रीय नव जागरण, स्वतन्त्रता, और सामाजिक समानता का भाव जाग्रत हुआ । इस राष्ट्रीय चेतना ने जनता का ध्यान प्राचीन गौरव की ओर उन्मुख किया और फलतः अतीत का मोह जा विवेच्य युग की मुख्य प्रवृत्ति थी इस ने नयी राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण किया और इस नयी राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर हरिवर्ष जी ने 'प्रिय- प्रवास' तथा गुप्त जी ने 'साकेत' महाकाव्य को जन्म दिया । जनता की तत्कालीन नयी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना दोनों महाकाव्यों में प्रस्फुटित हुई हैं । 'प्रिय- प्रवास' के कृष्ण लोक- रदाक नेता के रूप में हैं । कृष्ण गोप- ग्वालों की कर्म की शिक्षा देते हैं । उन्हें समाज तथा देश की सेवा की प्रेरणा देते हैं यही नयी प्रेरणा निर्मा- फित छन्द में देखिए :-

विपदि से रक्षण सर्व- भूत का ।  
सहाय होना त- सहाय जीव का ।  
उधारना संकट से स्व- जाति का ।  
मनुष्य का सर्व- प्रदान कर्म है॥<sup>१</sup>

कृष्ण उन ग्वालों की कर्म की प्रेरणा के साथ साथ यह भी बताते हैं कि उनके सहस्र तथा कर्म से केवल उन्हीं का नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व को लाभ ही सकता है । संपूर्ण देश समृद्ध और सुखी हो सकता है । उनका विश्वास था कि :

धिना न त्यागे मयता स्व- प्राण की ।  
हिना न जीतो ज्वलदग्नि में पड़े ।  
न हो सका विश्व महान - कार्य है ।  
न सिद्ध होता भव- जन्म हेतु है॥<sup>२</sup>

१- हरिवर्ष- प्रिय- प्रवास, पृ० १५० रकादश सर्ग ।

२- वही - वही, पृ० १५० वही ।

नव जागरण जन्म नवीन चेतना के स्वर एवं गुप्त जी के साक्षेत् में भी यत्र तत्र बिछते हैं । साक्षेत् के भरत भी भारत- छत्ती के विदेश चले जाने पर दुःखी हैं ।

भारत- छत्ती पड़ी राताछों के यन्त्रन में,  
सिन्धु - पार वह बिछत रही है व्याकुल मन में।<sup>१</sup>

साक्षेत् की सीता गांधी जी की लेखिकाओं की तरह वर्ग की दशा की सुधारने में संलग्न हैं ।

तुम वर्तमान क्यों रहो विशेष समय में ।  
बाबाई हन काते - हुने गान की छय में।<sup>२</sup>

इस प्रकार की गुप्त जी ने अपने महाकाव्य साक्षेत् में समसामयिक युग की नव-जागरण जन्म नवीन चेतना को मुक्तकित किया है ।

विवेच्य युग में छेली- कल्प की दृष्टि से प्रिय-प्रवास की गणना एक आन्तिकारी महाकाव्य के रूप में की जा सकती है। हरिऔध जी ने अन्त्या-मुद्रास का यन्त्रन तोड़ कर अतुकान्त काव्य रचना का पथ परिष्कृत किया । हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' की रचना संस्कृत - गर्भित सड़ी धोली में की है । इस संस्कृतमयी छेली के कारण 'प्रिय-प्रवास' की भाषा में यत्र-तत्र क्लिष्टता भी बा गई है, परन्तु समास- बहुला क्लिष्ट पदावली के प्रयोग के होते हुए भी 'प्रिय-प्रवास' में ऐसे सरल स्वाभाविक एवं सजीव स्थलों की कमी नहीं है जहाँ इस महाकाव्य की भाषा प्रसाद गुणयुक्त, कोमल और मधुर न दीख पड़ती हो जैसे-

१- मैथिलीभरण गुप्त- साक्षेत्, पृ० २४७ सर्ग १२ ।

२- वही, - वही, पृ० १६१ सर्ग ८ ।

मुदित गोकुल की जन मण्डली ।  
जय प्रजापति जा बड़ी ॥  
निरखने मुल की छवि यों लगी ।  
तृणित वासक ज्यों धन की घटा ॥<sup>१</sup>

प्रिय- प्रवास में कहीं कहीं अनुप्रासयुक्त सरल और मधुर शब्दों की योजना भी मिलती है :

छलकती मुल की छविपुंवता ।  
छिटकती प्रीति तू तन की छटा ॥  
कारती कर दीपित दिनन्त में ।  
प्रीतिव में लागदा - कर प्रीति की ॥<sup>२</sup>

प्रिय-प्रवास वृत्तविलम्बित, मालिनी, वसन्ततिलका, वसन्त, मन्दारान्ता आदि संस्कृत के पुराने के लिए सही शब्दों की अपेक्षा हरिवंश ने अभिव्यक्ति के लक्ष्य में एक नयी दिशा दी है ।

गुप्त जी के साकेत महाकाव्य की रचना कुछ परिमार्जित सही शैली में हुई है। साकेत की भाषा ग्रीक, फ्रांज़, और बोल बाल की भाषा के बहुत निकट है। संस्कृत का प्रभाव होने पर भी भाषा में कृत्रिमता नहीं जाई है। वरन् भाषा के अनुकूल सरल एवं स्वाभाविक है। शब्दों के उपयुक्त चुनाव के कारण भाव उजीव ही उठे हैं। कैशिक के शोध का निम्न देखिए:-

उठी तत्प्राण कैशिकी काँप,  
बयल दंडन करके कर बाँप,  
भूमि पर छिटक-पटक कर पैर,  
लगी प्रकटित करने निज पैर।  
वन्त में सारे धन समेट,  
मई वह वही भूमि पर छेट ।  
छोड़ती थी जब - तब हुंकार,

बटीली फणिनी - सी फकार ॥<sup>३</sup>

मुन्त-की-के-साकेत में सही शैली का परिष्कृत रूप हमारे सामने आया है। उस प्रकार साकेत महाकाव्य में नवीन पद्धतियों का लाभ है ।

१- हरिवंश - प्रिय- प्रवास, पृ० २६ सर्ग १ । २- हरिवंश-प्रिय-प्रवास, पृ० २४ सर्ग २- श्री वैधिलीकरण गुप्त- साकेत, पृ० ४९ सर्ग २ ।

### सण्ड - काव्य

विवेच्य युग में महाकाव्य और सण्ड काव्य दोनों की रचना हुई है । सण्ड काव्य प्रबन्ध काव्य का एक विशेष रूप है । सण्ड काव्य में वर्णन बहुत विस्तृत नहीं होता है । सण्ड काव्यों का प्रधानक पौराणिक, ऐतिहासिक कल्पित, प्रतीकात्मक किसी भी तरह का हो सकता है । संपूर्ण सण्ड काव्य की रचना एक ही छन्द में की जाती है । इसी कारण सण्ड काव्यों में गीति काव्य के लक्षण स्वतः जा जाते हैं । काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला सण्ड काव्य होता है । महाकाव्य के ठग पर उसकी रचना होती है, पर उसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण करके सण्ड जीवन को ग्रहण किया जाता है उसे सण्ड काव्य कहते हैं ।<sup>१</sup> विवेच्य काल में भी कुछ सण्ड काव्यों की रचना हुई है । मुस्त जी ने जय-प्रथम, 'वन-कैव', 'पंचवटी', 'वन-संहार', 'नहुष', 'कुणालगीत', त्रिपाठी जीने 'स्वप्न पथिक', 'भिलन', प्रसाद जी ने 'प्रेम-पथिक' तथा पन्त जी ने 'ग्रन्थि' आदि सण्ड काव्यों की रचना की है । त्रिपाठी जी, प्रसाद जी, तथा पन्त जी के सण्ड काव्यों में विवेच्य युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हैं । त्रिपाठी जी के इन सण्ड काव्यों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत दृष्टव्य है - काव्य क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता का आभास पं० बीधर पाठक ने दिया था उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी विकलाई पड़े । भिलन, पथिक और स्वप्न, नामक उनके तीनों सण्ड काव्यों में उनकी कल्पना ऐसे मर्म पथ पर चली है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वाभावतः खलता जाया है । ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बंधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छन्द संवरण के लिए कवि ने नूतन उद्भावना की है । कल्पित वास्तव्यों की और यह विशेष --

---

१- हिन्दी वांगमयविमर्श, द्वितीय संस्करण, पृ० ३१ ।

मुद्राव स्वच्छन्द मार्ग की अनिच्छा सुनिश्चित करता है।<sup>१</sup> इसीलिए त्रिपाठी जी के ये तीनों सण्ड काव्य स्वाभाविक स्वच्छन्द भावना के लिए प्रसृत हैं। पथिक सण्ड काव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत है। उसमें पथिक के कर्मठ जीवन की सुन्दर फाँकी के अतिरिक्त नवयुवकों में देश-प्रेम को जाग्रत करने के लिए भी अच्छी सामग्री उपलब्ध है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :

एक व्यक्ति निर्दयी निरंकुश बन बैठा अधिकारी ।  
शासन है कर रहा तुम्हीं पर, लेकर शक्ति तुम्हारी।।<sup>२</sup>

विवेच्य युग के सण्ड काव्यों में हमें भाव- - नीतियों की सी तल्लीनता भी यत्र तत्र मिलती है। स्वप्न के नायक वसन्त की तल्लीनता निम्नांकित छन्द में द्रष्टव्य है :

हरित तलछटी में गिरवार की  
समतल निम्न - ध्वनित धरा पर  
झाया में अति सपन- दुर्गों की  
बैठ विशद हरिनाम शिवा पर ।

प्रसाद जी के प्रेम- पथिक तथा पन्त जी के 'गन्ध' सण्ड काव्यों में प्रेम की घटना पर बल दिया गया है। स्वतन्त्र प्रेम के विषय को लेकर काव्य- करना वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को विकसित करना है। प्रेम और मानवतावादी स्वरूप की सुन्दर फाँकी निम्नांकित छन्द में द्रष्टव्य है :

१- पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, काव्य सण्ड, नरसिंहारा,

द्वितीय उत्थान, सं० १९५०-५५ पृ० ६२८ (भा० पृ० सभा)

२- पथिक, इसरा सर्ग, छन्द २७-२८ ।

३- त्रिपाठी, स्वप्न, पृ० १५ ।



पथिक प्रेम की राह कभीसी भूल भुलकर चला है ।  
 घनी छांह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुये ।  
 प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना खन करना सीखा,  
 तब तुम प्रियतम स्वर्ग-बिहारी होने का फल पाओगे॥<sup>१</sup>

विवेच्य युग में गुप्त जो ने भी अपने सण्ड काव्य अयक्य-वध की रचना की है ।  
 विदुषीदी मण्डल के कवि होकर भी इस युग की शक्तिवृत्तात्मकता, नीरसता, तथा  
 प्राचीनता से उन्होंने इस सण्ड काव्य को जलग रखा है। इसकी भाषा सरल,  
 साहित्यिक और प्रवाह पूर्ण है । परम्परा प्रचलित काव्य रूपों से छटाकर इसमें  
 नाँलिक शुक-शुक का सम्मिश्रण किया है। इस में नीति का हृन्द को सरल सही  
 बोली में सफलतापूर्वक ढाळा है। विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य की  
 लयात्मकता की इस में सुन्दर कांकी हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित हृन्द  
 द्रष्टव्य है :

रहते हुए तुम वा सहायक भण हुआ पुरा नहीं ।  
 इससे मुक्त है जान पड़ता भाग्य - कल ही सब नहीं ।  
 बलकर अनल में दुसरा भण पाछता हूँ मैं कभी,  
 अव्युत ! युधिष्ठिर जादि का सब भार है तुम पर अभी॥<sup>२</sup>

पन्त की ग्रन्थि की भाषा भी साहित्यिक और व्यंगनात्मक है । प्रेम-पथिक  
 में अनाथ गति और प्रवाह है । गुप्त की पंचवटी में चरित्र-चित्रण का तपुर्द  
 सौन्दर्य, तथा प्रकृति का मनोहारी रूप है। त्रिपाठी जी के तीनों सण्ड काव्याँ --

१- प्रसाद, प्रेम - पथिक, पृ० ७ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त, अयक्य-वध, ब्यालीसवाँ संस्करण, पृ० ८३ ।

में कथानक वैचित्र्य और चरित्र-गांभीर्य भी है। त्रिपाठी जी से पूर्व वे दोनों तत्त्व सण्ड काव्यों में नहीं मिले परन्तु विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत इन दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। 'ग्रन्थि' का कथानक भी बहुत सरल है। विवेच्य युग के सण्ड काव्य ग्रन्थि में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रतुष्टियाँ जैसे गीति की प्रशानता, प्रकृति के प्रति सहज अनुराग, नाटकीय, चरित्र-चित्रण, उन्मुक्त प्रेम तथा स्वच्छन्द कल्पना आदि का सरल सहज एवं स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटन मिलता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

शैवालिनी ! जाड़ी मिली तुम तिन्यु से,  
जमिल ! वालिंगन करां तुम गगन को,  
चन्द्रिके ! जूनों तरंगों के तवर,  
उड़ुण्णी ! गाड़ी पवन-बीणा बजा,  
पर हवय ! सब भाँति तू कंगाल है,  
उठ किरी निर्जन पिपिनि मैं बैठकर,  
बकुर्जों की बाढ़ में अपनी धिक्की  
मग्न - भावी को हुआ दे जाँत - हो।<sup>१</sup>

इस प्रकार विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सण्ड काव्यों की पुरानी परम्पराओं को तोड़ा है। नये-सण्ड काव्यों की रचना की है। इन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा सण्ड काव्यों के रूप को सुदृढ़ बनाया है। इनके सण्ड काव्यों की सरलता, स्वाभाविकता ने जन-साधारण को भी सम्मान में सहायता प्रदान की है। इन कवियों की यही सब से बड़ी देन है। जिस से भावी काव्य रूपों की सम्भावनाओं का उदय हुआ है।

### वास्थान - गीत (कैले)

वास्थान गीत वीर गीत का आधुनिक संस्करण है। वीर- गीत प्राचीन काव्य रूप है। यह गान विरुद्ध लिरिक नहीं होता है, कलात्मक होता है। ये गीत वाच और स्वर के साथ गाये जाते हैं। गीति- काव्य से यह इस दृष्टि से भिन्न है कि इस में व्यक्ति तत्त्व का कोई महत्व नहीं होता है। इस में समाज का सामूहिक व्यक्तित्व प्रधान हो जाता है।<sup>१</sup> एक युग में ये गान बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। ये गान सांस्कृतिक और सामाजिक समता का स्मरण दिलाते हैं। तब अनुभूति में उसना वैयक्तिक और वैयक्तिक नहीं होता था। वास्थान गीत एक प्रतीकात्मक वर्णन प्रधान काव्य होता है इसके मूल में प्रसिद्ध घटनाएँ या गाथाएँ होती हैं जो जन- काव्य के लोकप्रिय रूपों को ग्रहण करके चलती हैं। इस का प्रसार संपूर्ण जाति भर में होता है।<sup>२</sup> पुराने ग्रन्थों में वात्स सण्ड वास्थान गीत का सब से अच्छा काव्य माना जाता है। डा० राम कुमार वर्मा ने बीरल देव रासी को इसी कोटि में रखा है।<sup>३</sup> लेकिन इन दोनों ग्रन्थों में क्या का व्यक्तिक विस्तार है वीर इस कारण से प्रबन्ध काव्य के अधिक निकट है। इन्हें मुक्तक काव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इन में वीर गीत की भाँति न तो कोई एक व्यक्तित्व ही उभरता है वीर न इसकी प्रवृत्ति प्रतीतात्मक है। इस लिए इन ग्रन्थों को वास्थान गीत के अन्तर्गत रखना तर्क संगत नहीं लगता है।

---

१- चित्तेन्द्र पाठक- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृ० २५।

२- W.P. Kar, *Form and Style in Poetry*, P. 3, First Edition 1969

३- डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६।

आधुनिक युग में ठाठा भगवानदीन ने वीर पंथ रत्न मैथिलीहरण गुप्त ने 'विष्ट भट', 'गुरुबुद्ध' और 'रंग में भंग', तथा पुमडा कुमारी चौहान ने 'फांसी की रानी' नामक प्रसिद्ध आस्थान गीत लिखे। इसका भाव-बीज, सामाजिक धेतना नवीन है। राष्ट्रीय धारा के प्रवाह को तेज करना और लोई हुई जाति के सम्मान को जगाना, इन आस्थान गीतों का प्रधान उद्देश्य है। पुमडा कुमारी चौहान की फांसी की रानी और गुप्त जी की रंग में भंग इस दृष्टि से आधुनिक युग के सर्वाधिक सकल आस्थान गीत हैं। फांसी की रानी<sup>१</sup> निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

हुई वीरता की वैभव के साथ एगई फांसी में,  
व्याह हुआ रानी बन जाई लक्ष्मीबाई फांसी में,  
राजमहल में बनी बसाई सुखियां हाई फांसी में,  
कुमट कुमेलों की बिरुदावली सी वह जाई फांसी में,  
जिवा ने कर्जुन को पाया, शिव को मिली भवानी थी।  
बुन्देलों के मुख समने सुनी कहानी थी ।  
सूख लड़ी मर्यानी वह तो फांसी वाली रानी थी॥<sup>१</sup>

इस आस्थान गीत ने देश की लोई जनता को आत्मा की मक्कनौर दिया। यह आस्थान गीत एक समय संपूर्ण जाति और राष्ट्र की धरोहर के रूप में स्मरण की जाती रही है। इसकी भाषा- छन्द वीर शैली की दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

गुप्त जी के रंग में भंग की भाषा अधिक प्रवाहमयी और सरल है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

---

१- पुमडाकुमारी चौहान- फांसी की रानी, पृ० १३ ।

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म-भूमि कही गई,

सेवनीया है सभी की यह महा महिमापयी ।

फिर क्वापर क्या उसी का मैं सड़ा देता हूँ ?

भीरु हूँ क्या मैं वहीं ! जो मृत्यु से मन में छूँ ? १।।<sup>१</sup>

यह पंक्तियाँ राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से नवीन हैं । उन्होंने राष्ट्रीय चारा के प्रवाह की तैयारी किया । गुप्त जी का रंग मैं भंग उसी दृष्टि से आधुनिक युग का सर्वाधिक सकल आस्थान गीत है ।

आधुनिक आस्थान गीत का श्रेष्ठ रूप हमें विवेच्य युग के कवि श्रीपर पाठक के यहाँ भी मिल जाता है। इन के आस्थान गीत में भाव और भाषा की सरलता सहज रूप में निहित है :

जय- जय प्यारा भारत देश,

जय- जय प्यारा जग से न्यारा ।

होमित सारा देश हमारा,

जगत - मुकुट जगदीश दुलारा ।

जग सर्वामय सुदेश,

जय- जय प्यारा देश।।<sup>२</sup>

श्रीपर पाठक के इस आस्थान गीत का रूप तो प्राचीन रहा किन्तु रूढ़ि की दृष्टि से इस में अपूर्व विकास हुआ है । यह नवीनता ही स्वच्छन्दतावादी काव्य की परिचायिका है ।

---

१- मैथिलीशरण गुप्त- रंग मैं भंग, पृ० ३२ ।

२- श्रीपर पाठक- देशीत - भारत गीत, पृ० २६ ।

सियाराम शरण गुप्त का 'मीय विजय' देश- प्रेम देश-भक्ति, एवं त्याग का ज्वलन्त उदाहरण है ।

सादगी है इतिहास, हमीं पल्ले जागे हैं ।  
जाग्रत सब ही रहे हमारे ही जाये हैं ॥  
शत्रु हमारे कहां नहीं भय से भागे हैं ।  
काकरता से कहां प्राण हमने त्यागे हैं ।  
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति का भी हृदय।  
फिर एक बार है विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय॥<sup>१</sup>

इस में भारतीय वीरता और सांस्कृतिक महत्ता का कवि ने उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है । इसकी शैली बहुत ही सरल और स्पष्ट है । इस प्रकार विवेच्य काल में यह आस्थान गीतियाँ राष्ट्रीय आन्दोलन और जन- जागरण में बहुत लाभदायक सिद्ध हुई ।

---

१- सियारामशरण गुप्त- मीय विजय, पृ० १६१ ।

### मुज़क काव्य

विवेच्य युग मन्त्रागण का युग है । देश में सामाजिक और धार्मिक जान्पीलर्नी की बड़े गहराई तक फैल चुकी थीं । इस युग के कवि और लेखक इन जान्पीलर्नी से बहुत प्रभावित थे । इस प्रभाव के कारण काव्य में सामाजिक उपयोगितावाद का महत्व बढ़ा । हिंदू-युग में इस काव्य की कोई महत्व नहीं मिला, जिसकी कोई प्रत्यक्ष सामाजिक धार्मिक कथा धार्मिक रूप से उपयोगिता न हो। क्योंकि तत्कालीन समाज में उपयोगितावाद के विभिन्न रूप थे । इसलिए इन रूपाँ की अभिव्यक्ति देने के लिए मुज़क बहुत उपयुक्त विधा सिद्ध हुई। इस युग में मुज़कों के प्रचार और प्रसार का यह बड़ा कारण रहा है। इस युग में राजदरबार तो प्रायः समाप्त हो जा चुके थे । इतिहास में मुज़कों के प्रचार का कारण राजदरबार था। राजसभाओं के लिए मुज़क होता था । विवेच्य युग में मुज़क पत्रिकाओं और कवि-सम्मेलनों के लिए लिखे जाते रहे हैं ।

मुज़क में प्रत्येक पद की स्वतन्त्र सहा रहती है और वह स्वतन्त्र रूप में अपना भाव व्यक्त करता है ।<sup>१</sup> इसका विषय अत्यन्त सीमित होता है और उसका किसी चरित्र कथा कथानक विशेष से संबंध नहीं होता है । मुज़क का क्षेत्र सीमित होता है किन्तु उसमें सुदृढ़ता, गंभीरता अन्य काव्य विधाओं की अपेक्षा बहुत अधिक होती है । मुज़क काव्य के आरम्भ से आज तक सब से अधिक लोक-प्रिय काव्य विधा रही है। आज महाकाव्यों और लघु-काव्यों की रचना बहुत कम हो रही है। ये अपने युग की सर्वमान्य काव्य-विधायें आज इतिहास बनती जा रही हैं, किन्तु मुज़क की लोकप्रियता में कोई विशेष कमी नहीं आई है

---

१- डा० गोविन्ददास शर्मा - हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० २३

हिन्दी काव्य की मुक्तक स्वभावात्त काव्य विधा है, जिसकी परम्परा अविच्छिन्न रही है। जयदेव, विद्यापति, सुर, तुलसी, मीरा से लेकर महादेवी, पन्त तथा निराळा तक यह धारा सदैव अबाध रूप से प्रवाहित होती रही है।

मुक्तक काव्य के दो प्रमुख भेद किये जाते हैं, पाठ्य और गैर। जिन मुक्तक रचनाओं को हम केवल पढ़ सकते हैं और पढ़कर ही उनका आनन्द उठा सकते हैं उन्हें पाठ्य मुक्तक कहा जाता है।<sup>१</sup> बिहारी के दोहे, देव, मतिराम, भूषण आदि की कविताएँ तथा आधुनिक युग में भीष्म पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि की प्रशस्ति-प्रेम, एवं देव-प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ इसी कोटि में आती हैं। पाठ्य मुक्तकों की परम्परा अब बहुत दृष्टिगत हो गई है। पाठ्य मुक्तक की एक और परम्परा है जिसे श्रुति कहते हैं। इन में काव्य के ढंग की विविधता होती है। कव्या धमत्कार रहता है। हिन्दी में रहीम और बृन्द के दोहे गिरवार की कुंडलियाँ और दीनदयाल की अन्यौलियाँ श्रुति मुक्तक की श्रेणी में आती हैं। इस युग में किसी प्रसिद्ध कवि ने श्रुति-मुक्तक लिखने का प्रयास नहीं किया है। इन में व्यंग्य और उपदेश की प्रसृतता रही है। गिरवार की कुंडलियाँ में सांसारिक व्यवहार की बातों को बड़े सरल ढंग से कहा है। दीन दयाल गिरि का लक्ष्य आध्यात्म रहा है। भारतेन्दु-युग में तक श्रुतियों की यह परम्परा चलती रही लेकिन विवेची-युग में जाकर काव्य का सम्बोधन समाज था-व्यक्ति नहीं इस से पूर्व हिन्दी का सम्बोधन या तो व्यक्ति रहा है कव्या आध्यात्मिक पुरुष एवं ईश्वर, सम्पूर्ण समाज साहित्य का सम्बोधन नहीं बन सका है। विवेच्य युग के कवियों के काव्य में पक्षी का व्यक्ति के स्थान पर समाज को सम्बोधित करने का प्रयास किया है।

१- डा० गोविन्ददास शर्मा- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० २४।



जिसे मुक्तक कविता की रचना पीछी के रूप में होती है उन्हें गेय मुक्तक कहते हैं।<sup>१</sup> प्रगीत ज्यवा गीति- काव्य गेय- मुक्तक के ही कां हैं। गेय- मुक्तक में कवि के हृदय की अभिव्यंजना संगीतमयी शब्दावली में होती है। इसमें कवि हृदय की तल्लीनता, भावुकता और अनुभूति की गहराई होती है। गेय- मुक्तक अधिक प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी होते हैं। हिन्दी में गेय मुक्तक ही अधिक प्रसिद्ध हैं। मीरा और सुर केवल गेय- मुक्तक लिखकर ही काम हो गये। विवेच्य काल के कवियों ने गेय मुक्तक ही सब से अधिक लिखे हैं। उनकी विशेषता यह है कि उन में भावुकता के जाय-साध बौद्धिकता का कुछ भी है। वैराग्य और कुण्ठित समस्याओं का उन में बड़ा कलात्मक निरूपण है। वेदना और प्रेम का स्वरूप सामाजिक सम्पर्क में बदल गया है। इस दृष्टि से उनका ढाँचा अधिक विस्तृत हो गया है। विवेच्य काल में गोधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, पन्त, प्रताप, निराला, नशादेवी और माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने नये ढाँचे में गेय मुक्तक लिखे हैं। गेय- मुक्तकों की परम्परा, नयी कविता ज्यवा जकविता के रूप में आकर भी समाप्त नहीं हुई है। आज भी गेय- मुक्तक हिन्दी की सब से लोकप्रिय विधा है।

---

१- डा० गोविन्ददास झा- हिन्दी के वाचनिक महाकाव्य, पृ० २४  
दिल्ली (१९५८)

### गीति - काव्य

प्राचीन गीति-काव्य से आज का गीति-काव्य भिन्न है। प्राचीन गीति काव्य में गेयता प्रभुत्व गुण था, उनमें कवि के व्यक्तिगत और अध्यात्मिक भावनाओं का उद्देश्य न था, बल्कि उनके मूल में राधा-कृष्ण के प्रेम की एक अन्त-धारा मिलती है।<sup>१</sup> मीरा में एक सीमा तक व्यक्तिगत अनुभूति है, लेकिन यह उसके गीति-काव्य का एक पक्ष है, उसके अधिकांश काव्य में भी वही कृष्ण की अंतर्धारा प्रवाहित होती है।

आधुनिक गीति-काव्य का जन्म जब हुआ, जब उस देश की प्राचीन प्रणाली टूट रही थी। समष्टि का स्थान व्यक्तिगत अनुभूतियाँ लेती जा रही थी। आध्यात्मिकता का स्थान राष्ट्रीयता और ईश्वर का स्थान मानव ले रहा था। स्वदेशी का आन्दोलन जीवन के साथ साथ साहित्य में भी व्याप्त हो रहा था। हमारे काव्यों और नाटकों में प्राचीन पौराणिक और ऐतिहासिक नायकों और वीरों के चरित्र उभर कर आये। काव्य और नाटक ने अतीत से प्रेरणा लेकर अपना पथ निर्मित किया, उन दोनों की तुलना में गीति काव्य ने एक नया किन्तु उपेक्षित पथ अपनाया था। गीति काव्य अपनी प्रेरणा के लिए लोक जीवन की ओर गया। डा० श्रीकृष्ण लाल का विचार है कि "आधुनिक हिन्दी गीति काव्य का आरम्भ सम्भवतः गाँवों के प्रचलित लोक गीतों से होता है। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी प्रान्तों में छावनी का बहुत प्रचार है --। इसी प्रकार कच्चाड़ी, फजली, विरहा, शत्यादि लोक गीत देश के अन्य विभिन्न मार्गों में प्रचलित हैं। आधुनिक गीति काव्य पर इन लोक गीतों का बहुत प्रभाव पड़ा है।<sup>२</sup> उनके गीतों का प्रभाव गीति-काव्य के--

१- डा० श्रीकृष्ण लाल- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २०६।

२- वही, - वही, पृ० १००।

विकास युग (१८८०-१९१०) पर बहुत गहरा रहा है। लेकिन धीरे- धीरे काव्य लोक गीतों के प्रभाव से मुक्त होता गया। कौजी के लिरिक काव्य के प्रभाव से इन में सुदृढ़ अनुभूतियाँ और व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति का प्रभाव बढ़ता गया। हायाबादी युग में गीत का सामाजिक परिवेश गीत हो गया और व्यक्तिवादी अनुभूति प्रसृत हो गयी। इस से गीति काव्य में एक सख्त सुदृढ़ता और गंभीरता आई। फलस्वरूप गीत में भाषा-शैली और शिल्प का सौन्दर्य बढ़ गया। युग की जटिलता और बदलते हुए माव- बाव के साथ-साथ गीति काव्य की संश्लेषण-शक्ति में विस्तार हुआ। गीति काव्य यहाँ आकर परम्परा से एकदम मुक्त हो गया।

गीति - काव्य ने स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियों को विकसित करने और विस्तार होने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। व्यक्तिगत अनुभूतियों की बलात्पक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम गीति- काव्य के द्वारा ही हुई। परम्परा और रुढ़ियों को तिलांजलि देकर, सत्य एवं स्वाभाविक लोक- जीवन की फाँसी, गीति काव्य के माध्यम से ही हिन्दी में बारम्ब हुई। आध्यात्मिकता के स्थान पर गीति- काव्य में सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का प्रयोग किया गया। वैवाय शक्तियों, ऐतिहासिक पुरुषों और प्राचीन योद्धाओं के स्थान पर सत्य और आधुनिक मानव की प्रतिष्ठा गीति- काव्य के द्वारा ही सर्वप्रथम हिन्दी काव्य में हुई है। गीति- काव्य में विवेच्य युग की अतिवृत्तात्मकता की निरन्तर उपेक्षा करके, युग- माव के मन की सख्त अनुभूतियों को निहित करने पर अल दिया है। काव्य में व्यक्ति का प्रवेश गीति- काव्य के माध्यम से ही हुआ है। यह प्रवृत्ति आधुनिक काव्य की विशेषतः स्वच्छन्दतावादी काव्य की सब से बड़ी विशेषता है।

विवेच्य काल में नाथूराम झाँ छंकर की 'पंक-पुकार', गुप्त जी की 'सुकवि - कीर्तन', लाला भगवानदीन की 'मस्तान' मन्मन विद्वेदी गजपुरी की 'चमैली' गीति-काव्य के वारम्भिक विकास के लीपान हैं। उदाहरण के लिए छंकर की पंक-पुकार और मन्मन विद्वेदी गजपुरी की चमैली गीतियाँ के विम्बांकित छन्द दृष्टव्य हैं :

कित्ती से कमी न हासंगा,  
उर्दू की केतुल इवारत लिख हूँ काविल - वीद,  
कीनी लुड घुरीद की पड़ के केटी देव जदीद,  
चुनीदा नउ गुजारुगा,  
कित्ती से कमी न हासंगा॥<sup>१</sup>

मन्मन विद्वेदी की 'चमैली' रचना में कवि का स्वच्छन्द निरीक्षण सुन्दर और मधुर है :

सुन्दरता की सपरासि तुम, दयालुता की लान चमैली ।  
तुमही कन्थाई भारत की, कब देगा भगवान चमैली॥  
चलक रहे सगवन्द बनौं मैं, अब न रही है रात चमैली।  
जल कमल कुतुमित होते हैं, देली हुआ फ़ात चमैली॥<sup>२</sup>

गीति - काव्य का उत्कृष्ट स्वरूप इस रचना में प्रस्फुटित हुआ है । कवि ने चमैली के माध्यम से लौकिक जीवन का जन्म से छंकर मरण तक निरीक्षण किया है। इस में उर्दू गज़ल की भाँति पुरावृत्ति होती है। स्वाधीनता संग्राम के -

१- सरस्वती, पृ० १०० मई सन् १९०८ ई० ।

२- सरस्वती, पृ० ६० जनवरी सन् १९१६ ई० ।

दिनाँ में इस प्रकार की जीक कविताएँ लिखी गईं । इस युग का गीति-काव्य लोक-गीतों के प्रभाव से अधिक सक्रिय रहा है। लेकिन धीरे धीरे गीति-काव्य में उच्च और व्यापक भावनाओं का प्रयोग होने लगा। इन भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति और एकीकरण की ओर कवियों का ध्यान जाने लगा। इस से इन में गंभीरता और कलात्मक वृद्धि हुई स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसी प्रकार के गीति-काव्य के उदाहरण हैं जिन में कला से अधिक उच्च भावनाओं और उनके एकीकरण पर अधिक बल है ।

हायाबादी युग में गीति-काव्य में कला का पूर्ण विकास हुआ है। इस युग में गीति-काव्य अपने पूर्ण विकास पर पहुँच गया । इस गीति-काव्य की विशेषता उसकी चित्र-वर्णना और गीति के समस्त गुणों का एकीकरण है । प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी आदि ने कुछ प्रसिद्ध गीति-कविताएँ लिखी हैं। निराला की जुही की कली, पन्त की परिवर्तन, प्रसाद जी की आह गीति-काव्य के प्रसिद्ध उदाहरण हैं ।

फिर क्या ? पवन

उपवन - सर-सरित-गहन-गिरि -कानन

कुंव-लता फुँजी को पार कर

पहुँचा - १

निराला जी ने जुही कली नामक गीति में सुन्दर और भावपूर्ण शब्दों का चयन किया है। पवन की गति, तथा लता-कुंजी का वर्णन कवि की कला के अतिरिक्त चित्र-वर्णना का भी साक्ष्य है जो आधुनिक काव्य की सब से बड़ी विशेषता है।-

प्रवाद की 'बाह' से निर्मांकित छन्द दृष्टव्य है :

निकल मत बाहर दुर्बल बाह !  
लौना तुम्हें हंसी का छीत,  
छाव नीरव माला के बीच,  
तड़प ठे चपला - सी मझीत।<sup>१</sup>

इस में कवि की भाव- व्यंजना के अतिरिक्त मानव मन की सूक्ष्म मनो-  
वृत्तियों का कलात्मक चित्रण भी है। प्रकृति का सख्त रूप भी है और उसका  
मानवीकरण भी उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। सख्त कल्पना का वापार  
लेकर, इतनी सूक्ष्म विषयों का चित्रण स्वच्छन्दतावादी काव्य की बड़ी उपलब्धि  
है ।

---

१- डा० श्रीकृष्णलाल- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, १० ११३ ।

## प्रीति

विवेच्य काल में प्रीति अंग्रेजी के लिरिक का समानार्थक है। हिन्दी काव्य में प्रीति पारम्पर्य काव्य के आभाव के कारण लिखा गया। छायावादी काव्य में प्रीति अपने विकास की वरम सीमा पर पहुँच गया। आधुनिक प्रीति की सब से बड़ी विशेषता उसकी आत्मामिथ्यत्वना शक्ति है।<sup>१</sup> आधुनिक काल में प्रीति एक निश्चित और विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह एक प्रकार से व्यक्तिवादी गेय काव्य है। इस में कवि की अपनी अनुभूतियाँ और मनस्थिति का आत्मपरक वर्णन होता है। संस्कृत के प्रीति मुक्तक काव्य से आधुनिक प्रीति बहुत भिन्न है। संस्कृत के प्रीति मुक्तकों में प्रेम और भावुकता के अतिरिक्त उपदेश नीति और वैराग्य का वर्णन भी होता था।<sup>२</sup> लेकिन आधुनिक प्रीति में हार्दिक अनुभूतियाँ और आत्मामिथ्यत्वना के अतिरिक्त नीति-उपदेश आदि नहीं होते हैं। बल्कि जहाँ से पुराने मूल्य प्रीति में आ जाते हैं वहाँ उसकी आधुनिकता संदिग्ध हो जाती है।

विवेच्य काल के मुक्तकों में तीन गुण मुख्य रूप से पाये जाते हैं गेयता, आत्मामिथ्यत्वना, और केन्द्रीय भावना। प्रीति में भाव तत्त्व और छय तत्त्व का समान सामंजस्य रहता है। गेयता के लिए इन दोनों का सामंजस्य आवश्यक है। लेकिन प्रीति का सब से बड़ा तत्त्व आत्मामिथ्यत्वना है। इसके बिना प्रीति बधूरा है। प्रीति में कवि चाहे जैसा वर्ण्य विषय ले, पर उसका वर्णन व्यक्ति-निष्ठ दृष्टि से ही करेगा। वह जगत् की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने रागात्मक संबंध की अभिव्यक्ति करता है। यह रागात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रच्छन्न दोनों प्रकार से ही हो सकती है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने स्पष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम—

१- जितेन्द्र पाठक- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृ० २२।

२- A.B. Keith - A History of Sanskrit Literature P.17.  
Calcutta 1935.

कयताया है लेकिन हायावादी कवियों ने प्रबुद्ध का सहारा लिया है। प्रीति में प्रयुक्त यह व्यक्तिवादी दृष्टि जापुनिक युग की देन है, जो हमारे देश में भी नवीन शासन व्यवस्था और आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। यह व्यक्तिनिष्ठ चेतना काव्य में सर्वप्रथम प्रीति के माध्यम से अभिव्यक्त हुई। हायावादी काव्य में इतका विस्तार हुआ और नवी कविता में काव्य के हर पौंच में व्यक्त हो गई। जापुनिक प्रीति मीरा, सूर, आदि से इसलिए भिन्न है, कि उन लोगों की चेतना व्यक्तिनिष्ठ नहीं है। मीरा और सूर का आत्मनिष्ठ जीवन व्यक्तिगत नहीं है, समाजगत है, लेकिन जापुनिक कवियों का प्रेम, पिरह आदि आत्मनिष्ठ है इसलिए विवेच्य युग के प्रीति की भावभूमि और चित्रण की भूमि नवी और जापुनिक है। प्रीति में स्वच्छन्दतावादी कवि भी व्यक्तिनिष्ठ है, उन में उनकी आत्मनिष्ठता प्रमुख तत्व है।

पुराने प्रीति संगीत से विशेष अनुज्ञासित हैं। उस लिए उन प्रीति में टेक वाली व्यवस्था है। परवर्ती प्रत्येक पंक्ति की तुक का उही टेक के तुक पर आन्वित होना यह प्राचीन प्रीति की अपनी विशेषता है। लेकिन जापुनिक प्रीति संगीत से अनुज्ञासित नहीं है। इसकी भाव-भूमि और आधार बिल्कुल भिन्न हैं। इस नये प्रीति के पीछे व्यक्ति का सुख, दुःख, प्रेम-पिरह, सौन्दर्य, आदि का चित्रण है। किसी दैवीय पुरुष जैसा भगवान का नहीं। इस युग के प्रीतिकार भक्त नहीं हैं। वे जापुनिक चेतना-सम्पन्न कवि हैं, जिनके सम्पूर्ण जीवन और युग की समस्याएँ प्रमुख हैं। युग की जटिलताओं के साथ वे व्यक्तिवादी हो रहे हैं। अनुकूल और प्रतिकूल सामाजिक परिवेश की प्रतिक्रिया से ही उनके प्रीति का जन्म होता है। आज के कवि आत्मनिष्ठ-समाज के हृदय को सन्तुष्ट करने का दावा नहीं करती हैं। उन कवियों का विचार है कि, वे संपूर्ण समाज को सन्तुष्ट करने के लिए प्रीति नहीं लिखते हैं, बल्कि --



एक का विशेष के लिए लिखते हैं जो उनकी व्याख्या की अनुपमि की समानुपमि के साथ समझता है ।<sup>१</sup>

आधुनिक मुद्राओं की भाव-भूमि ही नहीं बदली है बल्कि भाषा और शिल्प में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं । यह नयी भाषा - शैली- नयी विषय- वस्तु का ठीक प्रकार से निर्वार करने में समर्थ है। आधुनिक रूचि और सौन्दर्य-बोध का चित्रण इस नयी भाषा-शैली के माध्यम से एकलता-पूर्वक हुआ है ।

विवेच्य युग में जीयर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटवर पाण्डेय, मेघिलेशरण गुप्त, प्रताप, लीकप्रसाद पाण्डेय और भारतीय आत्मा आदि ने सकल और लोकप्रिय प्रीति लिखे हैं। इन प्रीतियों के माध्यम से हिन्दी कविता में व्यंग्य शैली का विस्तार हुआ। कल्पना और संवेदनशीलता इन प्रीतियों की अपनी विशेषता है। इस से हिन्दी काव्य में सुन्दर- भाव बोध का समुचित विकास हुआ आवावादी काल और इस युग की कविता की माँझ में प्रीतियों का महत्वपूर्ण- योगदान है । अनिर्वचना की रीचक प्रणाली का श्रीगणेश आधुनिक प्रीतियों के माध्यम से हुआ है। मुकुटवर पाण्डेय नूतन भावनाओं को व्यक्त कर चलने वाले कवियों में है । पाण्डेय जी ने भी सुन्दर एवं मधुर प्रीतियों की रचना की है । उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य है :

हुआ प्रकाश तमामय भाग में,  
मिला मुझे तू तत्प्राण जग में  
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में  
वन्य सुगुम के सुवि सुवास में  
या तब कीड़ा स्थान।<sup>२</sup>

१- विवेच्य पाठक- हिन्दी मुद्रा काव्य का विकास, पृ० १४ ।

२- मुकुटवर पाण्डेय, सरस्वती, १५८ दिवम्बर १९१७ ई० ।

कावि के हृदय प्रगीत में वैयक्तिकता के साथ रुढ़िवादिता का पूर्ण परित्याग है ।

गुप्त जी ने काला के प्रगीत मुजर्कों का हिन्दी में नये ढंग से अनुवाद किया । गुप्त जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर इन प्रगीतों की सुदृढ़ और पुष्ट किया है उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द दृष्टव्य है :

विच्छल रही है उर से जाह  
लाक रहे सब तेरी राह,  
चातक लड़ा चौंच लौले है, सम्भुर लौले लीप लड़ी।  
मैं अपना घर लिए लड़ा हूँ, अपनी अपनी हर्षें पड़ी॥<sup>१</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त जी ने विवेच्य काल में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाया है। गुप्त जी ने इन प्रगीतों का संग्रह कर विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

प्रसाद जी ने फारसी का निम्न पंक्तियों में चित्रण असातथ्य रखी में किया है ।

मधुर है स्त्रीत मधुर है लहरी ।  
न है उत्पात छटा है सहरी॥  
मनोहर फारना॥  
कठिन गिरि कर्हा विदारित करना।  
बात कुछ क्षिपी हुई है गहरी ।  
मधुर है स्त्रीत मधुर है लहरी ॥<sup>२</sup>

१- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८७ ।

२- प्रसाद- फारना, पृ० ६ ।

प्रसाद जी ने इस शब्द में प्रकृति के माध्यम से अपने हृदय की बात प्रकट की है। शायवादी काव्य के जारम्भ में कात्यायनव्यंजना का एक स्वरूप है, जिसकी शायवादी के उत्कर्ष में बलात्कृत अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद-जी का प्रेम पथिक मानव की कौमल भावनाओं का सहज उदाहरण है :

इस पथ का उद्देश्य नहीं है क्रान्त मथन में टिक रहना,  
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके बागे राह नहीं।।<sup>१</sup>

इस प्रकार विवेच्य युग के इन कवियों ने अपने प्रीतियों के माध्यम से नयी भाव व्यंजना तथा चित्रमय अनुभूतियों के चित्रण पर धन देकर स्वशून्यतावादी काव्य प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाया है।

---

१- डा० श्रीकृष्ण लाल, वापुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ३६।

## भाषा

प्राचीनता की परिणति नवीनता में है और नवीनता का अंकुर प्राचीनता में है। नवीनता और प्राचीनता का यह अन्त व्यर्थ नहीं है। यह साहित्य और भाषा के विभिन्न युगों की परम्पराओं को परस्पर जोड़ता जाता है। यही नियम साहित्य की भाषा के सम्बन्ध में भी है।<sup>१</sup> भाषा अभिव्यक्ति का सहाय और श्रेष्ठ माध्यम है। भाषा जितनी ही संगठित और उपयुक्त होगी भावों का स्वल्प उत्तम ही स्पष्ट और आकर्षक होगा। भाषा के द्वारा कवि की सूक्ष्म साहिष्णु शक्ति का परिचय मिलता है। जिसकी रुचि और शक्ति जितना परिमाणित और सूक्ष्म होगा उसकी भाषा भावों को सच्चा स्वरूप प्रदान करने में उतनी ही सक्षम होती है। भाषा में प्रत्येक शब्द अपनी एक विशेषता रखता है। भाषा युगों के अनुरूप बदलती रहती है। नयी विषय वस्तु भाषा को बदलती है, भाषा नयी विषय वस्तु नहीं प्रदान करती।<sup>२</sup> नयी भाव-भूमि और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देने में पुरानी भाषा असमर्थ हो जाती है।<sup>३</sup> इसलिए वीरगाथाकाल की भाषा भक्ति काल के लिए उपयुक्त नहीं रही और भक्ति काल की भाषा का उपयोग मारतेंदु युग में नहीं किया जा सका। मारतेंदु-युग की भाषा भी ख्रिस्तेदी-युग में प्रयुक्त न हो सकी। ज्ञानावादी भाषा प्रातिवाद के लिए एकदम बेकार थी। प्रातिवादी-प्रयोगवादी भाषा नयी कविता के काम की नहीं रही। विकास का यह सत्य नियम है कि हर युग अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये माध्यम की सृजन करता है। पुराने माध्यम उसके क्षय, उसकी पानचिक स्थिति, भाव भूमि और चेतना को -

१- जितेंद्र नाथ पाठक- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृ० ४१।

२- C. Caudwell - Studies in the Dying Culture, P. 157, New York (1949)

३- Ibid., P. 161.

अभिव्यक्ति नहीं दे सकते। विविध काल की भाषा में जो परिवर्तन हुए थे वे उसी सतत विकास के नियम और युग की माँग के अनुरूप हुए। यह युग नव का युग है उस लिए नव का जीवनित रहने के लिए नव के निरुद्ध जाना अनिवार्य था। इसी लिए नव और नव की भाषा का पैद कम होना आरम्भ हुआ। इस युग की काव्य भाषा नव के अधिक निरुद्ध आई।

भारतेन्दु साहित्य में नये और पुराने का मणिकर्षण योग था, जिसे हम आदर्श और व्यापक की संज्ञा दे सकते हैं। नव-भाषा भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों को पुराने के रूप में मिली थी जिसका उन कवियों ने मणि एवं रीति-परक रचनाओं में सफलतापूर्वक प्रयोग किया। परन्तु पारम्परिक आदर्शों की रक्षा करते हुए भी वे तत्कालीन परिस्थितियों को नहीं भूल सके। वे जीवन के कटु सत्यों की उद्घोषा भी न कर सके। कलतः व्यापक की ओर उन्मुख होने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा। काव्य में विषय बदलने के साथ ही साध भाषा का माध्यम भी बदला। विविध युग के सम्यक् गणकार कदरीनाथ मट्ट के शब्दों में : हिन्दी में भी यदि कुछ परिवर्तन हो तो स्वाभाविक ही समझना चाहिए क्योंकि भाषा और भाव का परिवर्तन समाज की अवस्था और आचार-विचार से अधिक सम्बन्ध रखता है। नव नव भाषा के दिन बीत गये। इसलिए संस्कृत की प्राप्ति उसका मान तो अवश्य करना चाहिए, पर उसे राष्ट्र भाषा बनने की ओर नायिका - पैद और कलंकार - शास्त्र बढ़ाने की चिन्ता होड़ देनी चाहिए।<sup>१</sup> मट्ट जी का यह कथन नये युग की विषय-वस्तु और भाषा की ओर स्पष्ट संकेत है। पुरानी विषय-वस्तु के माध्यम से साहित्य में नयी भाषा की स्थापना करना संभव नहीं है। भारतेन्दु - युग के लोक --

---

१- कदरीनाथ मट्ट- लड़ी बाँली की कविता पृ० १४३। सरस्वती, मार्च १९१३ ई०

जागरूक साहित्यकारों ने हिन्दी में ही रहे नवीन प्रयोगों की सराहना की है और परिवर्तनों की भावी प्राप्ति का आचार कहा है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि स्वयं से अविकार की काव्य भाषा ब्रज थी, लेकिन सड़ी बोली का स्वागत उनकी सहज उदारता और जागरूकता का प्रतीक है। समाज की मांगें साहित्य में भी ऐसा होती हैं कि एक समाज के विपरीत कुछ दिनों बाद परम्परावादी और रुढ़िवादी बन जाते हैं और नयी दिशाओं का जाने-बजाने में विरोध करने लगते हैं। साहित्य और समाज में ऐसा सदैव होता रहा है और आज भी हो रहा है। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य को सब से बड़ा यही योगदान है, कि उन्होंने भावी साहित्य की प्राप्ति के मार्ग तैयार दिये और सड़ी बोली को प्रथम देकर उसे भावी काव्य की भाषा बनाने में सहयोग प्रदान किया। उनकी अपनी कुछ ऐतिहासिक सीमाएँ थीं जिनके कारण वे स्वयं सड़ी बोली को काव्य की भाषा नहीं बना सके।

सड़ी बोली के समर्थकों का यह राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित था और साहित्य को पुरानी रुढ़ियों से मुक्त कर नवीन भावना से अनुप्राणित करना चाहता था। नयी भावना पुराने माध्यम के द्वारा भली प्रकार व्यक्त नहीं हो सकती थी उसके लिए नयी भाषा-शैली और नये हन्दी की आवश्यकता थी। नये मार्गों के लिए नया माध्यम अनिवार्य था सड़ी बोली आन्दोलन के समर्थकों का यह ही भावना से प्रेरित था। इस वर्ग में श्रीधर पाठक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, हरिवंश, श्री मथिलीश्वर गुप्त, तथा रामनरेश त्रिपाठी विशेष उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रियता हमारे साहित्य के लिए एक नया मूल्य था। उसने हमारे समाज और साहित्य में एक एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात किया। राष्ट्रियता के नाव ने सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों में जामुल --

परिवर्तन आरम्भ कर दिये । समाज के परिवर्तनों की गति बहुत तीव्र हो गई । बीसवीं शताब्दी में आकर यह गति इतनी तीव्र हो गई कि शताब्दियाँ दशकों में बदलने लगीं । औद्योगिक विकास ने भारत में नगरों को नया और आधुनिक रूप देना आरम्भ कर दिया । ये नगर और उसकी नव विकसित संस्कृति उस देश की परती के लिए नया था । पश्चिमी आभाव इन नगरों के माध्यम से उस देश की परती में उग रहा था । इन्हीं आधुनिक नगरों में एक नये मध्य वर्ग का विकास हो रहा था । विवेच्य काल में इसी वर्ग ने साहित्य का नेतृत्व करके उसे एक नयी भाव-भूमि भाषा और शिल्प प्रदान किया । राष्ट्रीयता के प्रसार से देश में एकता की भावना जोर पकड़ रही थी । इस भावना ने मध्य वर्ग को राष्ट्र के लिए एक नयी भाषा विकसित करने की प्रेरणा दी । उन नवीन परिस्थितियों में पुरानी जन और लोक भाषाओं से काम चलना संभव नहीं था नयी भाषा एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी । इसी ऐतिहासिक आवश्यकता ने सड़ी बोली का उद्भव और विकास किया । सड़ी बोली पहले मध्य वर्ग की भाषा बनो, इस ने उस नयी भाषा का प्रयोग अपने दैनिक व्यवहार में आरम्भ किया । १६ वीं शताब्दी जन चिन्दी गद्य का विकास हुआ तो सड़ी बोली अपनी प्रातिशीलता, और युगानुरूपता के कारण गद्य की भाषा बन गई । जिस समाज में औद्योगिक विकास आरम्भ हो गया हो, ऐसी की अर्थ-व्यवस्था का स्थान पूँजीवाद अर्थ व्यवस्था लेने लगी है- उस समाज में गद्य और पद्य की भाषाएँ दो नहीं रह सकती हैं ।<sup>१</sup> १६ वीं शताब्दी में हमारे देश में यही नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगी थीं । बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उस नवीन व्यवस्था ने समाज पर अपना आधिपत्य जमा लिया । इस परिवर्तन के साथ ही समाज और साहित्य की भाषा-

<sup>१</sup>- N. Gorky - On Literature and Language. P. 25 Edited, Moscow (1957)

बन गई । इस और अन्य भाषाएँ अपनी ऐतिहासिक भूमिका का सफलता से निर्वहण करके, स्वतः ही इतिहास की परीछर बन गई । इस नयी भाषा में प्रेक्षणीयता की शक्ति बहुत थी, साथ ही बहुत लचीली थी । इसलिए उस में नवीन विचार और नयी भावनाओं की अभिव्यक्ति सरलता से हो सकती थी । व्यवहार ने उसे इस युग की भाषा सिद्ध कर दिया । इस तथ्य के बावजूद इस और अन्य लोक-भाषाओं के समर्थकों का आन्दोलन स्वतः ठण्डा पड़ गया ।

### सड़ी बोली की परम्परा -

सड़ी बोली विवेच्य काल की सबल भाषा है । यद्यपि इसका साहित्यिक प्रयोग बीसवीं शताब्दी के साहित्य में ही हुआ है परन्तु १६ वीं शताब्दी में भी हमें सड़ी बोली की कविताएँ देखने को मिलती हैं । भारतेन्दु जी ने जीवन के अन्तिम समय में सड़ी बोली के कुछ प्रयोग किये हैं । पुराने हन्द होने के कारण उनकी भाषा में वह मिश्रण नहीं जा सका है । क्योंकि नयी भाषा अपने साथ नये हन्दों की उद्भावना भी करती है, जैसा कि ऋग्वेदी युगीन एवं छायावादी कवियों के यहाँ हुआ है । ऋग्वेदी युग में भारतेन्दु युग का हन्द विधान बहुत शीघ्रता से बदल रहा था क्योंकि नयी भाषा की संवेदनशीलता को पुराने हन्द वहन करने में असमर्थ थे । छायावादी काव्य में १६ वीं शताब्दी के हन्दों का संपूर्ण रूप और परिवेश बदल गया । कौटु परिवर्तन एक दिन में नहीं होता है, उसके पीछे एक पृष्ठभूमि और परम्परा रहती है । सड़ी बोली की परम्परा १६ वीं शताब्दी में आरम्भ हो गई थी । इस परम्परा ने साहित्यिक आन्दोलन का रूप २० वीं शताब्दी के आरम्भ में ही लिया । इस परम्परा को समझने के लिए भारतेन्दु जी की ये पंक्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं :



रकांगी बिनु एक रस सदा समान ।  
विपश्चि सर्वस्व जो सोई प्रेम ॥<sup>१</sup>

भारतेन्दु जी के युग में गद्य में सड़ी बोली का प्रयोग सर्वमान्य हो चुका था । वर्तमान वैज्ञानिक चेतना के युग में यह संभव नहीं है कि, किसी विकसित भाषा और साहित्य की गद्य और पद्य की भाषाएँ दो प्रकार की हों। बीयर पाठक ने सर्वप्रथम इस ऐतिहासिक महत्व की बात को ठीक प्रकार से समझा और विरोध किया कि बाद भी सड़ी बोली को काव्य की भाषा बनाया । पाठक जी सड़ी बोली को युग की आवश्यकता समझते थे। १६ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उनके गोरखस्मिय के अनुवाद प्रकाशित हुए । उसी दशक में उनकी कुछ महत्वपूर्ण फुटकर कविताएँ भी प्रकाशित हुईं । पाठक जी ने हिन्दी साहित्य-कारों और पाठकों को यह विश्वास दिलाया कि, सड़ी बोली काव्य की भाषा के लिए सर्वदा उपयुक्त है। उसी युग की पाठक जी की एक रचना दृष्टव्य है—

भारत हमारा कैसा सुन्दर गुहा रहा है ।  
शुचि माछ पे हिमालय चरणी पे सिन्धु- बँकल ।  
उर पर विशाल सरिता- सित- हीर-हार चँकल ।  
मणिवन नीलमन- का विस्तीर्ण - पट खँकल  
हारा सुदृश्य- कैसव मन को लुभा रहा है ॥<sup>२</sup>

किसी नवीन मूल्य व्यवस्था परम्परा को ठीक बाजानी से नहीं मानते हैं। सड़ी बोली के सम्बन्ध में भी यही हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक सड़ी बोली का किसी न किसी रूप में विरोध किया जाता है, लेकिन जो वस्तु --

१- डा० सुरेन्द्र माधुर- आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० १३ छहनज (१९६३)

२- विनय मोहन शर्मा- साहित्य, शोध समीक्षा, पृ० १० ।

मूल्य और परम्परा बन जाती है वह ऐतिहासिक आवश्यकता होती है, और उसे समाज में स्थापित होने से कोई रोक नहीं सकता है। लड़ी बोली भी हिन्दी-साहित्य के लिए एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी, इसलिए उसने ब्रज भाषा का स्थान लिया । धीरे- धीरे लड़ी बोली के विरुद्ध आन्दोलन ठण्ठा पड़ गया और सन् १९१५ ई० तक लड़ी बोली हिन्दी काव्य की सर्वमान्य भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई ।

लड़ी बोली अपने आरम्भिक विकास के लिए उर्दू काव्य की आभारी है। भारतेन्दु जी और उनके समकालीन कवियों में उर्दू की बहरी में कौन कविताएँ लिखीं हैं। भारतेन्दु जी ने उर्दू बहरी और गज़लों का अपनी साहित्य में सुव प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है ।

उसकी शाहनशाही हर बार मुबारक होवे ।  
कैसे हिन्द का दरबार मुबारक होवे ।।  
बाद मुस्त के हैं देखी के किये दिन यारब ।  
तस्त ताऊत तिलाकार मुबारक होवे।।  
बागबा फूलों से आबाद रहे सखे कमन ।  
बुलबुलों गुलशन के तार मुबारक होवे।।<sup>१</sup>

इसी अरबी-फारसी के शब्दों ने आगे चलकर हिन्दी शब्दावली का रूप धारण किया। छन्द उर्दू के ही रहे परन्तु हिन्दी शब्दों के आ जाने से लड़ी बोली का रूप प्रमाणित होने लगा। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है:

---

१- भारतेन्दु शब्दावली भाग २, गज़ल नादये तारीख, पृ० ७४७ ।

जहाँ देखो वहाँ भीखूँ मेरा कृष्ण प्यारा है ।  
 उसी का सब है जलवा जो जहाँ मैं आसकारा है ॥  
 भला मखलूँ साँलिक की शिकत एम्मी कहां कुदरत ।  
 ली है नेति नेति है यार वेदी ने पुकारा है ॥  
 न कुछ चारा बला लाचार चारों छारकर बैठे ।  
 धिनारे वेद ने प्यारे बहुत तुम को धिनारा है ॥<sup>१</sup>

भारतेन्दु जी ने नवीन विषयों के साथ भाषा के स्वरूप को भी परिवर्तित करने का सूत्रपात किया । इनकी 'दशरथ विलाप' शीर्षक कविता में सड़ी बोली का सकल प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य है :

कहाँ हो ९ हमारे राम प्यारे ।  
 फिर तुम छोड़कर हमको तियारे ॥  
 बुझाये मैं ये दुःख भी देखना था ।  
 ली को देखने को मैं कहा था ॥<sup>२</sup>

हिन्दी काव्य में अग्रे सुगर्भ की बरबी- फारसी तथा सड़ी बोली के शब्दों से युक्त कुछ मुकरियाँ भी मिलती हैं। नये विषय, नये भाव और नयी परिस्थितियाँ से प्रभावित होकर भारतेन्दु जी ने भी नए जमाने की मुकरी लिखी जिन में सड़ी बोली की अधिकता है। निम्नांकित शब्द दृष्टव्य है :

सब गुरुजन को बुरा बतावे ।  
 अपनी सिबड़ी अला पकावे ॥  
 भीतर तत्प न फूँटी लीजी ।  
 क्यों ललित, ऊँजन ? नहीं लीजी ॥<sup>३</sup>

- १-भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, कलकत्ता संस्करण, कुछ स्फुट कविताएँ, पृ० २५१ (भा० प्र० ३०)  
 २- रामचन्द्र मिश्र- शीघर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य,-  
 पृ० २२ दिल्ली- १९६४ ।  
 ३- भारतेन्दु ग्रन्थावली- नये जमाने की मुकरी, पृ० २१० ।

इस प्रकार धीरे-धीरे सड़ी बोली की व्यावहारिकता पर समाज को विश्वास हो चला। श्रीधर पाठक सड़ी बोली को प्रशस्त करने के लिये 'एकान्तवाणीयोगी' का सफल अनुवाद (१८८६ ई०) में किया। पाठक जी की सड़ी बोली की यह रचना बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई उदाहरण के लिए निम्नांकित श्रुत्य दृष्टव्य है :

प्राण पियारे की गुन- गाथा, हाथु कहाँ तक मैं गाऊँ ।  
गाते- गाते बुकें नहीं वह पाछे मैं ही बुक जाऊँ॥  
विश्व भिकाई विधि ने उदम की रक्त बटोर ।  
बलिहारी भिमुवन धन उस पर धारी काम करौर॥<sup>१</sup>

इस प्रकार सड़ी बोली ने क्रमशः लोक- भाषा के रूप में अपनी अस्तित्व को प्रकट किया। श्रीधर पाठक के सहयोग से ज्योत्स्नाप्रसाद खत्री ने १८८८ ई० में सड़ी बोली का लान्दील प्रारम्भ किया ।

---

१- श्रीधर पाठक- एकान्तवाणीयोगी, पृ० ६४ ।

## सड़ी बोली का आन्दोलन

आधुनिक हिन्दी साहित्य का ऐतिहास विविध आन्दोलनों का इतिहास है। सड़ी बोली का आन्दोलन भी मुख्य रूप से दो युगों के संघर्षों का परिणाम था। उस प्राचीन आदर्शवादी पारमिता और आधुनिक व्यापकवादी उपयोगिता का परिणाम कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में कही जाती रीतिकालीन कृत्रिमता के बाद पुनः जन- साहित्य बनाने, उसे स्वाभाविक तथा स्वच्छन्दता से अनुप्राणित करने का श्रेय सड़ी बोली आन्दोलन ही को है। डा० रघुवंश के शब्दों में विवेक्य युग की कविता में भाषा, भाव, तथा रीति सभी कुछ एक प्रकार से प्राचीन परम्परा के हैं पर यदि ध्यान से देखा जाय तो नव- पैतृका का उद्घोषन उसी युग के कवियों में पाया जाता है। जन भाषा के साथ सड़ी बोली का प्रयोग होने लगा या प्राचीन शब्दों के स्थान पर लोक- प्रचलित शब्दों जैसे कजली, विरहा, रसता तथा मलार आदि का प्रयोग किया गया। बालक्य व्यक्ति सड़ी बोली आन्दोलन के रूप में हुई।<sup>१</sup> श्री जी ने संवत् १९४५ में सड़ी बोली आन्दोलन के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की और उसमें यह गंभीरता के साथ लिखा कि जन भाषा तथा कवियों की रचनाएँ हिन्दी की नहीं हैं। उन्होंने सड़ी बोली की विविध पत्र रचनाओं का एक संग्रह सड़ी बोली का एक पत्र नाम से प्रकाशित कराया। सड़ी बोली आन्दोलन का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है। उन्होंने नागरी लिपि और सड़ी बोली की प्रतिष्ठा के लिए ऐतिहासिक, महत्व का कार्य किया। भिन्नाट महीपय के शब्दों में : श्री जी का उद्देश्य अपने देश-वासियों की कारसी- बरबी के कठिन शब्दों के प्रयोग से रौकता था। उनका उद्देश्य जन और उर्दू की मिला- जुलाकर नागरी लिपि में एक नयी काव्य भाषा -

१- डा० रघुवंश - हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० २ भुनिका बंश, राधकमल पिल्ले

बनाना था। उनके समकालीन का सुत्र था- एक वर्ग का सोन्मुख ब्रज भाषा का मोह छोड़ दे और द्वारा अच्छी लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि का प्रयोग आरम्भ कर दे। यह सही बोली सर्व-साधारण की भाषा थी इसमें समाज और विकसित सभ्यता की आवश्यकता के अनुसार या अनुरूप परिवर्तन होते रहें।<sup>१</sup> सत्री जी सही बोली पर के प्रकार को अपने जीवन का प्रथम उद्देश्य मानकर चले थे। उसी कारण उन्होंने एक ऐसी पुस्तक की रचना की जो नये ढंग की थी। उनका विश्वास यही था कि जब तक नय और पय दोनों एक भाषा में नहीं लिखे जायेंगे उस समय तक साहित्य में शक्ति नहीं जा सकती। विवेक्य युग में सही बोली के समर्थकों में श्रीधर पाठक, हरिवर्ष जी, तथा गुप्त जी का नाम लिया जा सकता है। क्योंकि ये कवि देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों से पूर्णतया प्रभावित थे। साहित्य के पुरानी रुढ़ियों से मुक्त कर नयी भावनाओं से अनुप्राणित करना चाहते थे। श्रीधर पाठक की निम्नांकित रचना ने सही बोली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया :

साधारण बलि रहन बहन, मृदु बोल कदय हरने वाला।  
मधुर मधुर मुख्यान मनीहर, मनुष बंस का उजियाला।।  
सम्य कुन सत्कर्म परायण, सम्य, सुशील सुजान।  
रुद्र बरिज उपार प्रकृति-रुम, धिक्का -बुद्धि निधान।।<sup>२</sup>

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीधर पाठक सही बोली काव्य के प्रकार एवं प्रकार के लिए देवदूत थे।

<sup>१</sup>- pincott - Khari Boli Ka Padya, Preface. P. 51 (London)

<sup>२</sup>- श्रीधर पाठक- एकान्तवासीयोगी- पृ० ६।

### सड़ी बोली की प्रतिष्ठा :--

सड़ी बोली में यह रचना समासमयिक युग की एक महत्वपूर्ण भाग थी। सड़ी बोली के आन्दोलन ने इस भाग को और अधिक तीव्र किया। विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप जनता के हृदय में नये भाव जाग्रत हुए - राष्ट्रीयता, समाज सेवा, मानवता के प्रति प्रेम और सदाचार की छहर उठी। परन्तु दूसरी ओर अपने चारों तरफ से लाँहेँ मुँहे और युग की भाग को पीछे छोड़ कर ब्रज भाषा काव्य नवी चेतना से दूर किसी कल्पित ब्रज की कुँज गलियारों में रास किलास के स्वप्न बैठ रही थी। उस साहित्य में युग बोध का अभाव था और जो साहित्य युग के साथ स्वर मिलाकर नहीं चल सकता उसे नया समाज बहिष्कृत कर देता है। यही हाल ब्रज भाषा और उसके साहित्य का हुआ। सन् १९०० तक आते आते पारे विचारधाम पुरुष यह अनुभव करने लगे थे कि ब्रज भाषा के साहित्य में युग की क्रान्तिकारी चेतना अभिव्यक्त नहीं हो रही है। यह स्वयं सुगुप्त है, समाज को यह कैसे ज्ञात हो सकेगा उसका परित्याग करना ही होगा।<sup>१</sup> सड़ी बोली की इस सजीवता और ताज़गी का विवेच्य युग के कवियों ने समर्थन किया। वे यह सोचने लगे कि नायक- नायिका वाला ब्रज भाषा साहित्य हमारे राष्ट्रीयता के युग में जनता की चढ़कनी और उसकी प्रेरणा-बर्षा का साध देने में असमर्थ है इस कारण इसका परित्याग अनिवार्य है। सन् १९०० ई० में सरस्वती का प्रकाशन हिन्दी साहित्य में एक नया मौड़ ले लिया। हिन्दी काव्य की आलोचना करते हुए मिश्रबन्धुर्वी ने भी लिखा है कि - ब्रज भाषा ललित जह्जर है पर यह क्यापि नहीं कहा जा सकता कि इसके अतिरिक्त सड़ी बोली या अन्य बोलियों में अपना

१- डा० शिवकिंठ मिश्र- सड़ी बोली का आन्दोलन, पृ० २०३।

२- मिश्रबन्धुर्वी- सरस्वती, पृ० ८३ सन् १९०० ई०।

उत्तम लालित्य का ही नहीं सकता। जो भाषा समझ में बोली जाती है उसका व्यवहार काव्य में भी होना चाहिए और ऐसी भाषा विशेष रूप से सड़ी बोली ही कही जा सकती है। अतः दूसरी भाषाओं की अपेक्षा सड़ी बोली में कविता करना हम उचित समझते हैं।<sup>१</sup> सड़ी बोली के समर्थन में इस युग के विद्वान बाबू श्यामसुन्दरदास ने भी सरस्वती की भूमिका लिखते हुए कहा है कि— अभी तक हिन्दी पद्य की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम हुआ है। हिन्दी पद्य से हमारा अभिप्राय उस पद्य है जो आज कल की हिन्दी में लिखा हो, न कि प्राचीन कवि भाषा में। कवि-भाषा की कविता चाहे मधुर हो पर यह बात हिन्दी भाषा के लिए बड़ी निन्दा की है और बड़े अभाव की भी दिखती है कि जब जो एक प्रकार की भाषा में जो उन्नीसवीं सताब्दी में उत्पन्न हो लिखा जाए और कम पुरानी भाषा में।<sup>२</sup> बाबू श्यामसुन्दरदास जी के <sup>दल</sup>कथन का यह तात्पर्य है कि यह बात हिन्दी साहित्य में ठीक नहीं है कि जब और पद्य की दो भाषाओं के कारण हिन्दी की उन्नति में बाधा पड़े उस और अधिक विचार करने की जरूरत है।

सड़ी बोली में कम रचना की और केवल विचार ही नहीं बल्कि कुछ रचगार भी की गईं। पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी की 'मलयाभिल' नामक कविता में सड़ी बोली के भावी सामर्थ्य का जामात दिया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द दृष्टव्य है :

१- मिश्र-मुखा - सरस्वती, पृ० ८३ तन् १९०० ई०।

डा० श्यामसुन्दरदास, सरस्वती, पृ० ६ तन् १९००, भूमिका !



मधुर मनीहर हास्य राशि की छूट कियर से जार हो ?  
 जो बार, तो कौन प्यारे ! कौन कियर से जार हो ?  
 कुशल कौन, किन किन फुल्लों से, उस चुगल्वि की पाया है ?  
 तरंगिणी के प्राणों की जिस से, उल्लसित कराया है ?  
 कितने तपित मन के मानस की, सब विधि से सीतल कर  
 सुधा मधुर गीतों की गा गाकर जार हो, तुम प्रियवर ॥<sup>१</sup>

उस प्रकार उन् १६०० ई० से हमें विवेच्य पुा के प्रसुत कवियाँ जैसे मैथिलीशरण  
 गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश विपाठी, रामचरित उपाध्याय, हरिवीच, राय  
 देवी प्रसाद पूर्ण, तथा लीचनप्रसाद पाण्डेय की कविताएँ लड़ी लड़ी में मिलने  
 ली । लीचनप्रसाद पाण्डेय का 'श्रीधर' वर्णन निम्नांकित छन्द में दृष्टव्य है :

पशु- पत्नी सब घबराते हैं, हाया जहाँ, वहीं जाते हैं ।  
 जान बिना पानी जाती है, जीम निकल बाहर जाती है ।  
 पानी कहीं जो देख जाते, जल्दी वहीं दौड़ सब जाते ।  
 शूकर, बाघ, बिल, मृग, कीते, एक बर सब पानी पीते ॥<sup>२</sup>

महाकवि हरिवीच तथा रायदेवी प्रसाद पूर्ण की ये लड़ी लड़ी की सुन्दर  
 रचनाएँ देखने योग्य हैं हम में कवि ने जीवन की भारिकता पर हजारा किया है।  
 मानव जीवन में सुख दुःख लगा रहता है। परन्तु दुःखों से घबराना नहीं चाहिए  
 बल्कि फिर नये उत्साह के साथ कार्य में लगे रहना ही मानव जीवन की वैभुता  
 है। इस भाव की हरिवीच जी ने बहुत सरल भाषा में कहा है :

१- पं० किशोरीलाल गोस्वामी, मल्लानिल, पृ० १६६ सरस्वती, १६०० ई०

२- लीचनप्रसाद पाण्डेय-१, श्रीधर वर्णन-१, पृ० ३०५, १६०० ई०

उठकने पाकर उन्हें पड़ती है जितनी ही जहाँ ।  
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही जहाँ॥<sup>१</sup>

पूर्ण जी के प्रकृति सौन्दर्य नामक कविता में सड़ी बोली की सुन्दर छटा देखने योग्य है :

छरे- छरे ललछे विपुल द्रुम वृन्द-वृन्द वन सीधे ।  
लौनी ललिका-कलित ललित फल वलित लैत मन मोहे।  
लाछे पीरे लैत बँधने सुमन सुहावन फूल ।  
गुण गान कारे पंढरीक मकरन्द जान में भूले॥<sup>२</sup>

पाठक जी ने पुरानी परम्परा से बली जाती ब्रज भाषा को त्याग दिया । नयी भाषा सड़ी बोली के प्रयोग अपनी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त किया । उस गीत में उन्होंने सभी स्वच्छन्दसाधिता का परिचय दिया है । उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

मैं तो भारत पे बाले- बलि जाऊँ ,  
गुलियाँ मैं तो भारत पे बलि-बलि जाऊँ,  
भारत है मेरा प्रानों का प्यारा,  
दिल का दुलारा, जीवन- खयारा,  
उस पे तन- मन की वारं, उस पे त्रिभुवन की हार,  
उसकी फुलों पे घास उसकी दिल पे केठारं॥<sup>३</sup>

- १- हरिवोध कर्मवीर नामक कविता से, पृ० १३७ तरस्वती, सन १९०७ ई० ।  
२- पूर्ण- संग्रह, पृ० १२२ ।  
३- श्रीधर पाठक, भारत गीत, पृ० १६६ ।

गुप्त जी ने भी अपनी सड़ी बोली की कवितारें उसी युग में लिखीं। संपूर्ण देश में जो उदासीनता और निराशा काई दुर्लभ थी उस निराशा और उदासीनता के माफ़ी भी गुप्त जी ने अपनी नयी भाषा सड़ी बोली के माध्यम से दूर करने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

है एक गुराही लम्ब को मैं प्यार-प्यार पुकारते ।  
कहते हुए कातर कवन सब और हाथ पसारते ।  
दाता तुम्हारी जय रहे, हमको दया कर दीजिये ।  
माता, मरे हा, हा, इनारी शीघ्र ही सुख लीजिये॥<sup>१</sup>

उसी समय विवेक्य युग के रामचरित उपाध्याय और रामनरेश त्रिपाठी ने भी सड़ी बोली में सुन्दर रचनारें की हैं ।

कैसा अच्छा यह वाक्य है, जहां ध्वंश का लम्बक न गम् है ।  
मानों लान्ति देह की घर कर जा बेठी है वन के भीतर ।  
चिह्न बधुबधाप सड़ी है उसका धन बहड़ा पीता है।  
पागुर करती केनु पड़ी है उसको बाट रहा बीता है॥<sup>२</sup>

ॐ अपने मन के मन्दिर में मूर्ति तुम्हारी भरता हूँ  
है पुस्तक - वर तुम से बत मैं यही प्रार्थना करता हूँ  
निशि दिन जोसे जयते मेरे पास कभी रहना सब काल  
तप वियोग से कभी न सोना पड़े मुझे विच्छल धैराल॥<sup>३</sup>

उस तरह सड़ी बोली पर मैं इतनी मौलिक, सुन्दर, एवं सरस भावनापूर्ण रचनारें देतकर सड़ी बोली के विरोधियों को यह विश्वास हो चला कि अच्छी और सज्ज भाषा सड़ी बोली ही हो सकती है ।

१- भण्डिलीकरण गुप्त- भारत-भारती, पृ० ८८ ।

२- रामचरित उपाध्याय- तपोवन नामक कविता से, पृ० १२ सरस्वती, सन् १९११ ई०

३- रामनरेश त्रिपाठी- पुस्तक- पृ० ३६४ सरस्वती सन् १९११ ई० ।

### सड़ी बोली का परिवर्तन

विवेक्य युग की कवियों में बीपर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, तथा हरिवोध जी ने सड़ी बोली के परिवर्तन में विशेष रूप से योगदान किया। वाचार्थ पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पाँचपा की थी कि- यह निश्चित है कि किसी समय थोड़ा बाल की हिन्दी भाषा का भाषा की कविता का स्थान अवश्य छीन लेगी इसलिए कवियों को चाहिए कि वे कम- कम से कम की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें बोलना एक भाषा और कविता के प्रयोगों के लिए दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है, जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की सेवा करते हैं उनके मन में कम भाषा का आधिपत्य बहुत दिनों तक नहीं रह सकता।<sup>१</sup> द्विवेदी जी का विचार वस्तुन्त वैज्ञानिक और व्यावहारिक था। इसी पृष्ठभूमि में कविता के क्षेत्र में सड़ी बोली का प्रचार एवं प्रसार हुआ। काव्य मनोरंजन का साधन भी है इस लिए अगर काव्य की भाषा ठीक- भाषा नहीं होती तो वह सामान्य जनता तक अपनी उच्च उद्देश्यों को नहीं पहुँचा सकता है। कम भाषा रुढ़िग्रस्त हो चुकी थी जब उसका आगे विकास संभव नहीं था। कौड़ी भाषा विश्व की सम्पूर्ण और विकसित भाषाओं में से है। भारत के जागरूक लोगों ने कौड़ी के गहन अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकला कि इस देश को भी एक नवीन और सम्पूर्ण भाषा की आवश्यकता है, जो आज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। यह भावना राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ और भी अधिक फलपी। फलस्वरूप सड़ी बोली की सम्पूर्ण बनाने के लिए लोगों ने अपने ढंग से प्रयत्न आरम्भ कर दिये। शैल-पीयर, स्काट, छेरी, कीट्स, वायरन, गोल्डस्मिथ, हांगफेरी आदि कवियों--

---

१- पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी- रसज्ञ रंजन, कवि कर्तव्य- पृ० २०।

की रचनाओं के अनुवाद हिन्दी में किये जाने लगे । इस से भाषा की भाव प्राप्ति बड़ी और विषय का विस्तार हुआ । उस से कवि नये छन्दों की और भी आकृष्ट हुए । गुप्त जी ने सर्वप्रथम सन् १६०७ ई० में स्वतन्त्र विषय लेकर सड़ी बोली में रचनाएँ की कर्म उर्वशी, वर्जुन, चुकेशी, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। गुप्त जी और विवेक्य युग के अन्य कवि विषय-वस्तु के चयन के लिए पौराणिक युग या इतिहास की और नये समतामयिक विषयों पर लिखने की परम्परा बाद में आरम्भ हुई ।

इससे आस्थानक नीतियाँ और प्रबन्ध काव्यों के सुजन की प्रेरणा भी कवियों को मिली । गुप्त जी का आस्थानक नीति रंग में मंग सन् १६१० ई० में सरस्वती में प्रकाशित हुआ। उसके थोड़े समय के बाद उनका जयद्रथ -वध प्रकाशित हुआ । इस कृति के द्वारा सड़ी बोली कविता में भाषा की समर्थ व्यञ्जकता बीज-प्रवाह, और शब्द मैत्री के गुण पहली बार दिखलाई पड़े । सन् १६१४ ई० तक अति आते सड़ी बोली की भाषागत असमर्थता और कर्ण-कटुता बहुत पीछे जा चुकी थी । बोलों में हा० शितिकण्ठ भिन्न के शब्दों में अब सड़ी संस्कृत की शुद्धता बंगला की कौमलता, उर्दू की सानी (या प्रवाहमयकुला) तथा अंग्रेजी साहित्य की व्यञ्जकता और लाटिनिक्ता का समावेश हो गया था।<sup>१</sup> इसके परिणाम स्वरूप युग में हरिवंश जी ने प्रिय-प्रवास और गुप्त जी ने साकेत महाकाव्यों की रचना की । इन दोनों महाकाव्यों में सड़ी बोली अपने पूर्ण-विकसित रूप में आई । 'प्रिय-प्रवास' की रचना हरिवंश जी ने संस्कृत-गर्भित सड़ी बोली में की है साथ ही उस में संस्कृत के भिन्नतुकान्त का प्रयोग किया गया है । 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य में ऐसे समीप स्थलों की कमी नहीं है जहाँ भाषा--

---

१- हा० शितिकण्ठ भिन्न, सड़ी बोली का बान्दीलन, पृ० ३०१ ।

में सरलता और स्वाभाविकता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। उदाहरण के लिये निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

मुपित गोकुल की जनमण्डली । जब कविवर सम्पुत जा पड़ी ॥  
निरतने फूल की हवि यों लगी । सृजित वातक ज्यों धन की षटा ॥  
घड़े लिये कामिनियाँ, कुमारियाँ । कौन कौन पर थीं सुसौमिता ॥  
प्यारती जो जल ले स्वयं ही थीं । क्या क्या के निज नूपुराणि की ॥<sup>१</sup>

‘प्रिय प्रवास’ में कवि ने कौमल भावों के साथ उलझी भाषा भी कौमल दितार् है। उपाध्याय जी ने उन लीनों की धारणा को निर्धक कर दिताया जिनका विश्वास था कि सड़ी बोली में वही कविता नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

प्रवाहिता उदत तीव्र वायु से ।  
विधुनिता ही लपटे दवाग्नि की ।  
मितान्त ही थी कनती पर्यकरी,  
प्रचण्ड दावा प्रलयकारी क्या ॥<sup>२</sup>

एक छन्द में कवि ने दावानल और जल-समुद्र की विकरालता का वर्णन तनुकुल बीजस्विनी भाषा के द्वारा किया है। इस प्रकार विवेच्य युग में नयी भाषा के प्रयोग से काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावना का सूत्रपात हो गया ।

गुप्त जी ने भी सड़ी बोली का प्रयोग किया है जिसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं बाने पाई है। ‘भारत-भारती’ की भाषा भावों के अनुसार है निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

१- हरिद्वीप - प्रिय- प्रवास, पृ० २६, सर्ग १ ।

२- वही, वही, पृ० ७३ सर्ग ११ ।

हा ! दीनबन्धों ! क्या हमारा नाम ही मिट जायगा,  
जब फिर कृपा- कणा भी न क्या भारत तुम्हारा पायगा।  
हा ! राम ! हा ! हा ! कृष्ण हा ! हा ! नाथ हा ! रक्षा करो  
मनुजत्व दी हमको दयामय, दुःख दुर्लभता करो॥<sup>१</sup>

इस छन्द की भाषा प्रौढ़, प्राणल बोलचाल की भाषा के अधिक निकट है।  
इस में सड़ी बौली की सरलता और सज्जता दोनों पाई जाती हैं।

सड़ी बौली के परिष्कार की दृष्टि से हिन्दी काव्य में त्रिपाठी  
जी के योगदान का भी ऐतिहासिक महत्व है। त्रिपाठी जी के काव्य में वाक्य-  
विन्यास की सज्जता और सकृन्निमता तथा ठीक ध्वनियों के चुनाव का बाहुल्य है।  
त्रिपाठी जी के स्रष्ट कवियों (स्वप्न, पथिक, मिलन, ) में सड़ी बौली अत्यन्त  
निर्मल रूप है, उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है।

प्रतिभाण नूतन पैरु आकर रंग- विरंग निराळा ।  
रवि के सम्मुख थिरक रही हैं नम में बारिद माला॥  
नीचे नील समुद्र मनीहर ऊपर नील गगन है।  
घर पर बैठ बीच में बिरहूँ यही चाहता मन है।<sup>२</sup>

त्रिपाठी जी का यह छन्द सड़ी बौली की काव्य- भाषा का विकास एकतरफे  
के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

विशेष्य युग के कवियों में श्रीधर पाठक, प्रसाद, मुकुटवर पाण्डेय,  
तथा मन्न बिहारी गजपुरी, वादि बप्पी विविष रत्नाजी द्वारा सड़ी बौली  
की अधिक शक्तिशाली बनाया। उदाहरण के लिए इन कवियों की यह पंक्तियाँ  
दृष्टव्य हैं :

१- मेथिलीशरण गुप्त- भारत- भारती, पृ० १५५ (वर्तमान स्रष्ट)

२- रामनरेश त्रिपाठी- पथिक, पृ० १६ ।

वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज- अभिमानि हों ।  
बाँधवता में बंधे, परस्पर परता के ज्ञानी हों॥<sup>१</sup>

< < < <  
किरण । तुम क्यों किलरी हो जाज,  
रंगी हो तुम किसके अनुराग॥<sup>२</sup>

< < <  
वर्णा बहार सब के मन की लुभा रही है,  
नम में घटा जठरी धनधोर छा रही है॥<sup>३</sup>

< < <  
नहीं रहेगा मूल न शाखा नहीं मनोर फूल चमेली ।  
मिराकार ऐ मिलकर होना, प्रियतम- पद की पूछ चमेली॥<sup>४</sup>

इस प्रकार सड़ी बोली के विकास में इन कवियों का सब से अधिक योगदान है। इन कवियों ने अपने प्रयत्नों से काव्य-भाषा को एक सज्ज शौष्ठव और स्निग्धता प्रदान की है। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप इन-भाषा काव्य के समस्त दोषों से पीछे रह गई और सड़ी बोली को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित होने का सुवावसर प्राप्त हुआ ।

जिस सड़ी बोली ने भारत-भू-मी के अन्तिम समय (१८८० ई० के लगभग) में काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया था, वह बीस वर्ष के अल्प समय में ही हिन्दी काव्य की सर्वमान्य भाषा बन गयी । सड़ी बोली में युगानुरूपता थी, उसमें नवीन युग के विचारों को बहन करने की क्षमता थी, इस लिए उसकी प्रतिष्ठा अनिवार्य हो गई। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिए सड़ी बोली बाजार भूमि की मांगि है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियों की संवर्धन करने का सामर्थ्य सड़ी बोली के अतिरिक्त और किसी हिन्दी की भाषा और बोली में नहीं है । स्वच्छन्दतावादी विषय-वस्तु ने सड़ी बोली के और सड़ी बोली में स्वच्छन्दतावादी विषय-वस्तु को विकसित करने में सबसे अधिक योगदान दिया है।

१- श्रीधर पाठक- भारत-गीत, पृ० २५ वि० संस्करण १९५८ ।

२- प्रसाद- फरमा, पृ० १४ ।

३- मुकुटधर पाण्डेय, वर्णा बहार, नामक कविता, पृ० ५६-कलकत्ता, १९५८, पृ० संस्करण ।

४- मन्नन विवेदीमजपुरी- चमेली पृ० ८६ सरस्वती जनवरी १९१६ ई० ।



## छन्द

काव्य में स्वीयता और गति लाने के लिए छन्दों की उपयोगिता स्वीकार की गई है। छन्द काव्य को प्राचीनता प्रदायक बनाते हैं। छन्दों का उदाण बताते हुए कहा गया है कि- छन्द की आत्मा है यह उदाण चित्ता भावात्मक है उतना ही वैज्ञानिक भी।<sup>१</sup> छन्दों की अभिव्यक्ति प्रवाह-मयी होती है। कुछ पश्चात्य विद्वानों ने भी छन्दों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। स्विथ जर्जटन महोदय का विचार है कि - छन्द भार्वा का स्वाभाविक प्रवाह है और श्रोता उस से पूर्णता ग्रहण करता है।<sup>२</sup> भारतीय और पश्चात्य विद्वानों की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि काव्य और छन्द का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विवेक्य कालीन काव्य में हम छन्दों की विविधता एवं नवीयता पर विचार करें।

काव्य की विषय वस्तु और भाषा के साथ छन्दों का बदलना भी अनिवार्य हो जाता है। जिस प्रकार नयी विषय-वस्तु को पुरानी भाषा धलन करने में समर्थ नहीं होती है उसी प्रकार नयी भाषा पुराने छन्दों में नहीं बाँधी जा सकती। यह स्वच्छन्दतावादी भावना काव्य में केवल विषयों तक ही सीमित न रह कर भार्वा और छन्दों को भी प्रभावित किए बिना न रह सकी फलतः काव्य में नये छन्दों का आविर्भाव आवश्यक हो गया। भाषा और छन्दों के इस नयेफन ने काव्य को उदार बनाया। काव्य के विकास युग में पुराने छन्द काम नहीं देते हैं उस स्थिति में नये छन्दों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

१- हिन्दी साहित्य कोष, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, पृ० २६१।

२- Smith, The principles of English metres, P. 5.

प्रयोग के माध्यम से पाठक जी ने अपनी स्वच्छन्द दृष्टि का परिचय दिया है। पाठक जी का यह छन्द साधारण जनता की मानसिक भावधारा के अनुकूल रहा है। पाठक जी की इस स्वच्छन्द और उन्मुक्त प्रवृत्ति के काव्य की जन साधारण तक जाने में रुकावट हो सकी है। वतएव इसके माध्यम से तत्कालीन जन-मानस की अभिव्यक्ति संभव हो सकी है यह प्रवृत्ति वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों की ओर इशारा करती प्रतीत होती है। पाठक जी ने लान्नी के अतिरिक्त रौला एवं कबली आदि अन्य लोक प्रचलित छन्दों को भी अपनाया है। उन्होंने मजदूर स्त्रियों के लिए रुकावट गीतों की रचना नये छन्दों के माध्यम से की है। देश में राष्ट्रीयता की लहर से शिक्षित समाज की प्रभावित होती है। साधारण जनता को प्रभावित करने के लिए पाठक जी ने नयी लोक शैली में गीतों की रचना करके नये आदर्शों को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है जिस में कबली का पैटर्न मिलता है :

मैं तो भारत पे बलि- बलि जाऊँ,  
गुह्याँ मैं तो भारत पे बलि- बलि जाऊँ,  
भारत है मेरा प्रान्त का प्यारा,  
दिल का दुलारा, जीवन - अवारा,  
उस पे तन- मन की बाराँ, उस पे विभुवन की हारं,  
उसको फरक पे पाहं उसको दिल पे केठारं ॥<sup>१</sup>

उपरोक्त छन्द में पाठक जी ने लोक छन्द में राष्ट्रीय गीत की रचना करके विवेच्य युग के काव्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को परिचित किया है। छन्दों के नये प्रयोगों ने नये युग की प्रबुद्ध चेतना और विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का परिचय दिया है।

### अन्य भाषाओं के छन्द --

विशेष्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कतिपय अन्य भाषाओं के छन्दों का भी प्रयोग अपने काव्य में किया है। यह अन्य भाषाओं और उनके साहित्य के सम्पर्क का ही परिणाम था। विशेष्य युग की प्राचीन परम्पराओं एवं पुरानी मान्यताओं को भी उस सम्पर्क एवं पाश्चात्य प्रभावों ने बहुत से छिटा दिया है। विदेशी युग की शक्तिवृत्तात्मकता, नीरसता को इन कवियों ने सरसता और मधुरता में बदल दिया। युग की जीवित समस्याओं, जीवन के अनुभवों को स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नवीन छन्दों में बाँधने का प्रयत्न किया है। हरिऔध जी, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, आदि ने उर्दू की परिपाटी को अपने काव्य में ग्रहण किया है। उर्दू के छन्दों को अपनाने की यह प्रवृत्ति नयी युग की चेतना को प्रबुद्ध करने में बहुत सफल रही है। उदाहरण के लिए हरिऔध जी का यह छन्द दृष्टव्य है :

अब है रंगत दुनियाँ की  
बदलती रहती है तेवर,  
फिखी पर छेहरा संभता है,  
उत्तर जाता है कोरें सर।<sup>१</sup>

हरिऔध जी ने उपरोक्त छन्द उर्दू सुबाश्यों के पैटर्न पर लिखा है। सही धौली में उर्दू के छन्द ने नये प्राण डाल दिए हैं। कवि का यह नवीन प्रयास स्वच्छन्दतावादी काव्य को प्रेरणा देने वाला रहा है।

त्रिपाठी जी ने भी उर्दू की इस परम्परा को अपने काव्य में ग्रहण किया है। त्रिपाठी जी की मान्यतावादी दृष्टि का प्रसार नये छन्दों में हुआ है।--

---

१= हरिऔध, चुपड़े नौपदी, द्वितीय संस्करण, पृ० १६ ।

बीसवीं सताब्दी के हिन्दी काव्य में जब तक काव्यात्मक प्रवृत्तियाँ बचती हैं तब तब नये छन्दों का प्रयोग हुआ है। विवेच्य युग के नये छन्द और उनके प्रभुत्व का इस प्रकार है :

- १- संस्कृत के छन्द
- २- लोकगीतों के छन्द
- ३- अन्य भाषाओं के लिए नए छन्द मुख्यतः उर्दू, बंगला, और  
अंग्रेजी के छन्द

#### संस्कृत के छन्द-

विवेच्य युग के कवियों के दो वर्ग लिए जा सकते हैं। एक वे कवि जो विद्वेदी मण्डल के कवि हैं जिन पर विद्वेदी जी के व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव है जिन में मैथिलीशरण गुप्त, हरिवर्ष, रामचरित उपाध्याय, तथा नाथूराम जूँ शंकर का नाम लिया जा सकता है। दूसरा वह वर्ग है जो विद्वेदी युग में रहकर भी उनके काव्यादर्शों के पालन की ओर ध्यान नहीं देता है। इस वर्ग ने रूढ़ परम्पराओं को काव्य से निकाल कर नये मूल्यों की खोज की है। विद्वेदी मण्डल के कवियों के काव्य में संस्कृत के वर्णिक छन्दों का बहुत अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इन कवियों में गुप्त तथा हरिवर्ष जी की अधिकांश रचनाओं में यह परम्परा देती जा सकती है। इन कवियों ने संस्कृत साहित्य से बहुप्रचलित छन्द लेकर उनका हिन्दी करण किया है। डा० सुदीन्द्र ने भी कहा है कि- इसे संस्कृत वृत्तों (वर्णिक छन्दों) का नवोत्थान कहा जा सकता है। इस युग के छन्दों की सब से बड़ी विशेषता है अतुल्य छन्दों का सफल प्रयोग यह प्रवृत्ति विवेच्य युग के कवियों में प्रचलित रही है। हरिवर्ष जी में यह प्रवृत्ति विशेष-

---

१- डा० सुदीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, द्वितीय सं० पृ० ८७ ।

रूप से मिलती है। उनका प्रिय- प्रवास महाकाव्य इस का श्रेष्ठ उदाहरण है :

कलित- किरण-भाला बिम्ब सौन्दर्यशाली ।

सुगमन तल -शोभी दिव्य हायापति का ॥

शविमय करती थी दर्शकों के दृष्टि को,

जब रवि- तनया से जंक में झीझती थी।।<sup>१</sup>

उपरोक्त छन्द में हरिजीय जी ने अन्त्यानुप्रास के ब्रह्मों की तोड़ दिया है। संस्कृत के कृष्ण को बताया है। इसी परम्परा का पालन रामचरित उपाध्याय जी ने भी किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

कुल से रहना यदि है तुम्हें,

दनुज, तो फिर गर्व न कीजिये ।

शरण में गिरिये रघुनाथ के,

निबल के कल केवल राम है।<sup>२</sup>

इस प्रकार संस्कृत कृष्ण की परम्परा का पालन हिन्दुवैदी मण्डल के कवियों की प्रभु प्रवृत्ति रही है। पुरानी काव्य- कवियों के साथ ही वह संस्कृत के वर्णिक छन्दों की परम्परा चल गई लेकिन नवी विषय वस्तु के साथ इस परम्परा का अधिक ताल मेल नहीं बैठ सका। इस लिए संस्कृत के वर्णिक छन्दों का मवांस्थान अधिक संकल न हो सका। विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इस परम्परा को लाभग समाप्त कर दिया, क्योंकि कि कौई भी पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति अधिक दिन जीवित नहीं रह सकती है। उनका एक ऐतिहासिक महत्व होता है।--

१- हरिजीय, प्रिय- प्रवास, एकादश संस्करण, पृ० ५३ ।

२- रामचरित उपाध्याय- रामचरित चिन्तामणि, पृ० १५ ।

उसके बाद वह जड़ हो जाती है। यही बात छन्दों के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी है।

### लौकिकीयों के छन्द--

विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लौकिकीयों के छन्दों का प्रयोग किया है। श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी इन के प्रयोग के लिए उत्तरेखनीय हैं। इन कवियों ने लोक गीतों के छन्दों का परिष्कार करके उन्हें साहित्यिक बनाया है और उनके इन प्रयत्नों ने काव्य की लोकमूर्ति पर वासीन कर दिया। उनके इन नवीन प्रयोगों ने स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को प्रेरणा दी है। इन छन्दों में कजरी लावनी छौली आदि का व्यापक स्तर पर प्रयोग हुआ है। श्रीधर पाठक ने रकान्तवासीयोंगी का अनुवाद लावनी छन्द में किया है। इसके अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी, रुक्मारायण पाण्डेय तथा मुकुटधर पाण्डेय आदि कवियों ने कजरी तथा लावनी आदि में कुटकर रचनाएँ की हैं। विवेच्य युग की राष्ट्रीय भावनाओं को संवारित करने में यह लोक छन्द बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। इन छन्दों में नये युग की बेचना और ताड़नी है। उदाहरण के लिए पाठक जी की दी रचनाएँ विचारणीय हैं :

जुनिए मारसण्ड बनवाली, पसाशील है बैरागी ।

करके कृपा बता दे मुक्त की कहां जले हैं- वह जागी॥

मैं मटका फिरता हूँ बन में मूठ गया हूँ राह ।

तू जो मुझे वहां पहुंचा दे यह गुण लीय क्याह॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में पाठक जी ने नये लोक छन्द लावनी का प्रयोग किया है। इस --

---

१- श्रीधर पाठक- रकान्तवासीयोंगी, पृ० १ प्रथम संस्करण ।

उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :

मैं हूँ उठा तुम्हें था जब कुंज और वन में ।  
तू लौकता मुझे था तब दीन के पलन में ॥  
तू बाह वन किसी की मुक्त की तुम्हारा था ।  
मैं था तुम्हें <sup>कुलाल</sup> सीत में, मजन में ॥<sup>१</sup>

< < < <  
मेरे लिए तड़ा था दुखिया के खूब पर तु,  
मैं बाट जीहता था तेरी किसी वजन में  
फनकर किसी के बाँधु मेरे लिए यहा तु,  
मैं देखता तुम्हें था नाशुक के बदन में ॥<sup>२</sup>

त्रिपाठी जी ने उर्दू की बहरी हिन्दी के छन्द में डाढ़ी है । उनकी यह मौलिकता वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बोध कराने में सहायक है ।

विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उर्दू बहरी के अतिरिक्त हिन्दी काव्य में कंठा के प्यार छन्द का प्रयोग भी किया है । इस नये छन्द के प्रयोग में स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरणा विद्यमान है । उदाहरण के लिए प्रताप जी की 'सन्ध्यातारा' शीर्षक रचना का निम्नांकित अंश लिया जा सकता है ।

कामिनी बिजुर मार वति वन नील  
ता में मणिसम तारा सीहल ललील  
जनित तरंग तुंग माला बिराजित  
केवल गम्भीर तिल्लु बिनाद सीहित ॥<sup>३</sup>

१-रागनरेश त्रिपाठी, मानसी, पृ० ५३ ।

२- वही, वही, पृ० ५४ ।

३-प्रताप- सन्ध्यातारा, द्वितीय संस्करण पृ० १५ ।

प्रसाद जी ने बंगला के प्यार हृन्द का हिन्दी-करण करके काव्य में स्वच्छन्दता-वादी भावनाओं को अधिक उर्वर बनाया। पन्त जी ने अपनी आरम्भिक रचना ग्रन्थि (सन् १९१६ ई०) में पीयूषावर्ण नामक एक नवीन हृन्द का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित हृन्द दृष्टव्य है :

सैमलिनि । जाओ, मित्रों तुम विन्नु है।  
 वनिह । बालिन करी तुम गगन का  
 चान्द्रके । पुनी तरंगों के खबर,  
 उल्लुणी । जाओ पवन-वीणा बजा ॥<sup>१</sup>

नये हृन्दों का चयन निराला जी ने भी अपने युग की भाव-धारा के अनुसार किया है। उन्होंने अपनी काव्य रचना 'बुछी की कली' में मुख्यतः हृन्द का प्रयोग किया है। उनके हृत्त स्वच्छन्द प्रयोग ने काव्य को अधिक कल्पनामय बनाया है और विवेच्य युग की कृतिकृतात्मकता और नीरसता को क्लिष्ट सीमा तक दूर किया है। उनके मौलिक प्रयोगों ने स्वच्छन्दतावादी काव्य की धारणा प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक दृष्टव्य है :

विजन- वन बल्लरी पर  
 सौली थी लुहाग - मरी- स्नेह- स्वप्न- मग्न  
 जल- कौमल- तनु तरुणीन बुछी की कली,  
 मृग बन्ध किये, शिथिल फाँक में ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार विवेच्य युग के काव्य की प्रचलित सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विचारधाराओं में जामूल परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप नवीन विचारधाराओं, मौलिक भावनाओं तथा नवीन काव्यात्मक मान्यताओं का--

१- पन्त- ग्रन्थि, द्वितीय संस्करण, पृ० ६ ।

२- निराला- बुछी की कली, पृ० १ ।



समावेश हुआ । इस काव्यगत नवीनता में परम्परागत रुढ़ियों का विरोध था। इस विद्रोह ने काव्य का नवीन रूप प्रस्तुत किया जिस से स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का जन्मपात हो गया ।

विवेच्य युग छन्दों की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण युग रहा है। बहुत से नये छन्दों का इस युग में जाकिर्ग हो रहा था, जिनका परिष्कार था अनुचित विकास आयावादी काव्य में हुआ है । लेकिन जो नये छन्द इस युग में प्रयुक्त हुए हैं, उनका छन्दों के स्वच्छन्दतावादी काव्य में ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि इन्हीं नये छन्दों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की कतक मिलती है ।

### कलंकार

काव्य में प्रयुक्त नये कलंकार किसी कवि ज्यवा उसके युग की नयी मनोवृत्तियों के परिपायक होते हैं, कलंकारों के नाश्वर्य से कवि और उसके युग के काव्य की नयी कल्पनाशीलता ज्यवा उद्भावना का धौष होता है । बहुधा ऐसा होता है कि समाज के बदलते हुए यथार्थ ज्यवा युग जीवन की बदली हुई मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए नयी भाषा और नये नये शब्दों के साथ-साथ नये कलंकारों की भी आवश्यकता पड़ती है परम्परा द्वारा प्रचलित उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ धीरे-धीरे रुढ़ होकर अपना शान्दर्य खो देती हैं और तब नये उपमाओं की तलाश का शिलखिला डूब जाता है। विवेच्य युग की सामाजिक जीवन की परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। राष्ट्रीयता के आन्दोलन ने पूरे देश की चेतना को झकझोरना शुरू कर दिया था अतएव कवियों की संवेदना नवीन विषय-वस्तुओं से जुड़ने लगी थी। नये शब्द नयी भाषा आदि प्रयोग पर ऋक दिया जाने लगा था। ऐसी दशा में यह अर्जुन था कि विवेच्य काल के कवि पुराने रुढ़ कलंकारों से ही सन्तुष्टि प्राप्त करते ।

विवेच्य युग के कवियों के समुक्त नयी सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रसार की भावना प्रबल थी । भाषा के क्षेत्र में एक प्रकार का अधर्ष चल रहा था अज भाषा के प्रति लोगों के मन में पर्याप्त मोह था किन्तु गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रसार हो जाने के उपरान्त यह अर्जुन था कि कविता की भाषा अज रहती अतएव इस युग के कवियों के समुक्त काव्य - भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था जिसकी प्रतिष्ठा में बराबर प्रयत्नशील रहे । सामाजिक क्रान्ति और राष्ट्रीय आन्दोलन की भावनाओं को खड़ी बोली में शब्दबुन्द करने के कारण इस युग की कविता अधिकतर में वर्णनात्मक और इतिवृत्त प्रधान रही है । ऐसी स्थिति में काव्य के सुकुमार कौशल पदा की और कवियों का ध्यान--

बहुत कम गया है। नये अप्रस्तुतों ज्यवा मयीन उपमाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति को मनोरंजक और मर्मस्पर्शी बनाने की दृष्टि से उनके पास कुछ कम अवकाश रहा है। छिंदेदी मण्डल के कवियों की रचनाओं के द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। बाबाय महावीर प्रसाद छिंदेदी ने स्वयं बड़ी मात्रा में कविताएँ लिखी हैं किन्तु उनका काव्य अधिकांश में पुराने ढंग का है। जिस में नैतिकतावादी एवं पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का बाहुल्य है। कलंकारों के क्षेत्र में कोई नवीन कल्पनाशीलता का परिचय नहीं दे सके हैं। उनके मण्डल के अधिकांश कवियों की लगभग यही स्थिति रही है।

बाबाय छिंदेदी जी के प्रभाव में रहकर रचना करने वाले कवियों में हरिदास एवं गुप्त जी के नाम प्रमुख हैं। छिंदेदी मण्डल के अन्य कवियों में रामचरित उपाध्याय बाधुराम आदि की गणना की जाती है। हरिदास जी का प्रिय-प्रवास उनके काव्य की प्रसिद्धि रक्ता है। सरुदय जालौचर्की ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है किन्तु मात्रा ज्यवा कलंकार की दृष्टि से यह कृति अधिकांश में रूढ़ परम्पराओं से जुड़ी हुई है। हरिदास जी ने संस्कृत वृत्तों की कौमल कान्त पदावली और संस्कृत भाषा के प्रयोगों के साथ साथ अधिकांश में संस्कृत काव्यों के प्रचलित एवं रूढ़ कलंकारों का ही प्रयोग किया है। एक उदाहरण लीजिए-

रूपीमान प्रफुल्ल - प्राय कलिका राखेंदु- धिमानना।

तन्वी कलहातिनी सुरसिका झीड़ा नला फुलली ॥

शोभा- वारिधि की अप्रुत्य मणि सी लावण्य लीलामयी।

श्री राधा मृदुभाणिणी मृदुवृणी माधुर्य- सम्मूर्ति थीं ॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त उदाहरण में अनुप्रासों की कृता वैशेष्य है किन्तु अनुप्रासों की गणना न तो नये कलंकारों के अन्तर्गत की जा सकती है और न उनके माध्यम से युक्त के नये--

१- हरिदास- प्रिय-प्रवास- सकादश संस्करण, पृ० ३६, सर्ग चतुर्थ वाराणसी।

विवेक और नयी कल्पनाशीलता का भी कोई बौध नहीं होता उपर्युक्त छन्द में जो राधा के सौन्दर्य वर्णन के लिए जो उपमार्प रूपक, प्रयुक्त हुए हैं वे सब रुढ़ और पारम्परिक हैं। हरिकीय जी की परवती कृतियाँ 'बुनते बौन्दे', और 'बौन्दे बौन्दे' आदि में कलकारों की दृष्टि से कुछ नये प्रयोग अवश्य उपलब्ध होते हैं। इन कृतियों में उन्होंने लोक प्रचलित मुहावरों का प्रयोग दृष्टान्त के रूप में किया है जिनके द्वारा एक प्रकार की साक्षी का रहस्य होता है ।

श्रुवेदी मण्डल के कवियों में मेघिलेश्वर गुप्त की कल्पना-शक्ति उपेक्षाकृत अधिक उभर रही है। उन्होंने अपनी कृतियों में कुछ मौलिक रूपकों एवं अप्रस्तुतों का आविर्जन किया है। गुप्त जी की काव्य प्रतिभा भी अधिकांश में इतिकृतात्मक है तुलारवादी एवं पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का उनके यहाँ भी प्राधान्य है किन्तु श्रुवेदी मण्डल के अन्य कवियों की तुलना में अच्छी काव्य शक्ति का परिचय दिया है विवेक काल की सीमा में जाने वाली उनकी कृतियाँ मुख्यतः 'जयप्रथम' एवं 'भारत-भारती' बहुत लोकप्रिय हुई किन्तु यह अधिकांश में वर्णनात्मक ही है और श्रम में कौमल कल्पनाओं का वह स्वरूप नहीं दिखलाई पड़ता है जिनके द्वारा कोई कवि मनोहर काव्यालंकारों का प्रयोग करता है । गुप्त जी की परवती कृतियों में कुछ नये या ताज़े कलकार अवश्य दिखलाई पड़ते हैं। एक दृष्टि से साकेत उनकी प्रमुख कृति है। जिसकी रचना का आरम्भ विवेककाल में ही हुआ था । गुप्त जी की कल्पनाशीलता और अप्रस्तुत विधान की सामता के सम्पर्क में साकेत का निम्नलिखित छन्द लिया जा सकता है:-

सखि, नील नमस्वर में उतरा

यह हंस जहा । तरता तरता,

जब तारक - मौलिक श्रेण नहीं,

निकला जिनकी चरता- चरता ।,

जबने हिम- धिन्नु बने सब भी,

कलता उनकी धरता- धरता,

यह बार न कष्टक भुक्त के

कर ठाल रहा डरता डरता।।<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में उगते हुए सूर्य की उपमा उस छंद से दी गई है जो बाकाउ-सारीवर में नक्षत्र रूपी मौलियों की कुलता हुआ कीड़ा कर रहा है। संपूर्ण चित्र एक सांग रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिससे कवि की कल्पनाशीलता और मौलिक उद्भावना करने की उसकी क्षिति का पता चलता है। प्रस्तुत छन्द के माध्यम से कवि की प्रकृति चित्रण की नेत्रीत्ता का भी साध होता है। उस छन्द का समस्त चित्र एवं अलंकरण विधान स्वच्छन्दतावादी काव्य साध के बहुत निकट है।

पिछले अध्यायों में हमने जहुआ यह संकेत किया है कि विवेच्य युग में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उन कवियों के काव्य में दिखलाई पड़ती हैं जो द्विवेदी मण्डल से बाहर के कवि कहे जाते हैं और बाचार्थ द्विवेदी जी के प्रभाव से अलग रहे हैं नये अलंकारों के सन्दर्भ में भी हों। इन्हीं कवियों का सहारा लेना पड़ता है। श्रीधर पाठक हों या रामनरेश त्रिपाठी मुकुटवर पाण्डेय हों या मन्नन द्विवेदी वस्तुतः इन्हीं कवियों के काव्य में भाषा की नयी भंगिमा छन्द की नवीनलयात्मकता एवं अनुसृतियों की ताकती के साथ-साथ कल्पनाशीलता का भी प्रसार दिखलाई पड़ता है। नये अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से भी ये कवि सही मानने में स्वच्छन्दतावादी रहे हैं। इन्होंने प्राचीन छंद एवं पारम्परिक उपमाओं का यथासंभव परित्याग किया है और अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण काव्य में अलंकरण उपादानों की सूचि में नवीन उपमाएँ एवं नये अप्रस्तुतों की वृद्धि की है।

नयी उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ के छन्दों में चन्द्रमा के लीन्दर्य वर्णन से सम्बद्ध निम्नलिखित दो रचनाएँ विचारणीय हैं। उदाहरणों के लिए पं० श्रीधर पाठक की सन्ध्या कव्य शीर्षक रचना का एक वंश है :

इन्द्र, या इन्द्र का हनु, या ताड़ का  
स्वर्ग्य गजराज के माल का राज था  
कण उषाळ, या स्वर्ण का धातु ता ।  
कनी यह भाव था, कनी वह भाव था।  
देतने का बड़ा चित्त मैं चाव था।।<sup>१</sup>

दूसरा उदाहरण वं० रूपनारायण पाण्डेय की एक रचना से किया गया है :

बाँद नहीं यह प्याछा है पीयूष का,  
या बीया है बीव विमल प्रत्यूष का  
अवश है आदर्श प्रकृति के रूप का,  
या चन्द्रासन तना मनीभाव भूप का।।<sup>२</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों में चन्द्रमा के सान्दर्भ्य की रूपायित करने वाली विभिन्न कल्पनाएँ हैं । श्रीधर पाठक उस में इन्द्र के हनु, राज, या राजा के उठे हुए कान जैसी प्रतिभाओं को दर्शा करते हैं । ये कल्पनाएँ अपने आप में नवीनता एवं ताज़गी लिए हुए हैं। पाण्डेय जी चन्द्रमा की पीयूष का प्याछा कहते हैं या उसे कामदेवता के वंशीवे के रूप में देखते हैं। इस प्रकार कल्पनाओं के बीच से ही विवेच्य कालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त नवीन उपमाओं नवीन उत्प्रेक्षाओं एवं रूपकों की ढूँढ जा सकता है। पाठक जी की काशीर सुषमा रचना में राग रूपक की दृष्टि से पर्याप्त ताज़गी दिखाई पड़ती है। डॉ० रवीन्द्र भूषर के शब्दों में- इस में प्रकृति को देतने की एक नवीन मँगिमा का परिचय मिलता है। कवि ने प्रकृति के विभिन्न चित्रों को स्वतन्त्र भाव से आलोकन रूप से महण करते हुए उनका मार्मिक लंका किया है। उदीपन अथवा अलंकरण सामग्री के रूप में प्रकृति चित्रण की इस परम्परा पीछे छूट गई और सहज प्राकृतिक सौन्दर्य एक जीवन्त मानवीय रूप में आकार ही उठाई:

१- १- श्रीधर पाठक- मनोविनोद, सान्ध्या वदन शीर्षक रचना, पृ० ८ ।

२- रूपनारायण पाण्डेय, राका सरस्वती, जुलाई १९१२ ई० पृ० १३४ ।

प्रकृति यहाँ एकान्त शक्ति निज रूप संवारति  
 फल फल फलटति मैस हनकि शवि छिन छिन धारति।  
 किल्ल लकुंर मुकुरन मह मुल खिच निहारति।  
 लपनी हवि पै मोहि बापही लन मन वारति।  
 बिहारति विविध किलास परी जोकर के मद लनि।  
 ललकति, किलकति, फुलकति, निरलति, धिरकति, धनि-ठनि।।<sup>१</sup>

‘काश्मीर-सुनमा’ के उपर्युक्त उदाहरण में प्रकृति का चित्रण जीवन के उदाम के  
 से चालित उस नायिका के रूप में किया है जो वर्षण के सम्मुख बैठकर नूतन कृषार  
 किया करती है। कवि की मनोरम कल्पना ने प्रकृति सुन्दरी को एकान्त गौप्य  
 कला के रूप में देखा है।<sup>१</sup> विद्वैदी युग के अन्तिम चरण में कई शाय्यावादी कवि  
 काव्य मंच पर प्रवेश कर चुके थे जिन में प्रसाद, पन्त तथा निराला भी प्रमुख हैं।  
 ये कवि मूलतः स्वच्छन्दतावादी ही रहे हैं। विवेक्य काल में लिखी गई ग्रन्थि नामक  
 उनकी कृति से अनेक प्रकार की नयी ताज़ी उपमाएँ हूँडी जा सकती हैं। उदाहरण  
 के लिए जब यह प्रेमी के नेत्रों की तुलना प्रिया के कपोलों के जाकृत में हूब जाने  
 वाली नीका से करते हैं तो उनकी मौलिक स्वच्छन्द प्रतिभा का पता चलता है।  
 उदाहरण के निम्नार्कित छन्द दृष्टव्य है :

उन गढ़ों में रूप के जाकृत से,  
 घूम फिर कर नाव से किसके नयन  
 हैं नहीं हूबे मटक कर उटक कर  
 भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के।।<sup>२</sup>

उपर्युक्त छन्द में कवि ने नीका का प्रयोग नेत्र के उपमान के रूप में किया है।  
 नीका खूबती है नेत्र भी प्रिया के सौन्दर्य में हूब जाते हैं।

१- डा० रवीन्द्र प्रसाद- हिन्दी के आधुनिक कवि (विद्वैदी-युग से नयी कविता तक)

दिल्ली, प्र० संस्करण १९६४ पृ० ३१ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थि, द्वितीय संस्करण, पृ० १० ।

स्वच्छन्दतावादी कवियों के नूतन अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से श्रीधर पाठक या रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं से कई उदाहरण लिए जा सकते हैं। पाठक जी की हेमन्त शीर्षक रचना की ये परिकल्पना दृष्टव्य है :

बहो धन्य हेमन्त, कौसे बहुगुनी,

कान्तुओं के सरदार, बड़े बाके धनी॥<sup>१</sup>

इसी प्रकार त्रिपाठी जी के स्वप्न से निम्नलिखित कंठ विचारणीय है :

हरियाली में माँति- माँति के राशि राशि हैं फूल बिभिन्नि,

गिरि- समूह के अन्तराल में विस्तृत वनस्थली है चित्रित।

मम होता है रंग- बिरंगी छरित धरा की वैत यकायक ।

पुरुष प्रिया की छा रही हैं ये मानो साड़ियाँ अलस्य।<sup>२</sup>

पाठक जी ने हेमन्त की रूप छवि को साकार करने के लिए बाँके धनी सरदार के प्रयोग अप्रस्तुत के रूप में किया है। त्रिपाठी जी ने रंग-बिरंगी छरी- धरी पृथ्वी के लिए डाली गई साड़ियों की उत्प्रेक्षा की है।

उपर्युक्त विवेचन से बालीय काल की कविता धारा की नवीन चेष्टा का बोध होता है। कलंकारी की दृष्टि से भी उस समय नयी जमीन तौर का प्रयत्न किया जा रहा था। द्विवेदी युगीन काव्य पर शक्तिवृषात्मकता, शुष्कता और नीरसता का दोषारोपण किया जाता है किन्तु यदि द्विवेदी जी के सप्ताभ्यासिक स्वच्छन्द कवियों की कविता धारा का अवलोकन किया जाए तो पता लगता है कि उक्त प्रकार की शुष्कता एवं नीरसता को समाप्त करने के प्रयत्न की उस समय हो गए थे । द्विवेदी - मण्डल के कवियों की तुलना में स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नवीन उपमाओं नवीन उत्प्रेक्षाओं के द्वारा अपने युग की ताज़गी का अधिक बोध कराया। द्विवेदी मण्डल के कवियों की तुलना उनका काव्य अधिक कल्पनाप्रवण और सरस है।

१- श्रीधर पाठक- मनोविनोद, द्वितीय संस्करण, पृ० ७ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी, स्वप्न, पृ० ३१ ।



**पटा कथाय**  
**\*\*\*\*\***

पिछले अध्याय में हमने विवेच्य कालीन कवियों के काव्य- की कलागत नवीनता का विवेचन किया है। उस युग (१६०९-१६२० ई०) में तीन काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। छायावादी काव्य प्रवृत्ति इस युग के मध्य में १६१९ ई० के आस पास व्यक्त होने लगी थी। बिद्वेदी- युगीन नैतिकतावादी काव्य धारा और पाठक जी एवं उनके सहयोगियों की स्वच्छन्दतावादी काव्य- धारा एक दूसरे के साथ- साथ प्रवाहित हो रही थी। बिद्वेदी जी के व्यक्तित्व से इस युग का प्रायः प्रत्येक कवि, साहित्यकार और आलोचक प्रभावित था, इसलिए पूरे युग को बिद्वेदी- युग का नाम दे दिया गया। ऐसा करना बिद्वेदी- जी को सम्मान देने की दृष्टि से तो ठीक है लेकिन काव्य की दृष्टि से ठीक नहीं है। बिद्वेदी मण्डल के कवियों की काव्य- दृष्टि और चिन्तन में तथा बिद्वेदी मण्डल से बाहर के स्वच्छन्दतावादी कवियों की काव्य- दृष्टि और चिन्तन में बहुत अन्तर है। इसलिए इस युग के समस्त कवियों को एक साथ रखने से इस युग के साहित्य का ठीक मूल्यांकन नहीं हो पाता। वही प्रकार छायावादी काव्य- प्रवृत्तियों की भी इस युग में उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करना भी आवश्यक है। साहित्य के इतिहास की किसी सीमा रेखा में विभाजित नहीं किया जा सकता है। यह विभाजन तो हम अपनी सुविधा के लिए कर लेते हैं। लेकिन इस युग की कुछ विचारधाराएँ, काव्य- प्रवृत्तियाँ और वैचारिक मूलों का सही अध्ययन करते समय इन सीमा रेखाओं में डील करनी ही पड़ेगी।

मानव विकास के इतिहास की गति अति उत्तम और बहुत जटिल है, उसकी ठीक और सही तरह से समझने के लिए हमें पूर्व परम्पराएँ समसामयिक समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विचारधाराएँ और प्रवृत्तियाँ को समझना आवश्यक है।<sup>१</sup>

कोई विचार बारा न एक दिन में जन्म लेती है और न जल्दी ही समाप्त हो जाती है । उसके प्रभाव और उपयोगिता के अधिक कम होने से हम उसके उत्थान और पतन की बारणाई करते हैं। अधिकांश इतिहास लेखकों और आलोचकों ने हिन्दी के बीसवीं शताब्दी के काव्य-साहित्य को इस प्रकार विभाजित किया है -

- १- भारतीय - युग - (१८५०-१९०० ई०)
- २- हिन्दुवेदी युग - ( १९०० - १९२८ -२० तक)
- ३- छायावादी युग- (१९२९- १९३५ ई० तक)
- ४- प्रातिवादी युग - ( १९३६ - १९४५ ई० तक)
- ५- प्रयोगवाद और नयी कविता का युग (१९४५ - अब तक)

यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है। छायावादी युग में हिन्दुवेदी- युगीन काव्य- प्रवृत्तियाँ से परिपूर्ण कई प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गईं । हिन्दुवेदी युग के अधिकांश कवि इस युग में लिखते रहे । प्रातिवादी युग में छायावादी और स्वच्छन्दतावादी कृतियों का प्रकाशन होता रहा है और वर्तमान युग में कई महत्वपूर्ण प्रातिवादी रचनाएँ प्रकाश में आई हैं ।

इस से स्पष्ट है कि एक युग में एक साथ कई काव्य- प्रवृत्तियाँ प्रवाहित होती रहती हैं, जो एक दूसरे की पीणण और प्रवृत्ति की दृष्टि से स्त्री- स्त्री विरोधी गुणों वाली भी होती है ।

हिन्दुवेदी - युग में उपर्युक्त तीन काव्य दृष्टियाँ और विचार-बाराई थीं, जो एक दूसरे की समान थीं भी थीं और विरोधी भी । यह विरोध ऊपर से पैरने पर इतना स्पष्ट नहीं दिखता है, लेकिन काफी गहरा है। जी-

विराट १६२५ ई० के लगभग छायावाद में परिचित होता है वैसे विराट हिन्दू-पण्डित के कवियों और स्वच्छन्दतावादी कवियों में नहीं है। अस्त में इन दोनों के बीच स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भावनाएँ सामान्य रही हैं। ये भावनाएँ इसकी प्रकृत थीं कि इन कवियों को एक ही णि रूप में विराट रही ।

हिन्दू-पण्डित - पण्डित के कवि स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भावना के कारण स्वच्छन्दतावाद की सीमा में समाविष्ट किए जा सकते हैं, वे अपनी मूल जाति और काव्य-दृष्टि के अनुसार वे स्वच्छन्दतावादी नहीं हैं। मैं इसी आधार पर उनके काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन किया है। पं० राम-नरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, मुकुटपर पाण्डेय, तथा कई अन्य कवियों की काव्य-दृष्टि स्वच्छन्दतावादी है। वे अपने चित्रण में पुनरुत्थानवादी-मैतिकावादी नहीं हैं। उनकी कृतियों में स्वदेश-प्रेम के संगीत के साथ कर्मव्यवाद का गंभीर भाव भी है। पुरातन उनके लिए प्रेरणा है, शरण-स्थल नहीं। आधुनिक जीवन को ठीक से समझने और उसी दिशा देने का इन कवियों ने सतत प्रयत्न किया है। इन कवियों की रचनाओं में आधुनिक बुद्धिवाद के भी बीज मिलते हैं, जो भावी हिन्दी काव्य में पल्लवित हुए हैं। उन्होंने अपने को अति भावुकता, अतिमैतिका, अव्यावहारिक, आदर्शवाद से बचाया है। उनकी कृतियों में वर्तमान के स्वर मुखरित हुए हैं जिन में भाविक का रुन्देश है ।

विवेच्य युग की तीव्र प्रवृत्ति छायावाद रही है जो उसके मध्य में उभरने लगी थी । उस काल में कोई एक ऐसा काव्य-कृति प्रकाश में नहीं आई, जिस से उसकी वास्तविक रूप रसा स्पष्ट होती । उन् १६२० ई० तक --

छायावादी कवियों की कोई पाठक और आलोचक सम्भीरता से छेने की तैयार नहीं था । इन कवियों की आरम्भिक रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियों का जो रूप मिलता है उसे मैंने उत्तम अध्ययन ही प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से प्रताप और पन्त की रचनाएँ ही गई हैं। फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त निराला जी की कोई काव्य-कृति इस पुस्तक में प्रकाश में नहीं आई । यही बात मुकुटधर पाण्डेय के लिए कही जा सकती है। इसलिए इन दोनों का इनकी फुटकर रचनाओं के

### क्या व्यासिक उपाध्याय हरिवंश

भारतेन्दु काष्ठ से काव्य-जीवन का आरम्भ करने वाले कवियों में हरिवंश का नाम प्रमुख है। भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी कवियों की कल्पना और अनुभूति संकुचित थी। भारतेन्दु ने हिन्दी काव्य में मानव के प्रति सहानुभूति का तत्व प्रस्तुत करते हुए एक नये अध्याय को आरम्भ किया। हिन्दी कवि की कल्पना और अनुभूति अपने विस्तृत क्षेत्र की सीमा में लगी। समतामयिक युग की उत्कृष्टतात्मकता की नया जीवन प्रदान करने वाली इस प्रवृत्ति द्वारा निर्दिष्ट केन्द्र की साथ से पहले कलात्मक रूप में हरिवंश ने ही स्वीकार किया। हरिवंश ने 'प्रिय-प्रवास' की रचना करके प्रेम-विषयक कल्पना और मार्मिक अनुभूति की काव्यात्मक अनुसंधान प्रदान की, रीतिकालीन प्रथा-नायिका के स्थान में त्याग-मयी, सेवान्वयी राधा की अवतारणा करके राधा कृष्ण के प्रणय को अत्यन्त उच्च स्वरूप पराकृत पर आसीन किया। हरिवंश ने विरहिणी राधा के विरह वर्णन में गीति काव्यात्मक तत्व का समावेश करके एक नयी कलान्ति का अन्त कर दिया। हरिवंश ने साहित्य के गत्यवरोध का अन्त करने के लिए 'प्रिय-प्रवास' की राधा को साधारण नारी और कृष्ण को महापुरुष के रूप में वर्णित किया। उन्होंने कृष्ण और राधा के संघर्षमय जीवन का चित्र वर्णित करके संस-विश्वास की लकड़ी के सहारे लड़ी होने वाली मानव श्रद्धा की स्वाभाविकता का पल्ला पकड़कर चलने के योग्य बनाया। 'प्रिय-प्रवास' की छोटी सी कहानी के भीतर कृष्ण जीवन का संपूर्ण वृत्त और उस के माध्यम से कवि ने समाज के विविध वर्गों और समस्याओं का सुन्दर समावेश किया। इस छोटे से वृत्त के भीतर मानव मन की सूक्ष्मातिशुद्ध भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विवरण और भी अधिक सुन्दर बन गया। कवि ने वैज्ञानिक और बुद्धि-प्रधान युग में एक नये कृष्ण और एक नयी --

राधा का निर्माण किया। 'प्रिय- प्रवास' एक सज्जन विप्रलम्भ काव्य है। कृष्ण का कवि ने मौलिक और नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। कृष्ण युग- रूप जन- नेता और राधा भागवत की राधा व होकर आधुनिक युग की प्रभुस मारी के रूप में चित्रित हुई है। राधा के नायक से कवि ने राष्ट्रीय जीवन की एक केन्द्रीय समस्या का उद्घाटन किया है और उस का स्थूल समाधान भी प्रस्तुत किया है।<sup>१</sup> उस से पूर्व की रचनाएँ कवि के प्रयोग की परिचायिका हैं। उन कृतिवर्गों में प्रेम और कृष्ण के विभिन्न पदों को लेकर काव्य- रचना के लिए किये गये अभ्यास की फलक मिलती है। इस लिए हम ने यहाँ केवल 'प्रिय- प्रवास' को ही अपने अध्ययन का आधार बनाया है और उस में यह देखने का प्रयत्न किया है कि विवेक- कालीन स्वच्छन्दतावादी भाव धारा को कवि ने कहां तक ग्रहण किया है।

---

१- डा० कुमारका प्रसाद चक्रवर्ती, प्रिय- प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन -  
द्वितीय संस्करण - पृ० १७ आगरा

### प्रिय - प्रवास का मूल्यांकन स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से

परम्परावादी काव्य प्रवृत्तियाँ उस युग के अधिकतर कवियों को जकड़े हुए थीं। फिर भी हरिवंश जी ने परम्परा से बाहर निकलने का प्रयत्न किया है। उनके प्रिय- प्रवास में परम्परावादी प्रवृत्ति के साथ समानान्तर रूप से काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ भी प्रवाहित हुई हैं। उस कृति में वीथ और रचना के कुछ नये उद्घाटन अंकुरित हुए हैं। वही दृष्टिकोण से हम हरिवंश जी की इस महान कृति का मूल्यांकन स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से कर सकते हैं।

‘प्रिय- प्रवास’ महाकाव्य को विवेच्य काल की प्रतिनिधि रचना के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक महाकाव्य अपने कवि के युग का प्रतीक होता है। उसमें युगानुकूल विचारों का प्रवाह अपनी मंथर गति से प्रवाहित होता हुआ युग के पर्व, मान्यताओं, दुर्बलताओं एवं विशेषताओं की अपने कल-कल निनाद द्वारा उद्घोषित करता रहता है प्रत्येक महाकाव्य किसी न किसी प्रेरणा से प्रेरित होकर ही लिखा जाता है। ‘प्रिय- प्रवास’ से पूर्व लड़ी बोली का कोई भी महाकाव्य निर्मित नहीं हुआ था। हरिवंश ने सर्वप्रथम यह प्रयास किया और अपनी अनुठी प्रतिभा एवं अनुपम कला का परिचय देते हुए अपने युग के एक बड़े अभाव की पूर्ति की।<sup>१</sup> विवेच्य काल का यह महाकाव्य कृष्ण- काव्य परम्परा का एक अभिनव संस्करण है। इस महाकाव्य से पूर्व या मध्य- युग में भी राधा- कृष्ण के नाम पर बहुत सी रचनाएँ हुई परन्तु कहीं भी हमें राधा कृष्ण के प्रेम-

१- डा० च्छारिकाप्रसाद सक्सीना - प्रिय- प्रवास में काव्य संस्कृति, द्वितीय सं०



१२वें की मिलाई।

का ऐसा परिष्कृत रूप नहीं। राधा- कृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित जो रचनाएँ हुईं उन में राधा के नाम पर लिखतापन और कृत्रिमता है। जयदेव की बिलासिनी, प्रेम- विहङ्गा राधा, विद्यापति की यौक्तीन्मल मुग्धा नायिका जैसी, राधा, चण्डीदास की धरकीया नायिका जैसी राधा, सुर की यथाया- संतुलित मागरी राधा, नन्ददास की तार्किक राधा, या रीति-काल की उच्चकृत- बल्लभ किशोरी राधा। प्रेम में से राधा का कोई भी रूप जिसे उन कालों के कवियों ने अपने जीवना-दर्शों के अनुरूप प्रतिष्ठित किया था। अब मान्य नहीं हो सकता था। हरिजीव जी ने हिन्दी को एक नयी राधा दी जो आधुनिक युग के अनुरूप थी। हरिजीव ने उसी कृष्ण-राधा संबंधी पुराने दृष्टिकोण को फल कर उसमें समात्मिक युग का रंग भर दिया। हरिजीव की राधा न उपेक्षाता है और न प्राचीन कवियों की कठपुतली, बल्कि उसका अपना एक व्यक्तित्व है, एक दृष्टिकोण है और वह जीवन की नीति और आदर्श-मार्ग पर चलने वाली समाज- सेविका है। हरिजीव की राधा भारतीय नारी के समस्त गुणों से सम्पन्न होकर प्रिय- प्रवास महाकाव्य के रंग मंच पर आई है। ऐसे कवि ने नारीत्व का गौरव दिया है। हरिजीव की राधा ने पुराने कवियों की पुर्णता दी क्योंकि यह राधा आधुनिक युग की समस्त मार्गों की पूर्ति करती है। वह पुरुषों के साथ कब से क्या मिलाकर कार्य करने की प्रेरणा देती है उस समय ऐसी ही स्मरणियों की आवश्यकता भी थी जो देश प्रेम- विश्व- प्रेम में लीन होकर लोक- सेवा- लोक- हित एवं लोकोपकारी कार्यों के लिए जाने बढ़ती तथा घर की चारदीवारी की छोड़कर समाज के क्षेत्र में कार्य कर सकती। हरिजीव द्वारा चित्रित राधा के सामाजिक व्यक्तित्व का एक निम्न रूप प्रकार है :

१- शिवदान सिंह चौहान- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० ५० वि० १०  
राजमल प्रकाश, दिल्ली १९६९।

पेदाया थीं पुनः सिर की छातिका थीं लोनों की ।  
 कंगारों की परम निधि थीं बौनपी पीड़ितों की ।  
 दोनों की थीं बलिम, जननी थीं जनायाशिकों की ।  
 बाराब्या थीं कम ज्वनि की प्रेमिका विश्व की थीं ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार ज्ञान-लेखिका के रूप में राधा का चरित्र मधुर एवं शिष्ट बन पड़ा है। राधा के व्यक्तित्व में हरिऔष ने सामाजिक भाव इतने भर दिए हैं कि उन में युग की स्पष्ट छान पितार पड़ती है। हरिऔष जी केवल राधा की नहीं बल्कि कृष्ण की भी वादर्थ मानव रूप में अंकित किया है। 'प्रिय-प्रवास' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है कि- 'मैंने श्रीकृष्ण-चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है कुछ करके नहीं' ----- 'यों महापुरुष हैं उसका अवतारित होना भी निश्चित है ।<sup>२</sup> अतः 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण वादर्थ मानवता के प्रतीक हैं । कृष्ण का व्यक्तित्व कहीं भी ऐसा नहीं है जहाँ वापुनिक बुद्धि-जीवी सहमत न हो सकें -

वपुर्ष- वादर्थ दिला नरत्व का ।  
 प्रदान की है पुरुष की मनुष्यता ।  
 लिखा उन्होंने चित की समुच्चता ।  
 बना लिया मानव कोप-पुन्य की ॥<sup>३</sup>

कृष्ण के चरित्र-चित्रण के समय हम देखते हैं कि कवि अपने तत्कालीन युग की सामाजिक-धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ से बहुत अधिक --

१- हरिऔष- प्रिय-प्रवास, सर्ग १७-४६ ।

२- हरिऔष- प्रिय-प्रवास की भूमिका से उद्धृत - पृ० ५ ।

३- वही, वही, पृ० १७४ त्रयोदश सर्ग २४ ।

प्रभावित रहा है। वा यही कारण है कि 'प्रिय- प्रवास' में स्थान- स्थान पर उन विचारों, छलकों, एवं मान्यताओं की स्पष्ट झलक विद्यमान है। कवि ने अपनी युग के मौलिक विचारों को पौराणिक कथा के अन्तर्गत भरकर दिव्य गुणों से ओत- प्रीत न बिताकर मानवीय गुणों से सम्पन्न बिताया है। कवि के इन दोनो चरित्रों (नायक- नायिका) में आधुनिक युग की पीढ़िकता, और मनीषिता के प्रति उत्कट लालसा है। उन मौलिक विचारों के कारण ही हरिऔध के 'प्रिय- प्रवास' का विवेच्य काल में बहुत अधिक महत्त्व है। हरिऔध की कृष्ण- भावना के मूल में गांधी जी के दर्शन बहुत आजानी से छिपे जा सकते हैं क्योंकि कृष्ण के चरित्र में आधुनिक युग के सत्काशीम राजनीतिक जीवन की सुन्दर फाँकी है। विवेच्य युग में शिक्षा के आगे बर्धना पर कल मिया गया । 'प्रिय- प्रवास' का रचयिता इन विचारों से बहुदमस्तनत नहीं है। उसका विश्वास है कि अगर कोई मनुष्य समाज को पोड़ा दे, कर्म में बाधा डाले, ऐसे प्राणी को समाज नहीं करना चाहिए :

ज्ञाना नहीं है लाल के लिये नहीं  
समाज उत्साहक ? दण्ड योग्य है  
कु- कर्म - कारी नर का उबारना  
सु- कर्मियों को करता विपन्न है ॥ १

हरिऔध जी के इन मौलिक विचारों में स्वच्छन्दतावादी भावना ही रही है । कृष्ण के चरित्र द्वारा 'प्रिय- प्रवास' में मानवता एवं सेवा- भावना की पूर्ण रक्षा हुई है । वस्तुतः 'प्रिय- प्रवास' में हरिऔध ने राष्ट्रीय जीवन की एक केन्द्रीय समस्या की सुन्दर फाँकी उपस्थित की है समस्या है स्थानीय और --

---

१- हरिऔध- प्रिय- प्रवास, पृष्ठ १८२ - चमोदस राय, हिन्दी साहित्य कुटीर  
वाराणसी ।

सार्वदेशिक, व्यक्तिगत और एकल मानवगत हितों, राग-उत्कर्षों के वैयक्तिक और परस्पर समन्वय की। स्वच्छन्दतावाद का यही पहला रूप है, जब व्यक्ति-वादी चेतना इतनी मुक्त नहीं हुई कि व्यक्ति और समाज के हितों में दुर्निवार वैयक्तिक दीर्घ और अत्यन्त जटिल मनोवैज्ञानिक समस्याएँ पैदा हो गई हों।<sup>१</sup> उनकी समस्याओं को साकार रूप देने के लिए हरिश्चंद्र ने ब्रज से कृष्ण-प्रवास का मार्मिक प्रयोग बना और इसी प्रयोग के माध्यम से युग-जीवन की मुख्य समस्या को अपने काव्य में चित्रित किया।

प्रेम-काव्य का स्रोत रहा है। समानुसार उस में आज तक परिवर्तन होते आ रहे हैं। विवेच्य युग के कवियों ने जहाँ राम और कृष्ण को नये सन्दर्भ में रखा है उसी प्रकार प्रेम भी उनके काव्य में नये रूप में चित्रित हुआ है। विवेच्य युग की महान कृति 'प्रिय-प्रवास' है। उस में चित्रित प्रेम ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रवर्धन किया है। 'प्रिय-प्रवास' में राधा-कृष्ण का प्रेम मानवीय जाति भूमि पर अवतरित हुआ है। विवेच्य युग में मानवतावादी दृष्टिकोण को निर्मित करना वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य की भाव भूमि का बोध कराने में सहायक है। इस में राधा और कृष्ण के प्रेम में मौलिकता है। दोनों के प्रेम में वैयक्तिकता को मानवार्थ का पूर्ण रूप में प्रस्तुत हुआ है। उनका उदात्त प्रेम व्यक्तिवादी होने के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य में गिना जा सकता है। राधा के मन की गति निम्नांकित शब्द में दृष्टव्य है -

प्यारे लाले, तु -मन को लूँ, प्यार से पीद लें।

ठंडे होवें, नम-दुःख हों दूर, मैं पीद पाऊँ॥

ह : भी है भाव मम उर के और ह भाव की है।

प्यारे लाले, जगहिल करे गेह पाछे न लाले॥<sup>२</sup>

१- डा० शिवदान सिंह चौहान- हिन्दी साहित्य के जल्दी वर्ण, पृ० ५९ वि० सं०

२- हरिश्चंद्र- प्रिय-प्रवास - पृ० २५३, चौदह सों, (१८ पं.)

हरिवंश के महाकाव्य 'प्रिय- प्रवास' में राधा का प्रेम विश्व प्रेम के रूप में अवतरित हुआ है। 'प्रिय- प्रवास' की राधा एकान्त प्रेमिका नहीं है। उसका दुःख अधिक दबकर संवेदनशील हो उठा है। वही लिए तो उस की प्य के अन्त पथिकों के सुख दुःख की भी अनुभूति है। उदाहरण के लिए निम्नांकित अंश दृष्टव्य हैं ।

कोई क्लान्त कृष्णक ललना खेत में जो दितावे ।

धीरे- धीरे परत उसकी क्लान्तियों को मिटाना ॥

जाता कोई बलद याध हो व्योम में तो उठे ला।

हृत्वा धूरा सुखित करना, तत्प मूलांगना को॥<sup>१</sup>

'प्रिय- प्रवास' की राधा केवल प्रेमिका नहीं है। उसके मन में मानव से लेकर प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के लिये सहानुभूति और संवेदनशीलता है। विवेक काल के परम्परावादी एवं लड़वाही वातावरण के भी काव्यगत नवीन चेतना और स्वच्छन्दता लाने का हरिवंश ने सफल प्रयास किया है। यही कवि का मानवतावाद है। बुद्धि और विवेक की समर- प्रतिभा राधा विषाद के क्षणों में भी धैर्य नहीं खोती है :-

मेरी जैसी मृदु- पवन से सर्वता शान्ति भागी।

कोई रोगी अधिक प्य में जो पड़ा हो कहीं तो॥

मेरी सारी दुःखद वशा पूर उत्कण्ठ होके ।

सौना सारी क्लृप्त उसका शान्ति खानि होना॥<sup>२</sup>

१- हरिवंश- प्रियप्रवास- पाठ्य, पृ० ६६ ।

२- वही - वही - ११ । पृ० ११

प्रिय- प्रवास की राधा की कृष्ण- छलना और रांगी का ही ध्यान नहीं बल्कि-

जो पुष्पाँके मधुर - रस कां साथ सानन्द केते ।  
पीते हाँवें मरर भरी सौम्यता तो दिताना ॥  
घोड़ा सा भी न कुसुम छिछे और न उन्मिदग्न वे हों ।  
क्रीड़ा हीवें न कलुषमयी केलि में हों न बाधा ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार कवि ने राधा- कृष्ण को प्रेम के माध्यम से उज्ज्वल जादूई की स्थापना की है। 'प्रिय- प्रवास' के कृष्ण और राधा लोक नायक -नायिका की भूमिका में अवतरित हुए हैं। ये दोनों काव्यों का सही ढंग से मूल्यांकन करने वाली हैं। इन दोनों में नवयुग की चेतना को कवि ने समाविष्ट किया है। कवि ने गीतियों से स्वयं कलाया है कि :

धीरे- धीरे प्रमित मन को योग द्वारा लम्हालों ।  
स्वार्थों को भी ज्ञान द्वित के त्वं सानन्द त्यागों ।  
पूछें मोक्ष तुम छत के वाचना- मुक्तियों को  
हाँ हाँकेगा सन दुःख की शान्ति न्यारी मिलेगी ॥<sup>२</sup>

उपर्युक्त छन्द में राधा, कृष्ण तथा गीतियों का प्रेम उज्ज्वल एवं उदात्त रूप में चित्रित हुआ है। प्रेम का उदात्त स्वरूप स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को परिशिष्ट करता है। राधा के मन में मिश्री प्रेम का भाव भी विश्व प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित कंठ द्रष्टव्य है :

१- हरिवंश- प्रिय- प्रवास, पाष्ठसर्ग- पृ० ६६ ।

२- हरिवंश- प्रिय- प्रवास, एकादश संस्करण, पृ० ८१ ।

मेरे जी में अनुपम मछा विश्व का प्रेम जागा।  
मैंने देखा परम प्रभु की स्वीय प्राणोत्पत्ति ही मैं ॥<sup>१</sup>

हरिबोध जी की यह भावना वस्तुतः उनके स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का बोध कराती है। प्रेम के उन्मर्ग में हरिबोध जी ने अपनी पूर्ववर्ती शृंगारी कवियों की परम्परा का अनुसरण नहीं किया है। बल्कि एक नये दृष्टिकोण के अनुरूप बने हैं। उनकी इसी नवीनता के विषय में रवीन्द्र उदाय वर्मा ने कहा है कि- कृष्ण से अलग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानव जाति एवं जगत् लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है और वह प्रत्येक प्राणी एवं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण के रूप का दर्शन कराती है।<sup>२</sup> निस्सन्देह राधा की भावना बहुत ही सुन्दर और मधुर बन गई है। कवि ने नयी सैतना के साथ विवेच्य युग की आदर्शवादिता की प्रतिष्ठा भी बनाये रखी है। राधा का पवन को पाँव- निर्देश और उद्देश भारतीय नारी की शिष्टता का सफल परिचायक है। उसके माध्यम से कवि ने नये मानवतावादी भावनाओं को मरा है। 'प्रिय- प्रवास' के भावों को स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

मानव और प्रकृति का बहुत पुराना सम्बन्ध है। मानव में सर्वप्रथम प्रकृति की सुरम्य गीद में ही अपनी जार्हें साँझी क्योंकि प्रकृति का इतिहास मानवता के इतिहास से भी प्राचीन है। व्यक्ति अपने जीवन में प्रकृति की परिधि द्वारा भिरा रहने के कारण उससे अलग रहकर जीव ही नहीं सकता। उसके विचारों

१- हरिबोध- प्रिय- प्रवास, एकादश संस्करण पृ० ६३ ।

२- डा० रवीन्द्रउदाय वर्मा - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव- पृ० १६१

तथा उद्गारों पर प्रकृति का प्रभाव बांधनीय है। जिस काल और युग में मानव का ज्ञान जिस अवस्था में था उसने उसी रूप में प्रकृति को अपनाया है तथा उसी रूप में प्रकृति काव्यों में अवतरित हो पायी है।<sup>१</sup> विवेच्य काल के महाकाव्य 'प्रिय- प्रवास' में कवि ने प्रकृति वर्णन बहुत झूठा और स्वतन्त्र होकर किया है। प्रारम्भ के हिन्दी काव्य में ऐसा स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण नहीं मिलता है। रीति-कालीन कवियों ने केवल विषय को उठाने के लिए ही प्रकृति वर्णन किया है। परन्तु श्रीराम हरिदास ने अपने प्रिय- प्रवास में स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन किया है। प्रकृति हरिदास के लिए एक साध्य के रूप में रही है। उन्होंने प्रिय- प्रवास के प्रत्येक सर्ग में सुन्दर प्रकृति चित्रण किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्रुति दृष्टव्य है :

पिबस का खसान लीप था ।  
गगन था कुछ लीकित ही बला ॥  
तक जित पर थी क्षमराजली ।  
कालिनी - कुल - बल्लभ की ज्ञा ॥<sup>२</sup>

हरिदास जी ने प्रातः बेल का वर्णन भी बहुत सजीव किया है -

फूली फैली ललित ललित वायु में मन्द डोली ।  
प्यारी प्यारी ललित लहरे पावना में बिराजी ॥  
सोने की- ली कलित किरणें मोपिनी और झुंटीं ।  
फूली फूली कुसुमित बरों में ली ज्योति फैली ॥<sup>३</sup>

१- डा० विष्णुधन सिंह- वापुनिक हिन्दी काव्य की स्वच्छन्द धारा, पृ० १०० ।

२- हरिदास- प्रिय- प्रवास - पृ० १ (हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस)

३- वही - पृ० ४५ सर्ग ५-२- (हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस)



इस प्रकार के कथार्थ चित्रण 'प्रिय- प्रवास' के नवम् सर्ग में है। पवन के द्वारा राधा ने जो संदेश दिया है वह हरिजीव की मानुषता का सच्चा प्रमाण है। हरिजीव ने अपनी कौमल अभिव्यक्ता द्वारा प्रकृति को स्वीकृत बना दिया है उस में संवेदनशीलता की अनुमति की है। पवन के स्थान पर वार हरिजीव जी ने कुछ और चुना होता तो शायद यह विषय उतना मार्मिक, स्वीकृत एवं मधुर न होता। निजीव पवन को राधा ने अपने प्रेम में डूबकर स्वीकृत मान लिया है, उस से संदेश कह कर उसको सान्त्वना मिली है। इसीलिए यह कथन सत्य है कि- हरिजीव जी ने प्रकृति में मानवीय कर्ण की भावना की सही अधिक प्रसूतता दी है। प्रकृति उन्हें मानव की सी देखा करती हुई प्रतीत होती है। जब प्रकृति उनके लिये चेतन हो गई है। वह उनके साथ रोती हंसती है। कभी वह समतामयी माँ के समान स्नेह प्रकट करती है कभी सहाय्य की भांति संवेदना सहानुभूति और एकात्म्य प्रकट करती है। प्रकृति के चेतन प्राणी मानव की भांति वर्ण के साथ प्रमुदित और मानव के वियोग में दुःख का अनुभव करते हैं। 'हरिजीव' ने 'प्रिय- प्रवास' में कहीं- कहीं मानव और प्रकृति की देखाओं में विम्व - प्रतिविम्व के भाव की प्रकट किए हैं। 'प्रिय- प्रवास' में कम- तब हमें अस्वाभाविकता और कृत्रिमता की भी झलक मिलती है परन्तु फिर भी वह निःसन्देह कहा जा सकता है कि प्रकृति के प्रति उतना बड़ा प्रेम एवं अनुराग प्रदर्शित कर प्रियप्रवासकार ने प्रकृति का गम्भीर एवं विस्तृत चित्रण किया है।

विवेच्य काल में हरिजीव ने भाषा के दौन में एक बहुत महान कार्य कर दिखाया है। उनका 'प्रिय- प्रवास' सड़ी बोली का सर्वप्रथम महाकाव्य है। विवेच्य युग को यह हरिजीव की बहुत बड़ी देन है। इस महाकाव्य की भाषा के कारण स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन की पर्याप्त कल मिली। विवेच्य कालकी --

सबसे बड़ी विमूर्ति बाबाय मलावीर प्रताप छिपेदी रहे । उस कारण उनके प्रभाव से हरिऔध का कवना भी कठिन रहा । यही कारण है कि सही बोली को प्रशस्त पीराहे पर लड़ा करने के लिये उन्होंने संस्कृत - कूर्वा को अपनाया है । उसी परम्परापालन के कारण हरिऔध भी थोड़े क्लिष्ट भी हो गये हैं :-

नाना- भाव- विभाव- हाव- कुलता आगोद आपुरिता ।

छीला- छीला- कटाफ-पात, निपुणा भूमणिमा-पंडिता ।

वादिजादि लोद- वादन -परा आभूषणाभूषिता ।

राजा थीं तुमही पिताउ-नयना आनन्द- आन्दोलिता ।<sup>१</sup>

उस क्लिष्टता के कारण बाबाय में सरलता तथा प्रासादिकता नहीं रह पाई है क्योंकि काव्य की स्वच्छन्दतावादी भाति में छौंक- भाणा आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है । उस प्रकार की कृपिमता एवं अस्वाभाविकता के उपावेश से 'प्रिय- प्रवास' की स्वच्छन्दता थोड़ी अवरुद्ध पितार्ह पड़ती है। अभिव्यक्ति के लोच में भी हरिऔध जी ने कुछ नवीनता दितार्ह है। उन्होंने अन्त्यानुप्रास का बन्धन तोड़ कर अनुकान्त काव्य रचना का पथ प्रशस्त किया है। 'प्रिय- प्रवास' से पूर्व तुक का सहारा छोड़ कर चौरे भी कवि महाकाव्य लिखने का साहस नहीं कर सका है ।

विवेच्य काल जो प्राचीनता, शक्तिवृत्तात्मकता तथा नैतिकता का युग रहा है। उस संक्रान्ति - युग में भी हरिऔध ने अपने महाकाव्य 'प्रिय- प्रवास' में काव्यगत नवीन चेतना को लाने का एकल प्रयत्न किया है। हिन्दी काव्य में 'प्रिय- प्रवास' की गणना एक क्रान्तिकारी काव्य के रूप में जा सकती है। हरिऔध जी ने इसमें ('प्रिय- प्रवास') नूतन अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ --

रत्न का प्रयत्न किया है। 'प्रिय- प्रवास' से पूर्वी हिन्दी में कोई महाकाव्य अथवा सप्थ काव्य संस्कृत शब्दों में नहीं लिखा गया है। हरिदास ने सर्वप्रथम अपनी प्रथम काव्य में अतुलान्त शब्दों का प्रयोग किया है। 'प्रिय- प्रवास' से पूर्व किसी भी महाकाव्य में प्रकृति के संयोग में मानव- विकास का ऐसा स्वतन्त्र स्वीकृति एवं मनोरम चित्र नहीं मिलता है। हरिदास ने अपने समतामयिक युग के लोकहित, विश्व- प्रेम, जाति भावों का सुन्दर वर्णन किया है। मारतेन्दु युग से चली जाती हुई देश- भक्ति की हरिदास ने सबसे पहले अपने महाकाव्य में काव्यात्मक वामिच्य- भिन्न प्रदान की है। वीर रस के वर्णन में राष्ट्रिय भावों का समावेश करके वायुमिच्य युग में स्वजाति- प्रेम एवं स्वदेश प्रेम का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है। हरिदास ने राधा-कृष्ण की वसन्त कृतम्बक के भावों- से परिपूर्ण व्यक्ति करके अपने युग की सर्वोच्च भावना की काव्य का कला सुन्दर रूप प्रदान किया है।<sup>१</sup> 'प्रिय- प्रवास' की राधा का कथन भी हमारे लिए नया नहीं है। उसका नारीत्व संपूर्ण जीवन में प्रतिष्ठित नारीत्व का प्रतिनिधित्व कर सकता है। अतः 'प्रिय- प्रवास' में युग का भाव स्पष्ट परिलक्षित है। विवेक काल की परम्परावादी प्रवृत्तियों के समानान्तर रूप से काव्य की स्वचन्दतावादी प्रवृत्तियाँ भी प्रवाहित रही हैं। शास्त्रीय परम्पराओं से अनुशासित रहने पर भी स्वचन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ 'प्रिय- प्रवास' में किसी तीया तक विकसित हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दों में - 'प्रिय- प्रवास' हिन्दी का बहुत बड़ा वीर युग प्रवर्तक काव्य है। उसके संगीत वीर सज्ज उन्मेष की क्षमता उस युग की कोई रचना नहीं कर सकती है।<sup>२</sup>

१- डा० चारिका प्रसाद सक्तीना- 'प्रिय- प्रवास' में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० १६।

२- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी- हिन्दी साहित्य कीसकी ज्ञाप्ति, पृ० ७।

### मैथिलीकरण गुप्त

आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि मैथिलीकरण गुप्त का एक प्रमुख स्थान है। आपकी <sup>हस्ता</sup>बोली की आरम्भिक रचनाएँ सरस्वती में बराबर छपती रहीं। उन दिनों उत्तिकृपात्मक कविताएँ छिहने का बड़ा बौर था। 'भारत-भारती' का जन-गीता के रूप में हिन्दी संसार के सामने आना, उस के कवि के रूप में गुप्त की को महान्गारण कहा जा सकता है। बिबुवेदी जी के उपदेशों का गुप्त जी पर बहुत प्रभाव था। जू १९१० ई० में गुप्त बा का एक छोटा-सा प्रबन्ध काव्य 'भारत-भारती' प्रकाशित हुआ। उस काव्य ने हिन्दी प्रेमियों को गुप्त जी की ओर विशेष आकृष्ट किया। 'भारत-भारती' के द्वारा हिन्दी भाषिणियों में अपनी भाषा और देश के प्रति नवी गौरव की भावनाएँ जागृत हुई और गुप्त जी का प्रकाशन के बाद राष्ट्र-कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। गुप्त जी के काव्य में भारतीय जीवन की संपूर्ण कछक भिन्न जाती है। गुप्त जी ने कुछ कमर धरिजों की धृष्टि भी की है। उर्मिला, यतीवता, और विष्णु प्रिया धावि उन की खूबी धृष्टियाँ हैं। सही बोली के विकास में गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान है। सही बोली को काव्योपयुक्त रूप गुप्त जी ने ही दिया है।

गुप्त जी भारतीय संस्कृति के पक्ष रहे हैं। वे उस संस्कृति के मूल वास्तवता भी हैं जिसे हिन्दुत्व कहा जा सकता है। वे संकीर्णता के विरोधी, और उदार धृष्टिशील के थे। उनके काव्य में पर्याप्त यत्न-तन्त्र दिखाई पड़ती है। पर्याप्त की ही सामाजिक पुवार का मूल मानते हैं। यही कारण है कि उनकी निष्ठा संकुल परिवार में है। वह स्त्री-पुरुष को एक कुदरे के छिद अनिवार्य ही नहीं बल्कि एक कुदरे का प्रेरक मानते हैं। वह नारी को केवल विहास का साधन नहीं बल्कि पुरुष के मार्ग में समभाग होने वाली अर्द्धांगिनी मानते हैं। उन का काव्य-

प्रातिशील होने के साथ-साथ भारतीय अधिक है। उन के विश्वास, उन की परम्पराएँ सब पर भारतीयता की गहरी छाप हैं। गुप्त जी अपनी कालानुसरण क्षमता के कारण ही युग प्रतिनिधि कवि हैं। गुप्त जी के समस्त काव्य पर भारतीय बान्दीलों की काँकी मिल जाती है। गुप्त जी का जगज्ज घब भी राष्ट्रवीर और पराक्रम की प्रशस्ति देने के लिए आया। उस में राष्ट्र-वीरों की बोलिदान देने का ज्वर सदैव सुनाई देता है। इन की प्रसिद्ध रचनाएँ - 'भारत-भारती', 'रंग में भंग', 'चिह्न मट', 'फलाखी का युद्ध', 'क्रिस्तान', 'मनवटी', 'यशोधर', 'हिन्दू', तथा 'क्रिस्तान'। परन्तु इन यहाँ केवल कवि की उन कृतियों का विवेचन करें जो विविध काल की ~~कालानुसरण~~ सीमा में जाती हैं तथा वे कृतियाँ स्वच्छन्दतावादी भावधारा में कहीं न कहीं सीमाप्राप्ति दिखाई देती हैं। गुप्त जी अपने मूल रूप में परम्परावादी एवं मैतिकतावादी कवि हैं। लेकिन कवि चूँकि अपने समय की प्रत्येक भावधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि वह सुदृष्टा ही नहीं युग दृष्टा भी होता है। गुप्त जी पर तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, बान्दीलों का प्रभाव दिखाई देता है। समसामयिक प्रभाव की कवि ने अपने पुराने ढरे में रखकर भी फिर सावधानी से ग्रहण किया है यही उसकी कला की नवीनता और विशेषता है। गुप्त जी ने अपने काव्य में युग की बदलती हुई भावनाओं और प्रणालियों को ग्रहण करने में बड़े ही शैल का परिचय दिया है। कवि की समस्त कृतियों में उसका युग भावित्व नज़र आता है।

(भारत-भारती रचना काल उन् १९११ ई०)

भारत-भारती विवेच्य काल का महत्वपूर्ण रचना है। इस में तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का प्रतिकलन हुआ है। भाषा और शैली-शिल्प की दृष्टि से भी यह कृति परम्परा से जुड़ा है। इसी लिए विवेच्य-युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसका ऐतिहासिक महत्व है। डा० कैदरीनारायण शुक्ल का मत है कि-गुप्त जी के बिना द्विवेदी युग का कौंसे भी परिचय या विश्लेषण अपूर्ण आता वधूरा रहता युग की पूरी पूरी मालक हमें गुप्त जी में मिलती है। वे हमारे प्रतिनिधि कवि हैं और भारत-भारती उस युग का दर्पण है।<sup>१</sup> गुप्त जी की इस रचना से युग का सम्पूर्ण परिचय मिल जाता है। इस कृति में संस्कृत की वृद्धता और न्याय का आग्रह है। स्वदेश प्रेम को व्यंजित करने वाला स्वर है। अवसाद और चिन्मत्ता के साथ-साथ इस में उत्साह और शक्ति की भी व्यंजना हुई है। द्विवेदी - युग की सुधारवादी और नीरस भावना को गुप्त जी ने भी अपनी भारत-भारती में सुदृढ किया है परन्तु सुधारवाद के ये स्वर कर्मठता और उत्साह में परिवर्तित हो गए हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द द्रष्टव्य है :

जति धीरता के साथ हमने कार्य में तत्पर रही।

जापघरिया के धार धारे कीरवर बनकर तहीं।

सब विघ्न - भय भिट जायें, लौगी उपलब्धता अन्त में,

फिर कीर्ति फैलेगी हमारी हमारी एक बार विगन्त में।<sup>२</sup>

१- डा० कैदरी नारायण शुक्ल-साधुनिक काव्य-भारत का सांस्कृतिक झोंक-

पृ० १४६ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त-भारत-भारती, तीसरी संस्करण, पृ० १५८ ।

गुप्त जी विवेक्य युग की नयी रचना से प्रभावित रहे हैं यही कारण है कि प्राचीन<sup>ही</sup> से मौल्य रखते हुए भी वे नयी रचना को स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। उन्होंने कानुसूयता पर बल देकर स्वच्छन्दतावाद का व्योम की ओर इशारा किया है। उन्होंने भारतीयों को संवेक दिया है कि समय से अवगत रहना ही प्राति-  
शक्ति है। उदाहरण के लिए देखिए :-

प्राचीन ही कि नवीन होइ रूढ़ियां जी हों पुरी,  
कर विवेकी तुम दिखावो हंस पैती चातुरी ।  
प्राचीन बातें ही मछी है यह विचार शीक है।  
ऐसी अवस्था हो जहां पैती व्यवस्था ठीक है।<sup>१</sup>

‘भारत-भारती’ के द्वारा गुप्त जी ने काव्य की समाज की प्राति के साथ संवाद कर दिया । सामान्य जनता के रचनाओं से ऊंच चुकी थी। उसे नये भावों, विचारों, एवं नयी कल्पनाओं की आवश्यकता थी । हन्ती काव्य-  
शक्तताओं को गुप्त जी ने बड़े सुन्दर ढंग- ढंग एवं स्वाभाविक रूप से काव्य के द्वारा प्रस्तुत किया । यह प्रस्तुतीकरण वहीं वहीं पुरुषत्वानुयायी भी हो गया । परन्तु फिर भी गुप्त जी ने इस काव्य रचना को श्रृंगार की एकीर्णता से बिकल कर व्यापक जीवन की भाव- भूमि पर लाकर नये मार्ग की लोज का कार्य- किया जो वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों की प्रेरणा का परिणाम था । इस काव्य रचना में जन- साधारण की मनोवृत्तियों का उजीव चित्रण हुआ है। गुप्त जी की इस रचना ने विवेक्य युग में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। यही कारण बाबाय विवेदी जी ने भी इस पर विचार करते हुए कहा है कि गुप्त जी के इस काव्य में स्त्रीवनी शक्ति है जिसकी प्राप्ति हिन्दी के किसी भी --

काव्य से नहीं हो सकती ।<sup>१</sup> उस में कवि का स्वदेश- प्रेम उत्साह, नवजागरण, उस तथा समृद्धि के स्वर गूँजते रहे हैं । उसने केवल अतीत का रोवन ही सामने नहीं रखा बिलकुल उसने कहा कि :

हम जौन थे, क्या हो गये हैं बीर क्या होगी बीबी।

बल्कि उस क्या होना चाहिए के लिए भी नयी सामग्री रखी है। स्त्रीलिङ्ग 'भारत- भारती' भारतीय नवजागरण की ऐतिहासिक अनिवार्यता का परिणाम है। उस में उपदेशात्मक स्वर के अतिरिक्त एक बड़ा विश्वास बीर कर्म की प्रेरणा भी विद्यमान है जो विविधयुग की स्वच्छन्दतावादी धारा से प्रभावित रही है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :-

हाँ- जी निराशाई रहै विश्वास यह बूढ़ झूल है ।  
 उस कात्मलीला मृषि को वह किमु न सकता भूल है॥  
 अनुकूल अवसर पर दयानिधि फिर दया दितलायेँ ।  
 वह दिन यहाँ फिर जायेँ फिर जायेँ॥<sup>२</sup>

गुप्त जी ने भारत- भारती में पुरुषार्थ पर जोर दिया है। हीनता की भावना का निराकरण भी उस में है। छत्ती को डा० सत्येन्द्र ने कहा है कि- गुप्त जी की इस रचना में आत्म गौरव का भाव अव्यक्ति का दौम, उन्नति की कामना, तथा सकल पुरुषार्थ जैसे भावों की अविव्यक्ति बहुत सुन्दर ढंग से हुई है यह नव- जागरण के विकास का मार्ग निर्देशन करने वाली कृति है।<sup>३</sup> उन्होंने 'भारत- भारती'

१- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी-, विचार विमर्श- सं० तृतीयार्ध पृ० १६५ ।

२- पैथिलीकरण गुप्त- भारत-भारती- ३३ वाँ सं० - पृ० १७६ ।

३- डा० सत्येन्द्र - गुप्त की कला- पृ० ४१ ।



में उन्नति का मार्ग कम बताया है। कम की भावना ही जीवन में सर्वोष्ठ भावना है। इसी के मूल में उन्नति के बीज हैं। इस भाव को बड़े उत्साह से उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

क्षिति धीरता के साथ अपने कार्य में तत्पर रहो।  
 क्षयधियों के बार सारे धीरवर बनकर रहो।  
 सब विघ्न सब मिट जायेंगे, होगी सफलता जन्त में,  
 फिर कीर्ति फैलेगी हमारी एक बार दिगन्त में।<sup>१</sup>

‘भारत-भारती’ में कवि ने आतीय जीवन के नवीत्यान का सन्देश दिया है।

इसी में कवि की प्रातिशीलता की प्रेरणा दिपी हुई है। उदाहरणके लिए निम्ना-  
 निम्न छन्द द्रष्टव्य है :

प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा जानीव्य है।  
 हम भी हमारी क्षिति है यद्यपि अवस्था लोच्य है।  
 बर्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या हमु की दया,

सुख दुःख कुछ हों, एक-सा ही हो सब समय निरुका गया।<sup>२</sup>

गुप्त जी ने भारत-भारती में प्राचीन परम्पराओं एवं सामाजिक कुरीतियों पर भी व्यंग्य किए हैं। प्राचीन परम्पराओं एवं रुढ़ियों पर चढ़कर उन्नति संभव नहीं है। वे स्वयं से प्रश्न करते हैं परन्तु फिर तुरन्त एक नये एवं स्वच्छन्द मार्ग को भी लोच लेते हैं। उन्होंने ‘भारत-भारती’ में कहा है कि-

सब का दूषित हो चुके हैं जब समाज-शरीर के,  
 संसार में बहला रहे हैं हम फकीर लकीर के।  
 क्या बाक-दावों के समय की रीतियाँ हम लौड़ें ?  
 वे रुग्ण हों तो क्यों हम भी स्वस्थ रहना लौड़ें ?<sup>३</sup>

१- मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, लेखिका संस्करण, पृ० १५६ ।

२- वही - वही । पृ० १७६ ।

भारत- भारतीय की उत्कृष्ट विशेषताओं को देने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुप्त जी पर बिन्दुवैदी जी का अधिक प्रभाव रहा है। उनके प्रभावित होने के कारण वे अपनी इस काव्य- रचना में युग की उत्तिवृत्तात्मकता एवं नीति-वादिता से नहीं बच सके हैं। उनकी स्वचन्द्रतावादिता राष्ट्रीय- भावना-परक है। उनकी रचना से राष्ट्रीयता का विशेष आकर्षक रूप जनता के समुत्प्रेक्षित हुआ है। गुप्त जी के काव्य में विवेच्य युग की स्वचन्द्रतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ तो थीं लेकिन वह बहुत विकसित रूप में नहीं आ सकीं। उन काव्य प्रवृत्तियों को बिन्दुवैदी मण्डल के बाहर के स्वचन्द्रतावादी कवियों (श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी, आदि) ने अपनी मौलिक सुकृष्टता से अधिक सुदृढ़ और पुष्ट किया। गुप्त जी ने विषय चुनने में उदारता और सरलता का परिचय दिया है। परम्परागत संकीर्णताओं का उनके काव्य में अभाव है। इसी विशेषता के कारण स्वचन्द्रतावादी काव्य की प्रगति में उनकी भारत- भारती का योगदान स्वीकार किया जा सकता है।

#### क्रिस्तान-

----- सन् १९१५ ई० में गुप्त जी ने क्रिस्तान नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में दरिद्र कृषकों की जीवन- कथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। कृषकों का मार्मिक चित्रण वस्तुतः कृषक जीवन की मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। मानवतावाद स्वचन्द्रतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। इसलिए यह कहना किसी चीज़ तक ठीक है कि गुप्त जी के काव्य में वन-वन सर्व स्वचन्द्रतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ मिल जाती हैं। क्रिस्तान में कवि के मानवीय दृष्टिकोण की बहुत सुन्दर रूप से स्थापना हुई है। इस काव्य के द्वारा मानवतावादी भावनाओं का प्रसार हुआ। दूसरा कारण इसके मूल में यह भी रहा --

-----

है कि किसानों के दुःख और दारिद्र्य को उत्पन्न करने वाली जीवण पद्धति तत्काल ही समाप्त की जाए ।<sup>१</sup> किसान के नायक की प्राप्ति है कि-

कनका है किनारात हमारा रुधिर पीना ।

शाता है सर्वस्व व्याज में हम से जीना ।

हम हा लाना और सर्वदा काबू पीना ।

नहीं चाहिए नाथ । एवं अब ऐसा जीना ।।<sup>२</sup>

इसका परिणाम यह हुआ कि कृषकों के प्रति देश में सहसा करुण भावना का प्रसार हुआ । कुली- प्रथा की अमानवीयता पर भी जोरम प्रकट किया गया। गुप्त जी ने किसान काव्य रचना में ऐसे नायों की सुन्दर एवं सख्त रूप से अभिव्यक्ति की है । उन्होंने अपनी इस कृति में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति की है। इस काव्य में कवि की सामाजिकता की परिलक्षित है । सामाजिक दुर्दशाओं का विवेक करते समय कवि युग के सुधारवादी धरे में भी थोड़ा कटा गया है परन्तु फिर भी उसकी नवीनता एवं मौलिकता बराबर बनी रही है। उसने किसानों की गरीबी का मार्मिक चित्रण किया है :-

पाया हमने प्रभु ज्ञान सा पास नहीं है ?

क्या अब भी परिपूर्ण हमारा खान नहीं है ?

सिखा हमें क्या नहीं नरक का वास नहीं है ?

विष लाने के लिए टका भी पास नहीं है ।।<sup>३</sup>

१- Jasbeer Lal Nehru - The Discovery of India. P 53

२- मैथिलीशरण गुप्त- किसान- शृन्द संख्या २३ ।

मैथिलीशरण गुप्त- किसान- पृ० ६ ।

इस प्रकार के मार्मिक चित्रण के द्वारा कवि ने विरोध युग की स्वच्छन्दतावादी भाव-दृष्टि का ज्ञान दिया है। गुप्त जी के किसान नामक काव्य की वर्णन ऐसी रसात्मक है जिस में करुण, वीर और शान्त रसों में मार्मिक स्थलों की नियोजना की गई है। गुप्त जी की इस रचना में उनकी स्व-निरीक्षण की प्रकृति सब से अधिक मौलिक रही है। जन-सेवा की भावना को गुप्त जी ने जादवी रूप में फ्रांसीसी दार्शनिक कान्टे के (Positive

) पाणिटिनिस्ट दर्शन से ग्रहण किया है। गुप्त जी जादूईवाद और नैतिकतावाद से बहुत अधिक प्रभावित रहे हैं। मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास में सुधार केवल मानवहितवादी धर्म के प्रसार द्वारा ही संभव है। सामाजिक प्रगति के लिए यह जरूरी है कि हमारी राजनीतिक नैतिकता पर आधारित है। हमारे नैतिक भाष्यग्रन्थ एही हैं, पुंजी का वितरण न्यायोचित ढंग पर हो। इस उद्देश्य की पूर्ति मानवहित धर्म के प्रसार द्वारा ही संभव हो सकती है। गुप्त जी ने इसी मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना अपने किसान नाम काव्य में की है।

इस प्रकार गुप्त जी अपनी काव्य-दृष्टि में पर्याप्त नवीन हैं। उनके काव्य में एक नयी चेतना मिलती है। राष्ट्रीयता की भावना एवं दीन-दुसियों के प्रति करुणा और गहानुभूति के तत्त्व उनके उन्मुक्त, उदार एवं स्वच्छन्द दृष्टिकोण के परिचायक हैं। काव्य-भाषा के रूप में तड़ी घौली और काव्य-शैली के रूप में हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप पहले वाले नये हन्दी के व्यवहार द्वारा भी उन्होंने अपनी मौलिक प्रकृति का परिचय दिया है। विद्वेदी-मण्डल से संबद्ध रहने के कारण उन में एक पुरातत्त्वानवादी प्रकृति अवश्य मिलती है और वे बहुत-कुछ इतिहास निरूपण में रम जाते हैं किन्तु उनके काव्य में नवयुग की चेतना भी प्रति-फलित हुई है।

### अन्य कवि

गया प्रसाद शुक्ल सनेही -- गया प्रसाद शुक्ल सनेही अपने समय के सफल कवियों में से गिने जाते हैं। विवेक्य काल में कविता का कला के रूप में सिद्ध करने वालों में सनेही जी का नाम हरिवीथ जी के बाद लिया जाता है। उनके काव्य विषय चुनने और उनके अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में उदारता और सरलता का अपूर्व समन्वय रहा है। इसी कारण परम्परागत संकीर्णताओं का उन में पूर्ण अभाव है। उनकी इन विशेषताओं के कारण ही स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति में उनके योगदान को स्वीकार किया जा सकता है।

सनेही जी की कृतियाँ विशेषकर उनके कव्यों में उर्दू भाषा और उसकी काव्य-शैली का प्रचुर माया में प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने काव्य में भाषा के व्यावहारिक स्वरूप की ही प्रशंसा किया है। इसी कारण उनकी शैली में कहीं भी वृत्तबद्धता नहीं आ पाई है। विवेक्य काल राष्ट्र निर्माण का युग रहा है। इसी कारण राष्ट्र, समाज, जाति एवं धर्म आदि के नव निर्माण के लिए उस काल के कवियों की रचनाओं में उपदेशात्मक, और शक्तिव्युत्पत्तिका रही है। समसामयिक युग के इस प्रभाव से सनेही जी भी अछूते न रह सके। उनके काव्य में युग का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। सनेही जी का त्रिशूल रूप उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व में है। देश की राष्ट्रीय चीन्हा से जगाने और देश पर पर मिटने की प्रेरणा त्रिशूल जी के इन शब्दों में निहित है :-

जिस की न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है।<sup>१</sup>

---

१- गया प्रसाद शुक्ल सनेही, सरस्वती, अप्रैल १९१२, पृष्ठ ७३।

त्रिभुल जी की यह बेलावनी स्वराज्य आन्दोलन के दिनों में बहुत लोकप्रिय रही है । राष्ट्रीय बीणा तथा त्रिभुल-तरंग में ऐसे गीत संकलित हैं। उन गीतों में देश-भक्ति की तन्मयता और राष्ट्रीयता की प्रबल संवत्सिता है । राष्ट्रीयता की भावना उनकी रचनाओं की स्वच्छन्दतावादी बना देती है । राष्ट्रीयता के सामने भक्ति और भक्तिवाद की धारें उनके काव्य में मद्धिम पड़ जाती हैं ।

सनेही जी से कुछ पौराणिक विषयों पर भी सुन्दर कवितारें लिखीं हैं, कीर्तिया का विकास मार्मिक ती है परन्तु उसकी यह पंक्तियाँ उन्हें पौराणिक से अधिक आधुनिक बना देती हैं :-

वह वसन बरी के धारता जी लदा था ।  
वह अजिन विद्यावे माग्य में यों लदा था ।  
मुदु पदलुवाला कंकणी में लगेगा ।  
तन मलमल वाला कंकणी में लगेगा ॥<sup>१</sup>

सनेही जी राष्ट्रीय और सामाजिक दोनों दृष्टियों से स्वच्छन्दतावादी हैं । उनके काव्य में देश के नव-निर्माण का सन्देश है । उन्होंने अतीत के स्वर्णिम युग का गान किया है । पतनावस्था से दुःखी होकर पुनः उत्थान की भावना भी व्यक्त की है। उस भावना से रुढ़िवादिता नहीं बल्कि क्तिती छोटा तक कवि की उदारता, एवं विशालता ज्ञात होती है । सनेही की मुख्य रचनाएँ हैं- त्रिभुल-तरंग, मानस-तरंग, कृष्णक-कन्दन, करुण-भारती और कुसुमाञ्जलि ।

सनेही जी ने सामाजिक कवितारें भी लिखीं हैं। उन में सुधार की भावनाओं का पूर्ण समावेश है। उनकी 'कृष्णक-कन्दन' नामक कृति द्वारा --

समाज के विभिन्न वर्गों का कारुणिक चित्र हमारे नेत्रों के समक्ष खिंचा जाता है। किसान हमारे देश का खर्ष और सरल प्राणी है। समाज के प्रवीण व्यक्तियों द्वारा वह ठगा जाता है। धनवान उसकी अशिष्टता एवं अन्य दुर्बलताओं से लाभ उठाते हैं। 'कृष्णक-कन्दन' में कोई कथानक नहीं बल्कि किसानों की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण है। वर्णा न होने से उसके खेत सूखे जा रहे हैं परन्तु फिर भी उन पर कोई दया नहीं करता है वह निराश होकर बावलों से कह उठता है:-

बड़े बावो रे बावलो । बावो, बावो ।

तुम्हीं जाके पाँ चार आंसू बहावो,

दुःखी हूँ तुम्हारे कृष्णक दुःख बटावो,

न कुछ बन पड़े जो तौ बिजली गिरावो,

न रोहो हम बच्चियाँ तुम उड़ा दो,

बिखी भाँति से तौ बुझा दो।।<sup>१</sup>

सनेही जी ने समाज में व्याप्त निर्धनता और पीड़ित मानवता पर भी अपनी लेखनी चलाई है-

मूख मूख चिल्लाये अभी बालक राते हैं,

टुकड़े साँ-साँ हाथ कलेजे के छोते हैं।

क्या दुलिया के फूत कों पुल से छाँते हैं।

बहुवार से सदा पदन अपना बाँते हैं।

जब घर में कुछ न हो कहीं कहीं क्या राधे ।

रखते सारा दिवस हाथ योंही मुल बाँधे।।<sup>२</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सनेही जी अपने भावों तथा भाषा शैली विचारों के संबंध में परम्परावादी नहीं हैं। दीन और दुखी वर्गों के प्रति उनकी उदार-मानवतावादी दृष्टि उन्हें नवयुग कवि सिद्ध करती है। सरल-सरल भाषा और उर्ध्व कन्दों के प्रयोग द्वारा भी उन्होंने अपनी युगीन प्रकृति का परिचय दिया है।

१- गया प्रसाद शुक्ल- सनेही- कृष्णक कन्दन, पृ० ३ सरस्वती, मई १९१६ ।

२- वही, - वातकृष्णक, पृ० ७ सरस्वती, जनवरी, १९१२ ।

### नाथूराम शर्मा शंकर

नाथूराम शर्मा शंकर का रचनाकाल भारतवर्ष युग से विद्रोही युग तक है। ये संक्रान्ति युग के कवि हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिकता की प्रधानता है। इस काल में साहित्य का विषय ही नहीं बल्कि भाषा भी बदली है। इस युग में प्राचीनता के प्रति नौह और नवीनता की ग्रहण करने की तटपटाकट भी है। नाथूराम जी ने अपने समसामयिक युग की बढ़ती हुई मांग के अपने काव्य द्वारा पूर्ण किया है। उन्होंने अपने काव्य में मछलों के जीवन का नहीं बल्कि कुटिया के जीवन का सुन्दर और सजीव वर्णन किया है। देश की आर्थिक दुरवस्था, किसान की गरीबी और दरिद्रता का उन्होंने मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। ये साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी रहे हैं। दीन-दरिद्रों की दशा देखकर तो शंकर जी बकायास ही कह उठते हैं --

कतपेट अर्धिन होय रहे ।

किन भोजन बालक होय रहे ।

पिण्डे तक भी न रहे तन पे ॥

पिक घूल पड़े वच जीवन पे ॥<sup>१</sup>

शंकर जी ने भारत की विवशता, अत्यर्थता और पराधीनता से भी दुःखी होकर लिखा है --

किन शक्ति समृद्धि - सुधा न रही ॥

अधिकार गया वसुधा न रही ॥

कल साहय हीन सताय हुआ ।

कुछ भी न रहा नाश हुआ ॥<sup>२</sup>

१- नाथूराम शर्मा शंकर - कविता संग्रह- पृ० ३६ ।

२- वही, - , पृ० २७ ।



शंकर जी ने कुम्भपट्टकता का तिरस्कार किया है ।

रहे कुम्भ-पट्टक न देता विश्व विश्व विस्तार,  
हाथ हमारी रौक-टीक में पड़ी न जकड़ौं डार।।<sup>१</sup>

शंकर जी ने समासमयिक युग की सारी नैतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं पर अपने काव्य के माध्यम द्वारा विचार किया है। सुधार एवं संघर्ष की भावना युग की प्रवृत्ति के अनुसार शंकर जी के काव्य में व्याप्त है । उनके काव्य में नव-जागृति स्थूल रूप से ही प्रकट हुई है परन्तु उसके ऐतिहासिक महत्त्व में कमी नहीं जाने पाई है ।

नाथुराम शर्मा शंकर ने नारी समाज की भी अपने काव्य का विषय बनाया है। नारी का अस्तित्व देश और समाज के लिए उत्तमा गरिमा-पूर्ण और महिमानय है तब उसे क्या बर्बाद होने दिया जाय, क्योंकि उसके मान-सिक विकास के द्वारा उसे सुरक्षित बनाया जाये। इस विषय में कवि शंकर की उक्ति है कि:-

सुशीला बालिकाओं को लिखावे- पढ़ावे ।  
न कौरी कर्मशाओं को क्या जीना गढ़ावे ।  
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के महाचक्र पर चढ़ावे ।  
सती के सत्य की शोभा प्रशंसा से बढ़ावे ।  
कुमद्रा देवियों को याँ दया दानी दुलारे ।  
बिगाड़ों को बिगाड़ें, सुधारी को सुधारे ।।<sup>२</sup>

१- नाथुराम शंकर शर्मा - कविता संग्रह पृ० ३० ।

२- नाथुराम शर्मा शंकर- शंकर सर्वस्व, द्वितीय संस्करण, पृ० ३३ वाक्य ।

लंकर जी के काव्य में तुषार की भावनाओं का पूर्ण समावेश है। उन्होंने कुछ नये शब्दों का भी निर्माण किया है। उन्होंने उर्दू फारसी कविताओं के अनुवाद की नहीं किये बल्कि उर्दू कविता की सुन्दरता से लिये हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य हैं :

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है ।  
जमाना जिन्दगी का जा रहा है।  
किया क्या और जागे क्या होगा।  
जासरी वक्त ढौंड़ा जा रहा है।<sup>१</sup>

लंकर जी प्रातिशील कवि थे। उन्होंने तुषारी कविताओं में भी शिष्टता का ध्यान रखा है। सामाजिक विषयों पर लिखे गये उनके काव्य का मूल स्वर उच्च और अजिपूर्ण है। कविता को समाज के साथ बैठने का दायित्व उन्होंने निभाया है। इस प्रकार उनके काव्य में भी तत्कालीन जागृति और मुक्ति-चेतना प्रकट हुई है। भाषा और शब्दों के नये प्रयोग तथा नवीन सामाजिक विषयों पर कविता करके उन्होंने कविता की पारम्परिक बारा से बफे आप को अलग किया है। ये मूलतः कार्य-समाज के प्रभाव में रहकर कविता करने वाले कवि थे। अतएव उनके काव्य में उपदेशात्मक की प्रधानता है किन्तु उन्होंने हिन्दी कविता की अनेक रुढ़ियों को बफे ढंग से तोड़ा है और इस दृष्टि से स्वचन्द्रतावादी आन्दोलन के सन्दर्भ में उनके मूल्य को जाँचा जा सकता है।

---

१- नाथूराम शर्मा लंकर- कविता संग्रह- प्रथम संस्करण, पृ० २३ ।

### पं० श्रीधर पाठक

पं० श्रीधर पाठक विवेक्यपुत्र में स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक और प्रथम कवि हैं। उनका संपूर्ण काव्य स्वच्छन्दतावादी भावनाओं से धील-प्रीत है। सर्व प्रथम इनके तीन काव्यानुवाद उल्लेखनीय हैं। उन्होंने गोल्डस्मिथ के हरमिट का अनुवाद सष से पहले १८८६ ई० में 'एकान्तवासीयोगी' के नाम से प्रस्तुत किया। इस में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया गया है। 'एकान्तवासीयोगी' की भाषा सही धीली है। छन्द की दृष्टि से भी इस में नये छन्द की छावनी का प्रयोग किया गया है। पाठक जी ने टैक्लर का अनुवाद ज्ञान्त पथिक और डेपर्टेड-विलेज का अनुवाद ऊजड़ - ग्राम के नाम से किया है। उन्होंने इन तीनों काव्यानुवादों के माध्यम से, काव्य के अवलम्बे हुए नये आदर्शों को अपनाया है। उनकी मौलिक प्रकृति एवं सूक्त-सूक्त ने रचना के नये-नये मार्ग खोजे हैं। इन अनुवादों के द्वारा कवि ने प्रेम के विराट् स्वरूप को सरल-सुन्दर एवं सज्ज रूप में प्रस्तुत किया है। 'एकान्तवासीयोगी' का प्रेम स्वच्छन्दतावादी भावना पर आधारित है।

पाठक जी ने फितान, पेत, रूट, चरसों, गेरु, जी, और सोबा- पाठक जैसे छोटे छोटे विषयों को भी काव्य में स्थान दिया है। यह दृष्टिकोण वस्तुतः उनकी स्वच्छन्द प्रकृति का धीप कराने में सहायक है। नये विषयों के चयन तथा नयी दृष्टि से विवेक्य रूप से काव्य की भाव-भूमि को स्वयं बदल दिया है। उन्होंने काव्य की रूढ़ परम्पराओं को अपनी उन्मुक्त कल्पना से तोड़ कर उन्हें नये रूप में ढाकार किया है। पाठक जी में राष्ट्रीयता की भावना भी बहुत अधिक रही है। उनके भारतीयता और मनोविनोद काव्य राष्ट्रीयता के अद्भुत हैं। इनमें स्थान-स्थान पर उन्होंने भारतवर्ष के सौन्दर्य का चित्रण प्रस्तुत किया है। पाठक जी ने--

कर्मक्षेत्र पर कल दिया है। जीवन के संघर्षों में जूझना ही मानव की मानवता है। उससे फलायन जीवन की निस्वार्ता एवं कायरता है। पाठक जी ने जीवन का मर्म रोने में नहीं, हंस कर संघर्ष करने में समझा है। वह वैयक्तिक अनुभूतियों के सच्चे पारखी रहे हैं। उनकी इन विशेषताओं के सम्पर्क में हम उनकी ये रचनाएँ हैं जो विवेच्य युग की सीमा में मिलती हैं। जैसे 'बेहरावन', 'काश्मीर-सुषमा', 'मनोविनीत' तथा 'श्रान्त पथिक' आदि। पाठक जी की इन रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी काव्य की बहुत सी प्रवृत्तियाँ एवं कम-कम मिल जाती हैं। क्यपि उनकी ये रचनाएँ छोटी हैं परन्तु फिर भी उनके माध्यम से विवेच्य युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा को समझने में सहायता मिलती है। पाठक जी की शारीर, प्रकृति-प्रेम का बोध कराती है। उनसे पूर्व भी काव्य में प्रकृति-प्रेम की परम्परा रही है। लेकिन रुढ़ परम्पराओं से बाध रहने के कारण वह प्रकृति चित्रण सरल एवं स्वाभाविकता से परे रहा है। पाठक जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा प्रकृति का स्वतन्त्र, सजीव, एवं मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है।

श्रीधर पाठक ने सामाजिक समस्याओं की छिटा का प्रहार तथा विषयवाचों की समस्या पर भी खूब छिटा है। विषयों की विविधता एवं नवीनता उनके काव्य में है। उनकी इसी मौलिकता एवं नवीनता ने विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य को नव-जीवन प्रदान किया है। इसी मौलिक गुण-गुण के कारण उन्हें प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि कहा जाता है। कुछ जी ने भी कहा है कि- विवेच्य युगीन काव्य धारा में नये-नये विषयों की और जाने की प्रवृत्ति तो दिखलाई पड़ी, लेकिन अभिव्यञ्जना में नवीनता प्रकृति के स्वरूप-निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दता का वातावरण पहले-पहल श्रीधर पाठक ने ही दिया। उन्होंने रुढ़ परम्पराओं को तोड़ कर नये मार्ग की और अग्रसर किया।<sup>१</sup> इस प्रकार श्रीधरपाठक

१- पं० रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, नव धारा, प्रथम उत्थापन

का संपूर्ण काव्य युग के नये उत्पादनों को बल करता हुआ नये मार्ग की खोज गया है। उनकी ऐसी मौलिकता एवं नवीनता ने विवेच्य- युग के नीरस, नैतिक-तादायी एवं इतिवृत्तात्मक काव्य की दिशाओं को भाँड़ दिया है।

पाठक जी की रचवाई इस प्रकार हैं : गुनवन्त लेखन (सन् १९०० ई०) घन विषय (सन् १९०४ ई०) वनाष्टक (१९१२ ई०) देहरादून (१९१५ ई०) मनोविनोद का अन्तिम संग्रह (१९१७ ई०) वान्त पथिक (१९०२ ई०) श्री गोपिकागीत (१९१६ ई०) कास्मीर सुषमा (१९०४ ई०) भारत-गीत (१९२८ ई०) जार्ज वन्दना (सन् १९१२ ई०) मजि- विना (सन् १९११ ई०) (

### देहरादून (सन् १९१५ ई०)

पाठक जी की कृति देहरादून नामक उनकी स्वच्छन्द प्रकृति की खोज हमारा ध्यान का वाक्यित करती है। देहरादून जैसे साधारण विषय पर काव्य रचना करने का साहस- उस से पूर्व कोई नहीं कर सका है। प्राचीन कवियों की धारणा रही है कि काव्य- विषय पौराणिक, ऐतिहासिक या प्रख्यात होना जरूरी है। लेकिन पाठक जी ने बड़ परम्पराओं और धारणाओं को तोड़ कर उस साधारण से विषय में भी अपनी कवि तुल्य सरलता, भावुकता एवं मौलिकता का परिचय दिया है। ऐसी कारण उनके काव्य को स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

देहरादून काव्य की ऐसी वर्णनात्मक रही है परन्तु वर्णनात्मक शैली ने काव्य की सजीवता एवं स्वाभाविकता को नहीं से भी ठेस नहीं पहुँचाई है। कवि ने इस का आरम्भ कितने स्वाभाविक रूप से किया है :

ग्यारह मई मसिनवा तेरह साल  
 अदितवार, तथ दिनवा धुप दुकाउ  
 कठिन धीर दुपहरिया लुन कर जोर  
 बल्लु तेज अथवारिया टेसन और  
 तुरतहि सध अथवाता फिलटी कीन  
 भारी भीर सधवाता संग नहिं लीन  
 छैत तुरत रेयलिया सीटी कीन,  
 धिनु उस चकल मैजालै जा चाल प्रवीन  
 पाछिले पाछिले चिचिलियाकोवल चाल  
 पुनि फल कलधलिया बहिर वैहाल।<sup>१</sup>

पाठक जी ने इस काव्य की रचना पूर्वी शैली में की है। उसमें कुछ शब्द जैसे-  
 मसिनवा, दिनवा, दुपहरिया, मैजलिजा, रेयलिया, तथा कलधलिया आदि  
 स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। और इस काव्य की गति में सहायक हैं। पाठक  
 जी की इस- ऐसी स्वाभाविकता और सरलता के संबंध में पं० रामदास गौड़ का  
 शब्द है कि- भले ही पाठक जी ने मट्ट जी की नक़्क की हो, अपने यिनादी  
 स्वभाव के "वा" "या" परक प्रथम और तृतीय चरण लिखे हों, यह रचना  
 जन- स्तर के समीप अवश्य पहुँच जाती है। प्रान्तीय भाषा के स्थान पर बौली  
 को अपनाना काव्य को लोक- भूमि पर लाने का प्रमाण बताती है। केवल यह  
 भावना ही इतनी बलवती है जिस से इस काव्य की स्वच्छन्दतावादी काव्य की  
 कौटि में रखा जा सकता है।<sup>२</sup> वस्तुतः देहरादून काव्य रचना कवि की मौलिक-

१- श्रीधर पाठक, देहरादून, पृ० ९ द्वितीय सं०

२- रामदास गौड़- पाठक जी के कुछ संस्करण, विशाल भारत, जनवरी सन् १९२६

प्रतिभा की उफान है। देहरादून की यात्रा के बीच कवि ने छोटे-छोटे विषयों का चयन सुन्दर ढंग से किया है। मार्ग में धाई छोटी चीजों को काव्य के आसन पर आसीन करना वास्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रोत्साहन देना था। रेल प्रस्थान, तुरंग प्रवेश, गंगास्तवन, शिरिनार्ग, स्टेशन, मुद्याफिर, आदि विषयों में कवि की रुचि रही है। इन विषयों के चयन से इस बात की प्रमाणित कर दिया है कि छोटे-छोटे विषय भी एक अच्छी रचना के अन्तर्गत आ सकते हैं।

पाठक जी के समस्त काव्य में प्रकृति अपने नवीन एवं मौलिक रूप में चित्रित की गई है। प्राचीन परम्परा से अलग होकर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से प्रकृति को अपने काव्य का विषय बनाया है। उनके देहरादून काव्य में प्रकृति का मनोरंजन रूप है। स्थान-स्थान पर पाठक जी ने अपनी मनोरंजन अभिव्यक्ति के द्वारा प्रकृति चित्रों को अधिक मनोरंजन मय बना दिया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है।

पुनि जब स्याम लखनवा पन छुड़ल  
गिरि जन हिलर मखनवा सबहि दुरात  
पल पल जमकु जिगुरिया छुपि छुपि जात  
पन फौड महेरिया उफकि लुकात  
कहुं छुठि सौन छतरिया सम छतरात  
मनु छुनि सवी चुनरिया - सौर ललात १

उपर्युक्त छन्द में कवि ने संश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण किया है। इस में कवि ने नारी-सुलभ उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से सरलता और मधुरता लाने का प्रयत्न किया है--

जिससे स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ का बोध होता है ।

पाठक जी ने अपने इस काव्य में भाषा ही नहीं नहीं रखी है बल्कि छन्द भी बदल दिया है। लोक भाषा के छन्दों का प्रयोग वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति का द्योतक है। देहरादून में ब्रजछन्द का प्रयोग है । लोक भाषा की सरसता में यह छन्द और भी खिल उठा है। प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में लोक भाषा और लोक छन्द का यह रूप दृष्टव्य है :

कहु कहु जीट बदला करति उजास ।

जिमि सागर विन बड़वा - अनल - आस।<sup>१</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पं० श्रीधर पाठक की देहरादून नामक कृति में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियों ने आलोच्य काल की कविता को स्वच्छन्दतावादी काव्य की ओर आकर्षित किया है।

#### काश्मीर - सुषमा - रचना काल (१९०४ ई०)

विवेच्य युग में स्वच्छन्दतावादी भावधारा को प्रसारित करने का पूर्ण श्रेय पाठक जी को है। उनके विषय, भाव, भाषा तथा छन्द प्रचलित परम्पराओं से अलग है। पाठक जी प्रकृति के सफल चित्रकार हैं। उनकी मौलिक कल्पना ने प्रकृति को मानवी रूप में देखा है। उनकी प्रकृति जड़ नहीं है बल्कि एक चेतना सम्पन्न प्रिया है जो फल-फल अपना परिधान बदलती है, अपनी छवि को सरौंवर रूपी दर्पण में देखकर मुग्ध होती है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

---

१- पं० श्रीधर पाठक - देहरादून, पृ० २५ ।



प्रकृति यहाँ रकान्त धँसि निज रूप संवारती ।  
 फल फल फलटति मेघ छिनिक छवि छिन छिन वारति ।  
 विमल बम्बुतर मुकुरम मधु मुल विम्व निहारति,  
 अपनी छवि पे मौहि बापु ही तन- मन वारति।।<sup>१</sup>

कवि का यह प्रकृति चित्रण बहुत उजीव एवं मौलिक है। प्रकृति का इतना सुन्दर निरीक्षण इस से पूर्व काव्य में नहीं हुआ है। पाठक जी ने 'काश्मीर सुणमा' की रचना करके विवेच्य युग के काव्य को एक नयी आधार भूमि पर लाकर सड़ा कर दिया है। प्रकृति के प्रति ये नवीन एवं मौलिक उद्भावनाएँ कवि की स्वच्छन्दता-वादी प्रकृति का बोध कराती हैं। कवि का प्रकृति चित्रण वैज्ञानिक अनुभूतियों से बड़ा मधुर और उजीव हो उठा है। प्रकृति - नटी नक़्क़ीबना की भाँति खीर और बँकल है। वह कस्तुरूपी नायक की प्रतीक्षा में बनी खूबसूरत विपरीत हो रही है। उसकी क्रीड़ाएँ मिमिक्रि हन्द् में द्रष्टव्य हैं :

खजति, खजावति, खरसति, खरसति, खरसति प्यारी  
 बहुरि सरासति भाग पाय सुठि विहरसारी  
 विहरति विविध -विलास -परी जीवन के मधु लनि  
 छलकति, बिलकति, फुलकति, निरलति, धिरकति, बनि-ठनि,  
 मधुर मंजु छवि पुंज हिरकति बन- कुंजन  
 चितवति, रिक्तवति, संसति, हसति, मुसक्याति, हरति मन।।<sup>२</sup>

यह हन्द् प्रकृति की उजीवता के साथ-साथ विषय की दृष्टि से भी मौलिक है। साधारण से विषय में हत्ती मधुरता और कोमलता का भर देना उनकी स्वच्छन्दता-वादी प्रकृति का सूचक है। उन्होंने जीवन के यथार्थ को प्रकृति में निहित कर-

१- श्रीधर पाठक- काश्मीर सुणमा - पृ० १

२- श्रीधर पाठक, काश्मीर सुणमा, पृ० २ ।

दिया है। उनकी उन्मुक्त कल्पना और भावुकता ने विवेच्य युग के स्वच्छन्द-  
तावादी काव्य को प्रेरणा दी है। काश्मीर पुष्पना के सौन्दर्य पर कवि का मन  
मुग्ध हो गया है। उसने उस अपार सौन्दर्य में डूबकर ही यह निर्णय दिया कि-

यह हम झों ठौर दृष्टि में दृष्टि न आवे ।

यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकामन पुन्दर

यहि अमरन को जोक यहीं कसु कात पुरस्वर॥<sup>१</sup>

काश्मीर भारत वर्ण का स्वर्ग है। कवि ने इस अमन को भी उपर्युक्त छन्द में  
मुखरित किया है। उनकी दृष्टि उस झूठे सौन्दर्य में ऐसी उलझी है कि वह  
उस से अपने को अलग नहीं कर पा रहा है और मन ही मन सोचता है कि इसी  
सुन्दर स्थान पर शायद देवता भी रहते हों क्योंकि देवलोक भी सुन्दरता का  
कोण कहा गया है। काश्मीर के रूप में देवताओं के निवास-स्थान की स्वच्छन्द  
कल्पना कवि की मौलिक छूट-छूट का परिचय देती है। विषय के अतिरिक्त  
उस रचना में स्वच्छन्दतावादी शैली का भी पूर्ण विकास हुआ है। स्वच्छन्दता-  
वादी प्रवृत्ति होने के कारण पाठक जी में प्रकृति के प्रति निष्ठा का भाव है।  
कवि की उन्मुक्त कल्पना ने काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य, तरिताओं एवं पहाड़ियों  
के झूठे सौन्दर्य में अन्वेषण किया है। कौमल उत्प्रेक्षाओं और अन्वेषण अलंकारों के  
माध्यम से उस अपूर्व सौन्दर्य की छटा को प्रस्तुत किया है। कवि द्वारा चित्रित  
उस झूठी छटा की दिव्य पलोंकी निम्नांकित छन्द में द्रष्टव्य है :

परम पुरुष की पटरानी माया को स्वन्दन

मण्डप छत्र उत्तरि धरयो उत्तरयी के नन्दन

क जब छे छिब की ददा तनया के काम

गिरि कुल गिरि तिरुयी प्रिया के कर की काम

विष्णु - नाभि- से उग्याँ सुन्याँ जो कल सहस्र बल  
 के यह शीर्ष सुभग स्वयम्भू की सुन्य थल  
 प्रकृति नटी की पटी रहित प्राट्याँ नाटक- घर  
 के शिवतन्त्र सुन्याँ पिलवत टिछटी पर  
 के कैलाश विभूति भरित अव्युत कण्ठ  
 के तप- पुंज- प्रसूत विश्व - शीमा - श्री मण्डल॥<sup>१</sup>

कवि ने इस छन्द में प्रकृति का मनोरम एवं लजीव रूप प्रस्तुत किया है। कवि ने प्रकृति का सुन्दर निरीक्षण करते हुए चारी सामग्री पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इस रचना की विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य में पहला स्थान दिया जा सकता है।

पाठक की काशीर की सुन्दरता पर मौलित है। सुन्दर उपवन, वन भीरीलों से उसके मन में उत्पन्न सप्राणता का भाव भी उत्पन्न हुआ है। वह तरह- तरह की उपमारें भी देता चलता है। उन्मुक्त कल्पना और भावों की तीव्रता की उसने नयी भाषा के माध्यम से बिलारा है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :

चहुँदिशि स्निगिरि- शिर, हीरमनि मैलि - कालि मनु  
 स्रवत गरित-तित पार, स्रवत सौर चन्द्रहार अनु  
 फल फूलन कवि हटा हई जो वन उपवन की  
 उदित मई मनु कवि -उदर सौ निधि रत्नन की  
 तुलिन -रिशिर, सरिता, सर विमिन की मिलि सौ कवि  
 हई मण्डलाकार, रही चारहुँ दिशि यों कवि  
 मानहुँ मानिय मैलि माल वाकृति कलवेली,  
 बांधी विधि अनोल गोल मारत-सिर लेली॥<sup>२</sup>

१- श्रीपर पाठक, काशीर-पुष्पमा, पृ० ५ द्वितीय संस्करण ।

२- वही, वही, पृ० ६ द्वितीय संस्करण ।

युगानुरूप भाषा में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ बहुत स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई हैं। इस हृन्द में भाषा की सरलता एवं सजीवता के कारण प्रकृति चित्रण में भी नये प्राणों का उंचार हो गया है।

कवि ने प्रकृति को नये अवस्तुता के सन्दर्भ में भी देखा है जिससे उस रचना में कुछ नये अवस्तुता की सुन्दर योजना हो गई है। यह अलंकार योजना भी स्वाभाविक रूप से हो गई है। उदाहरण के लिए निम्नांकित हृन्द द्रष्टव्य है :

जिह्वा प्रकृति पटरानी के मल्लन फुलवारी

छुली घरी के मरी तासु शिंजार पिटारी।।<sup>१</sup>

सुन्दर अलंकार योजना के साथ कवि ने मानवीकरण का भी प्रयोग किया है जो वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति का चोकर है। प्रकृति के मौलिक निरीक्षण के संबंध में यह एक नया क्रान्तिकारी परिवर्तन है। पाठक जी के प्रकृति चित्रण के संबंध में डा० मिश्र का यह कथन उल्लेख है : - " प्रेम के समान प्रकृति भी अपने विरुद्ध स्वरूप को ही ढँकी थी । दो शताब्दियों तक यह कृंगार के उदीपन की सार्थकता के लिये ही प्रयुक्त होती रही, जिससे उसकी सरल सुलभ सुन्दरता एवं मुग्धता धिस्मृत हो गई थी। भारतवन्दु युग में उसके अनहद पत्र को प्रसस्त राजपत्र पर लड़ा करने और उसे प्राप्ति का स्वरूप देने का सारा श्रेय श्रीधर पाठक को है।<sup>२</sup>

श्रीधर पाठक की काशीर-सुधमा विषेय युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें प्रकृति के साथ एक रागात्मक संबंध स्थापित किया गया है और प्रकृति पट्टी को सजीव-चेतनासंपन्न स्था के रूप में देखा गया है। नये अवस्तुत विधान और मानवीकरण वादि की प्रवृत्तियों के कारण भी यह रचना आधुनिक हिन्दी कविता के विकास - इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।

१- श्रीधर पाठक- काशीर-सुधमा, द्वितीय संस्करण, पृ० ५ ।

२- डा० रामचन्द्र मिश्र- श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ० १८६ ।

शान्त पथिक (रचना काल १६०२ ई०)

पाठक जी ने गोरडालिम्य के तीन काव्यों का अनुवाद किया है। पहला एकान्तवासीयोगी के नाम से १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ जो दि हरमिट का अनुवाद है। दूसरी कृति जो दि ड्रेडिड विलेज का अनुवाद है, ऊजड़ ग्राम के नाम से सम्बत १९४६ में प्रकाशित हुई। तीसरा अनुवाद द ड्रेवलर का, शान्त पथिक के नाम से सन् १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ जो विवेक्य काल की सीमा में जाता है इसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ यथस्तम्भ दिखाई पड़ती हैं। पाठक जी प्रकृति से स्वच्छन्दतावादी रहे हैं। गोरडालिम्य के काव्यों के अनुवाद में इसीलिए उनकी प्रकृति रही है। इन अनुवादों के माध्यम से उन्हें पारम्पर्य साहित्य के संपर्क में जाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है इसीलिए काव्य की प्राचीन परम्पराओं एवं कट्ट प्रवृत्तियों को तोड़कर वे नये भावों नवीन विषयों तथा मौलिक कल्पनाओं की दिशा में पर्याप्त सफल हो सके। उन्होंने विवेक्य कालीन काव्य को नव जीवन तथा नवीन दिशाओं की ओर मोड़ा है। शान्त पथिक एक कर्तव्य काव्य है। इस काव्य के माध्यम से पाठक जी ने मानवतावाद तथा राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ उभारा है। पर इस काव्य में स्वाधीनचेतना मन की सुख दुःख की व्याख्या बहुत पार्थिक ढंग से हुई है। इस काव्य में गोरडालिम्य नेकल्पना की वह अपनी वात्मा की शांति के लिए बारम्बार पर्वत की चोटी पर है और मानवीय सुख के विषय में सोच रहा है। वह कठिनी, ज्वाल, तथा कर्तव्य के मानव समाज पर कल कल सोचता है और वन्त में इसी विषय पर पहुँचता है कि वास्तव में संसार में यह सारे युद्ध एवं संघर्ष राष्ट्रीय भावनाओं के कारण होते हैं। काव्य का बारम्बार बहुत पार्थिक अनुवृत्तियों के द्वारा हुआ है। निराशाओं और असफलताओं के बीच मनुष्य फँसा हुआ है उसके संघर्षपूर्ण जीवन में उसके भिन्न और संबंधी भी उसके साथ नहीं हैं। इस ज्ञान से उसकी वात्मा दुःखी है। परन्तु वन्त में वह ऐसा ही सोचता है कि सुत मानव के मन में निहित है। उस को सोचना एक बड़ी मूल है। कवि ने --

इन भावों को बहुत सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है। पाठक जी के अनुवाद में मूल ग्रन्थ की समीक्षा को ठेस नहीं पहुँच सकी है। इस अनुवाद में अंकित वैयक्तिक अनुभूतियाँ ने हिन्दी काव्य में नये विचारों, तथा मौलिक उपकरणों की खोज की है। ये अनुभूतियाँ वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य का बोध कराती हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

दूर देश, दिन दिन, मलिन मन, मन्द निरन्तर पथ चारी ।  
 चारों दिक्किल हूँ - तट चारों कुटिल भ्रान्त पाँ अनुचारी ॥  
 जयवा बागे और जहाँ शठ कैरिन्धी कृषिकार गंवार ।  
 परदेशी को देश मन्द कर लेता अपने घर के द्वार  
 जयवा जहाँ कैम्पियाना का सुना तट पर प्रम चारी  
 निरा निरस ऊपर विस्तारित, फैला है मम लोँ भारी  
 चहे जहाँ मैं फिरुं चहे जो देश देखने को भाऊं  
 लखय मेरा फिरा, उसे तेरी ही और फिरता भाऊं  
 फिर-फिर भ्रान्त और लखय यह कुटिल निरन्तर जाता है  
 पद- पद पर प्यारे से अन्तर अधिक-अधिक अधिकाता है ॥<sup>१</sup>

भ्रान्त-पथिक मैं कवि सुख- शान्ति की कल्पना अपने मन में करता हूँ। अपने मन में सुख की अनुभूति करना एक नैतिकतावादी दृष्टिकोण है जो विवेच्य युग के काव्य में नहीं- नहीं देखने को मिल जाता है। लेकिन बीयर पाठक ने इस अनुभूति को कौरी नैतिकतावादी भूमि पर नहीं ग्रहण किया है। नैतिकता की खोज का उनका विधान स्वच्छन्दतावादी रहा है। भ्रान्त-पथिक की रचना ने विवेच्य युग के काव्य को एक नयी भाव- भूमि प्रदान की है। कवि चारों विश्व में घूमता फिरता है परन्तु उसे अपना देश ही याद आता रहता है।

---

१- Remote unfriended . . . . . a lengthening chain.  
 (Goldsmith - Traveller, Page 1-10)

चहें जहाँ मैं फिरुं चहें जो देश देखने को जाऊँ ।

रुचय मेरा थि, फिरा, उतै तेरी ही और फिरता पाऊँ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार श्रीधर पाठक ने राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया है। उन्होंने इसे सही धौली में लिख कर अधिक सरस एवं जीव बना दिया है। मूल काव्य की स्वच्छन्दतावादी को आरम्भ से अन्त तक बनावे रखा है। कहीं- कहीं ऐसा भी लगता है जैसे पाठक जी मूल काव्य की ध्वनि को प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। परन्तु इस प्रकार से उन्होंने हिन्दी काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को प्रेरणा दी है। उन्होंने काव्य को एक नये प्रयोग एवं नवीन मार्ग की ओर अग्रसर किया है। सुल के दर्शन की व्याख्या पाठक जी भी गॉल्डस्मिथ की भाँति करते ताँ यह अनुवाद बौद्धिक पदा को ही उभारने में सफल होता । लेकिन पाठक जी ने काव्य की भावपद्धि प्रधान बनाया है। इस कारण इस दार्शनिक विषय को भी शुष्कता और नीरसता से परे हटाकर उन्होंने इसे सरस एवं मधुर बना दिया है।

कहीं कहीं पाठक जी पर यह आरोप भी किया जाता है कि उन्होंने अपने इस अनुवाद में काव्य की लचीलता को निष्प्राण बना दिया है। उदाहरण के लिए यह शब्द हैं -

निपट निरर्थक हुआ मेरा सब भान्त यत्न और अनुसन्धान ।

उस सुल के पाने को जिसका केवल मन है केन्द्र स्थान ।

क्यों मैं इतना प्रमा त्याग सुल शान्ति मेरा सारा, किस काश।

वणुस्ति की वाशा से प्राप्य जो रहे देश देशों के राज॥<sup>२</sup>

उपर्युक्त शब्द में सुल की व्याख्या तथा राष्ट्रीयता का विवेचन किया गया है। जीवन में सुल की अनुभूति को नैतिक पदा में रख कर भी श्रीधर पाठक ने रसात्मक ढंग से उसकी लाँच की है। वस्तुतः उनके इसी पौलिक दृष्टिकोण ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को प्रेरणा दी है। इसलिए यह कहना ठीक है कि उनकी इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति ने काव्य को जरा सा भी निष्प्राण नहीं बनाया है बल्कि उनका यह प्रयत्न सफल है और हिन्दी काव्य को नयी भाव भूमि देने वाला रहा है।

१- But me " " " With the View. (Goldsmith-Traveller's P. 2)

मनोविनोद (रचनाकाल-सन् १९१७ ई०)

मनोविनोद पाठक जी की प्रारम्भ की संपूर्णरचनाओं का संग्रह है। उन्होंने इस कृति के माध्यम से स्वच्छन्द काव्य-स्वरूप का निर्माण किया है। इस में संकलित समस्त रचनाओं में देश-प्रेम, तथा राष्ट्रीयता की भावना और प्रकृति के स्तुति एवं मनोहर चित्रों का सरस वर्णन है। इन रचनाओं में समाज सुधार का स्वर भी है जो पारम्परिक रुढ़ियों से मुक्त है। इस स्वर में प्रातिशीलता का भी परिचय मिलता है। प्रकृति मौलिक एवं उप्राण रूप में वर्णित हुई हैं। पाठक जी की इस कृति में प्रकृति के स्वतन्त्र निरीक्षण मौलिक चित्र यन्त्र-स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ जाते हैं जो स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों के लिए यथोचित पृष्ठभूमि का कार्य करते हैं। प्रकृति के संवेदनशील वर्णन की दृष्टि से यह हृन्द जीवित :-

बारि फुहारि भरे बरसा, लोहें लोहत कुंजर है मतवारे ।

बीजुरी जाति पुजा कहें घन गर्जन शब्द सोई हैं नगारे॥

रोर की धीर वारे न लोह, नरसन की ली छटा आवि धारे।

कामिनी के मन की प्रिय पावस जायी प्रिये नव मोहिनी डारें॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त हृन्द में कवि ने प्रकृति को कर्तव्य एवं आकर्षण रूप से चित्रित किया है। इस चित्रण में एकीयता एवं ताकमी है। शब्द चयन से लेकर अप्रस्तुत विधान तक कवि की प्रतिभा मुखरित है। बीजुरी और बरसा जैसे, लोक शब्दों के प्रयोग से और भी प्रभाव आ गया है।

प्रकृति चित्रण विषयक एक और भी हृन्द देखने योग्य है जिसमें छिछो की मधुरता एवं सरसता विद्यमान है।

१- श्रीधर पाठक, मनोविनोद भाग २ वर्णन वर्णों, पृ० २७ ।



कौकल तू बल- बोलनी री, तुक प्यार हरे- पट-पारे, जहाँ।  
 मोरी मैना सुनना रखीलेन की, ली परेवा परेरे के प्यार, जहाँ।  
 जहाँ मोरा नचावन-जौरा, बकौरा, पपीहा-रट-वारे, जहाँ।  
 वन के लुम बाँके सदा के बनी, वन जीवन प्राण तिलारे जहाँ॥<sup>१</sup>

प्रस्तुत पद्य में कवि के हृदय और प्रकृति के बीच एक प्रकार के वात्सीयतापूर्ण संबंध की झलक दिखाई पड़ती है। कवि के विभिन्न पक्षियों को वन के एसीले सम्प्रान्त नागरिक के रूप में देखा है और वन को भी पक्षियों के लिए प्राणोपमा माना है। इस प्रकार की जात्मानुभूति पूर्ण रचनाओं में वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी चेतना का ही प्रसार हुआ है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से इनमें शाखावाद की भी पुष्टभूमि दिखाई पड़ती है।

पाठक जी की नवीन दृष्टि - भांगमा का परिचय केवल प्रकृति-चित्रण में ही नहीं मिलता है, बल्कि उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण भी नवीन भाषों से भरा पड़ा है। उनके प्रकृति छेमें में भी राष्ट्रीय भावनाओं का समावेश है। उदाहरण के लिए उनकी घन- विनय रचना का एक अंश दृष्टव्य है :

तुम भारत के घन- जन- गुन गौरव - आधार ।  
 तुम ही तन, तुम ही मन, तुम प्राणन - पतवार॥

८      ८      ८      ८      ८  
 परम पुरातन तुम्हारी, भारत संग सत छेम ।  
 जिहि जानत जग सगरी, मानत निश्चित नैम ।  
 सौ तुमको महिं कहियत छाँड़न हित- उदय ।  
 कटल सदेवहि कहियत, पुरन प्रकृति- प्रबन्ध॥<sup>२</sup>

१- श्रीधर पाठक- कलाभट्टक, मनोविनोद, पृ० ६३ ।

२- श्रीधर पाठक- मनोविनोद घन- विनय, पृ० ६३-६४ ।

उपर्युक्त हृन्द में कवि की कल्पना ने राष्ट्रीय भावनाओं को अधिक सार्थक बना दिया है। राष्ट्रीयता जैसी नीरस भावना को पाठक जी ने सुन्दर और सरस अभिव्यक्ति के माध्यम से विकसित किया है। इस से उनकी मौलिक प्रतिभा का साँप होता है।

सुधारवाद की प्रवृत्ति भी पाठक जी की इस रचना में सुसरित हुई है परन्तु उनके सुधारवाद में नवीन चेतना और प्रगतिशीलता तक पितृताई पहुँची है। भारतीय समाज में व्याप्त बाल-विवाह की रूढ़ परम्परा उन्हें बहुत खली है। वे इस कुरीति को भारतीय समाज के पतन का एक प्रमुख कारण समझते हैं। उनकी आत्मा इस प्रथा से दुःखी है :

प्रार्थना अब संस की सब करण कर गुन और ।

दीनबन्धु सुदृष्ट कीजें बाल-विधवा और॥<sup>१</sup>

पाठक जी ने नारी समाज की अपने काव्य में बादर की दृष्टि से देखा है। उनकी नारी केवल पुरुषों के हाथ का खिलौना नहीं है बल्कि पुत्र-पौत्रों में सक्ति का प्रेरणा स्रोत है। पाठक जी के नारी संबंधी विचार बहुत उदार एवं उच्च हैं। उन्होंने पुरानी बेड़ियों से जकड़ी हुई बैलित नारी को काव्य के उच्च वासन पर बासीन किया है। उनके इस दृष्टिकोण ने स्वच्छन्दतावादी काव्य की भाव-भूमि को और अधिक मजबूत बनाया है। उनकी नारी सीता-सावित्री से कम नहीं है। नारी के प्रति उनकी सम्मान की भावना निम्नांकित हृन्द में द्रष्टव्य है :

सात्विकी- वृत्ति - गुन- मंजु - मण्डनिके,

कार्य - मयादि- आपार - पूते

सुख - संसार- व्यवहार - पटु पाण्डिते,

सुमग - संस्कार - आपार - पूते

व्यक्ति- भुवि - स्वर्ग - संयोग - संभावनी,

सहज- सौन्दर्य - विभ्रम विलासे

ललन- मर- जन्म - शानन्द - मन्दाकिनी

उदित - शीघर - लक्ष्य - श्री प्रकाशे॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त शब्द क्लिष्ट भाषा में हैं परन्तु इस में नये युग की नयी भावना छिपी हुई है। नारी के उत्थान और प्राप्ति से संबंध विचारों को स्वच्छन्दतावादी काव्य बोध के अन्तर्गत ही रखा जायगा। मूल रूप में पाठक जी स्वच्छन्दतावादी रहे हैं। उनके इस शब्द में विवेच्य युग की इह भाषा- शैली का थोड़ा सा प्रभाव है परन्तु भावों की नवीनता में यह कटि दब गई है। मनोविनोद की अधिकांश रचनाओं में पाठक जी की भाषा शैली बहुत सरल और स्वाभाविक है। उसमें कृत्रिमता का अभाव है। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य हैं १-

धन - धन सुगढ़ बकौर, तु तम- कुल - जागरिया

पाछे निम्न कछोर, कि वंस उजागरिया

चन्द तेरा चित्तबौर तू उस पर जापरिया

लस- लस उसकी और कि होय निहापरिया॥<sup>२</sup>

उपर्युक्त शब्द पाठक जी की भाषा शैली की सरसता एवं मधुरता की दृष्टि से ही उल्लेख्य नहीं है बल्कि उनकी संवेदनशीलता का भी बोध कराता है। विवेच्य युग में जहाँ रामायण और महाभारत की अगुआई ही अधिकांश काव्य विषय बन गई जाते थीं, वहाँ पाठक जी ने एक छोटे से साधारण विषय का चयन किया। दूसरे प्रकार के विषय चयन के मूल में भी स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति ही परि-  
लक्षित है।

१- श्रीधर पाठक, कार्य-तुन्दरी, मनोविनोद, पृ० ३-६।

२- श्रीधर पाठक, बकौर, मनोविनोद, पृ० १०।

### रामनरेश त्रिपाठी

विवेच्य युग में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का स्वाभाविक स्वरूप पं० रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है। स्वच्छन्दता उनकी स्वभावगत विशेषता रही है। उन्हें किसी प्रकार का बन्धन कभी स्वीकार नहीं रहा है। उसी कारण उनके काव्य में मौलिकता और स्वाभाविकता का मणि-कांचन योग है। त्रिपाठी जी यार्मिक संकीर्णता- के भी विरोधी रहे हैं। उनका समस्त काव्य उदार भावनाओं और सहृदयता को सुतरित करता है। लोकगीतों का चयन एवं राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग उनकी भावुक प्रकृति के परिचायक हैं। उनकी स्वच्छन्दताविता राष्ट्रीय भावना- परक रही है। उनका काव्य दो युगों के बीच का काव्य रहा है। एक ओर विवेच्य युग की (ख्रिष्टीय-युग) शक्ति-तात्त्विकता शैली का प्राधान्य है, और दूसरी ओर आयावाद की लाक्षणिकता है, एक ओर ख्रिष्टीय सुगीन कट्टर नैतिक एवं नीरस आदर्श हैं, तो दूसरी ओर आयावादी काव्य की कौमलता और प्राञ्जलता है। उन दोनों परस्पर विरोधी वि-  
षयताओं को त्रिपाठी जी ने अपने काव्य में आत्मसात् किया है। डा० रवीन्द्र प्रमर के शब्दों में- पूर्व आयावाद - युग के साहित्य- कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का एक निश्चित स्थान है। उनकी प्रतिभा अनुमोदी थी। इनके काव्य में ख्रिष्टीय-युग की प्रवृत्तियों का पूर्ण परिपाक हुआ है। आयावाद का पूर्वाभास देने वाले स्वच्छन्दतावादी कवियों में उनकी भी गणना की जाती है।<sup>१</sup>

त्रिपाठी जी के काव्य में विषयों की नवीनता एवं मौलिकता है। उनके कृतियों में मानवतावादी दृष्टिकोण का भी परिवन्ध मिलता है। विषय की दृष्टि से उन में देश- प्रेम, प्रकृति प्रेम, तथा विश्व प्रेम से लेकर सामाजिक समस्याओं तक का समावेश हुआ है। उनकी प्रधान कृतियाँ निम्नांकित हैं :

- 
- १- डा० रवीन्द्र प्रमर- हिन्दी में आधुनिक कवि (ख्रिष्टीय- युग से नवी कविता तक) प्रथम संस्करण, १९६४, दिल्ली, पृ० २६ ।

मिलन (१९१७ ई०, पथिक १९२० ई०, स्वप्न १९२१ ई०, मानसी, १९२७ ई० । इन में से मिलन और पथिक मुख्य हैं ।

यह दोनों काव्य हमारे विवेक काल की सीमा में जाते हैं। इन में स्वच्छन्दतावादी कवियों जैसी उत्सव चरल एवं मार्मिक विचारधाराएँ उद्भासित हुई हैं। त्रिपाठी जी की भाषा शुद्ध-परिमाणित सही बोली है। उन्होंने सही बोली में इन दोनों काव्यों की रचना की है। इन में देश भक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। देश की दरिद्रता पर भी उनकी लेखनी खूब चली है। लौकिक प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना इन कृतियों का प्रधान विषय है।

### मिलन

स्वच्छन्दतावादी काव्य कृतियाँ में त्रिपाठी जी के मिलन का महत्वपूर्ण स्थान है। त्रिपाठी जी के संबंध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "काव्य क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता (रॉमान्टिसिज़्म) का आभास पं० श्रीधर पाठक ने दिया था उसके फल पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी विलग्न हैं। उन में त्रिपाठी जी ने ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बंध कर अपनी भावना के अनुसार मौलिक कथाओं की उद्भावना की है। कल्पित कथानकों की ओर यह विशेष फुकाव स्वच्छन्द मार्ग को सूचित करता है।<sup>१</sup> त्रिपाठी जी के काव्यों के कथानक उनकी कवि-कल्पना की मौलिक उपज हैं। मिलन का कथानक दाम्पत्य प्रेम तथा राष्ट्रीयता के भावों से परिपूर्ण है। राष्ट्रीय जीवन की कार्पनिक कथा-वस्तु को मिलन में व्यक्त कर उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया है। विदेशी युग की देश-पक्ति विषयक अवलम्बन समस्या को त्रिपाठी जी ने बहुत सरल, स्वाभाविक एवं कथार्थ रूप में मुखरित किया है। उन्होंने देश में दरिद्रता का कारण पराधीनता को माना है। स्वाधीन भारत का स्वप्न उनके मिलन काव्य में साकार रूप से देता जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है।

उस कुतन्त्र में तो दरिद्रता

कभी न होगी दूर ।

यह कर दगा छीछ जाति को,

निकल बकनापुर।

जब तक उस कुतन्त्र-बंधन से

होगे हम न स्वतन्त्र।

तब तक सिद्ध न हो सकता है

कोई हितकर मंत्र॥<sup>२</sup>

१- पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, बनारस- पृ० ६२२ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी- मिलन, प्रयाग बीसवीं संस्करण, पृ० ६० ।

स्वाधीन भारत के स्वप्न तक ही कवि ने अपनी बात नहीं कही है उसका विश्वास रहा है कि किसी भी महान उद्यम, की प्राप्ति सहज ही नहीं हो जाती है। उसके लिए मनुष्य को त्याग एवं धैर्य से कर्म में लगना पड़ता है। उसकी सहज रूप में नहीं, कर्म और संघर्ष के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :

विघ्नों से जाकर बिड़ जाना  
सम्पन्न सहना तीर ।  
सेवा साहस ही कर देगा,  
कर क्लेश क्षीर ।  
जा रहती है जाति जात में।  
मरने को तैयार  
बही जारता का पाती है,  
ईश्वर से अधिकार।।<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में कवि ने वात्सल्य की शिक्षा दी है। उस छन्द से सेवा की आभास होने लगता है जैसे विवेच्य युग की शक्तिवृद्धात्मकता एवं उपदेशात्मकता साकार हो उठी है। परन्तु ऐसा नहीं है बल्कि त्रिपाठी जी ने विवेच्य युग की वैतनिकता एवं उपदेशात्मकता को बहुत गरस एवं सुन्दर रूप में व्यक्त किया है। उनका विधान स्वच्छन्दतावादी ही रहा है। कवि ने अपने राष्ट्रीय भावों को सादगी और सरलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है।

त्रिपाठी जी ने इस काव्य में नारी-भावना का उच्च वाचार्थ प्रस्तुत किया है। उनकी यह दृष्टि वस्तुतः उनके जागरूक एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व की परिचायक है। उनकी नारी वाचुनिक युग के अनुरूप है। यह समाज-सेवा, --

---

१- रामनरेश त्रिपाठी- मित्र, प्रयाग बीसवीं संस्करण- पृ० ६२ ।

तथा राष्ट्रीयता के संघर्ष में जीतने की क्षमता रखती है। मिलन की विजया गांव- गांव घूमती है। सारी प्रजा में स्वतन्त्रता के बीज बोती है। जनता की लोई लालि, लालस एवं उत्साह को वह अपने मधुर वचनों से जागृत करती है :

उसके गान बतीस काठ के  
 थे चुल- रूप छलाय ।  
 चुन करके बाई भरते थे,  
 कुणक कछेना धाम ।  
 उसके गान लक्ष्मण में भरते  
 थे लालस उत्साह  
 बतलाते थे स्वतन्त्रता को,  
 चुन पाने की राह।।<sup>१</sup>

उपरोक्त छन्द में कवि ने प्रेम के उदात्त स्वरूप को व्यक्त किया है। उस प्रकार त्रिपाठी जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को और अधिक विकसित किया है।

त्रिपाठी जी के काव्यों में लड़ी बोली का विकसित रूप देखने को मिलता है। समानानुक्त शब्दावली का प्रयोग उनके काव्य की विशेषता रही है। कहीं- कहीं ऐसा लगता है कि कवि की ऐसी शक्तिवृत्तात्मक है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। बिछुवैवी जी के समित प्रभाव से कहीं- कहीं कवि विवेच्य युग की परम्पराओं से पूरी तरह छूट नहीं पाया है। परन्तु नवीनता की ललक और रूढ़ियों के विद्रोह ने उसे स्वच्छन्द मनोवृत्ति का पना दिया है।

---

१- रामनरेश त्रिपाठी- मिलन, पृ० ७४ ।



राण में उमड़- धुनड़ गर्जन कर  
घिर आये घन धोर  
कहा विषम विदित प्रभुवन,  
पुनी की फकलार।।<sup>१</sup>

कवि ने उपर्युक्त छन्द में आर्य- साधुजी का स्वाभाविक चित्र अपनी सरस शैली में व्यक्त किया है। त्रिपाठी जी की शब्द- चयन की कुशलता का प्रमाण रही है। काव्य के सद्गुण छन्दों, उपमाओं में कवि की मनोवृत्ति नहीं रही है। यह प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी काव्य कौशल की प्रतीक है। अतः इन प्रवृत्तियों के कारण त्रिपाठी जी का 'मिलन' काव्य स्वच्छन्दतावादी काव्य के सन्दर्भ में देता जा सकता है।

उपर्युक्त छन्द में कवि ने प्रकृति का उजीव एवं लापप्रमय चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकृति वर्णन में अनुभूति की गवीयता कवि ने प्रकृति को चेतना- सम्पन्न रूप में देता है। वर्णनात्मक कव्या वालंकारिक चित्रणों की सूक्ष्म परम्परा से छूटकर प्रकृति अब काव्य में स्वतन्त्र एवं उजीव रूप में दिताई पड़ती है। यह चित्रण स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का परिचय देता है।

त्रिपाठी जी के पथिक काव्य में देश- प्रेम तथा समाज प्रेम की भावनाओं का भी चित्रण सुन्दर ढंग से हुआ है। पथिक का नायक निरंकुश राजा के अत्याचारों से तंग आ गया है। उसका विश्वास है कि अगर उस राजा के विरुद्ध वाचाज उठाए तो समाज में सुखी वातावरण हो सकता है। जनता में यह धुन- धुन कर अवसरवादी आन्दोलन का बीज बोता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द दृष्टव्य है :

एक व्यक्ति निर्दयी निरंकुश बन बैठा अधिकारी ।  
शासन है कर रहा तुम्हीं पर ठीक शक्ति तुम्हारी ।

---

१- त्रिपाठी - मिलन- पृ० २२ बीसवीं संस्करण हिन्दी मन्दिर प्रयोग ।

अत्याचार स्वयं अपने ही ऊपर चुन करते हैं ।  
 अपने ही हाथों अपने को मार- मार मरते हैं ।  
 तुम अपने सुख के प्रबन्ध के हों न पूर्ण अधिकारी ।  
 यह मनुष्यता पर कर्कश है हे प्रिय बन्धु । तुम्हारी ।  
 पराधीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है ।  
 यह अपना न जान मैं केवल पशु ही कह सकता हूँ ।<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में कवि के भाव राष्ट्रियता की भावनाओं का प्रचार करते हैं। वह जनता की नक्का की चेतना का सन्देश देता है। वह धर्म, कर्तव्य पालन की दृढ़ता तथा वास्तव्यता की शिक्षा भी देता मिललाई पड़ता है। परन्तु यह शिक्षा या उपदेश नीरस ज्यवा वैतिकतावादी नहीं है। उसके कर्म सौत्र में जाने की प्रेरणा मिलती है। कवि ने फलापनवादी प्रकृति को धिक्कारा है और जीवन के गूढ़ रहस्यों का बहुत छरछ डंग से निरूपण किया है। वास्तविकता की भावना से ऊपर उठा कर उच्च जनता में नया उत्साह भरा है। उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द देखें :

सामा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति- विनयिता ।  
 सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा या निर्भयता ।  
 यह सम्पत्ति धरोहर भू की तुम्हें मिली मरने की  
 व्यवहार पर प्रस्तुत रस जन- हित में वितरण करने की।<sup>२</sup>

उपर्युक्त छन्द में कवि ने मानव जीवन के गुणों का उल्लेख करते हुए उनकी उपादेयता जनहित के पक्ष में बताई है। देश की सौदं दुई जनता की जागृत करने में यह प्रेरणा सफल रही है। कवि का यह दृष्टिकोण उसकी सामाजिक एवं मानवता-वादी चेतना का परिचायक है ।

१- रामनरेश त्रिपाठी- पथिक प्रयाग मैतीसर्वा संस्करण- पृ० ५० ।

२- वही; पृ० ३३ ।

पथिक काव्य की भाषा आधुनिक लड़ी लड़ी है। जो स्वच्छन्दता  
छलता, एवं स्वाभाविकता का रंग लिए है। इस काव्य में त्रिपाठी जी ने कहीं-  
कहीं भाषा में प्रौढ़त्व लाने के लिए सुन्दर मुहावरों का भी प्रयोग किया है।  
उन में ताज़गी एवं मौलिकता है। उदाहरण के लिए देखिए :

साते हैं गम और आसुर्जों से ही प्यास कुलाते।<sup>१</sup>

मिलने को उठती हूँ सीतिन बांस प्रथम उठ जाती है।<sup>२</sup>

सीकर लौती है दुनिया, मैं हाथ / आग कर लौती ।।<sup>३</sup>

इस भाषा में कृत्रिमता नहीं है। यह सरल, सुधीय, एवं प्रवाहमयी है। इससे  
कवि की मौलिक प्रतिभा और भाषा-शक्ति तथा भाव होता है। त्रिपाठी जी  
ने प्रेम की व्याख्या भी अपनी प्रसिद्ध भाषा में ही की है। उन्होंने अधिकांश में  
संस्कृत के सरल शब्दों का प्रयोग किया है। लेकिन उन शब्दों से क्लृप्तता नहीं  
आ रही है। विषय की सजीवता बराबर की रही है। उदाहरण के लिए प्रेम  
की व्याख्या का मार्मिक वंश दृष्टव्य है :

मिलन वन्त है मयूर प्रेम का और विरह जीवन है ।

विरह प्रेम की जागृत गति है और सुषुप्ति मिलन है।।<sup>४</sup>

प्रेम का कतना साहित्यिक रूप त्रिपाठी जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य  
प्रवृत्तियों को परिलक्षित करता है।

इस प्रकार त्रिपाठी जी के पथिक सण्ड काव्य में नयी मान्यताओं को  
काव्य भाषा का रूप दिया गया है। यह रचना गुलाम दशों को जाग भी प्रोत्साहन  
 देने की शक्ति रखती है। पथिक की कथावस्तु मार्गीवाद की सफल व्याख्या है ।  
 समतापयिक युग के अनुरूप कथा-वस्तु का चयन मौलिकता एवं ताज़गी लिए हुए है। --

१- रामनरेश त्रिपाठी- पथिक प्रयाग- पैतीथर्ष संस्करण, पृ० ४२।

२- वही- पृ० ४६ ।

३- वही, पृ० ४६ ।

४- वही, पृ० ४६ ।

ऐसी सार्थक स्वच्छन्दतावादी भावना सर्व अन्यत्र विद्यमान नहीं पड़ती है। विवेच्य युग की सामाजिक आर्थिक, तथा राजनीतिक समस्याओं का स्वर इस में मुखरित हुआ है साथ ही उन समस्याओं का निवारण भी कवि ने बहुत कुशलता से प्रस्तुत किया है। इतिहास- पुराण का वाक्य झोंड़कर त्रिपाठी जी ने सामान्य जीवन की काव्य का विषय बनाया। वस्तुतः उनके स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचय मिल जाता है। निष्पन्न-उद्देश्य, और भाषा के अतिरिक्त त्रिपाठी जी कर्तारों के प्रयोग में भी नये हैं। वे रूढ़ कर्तारों के फेर में नहीं पड़े हैं। उन्होंने उपमा और उत्प्रेक्षा को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान मौलिकता लिए हुए है। उपाकरण के लिए निम्नांकित हृन्म दृष्टव्य है :

मानाँ जलनों के शिकुण,  
दल बाँध लेलते हुए परस्पर  
अति उतावले मन से चलकर  
गोल पत्थरों पर गिर कर  
उड़ते करते नृत्य, विहंगते,  
तथा मनाते हुए महीसख  
जागर से मिलने जाते हैं,  
फाँ में करते हुए महारव।।<sup>१</sup>

त्रिपाठी जी ने काव्य में प्रकृति वर्णन भी समीप एवं स्वतन्त्र रूप से किया है। पथिक काव्य में तत्कालीन जनस्त प्रचलित काव्य- धाराओं का प्रभाव मिलता है। उनके काव्य ने वाचनिक हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया है। ये सच्चे अर्थों में अपने समय के स्वच्छन्दतावादी कवि सिद्ध होते हैं।

---

१- रामनरेश त्रिपाठी, पथिक- पैंतीसवाँ संस्करण, पृ० १६ ।

पथिक - (रचनाकाळ १९२० ई०)

रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में न कल्पना का प्राधान्य है और न वर्तित की पुकार । उनकी कविता समसामयिक युग की वेस्तु है । विवेकवादी स्वच्छन्दतावादी भावधारा के समस्त तत्त्व उनके काव्य में सम्मिश्रित हैं । साथ ही विवेक्य युग की रुढ़िवादिता से भी कवि दौड़ा प्रभावित रहा है । यही कारण है कि उनके तीनों लघु काव्यों में नवीनता के साथ कुछ पुराने तत्व भी समाहित हैं । पथिक में प्रकृति सौन्दर्य और सामाजिक चेतना का अच्छा प्रतिकल्प हुआ है । कवि ने (त्रिपाठी जी ने) श्रीरामेश्वरम की यात्रा में फल, नदी, एवं समुद्र तट के प्राकृतिक सौन्दर्य देते थे । वस्तुतः रामेश्वरम की स्मृति-स्वरूप ही पथिक की रचना हुई थी ।<sup>१</sup> पथिक का कथानक युग की सामाजिक चेतना से प्रेरित है । उस कथानक में वर्तमान ज़माने में चलता हुआ सजीव - इतिहास है । कल्पना की प्रधानता होते हुए भी वर्तमान के इतिहास का सत्य मुखरित हुआ है । त्रिपाठी जी वायुनिष्ठा के प्रति उत्साहित और तल्लीन पितार्थ देते हैं । त्रिपाठी जी ने उस कथानक में कौरी कल्पना एवं विरादार स्वप्नों से प्यार नहीं किया है । उन्होंने अपनी रूचि के समुद्र स्वच्छन्द विवरण के लिए नयी कथा की उद्भावना की है, पथिक में स्वाधीनता संग्रस की स्पष्ट भाँकी है । यह समसामयिक चेतना है- प्रेम की चेतना है ।

त्रिपाठी जी ने युग की भावनार्जों के साथ मिलकर अपनी भाषा और अभिव्यक्ति को सजीव बनाया है । स्थल-स्थल पर प्रकृति-प्रेम उनके काव्य का एक प्रधान धारा है :

प्रतिपाण वतन वेश बनाकर रंग-धिरंग निराला ।

रवि के सम्मुख धिरक रही है मन में बारिद माला ।।

---

१- रामचन्द्र मिश्र, श्रीधर पाठक तथा धिन्धी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य-

नीचे नील समुद्र बनाकर ऊपर नील गगन है।  
 धन पर बैठ बीच में बिकर गही चाहता मन है।<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में त्रिपाठी जी की उन्मुक्त कल्पना द्वारा चित्रित एक नयी एवं  
 वैतना सम्पन्न नारी का चित्रण है। नारी का ऐसा स्वतन्त्र चित्रण उनकी  
 स्वचम्पितावादी प्रवृत्ति का परिचय देता है।

प्रकृति की रुढ़ परम्पराओं को पीछे छोड़कर त्रिपाठी जी  
 ने उसका स्वतन्त्र चित्रण मिलन काव्य में प्रस्तुत किया है। मिलन काव्य में अन्य  
 प्रदेश की प्राकृतिक भाँकी को बहुत ही मनीषारी रूप में अंकित किया गया है।  
 उनके काव्य की संपूर्ण रसा-वस्तु प्रकृति की सुरम्य गीद में संपूर्ण हो सकी है।  
 उनके प्रकृति चित्रण में गीलिकता, भावुकता और ताज़गी का रंग यत्र- तत्र देखने  
 को मिल जाता है। मिलन- काव्य का वारम्भ प्रकृति के सुन्दर दृश्य से हुआ है।  
 उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

नीरव निशा तपोवन नीरव  
 शांत दिशा आकाश ।  
 तारागण करते थे मिलमिल-  
 मिलमिल अल्प प्रकाश ।  
 प्रकृति मौन, सनरावर निद्रित  
 वसति निस्तब्ध सनीर ।  
 बाग्रत था दीपक- प्रकाश में  
 केवल एक कुटीर ॥<sup>२</sup>

१- रामनरेश त्रिपाठी- पथिक- पैंतीसवाँ संस्करण, पृ० १५ ।

२- रामनरेश त्रिपाठी- मिलन- प्रयाग बीसवाँ संस्करण, पृ० १० ।

त्रिपाठी जी ने प्रकृति को जड़ नहीं माना बल्कि उसे मानवी घेष्टाओं से अनुप्राणित माना है। उनकी प्रकृति मिलन काव्य की नायिका विजया की तरहनी है। वह विजया के दुःख में दुःखी है :

शोक मान मेरी विपत्ति मैं -

एव ने तब विलास ।

सन मे गान, लता मे छिलना,

मृग मे गमन- प्रयास।।<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में त्रिपाठी जी ने प्रकृति का स्त्रीय एवं मानवीय रूप चित्रित किया है। उनके इस छन्द में दृश्य की ताज़गी के साथ भावुक्ता का रंग भी है जो वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य का मौलिक है। प्रकृति का यह रूप विवेच्य युग में श्रीधर पाठक के बाद त्रिपाठी जी के काव्य में नये रूप में उभर कर सामने आ सका है ।

मिलन काव्य में मानवतावादी धिचारधारा भी उद्भासित हुई है। इससे कवि स्वच्छन्द प्रकृति का बोध प्राप्त होता है। इस नवीन प्रकृति का विकास क्षायावाद में हुआ है। मिलन काव्य की नायिका विजया और नायक युवक दीन-दुलियाँ की उदायता एक ऐसा करते हैं। उनके प्रेम का माध्यम दुःखी मानवता को सुखी बनाना है। विजया अपने प्रेम का साक्षात्कार मानवता में करती है ।

विजया सत्य प्रेम से अपना

करके काया- कल्प ।

थली लौक- सेवा करने को

होकर दृढ़ संकल्प ।

उस दिन से सेवा न किसी ने

फिर उसका वह रूप ।

सैल पड़ी वर एक गाँव में

सन्ध्यासिनी - स्वरूप ॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त छन्द में कवि की मानवतावादी भावनाएँ सुलभित हुई हैं। मानवतावादी भावनार्थों से प्रसस्त उनका काव्य स्वच्छन्दतावादी काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करता दिखलाई पड़ता है।

त्रिपाठी जी के काव्य में सदा रवं सात्विक प्रेम का वापस दिखलाई पड़ता है। उन्होंने स्वदेश प्रेम के लिए दाम्पत्य प्रेम के उत्कर्ष का अपने काव्य का उदाहरण माना है। उनकी प्रेम विषयक पारणा में त्याग, तपस्या, और बलिदान जैसे सद्गुणों का समावेश है। उन्होंने प्रेम को जीवन के लिए अनिवार्य माना है। प्रेम की महिमा का गान करते हुए उन्होंने कहा है कि:

गन्ध - विहीन फूल है जैसे

चन्द चन्दिका - हीन ।

यों ही फीका है मनुष्य का

जीवन - प्रेम- विहीन

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है

प्रेम बरकत बरकत ।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है

प्रेम कदक- बालीक।<sup>२</sup>

१- रामनरेश त्रिपाठी- फिलन- प्रयाग बीसवीं संस्करण- पृ० ७१-७२ ।

२- वही, पृ० ४२ ।



अन्य कवि

“रूपनारायण पाण्डेय”

रूपनारायण पाण्डेय, जीपर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी की भाँति स्वच्छन्दतावादी नहीं है। लेकिन यह विभूवेदी मण्डल के बाहर के कवि है। पाण्डेय जी के काव्य में नैतिकता और उपदेशों का बोझ नहीं है। पाण्डेय जी ने अपने काव्य के लिए बहुत ही युगानुरूप और नये विषय चुने हैं। उन नये विषयों और अपने मौलिक विचारों के साथ पूरा पूरा न्याय भी किया है। नवीनता के प्रति पाण्डेय जी में एक सख्त लटक है। इस लिए उनके काव्य की स्वच्छन्दतावाद के अन्त्यस्त रहने में कोई हानि नहीं है।

पाण्डेय जी के काव्य में विवेच्य कालीन परम्परागत संकीर्णता नहीं है। बल्कि उन्होंने सरलता और उदारता का समन्वय अपने काव्य में किया है। पाण्डेय जी की काव्य शैली में दुरुहता नहीं है वरन् स्वाभाविक सख्यता दिखाई देती है। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य हैं :

मरते हैं सब लोग हमें, हम दीन-हीन हैं भिदगुह हैं।

बुद्ध भी हों, हम लोग अभी बच्चे होने के डचुक हैं ॥

सब है, केमव नहीं रहा पर बुद्धि हमारी दीन नहीं। १

पौरुष कम है, मगर हुए हैं मनुष्यत्व से हीन नहीं ॥

विवेच्य काल की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ से भी पाण्डेय जी किसी सीमा तक प्रभावित रहे हैं क्योंकि कोई भी भावुक एवं कल्पनाशील कवि अपने को युग की बमिट बाँधी की छाप से छुड़ता नहीं रह सकता है

---

१- रूपनारायण पाण्डेय - वात्सुमि, पराग, पृष्ठ २३ ।

(गंगा पुस्तक माला लखनऊ)

यही कारण है कि पाण्डेय जी के काव्य में समसामयिक युग का समाच जिन दुःखों और क्लेशों से पूर्ण था वह साकार हो उठा है। वर्तमान का चित्रण पाण्डेय जी के काव्य की एक मौलिक विशेषता रही है। उन्होंने प्रकृति के माध्यम से मानव जीवन के दुःखों के चित्र बहुत ही सहज भाषा में प्रस्तुत किए हैं। उनकी अन्योक्ति बहुत लक्ष्यहारिणी है-

बहह, क्लेश आंधी, जा गई तू कहाँ से ?

प्रलय- धन-घटा ही हा गई तू कहाँ से ?

पर दुःख -सुख तुने हा । न देखा, न भाँखा,

कुसुम अवलिखा ही छाये, वीं तोड़ डाला ।

तड़प- तड़प माली अकुमारा बहाता,

मलिन- मलिनिया का दुःख देखा न जाता।<sup>१</sup>

पाण्डेय जी ने अपने काव्य में प्रकृतिक माध्यम से वारुण जीवन की विषमताओं के चित्रण के अतिरिक्त प्रेम के चित्रण के लिये भी कपोत- कपोती को प्रतीक बनाया है। उस प्रतीक की वीं क्यों में देखा जा सकता है। पहला कारण विवेच्य काल जिस में विवेदी युगीन नैतिकता का प्रभाव कहा जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि पाण्डेय जी अपने काव्य में कला रूपों का प्रयोग करना चाहते थे अपनी इसी आकांक्षा को उन्होंने इन प्रतीकों के माध्यम से पूर्ण किया है। उनकी इसी भा ना की स्वच्छन्दतावादी काव्य में रखा जा सकता है। विवेच्य काल जो कौरी नैतिकता और नीरस उपदेशों का काल कहा गया है उस काल में पाण्डेय जी का --

१- रुक्मारायण पाण्डेय - दलित कुसुम पाराग, पृ० ८८

(गंगा पुस्क माला छनऊ)

अपनी परम्परा से छट कर एक नये विषय का चुनना उन साहित्य का काम नहीं है। आदर्शवादी युग में भी उन्होंने प्रेम जैसे तत्व को अपने काव्य में स्थान देकर एक उदार और सरल दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इसी विशेषता के कारण उनके काव्य में यत्र- तत्र स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्षण मिल जाते हैं। पाण्डेय जी काव्य में कला के नये रूप की आकांक्षा दृष्टव्य है-

वन- बीच बड़े थे, फंसे थे ममत्व में, एक कपात कपाती कहीं,  
दिन रात न छोड़ता एक को दूसरा, ऐसे छिटे- भिटे दोनों वहीं ।  
कहने लगा नित्य नया- नया नेह, नर- नरई कामना होती रही,  
खाने का पर्यायन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं।।<sup>१</sup>

पाण्डेय जी ने अपने काव्य में पारस्वात्य प्रभावों को भी ग्रहण किया है। उनकी यह विशेषता स्वच्छन्द प्रकृति की परिचायिका है। अंग्रेजी साहित्य के ज्ञानेनट ( ) के ढंग पर उन्होंने भी चांदनी रात शीर्षक लेकर चतुर्दशपदी लिखी है यह अपने ढंग की मौलिक कविता है। यह चतुर्दशपदी देखने योग्य है-

नील नमीमण्डल में कैसा सुन्दर रंग भलकता है।  
बिचको देस ऊदय प्याले से रसमय भाव भलकता है।  
छाईं सुख शरद की शोभा पूर्ण छन्दु के मण्डल में ।  
सागर तारा समा रहा ज्यों एक बिन्दु के मण्डल में।  
शुक्ला अभिचारिका सदृश यह शरद- शर्वरी मन- भारी,  
प्रिय- प्रभात से मिलने को हँसती सी देता, है आँई।  
चटकीली चांदनी पड़ी चांदर सी चन्द्र- वदन पर है,  
तारे हैं या चांदी के तारों का काम मनोहर है।।<sup>२</sup>

१- कप्तारायण पाण्डेय- वन विहंगम, पराग, पृ० ६२ (गंगा पुस्तक माठा लखनऊ)

२- वही - चांदनी रात, पराग, पृष्ठ, ८६ ।

इस प्रकार उपर्युक्त काव्य विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि पाण्डेय जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ स्थान- स्थान पर झिलती हुई मिलती हैं। पाण्डेय जी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि तैयार की है और उनकी यही एक महत्वपूर्ण विशेषता है ।

### मन्न विवेदी गजपुरी

विवेच्य काल की शक्तिकृतात्मकता, एवं कौरी नैतिकता से मन्न विवेदी गजपुरी ने अपने काव्य को सदा दूर रखा । वह काव्य को आदर्शवाद और नैतिकता-वाद के बोझ से दधाने के पदा में नहीं थे। उनको काव्य में सरलता और मधुरता ही प्रिय थी । समासात्मिक युग में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ बहुत संघर्षपूर्ण थीं उनके प्रभावों से विवेदी जी भी जूझते नहीं रह सके हैं । देश की राष्ट्रीयता देश के नव-निर्माण का संदेश उनके काव्य में झलकता था। उनके काव्य में देश के उत्थान तथा पतन दोनों के चित्र मिलते थे। विवेदी जी रुढ़िवादी नहीं थे इसी कारण उनका समस्त काव्य उनकी उदारता एवं विशालता का परिचायक कहा गया है। मातृभूमि माँ तुल्य है ऐसा उनका विश्वास था-

मन्न दिया माता सा जिस ने किया सदा छालन-पालन।  
जिसके मिट्टी कल आदिक पैदा रवा गया हम सब का तन ।  
गिरिवर गण रवा करते हैं, उच्च उठा के भूषा पहान ।  
जिसके छता घुमादिक करते, हमको अपनी छाया दान।  
माता केवल बालकाल में निज अंकन में भरती है।  
हम अस्तम-मय ललक ली तक पालन पोषण करती है।  
मातृ-भूमि करती है पैरा, छालन सदा मृत्यु पर्यन्त।  
जिसके दया-प्रवाहों का नहिं होता अपने में भी अन्त।<sup>१</sup>

कवि की मातृ भूमि के प्रति इतनी आस्था, इतना समत्व इस कारण भी है कि उस का स्तन है कि माँ तो कबल बचपन में ही छालन पालन करती है। परन्तु --

---

१- मन्न विवेदी गजपुरी, मातृभूमि, रास्वती - अक्टूबर १९६० ।

हम मातृभूमि की गोद में तो सर्वत्र ही रहते हैं जब तक मृत्यु न हो जाए इस कारण उसके कृष्णों हैं। हमें सर्वत्र उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम रहना चाहिए ।

मातृभूमि के प्रति प्रेम ही बिभूवेदी जी के काव्य की एकमात्र विशेषता नारी है जबकि उनके काव्य में दुःसाद भी मिलता है। परमात्मन-  
बोनापाट<sup>१</sup> कविता में उन्होंने कलुषाकी धारा बहाई है। यही उनकी भावनाएँ स्वच्छन्दतावादी काव्य के पैर में पैर जाती हैं। उनकी स्वच्छन्द और महान भावनाएँ दृष्टव्य हैं-

आज दिताई पड़ते हैं जो सुमन सुमन सौभाशाही ।  
कल प्रभात ही उन्हें तोड़ने वह देखा जाता माली ॥  
मेरे संगे सहोदर के सम क्रांत निवासी आवेगों ।  
कैंड कैंड गुण गाकर पैरा जांच वहाँ बहावेगों ॥  
जबवा मुझे छुल देना तुम उस प्यारे फलने के तीर ।  
जिगाका बल पीकर जीता था यह गुप तनिक बन्दीवार ।<sup>१</sup>

मन्न बिभूवेदी ने बोनापाट का चित्र उस प्रकार खींचा है। कि उस में तनिक भी परम्परावादिता नहीं मिलती है। कवि की विचार धारा एकदम मानवी है । यह मानवी चित्रण स्थूल न होकर बहुत सूक्ष्म है।

विवेच्य कालीन कवियों के काव्य में काव्य के स्थूल स्वरूप ही सामने आए जो कवि बिभूवेदी जी के प्रभाव से मुक्त रहे उनकी रचनाओं में हमें सरलता एवं मौलिकता मिल जाती है। मन्न बिभूवेदी गजपुरी की रचनाएँ इस कीटि में --

---

१- श्री मन्न बिभूवेदी गजपुरी- पीर बोनापाट के अन्तिम दिन- सरस्वती, अग १९१३

रही जा सकती है। हिन्दूवेदी जी की चमेली रचना में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ हैं। छोटे से विषय को काव्य में स्थान देना हिन्दूवेदी जी की अपनी एक विशेषता रही है। उनकी चमेली रचना बहुत सुन्दर और मधुर है -

सुन्दरता की रूपराशि तुम, दयालुता की छान चमेली ।  
 सुलजी कन्धारें मरस को, कम देता भगवान् चमेली ।  
 चक्कर रहें लगवन्व वनों में, जब न रही है रात चमेली ॥  
 कमल कमल कुलुमित होते हैं, देता हुआ ज्ञात चमेली ।  
 जल यात्रा में सहने होंगे, कभी कभी दुःख भार चमेली ।  
 काट-छाँट से मत दबराना, यह भी उसका प्यार चमेली ।<sup>१</sup>

हिन्दूवेदी जी ने चमेलीको मानव जीवन का प्रतीक बनाया है उस का प्रारम्भ से अन्त तक कवि ने गम्भीर निरीक्षण किया है। कवि ने कायरता और फलायन-अविदितता की वक्ता नहीं माना है बल्कि उसका तो ऐसा विश्वास रहा है कि मानव को काल रूपी कराल का तात्कालीन धीरज और निर्भय होकर स्वागत करना बाहिर ज़रूरी है उसका कल्याण हो सकता है। कवि की इस रचना के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी काव्य का उत्कृष्ट स्वल्प विवेच्य काल में प्रस्फुटित हो सकता है। कवि ने लौकिक जीवन की भाँकी चमेली को प्रतीक बनाकर प्रस्तुत की है दृष्टव्य है --

हिम्न - भिन्न ठालों का होना अपने ही हित जान चमेली ।  
 हरे- हरे पते निकलें सुमनों के सामान चमेली ॥  
 भ्रमर भीर गुंजार करेगी, तुम से हास विलास चमेली ।  
 धिगूँधिगन्त सुरमित होकेगा, पाकर सुख सुवास चमेली ।

बटल नियम की भूल न जाना, जग में तब का नाश बमेली ॥  
 अस्त बंशमाली भी होता, कून बखिठ बाजार बमेली ॥  
 नहीं रहेगा मूल न शाखा, नही पनोहर फूल बमेली ।  
 निराकार से मिलकर होना, प्रियतम-पद की धूल बमेली ॥<sup>१</sup>

प्रकृति का मानवी रूप देना स्वच्छन्दतावादी कवियों की एक प्रमुख विशेषता रही है। ऋष्यवैदीजी ने भी अपने काव्य में इस विशेषता की अपनी सुन्दर कहेमता और सहज भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। विवेच्य काल का यह कवि भाव-भाषा एवं हृन्द वापि की दृष्टि से स्वयं नया है। सहज सामान्य जीवन को काव्य का विषय बनाकर उसे स्वच्छन्दतावादी भावों से भर- दिया है ।

---

१- श्री मन्मथ ऋष्यवैदी- गजपुरी- बमेली सम्प्रदायी, जनवरी, १९१६ ।



## जय शंकर प्रसाद

वाधुनिक हिन्दी काव्य में प्रसाद का जयना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । विवेच्य युग के उत्तरार्द्ध में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थी जिनसे एक नये युग का सूत्रपात हुआ । द्वितीय युग की उत्कृष्टात्मकता एवं नैतिकता से जलग हटकर प्रसाद की में अनुभूति एवं कल्पना प्रधान काव्य परिपाटी को जन्म दिया । अपनी वार्षिक कविताओं में उन्होंने स्मृत के स्थान पर सूक्ष्म की ओर ध्यान दिया है । वाधुनिक हिन्दी काव्य की वाधुनिक पैतना से संयुक्त करने वाले कवियों में प्रसाद का नाम प्रमुख है ।

प्रसाद की प्रारम्भ में ब्रह्म-भाषा के कवि रहे किन्तु युग के प्रभाव के अनुसार वे लड़ी लौली में लिखने लगे । लड़ी लौली में लिखने पर भी सरस्वती की कड़ी छाप उन पर नहीं लग सकी । प्रसाद की केवल कवि ही नहीं बल्कि कथाकार और नाटककार भी है । उन सब में उनका व्यक्तित्व खूब झलकित हुआ है ।

प्रसाद की युग निर्माता कवि थे इस कारण कला और भाव दोनों में नवीनता चाहते थे । इनके काव्य में सूक्ष्मता एवं गहनता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । उनके काव्य में अमिष्यजना लैली की गीतात्मक मधुरता भी अपने परम उत्कर्ष पर देखी जा सकती है । उन्होंने अपने थोड़े से समय में हिन्दी काव्य को क्लासिक नवीनता प्रदान की है । काल - क्रम के अनुसार प्रसाद की मुख्य काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

महाराजा का महत्व	( सन् १९१४ ई० )
प्रेम - पथिक	( सन् १९१३ ई० )
चित्राचार	( सन् १९१६ ई० )
कानन - कुसुम	( सन् १९२२ ई० )

ऊपर की रचनाओं में हमें केवल उन्हीं रचनाओं का अध्ययन करना है जो विवेच्य युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित रही है ।

**प्रेम - पथिक ( रचना काल १९१२ ई० )**

प्रेम - पथिक प्रसाद की एक खूबसी कृति है। रोमांस, कल्पना भावुकता, काव्य ऊँची और आदमी जीवन दृष्टि, सबका यहाँ मणिर्काचन योग है। प्रेम-पथिक की प्रसाद ने प्रेम और जीवन की समन्वयात्मक परिधि में प्रतिष्ठित किया है। प्रेम के उदात्त स्वरूप और मानव जीवन में उसके विभिन्न रूपों का भी वर्णन इस में सुन्दर ढंग से व्यञ्जित है।

जीवन, प्रकृति और प्रेम के रूप में प्रसाद ने 'प्रेम-पथिक' के कथानक को सार्वभौम रूप-प्रदान दिया है। इस प्रकार की प्रवृत्ति संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रेम - कथाओं में पाई जाती है। प्रेम का यह विराट रूप जो कवि ने हमारे सम्मुख रखा यह स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का प्रतिफलन है। शुकल जी के अनुसार ----- "स्त्री के प्रेम में योगी होना और प्रकृति के निजिन चीज में कुटि झाकर रहना एक ऐसी भावना है जो समान रूप में सब देशों के और श्रेणियों के स्त्री - पुरुषों के मध्य को स्पष्टी स्वभावतः करती जा रही है।" प्रेम में त्याग और समर्पण मानव की उदात्त भावनाएँ हैं। उसी में मानवता का सौन्दर्य परिलक्षित होता है। शाश्वत प्रेम की वान्तरिक अनुभूतियों को नियोजित कर प्रसाद ने इसे दार्शनिक भाव - भूमि प्रदान की है। व्यक्तित्व व्यथा की प्रतिक्रियाओं और शाश्वत प्रेम की अनुभूतियों में प्रसाद की दार्शनिक चेतना व्यञ्जित है। प्रसाद ने अपने प्रेम-पथिक में जीवन की गहरी अनुभूतियों की एक समिटि ऐसा भी बनाने में सफल हो है। प्रसाद जो मानवतावादी कवि है उसी लिए उनके 'मानव' को मन्त्रियों, मस्त्रियों में नहीं बरन् प्रकृति के विराट सौन्दर्य में, दुःखी मानवता में तथा प्रेम और सौन्दर्य में दुःख का सकता है। प्रेम उनके काव्य का भूसाधार रहा है। प्रेम जीवन की संजिनी शक्ति है तथा विश्व की मूल प्रेरणाका स्रोत है। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द दृष्टव्य हैं।

“ पथिक प्रेम की राह कभीसी भूल भूल कर चलना है ।  
 पनी छाँह है जो ऊपर ती नीचे काटे ढिले हुए ।  
 प्रेम - यज्ञ में स्वाधे जीर कामना हवन करना होगा ।  
 तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का फल पावोगे ।  
 प्रेम पवित्र पदार्थ न इसमें कहीं कपट की छाया हो ॥”

प्रसाद जी ने “ प्रेम - पथिक ” में प्रकृति के विभिन्न क्रिया-व्यापारी में अपनी दार्शनिकता की भी स्पष्ट किया है । उन्हें प्रकृति की ग्रीहाजी में कामरूप परम-शिव का आभास दिखाई पड़ता है । उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है ।

देखी मोहन अपना कैसा पैर बढ़ता जाता है  
 नीलाम्बर की छौड़ दिया , पीताम्बर पहने वह बाया ,  
 ताराजी का मणि - आभूषण धीरे - धीरे उतरा है ॥

“ पथिक ” लौकिक वियोग की साणिक मानकर अपने सौन्दर्य सागर में डूब जाना चाहता है क्योंकि कवि का ऐसा विश्वास है कि उसके बाद कोई दुःख नहीं होगा उदाहरण के लिए प्रस्तुत छन्द दृष्टव्य है ।

उस सौन्दर्य - सुधासागर के कण है हम तुम  
 दोनों ही , मिल उसी वानन्द - अम्बुनिधि  
 में, मन से प्रमुदित होकर , यह जो साणिक  
 वियोग , वहाँ पर नहीं फटके पावेगा , एक  
 तिन्यु में मिल कर अपना सन्मेलन होगा  
 सुन्दर , फिर न बिछड़ने का मय तुम को मुझको  
 होगा कहीं कभी ॥

इस प्रकार इस काव्य में वाक्सी प्रेम की एक कहानी कही गई है ।  
 प्रसाद जी की इस कृति में सौन्दर्य एवं प्रेम विषयक दृष्टिकोण तथा सामाजिक चेतना की मली प्रकार देखा जा सकता है । हम समस्त विशेषताओं में

स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बौध होता है । प्रसाद जी की यही विशेषताएं छायावादी युग के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई हैं ।

### सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त की प्रमुखतः स्वच्छन्दतावादी कवि हैं। विविध काल की उनकी रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ पूरी मात्रा में प्रतिकूलित हुई हैं। पन्त की प्रकृति और मनुष्य के सुन्दर रूप के कवि हैं। उनके लघुपूर्ण काव्य में सौन्दर्य-प्रियता और कोमलता का ही प्रधान्य है। उनकी यह प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद की परिचायिका है। स्वच्छन्दतावादी कवियों की मूल प्रवृत्ति प्रायः यही रही है। पन्त का मन मानव स्वभाव की दुःखताओं या सामाजिक जीवन की कुरूपताओं की और मन उच्च रूप में आकर्षित नहीं हुआ है। उनका मन मानव की कोमल भावनाओं और प्रकृति के सुन्दर एवं मनोरम रूपों में रमा है। उनके काव्य में अप्रस्तुत रूपों का मूर्ध - विधान तथा छायात्मिक शैली का सुन्दर निहार है।

पन्त की कविता का उद्योग से कड़ा तत्त्व उनका आशय प्रकृति-प्रेम है। वीणा तथा ग्रन्थि इस का प्रमाण है। प्रकृति कवि की प्रेरणा का स्रोत रही है। प्रकृति के बदलते रंगों ने कवि को सौन्दर्य के प्रति प्रेम और जिज्ञासा की दृष्टि भी दी है-

ढाँड़ दुर्ग की मृदु छाया,

तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाँटे, तेरे बाँट-बाँट में कैसे उलझा दूँ लीचन ?<sup>१</sup>

पन्त की यह कोमल भावनाएँ वीणा की हैं। पन्त की इस कविता में प्रकृति प्रेम का उत्थार इतना तीव्र है कि कवि किसी प्रिया की कैल-राशि में अपने लीचन उलझा देने के लिए तैयार नहीं हुआ है। कवि की इस प्रकृति को स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पन्त की हिन्दी में रोमाण्टिक युग के प्रवर्तकों में से एक है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में प्रकृति-के विराट रंग-मंच पर उनकी सौन्दर्यमयी दृष्टि पल्लव, वीचि मधुप-कुमारी, किरण, चाँदनी, वसरा, संध्या, ज्योत्स्ना, छाया, हनु, पुरमि, तारकाई जादि पार्श्व का ही ==

अभिनय देखती है- ज़्यादा देतना चाहती है। दिगन्तक्यापी उत्कापात, बंधन, मुक्त्य और बाध्य- पंथ जादि में झकी वृत्ति नहीं रमती।<sup>१</sup> लेकिन प्रकृति के इस कौमल पक्ष को विवक्षित करने में वे सब से बागे हैं ।

विरास ही या मिलन कवि में दोनों अनुभूतियां शक्ती तीव्र एवं तीली हैं कि उसकी छैतनी से कौई भाव ब्रह्मता नहीं रह सका है। पन्त जी की कल्पना वेदनामयी है। उसे जांसुजी में जीवन के गान सुनाई दिए हैं। जहाँ में उसे सरीले छन्दों का आभास हुआ है। छत्तीछिर उसकी आत्मा पुकार उठी है कि-

वियोगी होगी फलदा कवि,  
बाह से उपमा होगी गान ।  
उमड़ कर जहाँ से चुपचाप  
बही होगी कविता अनजान।<sup>२</sup>

इस प्रकार पन्त जी के काव्य की सुदम सौन्दर्य - दृष्टि और सुकुमार उदाह कल्पना हिन्दी काव्य में अनन्य हैं ।

पन्त जी की प्रमुख कृतियां ये हैं:- (१)वीणा (सन् १९१८ ई०)  
(२) ग्रन्थि (सन् १९२० ई०) (३) पल्लव (१९२२-२६) (४) गुंजन (१९२६-३२)  
(५) कुलान्त (१९३५) (६) सुवाणी (१९३७-३९) (७) ग्राम्या (१९४०) (८) स्वर्ण  
किरण (१९४०) (९) स्वर्ण-धूलि (१९४४) (१०) पञ्च-ज्वाल (१९४८) (११) सुपथ  
(१९४९ और (१२) उषरा (१९४९) परन्तु हम यहाँ वीणा और ग्रन्थि की ही  
छें। क्योंकि यह दोनों हमारे विवेच्य काल की सीमा में आती हैं। इनका  
अध्ययन हम स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से करना है। इन दोनों रचनाओं में  
स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियां कहा तक हैं, यहाँ हमारा उद्देश्य है।

१- डा० नरेन्द्र- आधुनिक कवि पन्त, पृ० ९ ।

२- प्रो० जिनकुमार- हिन्दी साहित्य: सुा और प्रवृत्तियां, दिल्ली, प्र० सं०

वीणा - रचनाकाल (१९१८ ई०)

वीणा की रचना सन् १९१८ ई० में हुई है।

उसमें पन्त जी की कौमल अनुभूतियाँ बहुत सजीव रूप में प्रदर्शित हो उठी हैं। पन्त जी ने प्रकृति की नारी रूप में भी देखा है। जैसे समस्त काव्य का प्रकृति-चित्रण और नारी कला की सजाँ की जा सकती है। पन्त जी की वीणा नामक रचना में एक और तो किशोर कवि की घातकुलम भावुकता है और दूसरी ओर प्रकृति के प्रति उसका जगाध प्रेम है जो वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बोध कराता है। उनके इसी प्रकृतिप्रेम और भावुकता ने छायावादी काव्य को युद्ध बनाया है। प्रकृति चित्रण करते समय कवि ने प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण भी किया है। प्रकृति की गतिविधि को समझा है और उसे अपने मन की बात भी सुनाई है। सरिता के सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्ति की कौमलता द्रष्टव्य है :

मैं भी उसके गीत सीखने

आज मैं भी उसके पास

उसके कौ नुदुत नाच है

उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल ॥<sup>१</sup>

उपरोक्त छन्द में कवि की कल्पना सरिक से गीत सीखती है। कवि का यह दृष्टिकोण वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी रहा है। इसी कारण हिन्दी काव्य की नयी भाव-भूमि की निर्माण किया है। पन्त जी ने मानव जीवन की मांति प्रकृति में एक प्रणय-व्यापार की कल्पना करता है। मायुक कवि सुझनारी लता की नारी समक कर कल्पना करता है जैसे वह लखर है वस्तुविक्रम प्रेम विपरीत होकर गति लग रही है। उसकी मौलिक कल्पना नर-नारी प्रेम को प्रदर्शित करती है। निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए :

विष्णु निष्ठा मैं किन्तु गति तुम

लगती हो फिर लखर के ॥<sup>२</sup>

इसके छन्द में पन्त जी की ये अनुभूतियाँ प्रकृति जीवन के वनिक तथ्यों की ओर भी उलारा करती दिखलाई पड़ती है। कवि प्रकृति नारी के सौन्दर्य पर मुख्य है। और उसके वनूठे सौन्दर्य के विषय में स्वर्य करकत बहुत सरल एवं स्वाभाविक रूप से प्रश्न की पूछ बैठता है :

कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनी ।

पाया तूने यह गाना ?

सोई मैं भी तू स्वप्न नींद में

पंखों के सुत में झिझक

कुम रहे थे घुम दार पर

प्रहरी से जुझू नाना ॥<sup>३</sup>

१- सुमित्रा नन्दन पन्त, धीणा, पृष्ठ ३ ।

२- वही, पृष्ठ ५ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त, धीणा, पृष्ठ ५ ।



उपयुक्त शब्द में कवि ने प्रकृति की नारी रूप में देवता के साथ साथ अपनी दार्शनिक दृष्टि का परिष्कार भी दिया है। प्रकृति के कवार् सौन्दर्य में झूझ कर कवि की कल्पना ने सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति बहुत ही सुन्दर ढंग से की है। कवि को प्रकृति के मधुवन अपनी ओर खींचते हैं। कभी उस फूलों का हास अपनी ओर अनुरक्त होने की प्रेरणा देता है। कभी नारी कमीलों की मदिरा उसे मग्न करती है। कवि की अतिरूप कल्पना के द्वारा उसका प्रकृति चित्रण सजीव और स्निग्ध रूप में चित्रित हुआ है। प्रकृति प्रेम स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य की एक प्रमुख विशेषता रही है। यह महत्त्व पूर्ण प्रकृति 'वीणा' में पूरी तरह से झुसरित है। प्रकृति पन्त जी की सती की है और पैयली की। कवि ने प्रकृति में विश्व आत्मा के दर्शन भी किये हैं। कवि की कल्पना में भी समव्यस्का बात प्रकृति के गति में बाँहें हात कर विहार किया है। कभी प्रकृति ने अपनी स्निग्ध मनोहर गीद में उसका लातन-मालन किया है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रण में सजीवता एवं ताजगी है। पन्त जी ने वीणा में कई सुन्दर गीतों की सुन्दर योजना की है। उदाहरण के लिए निम्नांकित शब्द प्रष्टव्य है :

उस फैली हरियाली में,  
कौन खैली खेल रही माँ ?  
यह अपनी बयवाली में,  
सजा हृदय की घाली में,  
झीड़ा, कौतुहल, कौमलता,  
मौद मधुरिमा रास विलास,  
सीता विषय कसफुरता मय,  
स्नेह, फुलक, सुस सरल मुलास,  
उष्ण की मुहु साली में ॥१

१- पन्त, वीणा, पृष्ठ ८ ।

वीणा का समस्त काव्य-सौन्दर्य प्रकृति की लूठी सुन्दरता की धुप-झाँह में बुना हुआ है। पन्त जी ने अपनी कल्पना की सुलिका से छोटी सी छोटी वस्तुओं में भी एक नया रंग भर दिया है।

पन्त जी के काव्य का महत्व पूर्णतः तब है - कल्पना और प्रकृति प्रेम। हिन्दी साहित्य में ऐसा कोई भी कवि नहीं है जिसने प्रकृति को अपने जीवन का एक अनिवार्य अंग मान लिया हो। डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "प्रकृति के रूपों के साण - साण बदलते रंगों - वाक्यों में ही कवि को सौन्दर्य के प्रति प्रेम और जिज्ञासा की दृष्टि दी है। आरम्भ में तो कवि को प्रकृति के प्रति इतना आग्रह था कि उस नारी सौन्दर्य को उतना वाकणीय नहीं लगता था जितना प्रकृति सौन्दर्य।" १ ब्रह्मानन्द जी के इस कथन की पुष्टि कभी वीणा के निर्माकृत छन्द के द्वारा मिल जाती है।

छोड़ कुर्मी की मूढ छाया

तोड़ प्रकृति से भी माया

बाते तेरे बात बात में

कैसे उलफा दुँ लोचन ? ॥ २

उपयुक्त छन्द में कवि पन्त जी प्रकृति के वाकणीय ने अपनी ओर खींच लिया है। प्रकृति ने इसी लूठी एवं मनीषरूप में उनके काव्य को वह रूप रंग दिया है जो विवेक युग के स्वहृन्दतावादी कवियों से उन्हें जलग कर देता है। इस प्रकार पन्त जी के काव्य में कला पदा का निर्वार भी फ्याँस और साथ ही हृदय-पदा की भी प्रधानता रही है। इसी लिए उनकी कला का स्वरूप भी कौमल एवं सरल है।

- 
- १- डा० इन्द्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, प्रथम संस्करण  
पृ० १६२, उदाहरण १६६२।  
२- पन्त, वीणा, पृ० ६

## ग्रन्थि - रचना काल - सन् १९२० ई०

ग्रन्थि की रचना १९२० ई० में हुई । यह एक सप्थ काव्य है । इसमें कवि का सौन्दर्य - प्रेम तथा प्रकृति प्रेम प्रचुर मात्रा में दिखालाई पड़ता है । पन्त जी ने अपने हृदय की सरसता इसमें उल्लिख दी है ।<sup>१</sup> स्थान - स्थान पर प्रेम सम्बन्धी पानवीय व्यापारों की सरस व्यञ्जना हुई है । जो कवि की भाषा के माधुर्य से नया रूप लेकर बाई है । प्रेम की यह व्यञ्जना पानी पी कर घर पहुँचा वाले मुहावरे से मिलकर बिल्कुल मिलर जाई है<sup>२</sup> ।<sup>३</sup> उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य है ।

‘ यह अनोखी रीति है पैस क्या प्रेम की ,  
जो अपागी से अधिक है पैसता ,  
दूर होकर और बढ़ता है , तथा  
बारि पीकर पृथ्वी है घर सदा ? ’<sup>४</sup>

विवेच्य काल में अनेकों प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना हुई है । ‘ ग्रन्थि ’ भी एक प्रेमाख्यानक काव्य है । इसमें कल्पना का उत्कर्ष और मृत्ता साक्षात्तिक मर्मिमा दिखालाई पड़ती है । इसकी मध्यकालीन प्रेमाख्यानक काव्यों में नहीं रता जा सकता कथा और भाषा ऐसी बादि की दृष्टि है यह एक वाधुनिक रचना है ।<sup>५</sup> इसमें उदान्त उन्नयित और पवित्र प्रेम की अनुभूति है । अनुभूति का आधार कुछ भी हो किन्तु उसकी अभिव्यक्ति निश्चय ही भावात्मक होने के कारण वासनारूपक वाक्यरूप से रहित है ।<sup>६</sup> पन्त जी प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं ।

‘ ग्रन्थि ’ में भी प्रणय तथा सौन्दर्य का रूप मिलर कर बाया है । प्रकृति

१- डा० चन्द्रनाथ मदान - वाधुनिक कविता का मूल्यांकन, प्रथम संस्करण , पृ० २०२ उदाहरण १९६२ ।

२- पन्त - ग्रन्थि , द्वितीय संस्करण , पृ० १३ ।

३- डा० श्री कृष्ण लाल, वाधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास , द्वितीय संस्करण , पृ० ६६ ।

के मनोहर रूपों के प्रति पन्त जी ने नाना प्रकार की कल्पनाएं की हैं ।  
उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है ।

छंदु पर, उस छंदु मुख पर, साथ ही  
थे पड़े भी नयन, जो उदय से ,  
साथ से रक्षित हुए थे, - पूर्ण को  
पूर्ण था , पर वह द्वितीय अपूर्ण था । १

पन्त जी की प्रकृति उनकी कल्पना का प्रसार दीप्त रही है ।  
प्रकृति का चेतनीकरण और मानवीकरण उनकी प्रकृति के मानवतत्त्व के  
प्रतीक है । ' ग्रन्थि ' में नारी - पुरुष के प्रेम का सहज रूप प्रस्तुत हुआ  
है । उदाहरण के लिए प्रस्तुत छन्द दृष्टव्य है ।

शीश रख मेरा सुकौमल जापि पर ,  
शशि कला सी एक वाला व्यग्र हो  
देखती थी म्लान मुख मेरा , जल ,  
सदय , भीरन , खीर , चिन्तित दृष्टि से ॥ २

पन्त जी ने प्रेम , परिहास , रति, स्मृति, वेदना, उन्माद आदि समस्त  
गुणों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है । प्रेम के स्वरूप का निरूपण  
करते हुए कवि ने कहा है कि :

खीर , मौलै प्रेम क्या तुम हो बने  
वेदना के विकल लार्थी है ? जहां  
मृमते गज - से विचरते हो , वहीं  
बाह है , उन्माद है, उताप है । ३

१- पन्त, ग्रन्थि , द्वितीय सं० पृ० ६

२- सुमित्रा नन्दन पन्त , ग्रन्थि , द्वितीय संस्करण , पृ० ६

३- वही , ग्रन्थि , द्वितीय संस्करण , पृ० ३८

पर नहीं , तुम चपल हो चलान हो ,  
 हुक्य है , मस्तिष्क रहती हो नहीं  
 करन बिना सोचे , हुक्य के हीन कर ,  
 सौंप देते हो अपरिचित हाथ में । १

पन्त जी ने प्रेम के व्यावहारिक रूप की गम्भीरता के लिए दीनता , कण्ठा  
 और आत्मलज्जा को भी अनिवार्य माना है ।

दीनता के ही विकसित पात्र में ।  
 धान ऋकुर हलकता है प्रीति है ॥ २

पन्त जी ने \* ग्रन्थि \* में भावों और भाषा का भी सुन्दर समन्वय प्रस्तुत  
 किया है । उदाहरण के लिए निम्नांकित छन्द दृष्टव्य है :

चपल जीवन की तरी भी , विश्व में  
 हुकती ही है , मर सी घुमकर ,  
 मग्न होकर किन्तु सबको सख्त ही  
 नाश फिलती है नहीं यों दूसरी ॥ ३

पन्त जी ने केवल इतिवृत्तात्मक काव्य के साथ ही विद्रोह नहीं किया बरिक्त  
 भाषा और कर्तकार के क्षेत्र में भी प्रगति की है । उनके भावों की सुकुमारता  
 के कारण उनकी कला का रूप भी कोमल है । उनकी सौन्दर्य-दृष्टि ने उनकी  
 कला को रूप एवं आकार प्रदान किया है । उनके काव्य में कर्तकार सरल एवं  
 स्वाभाविक रूप से आये हैं । पन्त जी की ग्रन्थि में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ  
 अपने विकसित रूप में आई हैं । प्रेम और प्रकृति के विभिन्न तत्वों को पन्त जी ने  
 अपनी मौलिक प्रतिभा के रत्न पर उन्हें सुदृढ़ और पुष्ट किया है । उनके काव्य  
 के द्वारा आयावादी काव्य-परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है । उन  
 स्वच्छन्दतावादी काव्य - प्रवृत्तियों के कारण ही द्वितीय-युग की इतिवृत्तात्मकता,  
 नैतिकता , और नीरसता नीचे दब गई और काव्य के अनुभूति एवं कल्पना प्रधान  
 रूप का युग प्रारम्भ हुआ । पन्त जी के आरम्भिक काव्य में कल्पना का वैभव

फैलने योग्य है । प्रकृति - प्रेम ही तबका मानव प्रेम वह उनकी रचना का प्रधान विषय रहा है । उनकी प्रार्थना भाषा के प्रयोग से प्रेम की उदात्त अनुभूतियां हृदय की स्पर्श करने में सफल हुई हैं ।

वन्धु कवि

मुकुटधर पाण्डेय

विवेच्य काल की परम्परावादीता एवं नैतिकता को पीछे छोड़ काव्य में नवीन अनुभूतियों, मौलिक कल्पनावर्षों को लाने का श्रेय पाण्डेय जी को है। उनका काव्य किसी सीमा में जाकर बंधा नहीं है। बल्कि मानवीय पावनार्थों की सख्त रूप में अभिव्यक्त करता हुआ बागे बढ़ा है।

मानव जीवन की दायि मंगुरता और काल-रूपी कराछ के धपेड़ों को भी पाण्डेय जी ने अपने काव्य में व्यक्त किया है। उनका विश्वास था कि मानव जीवन को पा-पा पर जैसी दुःखों और क्लेशों का सामना करना पड़ता है और उन्हीं दुःखों और कठिनाइयों में तप कर ही जीवन की वास्तविकता का पता चल पाता है क्योंकि जीवन जीने के समान निरंतर उठता है -

ये सब मुदित हम बाध हमकी मोद पाना है नहीं ।

इस विन्दगी का भाइयों, कुछ भी ठिकाना है नहीं ॥

पाकर दायिफ सुल मोग है हा, हम जमी फूटे हुये,

घट जाय केले कौनसी घटना, इसे मूले हुये ॥

पाण्डेय जी ने जीवन की परिवर्तनशीलता, कटुता और दायिफता पर ही नहीं लिखा है कि बल्कि यह भी माना है कि दुःखों के नीचे दबकर ही मानव वास्तविक सत्ता की पहचानता है। कवि का विश्वास है कि भगवान का निवास भी कहीं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में नहीं सीता है बल्कि उस सत्ता की फाँकी तो इन लोगों में मिल सकती है -

१- मुकुटधर पाण्डेय - काल की कठिनाई " कविता कुसुममाला, सं० (सीचन प्रकाश)

(अभिधायन प्रेस प्रकाश)

दीन दीन के लक्ष्मीर मैं ।  
पतिता की परिताप पीर मैं,  
सन्ध्या की चंचल सपीर मैं,  
करता था तू गान ।<sup>१</sup>

पाण्डेय जी समाज सुधारक भी हैं उन्होंने काव्य के माध्यम से समाज में व्याप्त ऊँच नीच की भावनाओं को भी बुरा कहा है। सब प्राणी ईश्वर के हैं प्रत्येक में उस की सत्ता का निवास है। प्रत्येक की सत्ता है यह प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी भावों की पोषक है -

सरल स्वभाव कृष्णक के छल मैं  
पतिव्रता रमणी के बल मैं,  
जम सीकर से सिंचित धन मैं  
विषय मुक्त धरिजन के मन मैं  
कवि के सत्य पवित्र वचन मैं  
तेरा मिठा प्रमाण॥<sup>२</sup>

पाण्डेय जी इस से भी एक कदम आगे बढ़ कर यह मानते हैं कि जो समाज व्यवहार करता प्रत्येक के लिए अपने मन में जादर और सम्मान की भावनाएँ रखता है। दीन दुष्टियों का साथ देता है। पीड़िता मानवता को सान्त्वना देता है तो उसकी मुक्ति के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है बल्कि उसे तो--

देता मेने यहीं मुक्ति थी,  
यहीं पाँव था, यही मुक्ति मुक्ति थी,  
पर मैं ही सब योग युक्ति थी,  
पर ही था निर्वाण॥<sup>३</sup>

१-मुकुटपर पाण्डेय- तरस्वती, दिसम्बर, १९१७ ।

२- मुकुटपर पाण्डेय- तरस्वती, दिसम्बर, १९१७ ।

३- वही - वही, वही, वही।



पाण्डेय जी प्रकृति प्रेमी भी हैं। प्रकृति के सुन्दर एवं मनोरम रूप को देखकर उनके मन में जिज्ञासा के भाव जाग उठे हैं। वह प्रकृति में भी मानवी रूप का आभास पा रहे हैं --

प्राची में बहूणीदय - ऊरुप  
हैं दिखा रहा निज दिव्य रूप  
लाठी यह किसके उधरों की,  
लुप्त पड़े पछिन नदान-हीर।।<sup>१</sup>

इस में कवि की स्वच्छन्द प्रकृति परिलक्षित है। पाण्डेय जी ने प्रेम को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। प्रेमियों के प्रति उनके मन में सहानुभूति की भावना भी है। प्रेम में जी जांसु निकलते हैं वह अविरल बहते रहे कवि उस में सार्थकता मानता है क्योंकि उसे सहानुभूति मिलती है। दो चित्रों को पाण्डेय जी ने अपनी प्रासादिक एवं मधुर शैली में व्यक्त किया है --

प्रेमियों के हृदय-साकार में बड़े  
यत्न से इन मोतियों को गूँथ कर  
जी बनाता हार अपने कण्ठ का  
माझों है विश्व में वह वन्य वर।।<sup>२</sup>

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ  
वह सितकता जो उड़कर पर है लड़ा  
है नहीं घर- आर का जिसके पता  
बाह ऐसे दीन की गहता हृदय,  
जोर उसके जांसुओं की पहिला।।<sup>३</sup>

१- मुकुटवर पाण्डेय- वहीर, कविता कौमुदी भाग २, पृष्ठ ५५८-५५९ ।

२- मुकुटवर पाण्डेय- जांसु, सरस्वती, विसम्बर, १९९६ ।

३- वही, हृदय सरस्वती, मार्च १९९७ ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह बात मज़ी मालूम स्पष्ट हो जाती है कि पाठक जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं । उनके समस्त काव्य की आधार-शिला स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ रही हैं। इसी कारण विवेच्य काल में पाण्डेय जी के काव्य का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

## निराला

दिवेद्य काल ( १९०० - २० ई० ) में विद्वेदी जी के विचारों, उनकी परम्पराओं का पूर्ण स्थापित्य रहा है परन्तु फिर भी उस युग के कवियों के काव्य में स्वच्छन्दतावादीता की प्राप्ति स्पष्ट देखा जा सकती है। सन् १९१६ई० से १९२० तक ती कवियों ने जिन में प्रसाद पन्त, निराला, जाते हैं उन्होंने ती अपने काव्य की नवीन विषयों नयी शैली, नयी भाषा, तथा पारम्पर्य आदर्शों से निराला हैं। इस नये दृष्टिकोण के कारण ही उस काल का महत्व है।

निराला जी के काव्य में कुछ ऐसे मोड़ मिलते हैं जो एक और समसामयिक युग की बदलती हुई परिस्थितियों के प्रभाव के सूचक हैं। जुही की कही निराला की आरम्भिक रचनाओं में से है। इस कविता की सब से बड़ी विशेषता विषय की नवीनता है। भाषा एवं शब्दों के चयन की दृष्टि से भी जुही की कही एकदम मौलिक रचना है उदाहरण के लिए निर्माकित शब्द दृष्टव्य है : फिर क्या ? पवन

उपवन- सर- सरित- गहन-गिरि -कानन

कुंज - उठा फुगों को मार कर पहुँचा

निराला की जुही, कही में प्रेम और जीवन के सरल कल्पना- विन अपनी आवा- नयी भाषा और सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा का नाव- जीवन भी नवीन है, जो शास्त्रीय या लोक- संगीत में पूरी तरह नहीं समाता है। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

विवेच्य काल की कौरी नैतिकता और वादशी को उन्होंने अपने काव्य में तौड़ दिया है। यही बात उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति की सूचक है। निराला जी ने समाज को दलित पीड़ित मानवता पर भी अपनी छेनी से कृपा उछेली है। राष्ट्रीय चेतना की सुदृढ़ अनुभूतियाँ भी उनके काव्य में पायी जाती हैं। मानवीय भावनाओं की उदात्त अभिव्यक्ति हमें विवेच्य काल में निराला जी के काव्य में मिल जाती है। प्रेम का संकीर्णता की परिधि से निराला जी ने अपने काव्य से निकाला है- स्त्री- पुरुष के प्रेम की जो कल्पना रीति कालीन कृतारी कवियों ने की उससे भिन्न निराला ने पारी पुरुष प्रेम की उन सभी रुढ़ियों या एकांगी दृष्टियों से मुक्त करके एक सहज मानवीय बाजार पर स्थापित करना चाहा, जिस में एक दूसरे का आकर्षण, एक दूसरे के प्रति उत्कर्ष और समर्पित होने की सच्ची भावनाओं से पूर्ण है।<sup>१</sup> निराला जी की यह विशेषताएँ स्वच्छन्दतावादी साहित्य से सम्बन्ध में बैठती हैं। निराला जी के काव्य को देखने से लगता है जैसे अभिव्यक्ति पाने के लिए भावों और अनुभूतियों का पारावार उमड़ रहा है। संयम और बचन का प्रयास भी उनकी शैली से स्पष्ट है। निराला जी का काव्य विवेच्य काल की प्रवृत्तियों की सुन्दर भावों हमारे सम्मुख रखता है। विवेच्य काल की सामाजिक बाधिका तथा धार्मिक परिस्थितियों की स्पष्ट छाप निराला के काव्य में मिल जाती है। राष्ट्रीयता और मानवता शत युग की ज्वलन्त प्रवृत्तियों के रूपों रही हैं। निराला के काव्य में उमावेन्मुखी प्रवृत्तियाँ मानवता बोधिनी हमें अश्वेत मात्रा में मिलती हैं। इन के काव्य के लिए कहा है कि- निराला जी ने शास्त्रीय बाजार पर कोई महाकाव्य नहीं रचा, किन्तु समग्र रूप से उनका काव्य विवेच्य काल की प्रवृत्तियों का एक महाकाव्य ही है। जिसमें राष्ट्रीय चेतना और हमारे सांस्कृतिक जीवन और चिन्तन की भी धाराएँ अभिव्यक्त पाई पाई गई हैं। इस प्रकार निराला

१- शिवदान सिंह लोहान- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - पृ० ७८-७९ ।

२- वही,

वही,

पृ० ८२ ।

जी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी मूला- सौष्ठव के उत्तम उदाहरण हमें मिलते हैं।  
 जुही की रली " स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से तफ़्फ़स रचना है। कवि ने इस में मानवीय  
 प्रवृत्तियों को साकार रूप दिया है। इसकी रचना में स्वच्छन्दतावाद उनके लक्ष्य का  
 साधन रहा है। उनकी निर्धार्य प्रेम की भावनायें, उनके आवर्तों के अनुरूप रही हैं।  
 स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उस आवर्तों के सहायक के रूप में आई हैं। उनके काव्य में  
 सहजता पाई जाती है। उनके काव्य में भाव और भाषा का सुन्दर सामंजस्य है।  
 निराला जी का काव्य शुद्ध, भाषा, और ज्ञान शैली में भी मौलिकता है।  
 उन्होंने हिन्दी साहित्य के ये मौड़ों को जागे बढ़ाने में सहायता प्रदान की है।  
 निराला जी का शिल्प - प्रयोग स्वच्छन्द या मुक्त छन्द से आरम्भ हुआ है।  
 उनके स्वच्छन्द छन्द में लय और संगीत की ध्वनि है। उनका काव्य सामाजिक  
 चेतना राष्ट्रीय जीवन की मुक्त वेदना को नया स्वर देता दिखलाई पड़ता है।  
 उनके काव्य ने जनजीवन की अज्ञाय स्थिति को कर्म प्रेरणा भी दी है। एसीलिर  
 यह कहा गया है कि- निराला जी के विकास की समूची परम्परा हमें सिखाती  
 है कि उस ज्वार देश की तत्कालीन परिस्थिति के साथ बढ़कर परिवर्तन की  
 षड़ों छाने के लिये हिन्दी लेखकों और कवियों को जागे बढ़ाया है।<sup>१</sup> उनकी कवि  
 कल्पना ने मौलिक उद्भावनाओं को विकसित किया है।

---

१- निरञ्जन (लेख) - नया साहित्य, पत्रिका, - जनप्रकाशन - अह - पृ० ६६ ।

विवेच्य कालीन कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट है कि ये सभी कवि, सुधार और परिवर्तन चाहते हैं। वर्तमान से उनमें से कोई भी सन्तुष्ट नहीं है। उनका अस्तित्व बहुत बिगड़ा हुआ है और अस्पष्ट है। सभी को समाज की दयनीय और दारुण स्थिति से अस्तित्व है। आपने इस अस्तित्व की अभिव्यक्ति इन कवियों ने अपने अपने ढंग और वैचारिक दृष्टि से की है। कुछ कवियों ने इस अस्तित्व का स्रुत अतीत के चित्रण से किया है और वर्तमान को सुधारने के लिए भारतीय संस्कृति का पुनर्स्थापन करके लोगों की नैतिकता में परिवर्तन करके का प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि में काव्य का उद्देश्य सुधार है। वह व्यक्ति समाज और राष्ट्र का व्याप्त है। यद्ये - कुत्से और अशाय लोगों की प्रेरणा देने के लिये इन कवियों ने अतीत के गौरव का चित्रण किया। राम - कृष्ण जादि पौराणिक देवी - देवताओं को नये सामाजिक सन्दर्भ देकर चित्रित किया। प्रेरणास्पद महापुरुषों और ऐतिहासिक विभूतियों के चित्रण द्वारा, सुगुप्त जनता में नवजागरण करने का प्रयास किया। वैसे बार ऐसा होता है कि जब साहित्यकार अपने वर्तमान की विणमताओं और अस्तित्व का सही चित्रण करने या उनका समाधान ढूँढने में अपने को असमर्थ पाता है तो वह या तो रहस्यवादी होकर दुःखवाद का चित्रण करके लगता है अथवा अतीत के गौरव का चित्रण करके अपनी आत्म तुष्टि कर लेता है। द्विवेदी पण्डित के अधिकांश कवियों ने वर्तमान के अस्तित्व का स्रुत अतीत में खोजने का प्रयत्न किया है। लेकिन उनके अतीत के चित्रण में वर्तमान की कलक है। हरिवीर और गुप्त जी के पौराणिक और ऐतिहासिक पात्र, परम्परागत नहीं हैं। ये पात्र अतीत की मूर्ति पर उड़े होकर वर्तमान में सांस लेते दिखलाई पड़ते हैं। हरिवीर जी के "प्रिय प्रवास" के नायक कृष्ण मध्यकालीन कृष्ण और राधा से बिल्कुल भिन्न हैं। कृष्ण और राधा के दुःख पुत्र समाज के सुख दुःख हैं। इन पात्रों ने समाज के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। प्रिय - प्रवास में कृष्ण एक महानायक के रूप में जाते हैं। उनके चरित्र में कोई ऐसा अतीक तत्व नहीं है, जो आधुनिक मानव - मन के लिये बुझाव्य न हो। लेकिन इस काव्य में राधा का जो लौकिकता

रूप निरंतर कर जाया है, वास्तव में वह वायुनिक है। राधा का यह रूप परम्परागत राधा से एकदम भिन्न है। उसका लोक सेविका रूप वर्तमान नारी जागरण का प्रतीक है। नारी अब सामाजिक क्षेत्र में भी पूर्णों से पीछे नहीं है। इस बात का भी संकेत है।

पैथी सरण गुप्त के काव्य में अधिक विविधता और विस्तार है। हरिवंश जी काव्य के रूपों के सम्बन्ध में अधिक जागरूक हैं। नये छन्दों का प्रयोग भी उन्होंने बहुत सफलता से किया है। लेकिन गुप्त जी सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से हरिवंश जी से ही नहीं बल्कि अपने मण्डल के सभी कवियों से अधिक जागरूक हैं। भारत-भारती इसका सबसे सच्चा प्रमाण है। राष्ट्रीय जागरण में जितना महत्व उस अकेली रचना का रहा है उसका बाधा महत्व किसी कवि की सम्पूर्ण रचनाओं का नहीं है। भारत-भारती की कविताएँ राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में घर-घर में गाई जाती रही हैं। राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने में इस रचना का अपना ऐतिहासिक महत्व है। हाँकि यह रचना भी अतीत गौरव के चित्रण से नहीं बच पायी है। परन्तु इस अतीत गौरव का लक्ष्य नयी प्रेरणा देना है पुनरुत्थापना नहीं।

ज्यप्रथ - वध की पौराणिक कथा का मूल स्वर भी अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना है। अपने अधिकारों के लिए कितना ही संघर्ष और बलिदान क्यों न करना पड़े लेकिन उसे हर कीमत पर प्राप्त करना ही शुरू वीरों का लक्ष्य है। ज्यप्रथ-वध में गुप्त जी ने इसी स्वर को पुनरित किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य है।

अधिकार ली कर बैठ रचना,

यह महा मुकामी है।

न्यायाधी अपने बन्धु की भी

दण्ड देना घनी है।

इस बात पर ही कीरवों और

पाण्डवों में रण हुआ।

जो मध्य भारतवर्ष के

गुप्त जी के ' रंग व रंग ' का कथानक भी बहुत ही माफूसी है ।  
दो सामन्तों के वाफसी संघर्ष की इस कहानी का पूरा स्वर स्वयं  
प्रेम और मातृभूमि के सम्मान की रक्षा है । यह सम्मान राष्ट्रध्यान की  
दो छोटी रियासतों के मान जमान का प्रश्न नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष  
की मान और प्रतिष्ठा का प्रश्न है । इस में काव्य संकुचित राष्ट्रीयता की  
संकीर्णकारा है-निराला बलि भारतीय रूप लेने की साक्षात् रक्षा है । इसी  
विस्तृत राष्ट्रीयता का चित्रण कवि ने इसमें प्रस्तुत किया है ।

' किसान और ' जनप ' में गुप्त जी फिर एक बार अतीत से  
वर्तमान की ओर वापस हैं । हालाँकि इन दोनों ग्रन्थों में जीवन की विषमताओं  
और कटुताओं का यथार्थ चित्रण नहीं है । परन्तु यह चित्रण किसी सीमा तक  
पावुक और रोमान्टिक अधिक है । किसानों की अनीय स्थिति , लीजी  
द्वारा भारत से ले जाये गये भारतीय कुतियों की दाखल वशा का चित्रण  
इसमें प्रस्तुत किया गया है । बर्हा युद्ध में घायल सिपाहियों की भामिक वशा  
का भी इसमें वर्णन किया गया है । जनजीवन की परिवर्तनशील मानसिक स्थिति  
का सुन्दर एवं स्वभाविक चित्रण " जनप में " मिलता है । इसमें  
गुप्त जी ने बदलती हुई परिस्थितियों की ओर भी इशारा किया है ।

द्वितीय मण्डल के अन्य कवि हमारे अध्ययन की दृष्टि से विशेष  
महत्वपूर्ण नहीं है । क्योंकि इन कवियों में न हरिवंश जी की भाँति मौलिक  
प्रतिभा है और न गुप्त जी की भाँति नवीन सामाजिक चेतना ही है । इन कवियों  
में सामाजिक रुढ़ियों , धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया है ।  
उन्हें अपने उंग से तोड़कर स्वतन्त्रतावादी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया है ।  
इन कवियों में गया प्रसाद हुक्म सैनी तथा नाथू राम शर्मा संघर्ष विशेष  
रूप से उल्लेखनीय हैं । गीपातशरण सिंह जी में भक्ति का अधिक पुट रहा  
है इसलिए उनकी सामाजिकता अधिक उमर कर सामने नहीं आ सकी है । इनके  
काव्य में सरलता एवं स्वाभाविकता है । सरल भारतीय काव्य प्रवृत्तियों का  
समन्वय है । इन कवियों ने काव्य की मानवता वादी धारा के विकास में  
सहयोग किया है ।



विश्वेय युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने आधुनिक हिन्दी कविता को नया रूप और विस्तार दिया है। इन कवियों ने काव्य में जीवन, काल और प्रकृति के सभी रूपों का चित्रण किया है। इन कवियों ने सांकेतिक और चित्रमय भाषा को काव्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने विश्वेय युग की कविता को उपदेश और कृत्रिमता के मार्ग से हटा कर उसे अनुभूति और कल्पना का स्वच्छन्द मार्ग प्रदान किया है। रचना - विधान के नये मार्गों की खोज की है। उन्होंने अपनी उन्मुक्त कल्पना और मौलिक प्रतिभा से काव्य में नया रंग और ताजगी मरी है। इन कवियों ने कविता को एक देशीयता और किसी भी विशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर साम्यवादी और धर्म - निरपेक्ष बनाने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी काव्य को इस नई धारा का प्रवर्तन श्रीधर पाठक और त्रिपाठी जी ने किया। पाठक जी के १६ वीं शताब्दी के काव्य में राजभक्ति और देश भक्ति की मिश्रित भावना है लेकिन धीरे धीरे राजभक्ति कम हो गई है और राष्ट्रीयता उसका स्थान लेती गई है। राष्ट्रीयता के विकास के लिये उन्होंने मातृभाषा की आवश्यक संरक्षण देना अनिवार्य बताया है। पाठक जी स्वदेशवाचियों में अराष्ट्रीय प्रवृत्ति फैलते हैं तो उन्हें केश होता है।

पाठक जी ने प्रकृति के शुद्ध या कलात्मक वर्णन की ओर कम ध्यान दिया है। उन्होंने प्रकृति को मानव के निकट लाकर उसे उसके दुःख सुख में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य में चित्रित प्रकृति सजीव एवं रंगीन है किन्तु केवल कलात्मक पदों की शोभा बढ़ाने के लिये नहीं है। उसका एक सामाजिक परिवेश है। भारतवर्ष एक कृषि - प्रधान देश है। यहाँ के किसानों के रेत के लिये जल की सदैव आवश्यकता रहती है। राष्ट्रीय जीवन की ऐसी भावनाओं

भावनाओं को भी कवि ने अपनी सरल एवं स्वभाविक शैली में व्यक्त किया है उदाहरण के लिये निम्नार्कित छन्द दृष्टव्य है। कवि वास्तव से कहता है

“ तुम भारत के धन - जन - गुन गौरव-वाधार ।  
तुम ही मन, तुम ही मन, तुम प्रानन-पतवार ।”

उपरोक्त कल्पना राष्ट्रीय भावनाओं के संदेश में बहुत ही सुन्दर एवं स्वभाविक बन पड़ी है। यह प्रयत्न हिन्दी काव्य में पहली बार हुआ जिस में तत्कालीन कवियों की सामाजिक जीवन की सब से बड़ी आवश्यकता पर बल देने पर मजबूर किया। इसी सश्रित प्रयत्न में काव्य को नवीन पिछाओं की जोड़ जोड़ दिया है।

‘काश्मीर सुचना’ में कवि ने भारत के अपूर्व प्रकृतिक सौन्दर्य की कांकी मनोरम दृंग से प्रस्तुत की है। पाठक जो ने अपनी मौलिक सुक-सुक से प्रकृति में नवीन उद्भावनाओं की रंगीन दृंग से उद्भासित किया है। उनकी प्रकृति चित्रण में मौलिकता के साथ साथ भावुकता और ताकती भी है। यह मनोहारी रूप, मौलिकता, भावुकता तथा ताकती उस समय के किसी अन्य कवि में नहीं है। कवि की वैयक्तिक अनुभूतिया प्रकृति के माध्यम से और अधिक यदायतादी बन गई है। प्रकृति का यह स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र रूप विवेच्य काल में सब से पहली भीषर पाठक जो ने ही प्रस्तुत किया है। उनकी प्रकृति सरल एवं सुधुर है। इस रूप का कर्म विकास हमें दायतावाद में जा कर मिल जाता है।

पाठक जो ने प्रेम को एक सहज मानवीय गुण के रूप में स्वीकार किया है। उनका का यह दृष्टिकोण स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बोध कराता है। द्वैदी बण्डल के कवियों की भान्ति उनका प्रेम पवित्रतावादी दृष्टिकोण के भीतर नहीं रहा है। उनका प्रेम लौकिक है। उसका सम्बन्ध समाज से है। उन्होंने प्रेम को जीवन में अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है। प्रेम के इस स्वच्छन्द रूप की प्रतिध्वनि हमें उन के ग्रंथ ‘स्कान्ततासी योगी’ में सुनाई पड़ती है। उनका प्रेम परम्परागत एवं रुढ़ नहीं है बल्कि जीवन की

---

१- भीषर पाठक, ‘धन धिनय’ मनोविनीत, पृ० २१

स्वच्छन्द भंगिमा की परिलक्षित करता दिखताई पड़ता है। पाठक की पाश्चात्य सभ्यता से जरा भी भयभीत नहीं रहे। उनमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गौरव एवं विश्वास रहा है। दो संस्कृतियों के सम्पर्क से बचना भी कठिन था। इसलिए उन्होंने वास्तव विश्वास एवं हृद् विश्वास सफल से पाश्चात्य प्रभावी को अपने काव्य ग्रन्थों में सुन्दर रूप से ग्रहण किया है। द्वितीय मण्डल के कवियों की भांति वे पीछे नहीं हटे हैं। उनके काव्यों में हम मौलिकता एवं नवीनता कायम मानना में दिखताई पड़ती है।

पाठक जी ने काव्यगत नवीनता ही नहीं है बल्कि गहरी सामाजिक चेतना और जागरूकता भी हैं। उनके काव्य में हमें अनेक रूपता के दर्शन होते हैं। उनके काव्य और जीवन दोनों में संकीर्णता नाम मात्र की नहीं है। वह संचालित विचारों एवं प्राचीन कदियों के कटुतर पिरौधी रहे हैं। फलतः विवेच्य युग में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ पल्लवित हुई हैं। और भीघर पाठक उनके अग्रदूत रहे हैं। द्वितीय मण्डल के कवियों में भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। परन्तु वे अधिक मुखर नहीं हैं। उनकी द्वितीय जी का प्रभाव अनुशासित किये रहा है। उन कवियों के यहाँ परम्परावादी प्रवृत्तियों के साथ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ कहीं कहीं दिखताई पड़ जाती हैं।

राम नरेश त्रिपाठी ने पाठक जी की स्वच्छन्द परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। त्रिपाठी जी के सण्डकाव्यों “भित्तन” तथा “पथिक” में कल्पना और यथार्थ का सुन्दर समन्वय है। परम्परा के विरुद्ध उन्होंने नवीन एवं मौलिक कथाओं की उद्घाषणा की है। किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक को काव्य का आधार नहीं बनाया है। उनके काव्य सम्बन्धी विचारों में नवीनता की खोज दिखताई पड़ती है। उन्होंने काव्य की नवीन दिशाओं का सन्धान किया है। उनके काव्य में सामाजिकता और कव्य बोध का स्वर मुखरित हुआ है। उनके काव्य का मूल स्वर कभी निष्ठा है। फलायनवाद की प्रवृत्ति के प्रति पाठक जी ने जो विरोध का स्वर उठाया था त्रिपाठी जी के काव्य में वही स्वर बहुत तस्प, स्पष्ट, तार्किक और कलात्मक ढंग से व्यञ्जित हुआ है। “पथिक” सण्ड काव्य का सम्पूर्ण कथानक स्त्री भाव मूल पर चित्रित है। स्वदेश प्रेम त्रिपाठी जी के

काव्य का नारा न रहकर एक गम्भीर चिन्तन बन गया है। त्रिपाठी जी के यहाँ राष्ट्रीयता का विकसित रूप देने की भिन्नता है उनके काव्य में राष्ट्रीयता विस्तृत और गहरी हो गयी है। उनकी राष्ट्रीयता बरसाती नदी की भाँति चरत और उथली नहीं है। यह स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की भाँति निरन्तर जागे खुने की प्रेरित करती है कवि ने प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ से कवि की ही प्रेरणा ली है। उसे कोई भी वस्तु प्रेरणा शून्य नहीं जान पड़ती। बिना कवि के जीवन व्यर्थ है। यह उसका अटल विश्वास रहा है।

“ रवि जग में लोभा बरसाता सीम सुधा बरसाता ।  
सब है तब कवि में कोई निश्चिन्त दृष्टि न जाता ।  
है उद्देश्य निरन्तर तुच्छ तुण के भी लघु जीवन का ।  
उसी प्रति में वह करता है अन्त कीमय जन का ।  
सुम मनुष्य ही, अमित बुद्धि - कल विलसित अन्त तुम्हारा ।  
क्या उद्देश्य - रहित है जग में तुम्हें कभी विचारा ॥”

त्रिपाठी जी ने प्रेम की व्याख्या भी बहुत मौलिक ढंग से की है। जिस प्रेम में कर्तव्य और बलिदान की भावना नहीं वह प्रेम प्रेम नहीं है। त्रिपाठी प्रेम की कर्तव्य का साधुगी मानकर की है। इस प्रकार प्रेम विषयक पुरानी मान्यताओं एवं रुढ़ियों का उनके काव्य में विरोध है। त्रिपाठी जी के काव्यों के नायक तथा नायिका दोनों भिन्नकर कर्तव्य पथ पर चलते हैं। उनकी नायिकाएँ प्रेम में जाँसू बहाने वाली साधारण स्त्रियाँ नहीं हैं। बल्कि वे आधुनिक युग की प्रबुद्ध नारियाँ हैं। जो स्वयं सर्वज्ञान जीवन व्यतीत करती हैं और नायक की भी उसी पथ पर चलने की बाध्य करती दिखाई पड़ती है। नारी समाज को यह गौरव और महान भिन्नता त्रिपाठी जी के काव्य में मिली है। उनका काव्य नये युग के नारी आन्दोलन का प्रतिबिम्ब है। उनके काव्य में नारी घर, समाज तथा देश सबसे भिन्नी हुई रहती है। उनकी मौलिक कल्पना में नयी नारी की उद्भावना की गई। जो राष्ट्रीय आन्दोलन में जागे खुकर वायी है।  
और अपनी सारी पुरानी परम्पराओं और रुढ़ियों को तोड़ कर अपने

१- राम नरेश त्रिपाठी \* पत्रिका \* पौलीसर्वा संस्करण पृ० ३१

स्वतन्त्र पद्य का जन्म करने तथा उसे प्रशस्त करने में लगी हुई है। त्रिपाठी जी ने नारी में नई आत्मा को पहचाना है, और उसे रंगार कर अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनका यह दृष्टिकोण स्वहृन्वतावादी है। उनके काव्य में विवेच्य युग के काव्य में नई प्रवृत्तियों की जन्म दिया है।

विवेच्य युग उत्तर चरण में हायावादी काव्य का प्रारम्भिक रूप ही देने देने की मितता है। उसका वास्तविक रूप इस युग के बाद में विकसित हुआ है। इस युग में प्रसाद जी तथा पन्त जी की रचनाओं में भी काव्य का वह रूप नहीं मितता जीवाद की रचनाओं में देने की मितता है। यह कवि हायावादी जीवन - दृष्टि और कला के सम्बन्ध में इस समय तक अपने स्पष्ट नहीं हुए हैं। यह ती बाद में पन्त जी की काव्य भूमिकाओं प्रसाद जी के स्वतन्त्र निबन्धों और कुछ कालीचक्रों की कालीपना से इसका रूप स्पष्ट हुआ है। मैं भी इस युग में हायावादी काव्य सम्बन्धी सामग्री का थोड़ा उपयोग किया है क्योंकि मेरा लक्ष्य हायावाद का विवेचन एवं अध्ययन का नहीं रहा है। बल्कि स्वहृन्वतावाद के समस्त एक कर उसे परसना कर रहा है। हायावाद स्वहृन्वतावादी काव्य का विकसित एवं कलात्मक रूप है। इसमें स्वहृन्वतावाद का सामाजिक पक्ष बहुत लीन हो गया है। और कला बहुत विस्तृत, सुस्पष्ट और गहन हो गयी है। फिर भी यह स्पष्ट है कि विवेच्य युग ( १९०१ - १९२० ई० ) के उत्तरार्ध में पन्त, प्रसाद और निराला की जैसे काव्य प्रतियाँ ज्यों उनमें स्वहृन्वतावादी प्रवृत्तियों के साथ हायावाद के भी बीज दिखाई पड़ते हैं। १९१८ या १९२० ई० तक हायावाद की पूरी तरह स्थापित मानना चाहिए। किन्तु यह स्थापना स्वहृन्वतावाद की पीठ पर ही हुई। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डे आदि के स्वहृन्वद व्यक्तित्व एवं कृतित्व में ही हायावाद की आधार भूमि तैयार की थी।

सातवां अध्याय

## उ प स ङ ह ा र

विवेच्य युग ( १६०१-१६२० ई० ) की काव्य साधना अपने समासाधारण परिवेश का प्रतिफलन रही है। द्विवेदी मण्डल के कवियों की पुनरुत्थानवादी काव्य चारा एवं उससे जलग हट कर प्रवाहित होने वाली स्वयं काव्य चारा वस्तुतः तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक चेतना के स्पन्दन की लहर रही है। विवेच्य कालीन काव्य के मूल में देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ रही हैं। जिनके अनुशीलन के बिना विवेच्य युग के काव्य की मती प्रकार नहीं समझा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में बाधुनिकता का शुमारम्भ ऐसे संक्रान्तिकाल में हुआ जब मध्य कर्मीय जीवन अपनी लापरवाही और मस्ती के कारण पतन की ओर उन्मुख था। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से बाधुनिक काव्य का प्रारम्भ बाना गया है। मारतेन्दु युगीन काव्य की एक बड़ी उपलब्धि अँग्रेजों की हुटनीति का मण्डा फौड़ना तथा जनता में राष्ट्रीय स्वयं जातीय भावों को जागृत करना रहा है। मारतेन्दु युग के कवियों ने रीतिकाल की शृंगारी पञ्चनाली का परित्याग करने का प्रयत्न किया। और काव्य की जीवन के यथार्थ की ओर उन्मुख किया। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि जातीय जीवन में कौनों संकीर्णताएँ और प्राचीन हट परम्पराएँ विद्यमान हैं। इन दुर्बलताओं के रहते हुए पारम्परिक सम्यता का पुनर्जागरण करना कठिन है। इसके परिणाम स्वरूप मारतेन्दु युगीन कवियों ने सुधनवादी पावनवादी को जनता में फैलाना शुरू किया। उनके काव्य की यह एक बड़ी विशेषता सिद्ध हुई है। उस युग के कवियों ने जनजीवन से अपना सम्बन्ध बनाये रखा है। उनके काव्य में तमिऴयिक्त की सादगी रही है। सरलता एवं सरसता के सौन्दर्य से उनका काव्य सज्ज अनुप्राणित है।

सामाजिक चेतना की दृष्टि से विवेच्य कालीन काव्य मारतेन्दु युगीन काव्य का विकसित रूप है। साहित्य में बाधुनिकता का शुमारम्भ मारतेन्दु की से माना जा सकता है। इसलिए मारतेन्दु युग की हम बाधुनिक

वर्षा नव जागरण का युग कह सकते हैं। १९ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और २० वीं शताब्दी का प्रारंभ हिन्दी साहित्य में नव जागरण का काल है। पुष्पार वादी बान्दीतन जीवन के प्रत्येक क्षण में अपना प्रभाव डाल रहे थे। साहित्य भी इन प्रभावों से अछूता न रह सका क्योंकि प्रत्येक प्रगतिशील साहित्य का एक गुण यह भी होता है कि वह अपने समय के प्रभावों से प्रतिबद्ध होता है। विवेच्य युग का स्वतन्त्रतावादी काव्य तत्कालीन उदारतावादी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। इस काव्य में काव्य और जीवन की रूढ़ मान्यताओं के स्थान पर नई मान्यताओं तथा नये मानव मूल्यों की जन्म दिया है। इसी हिन्दू काव्य की एक नई दिशा की ओर उन्मुख श्रिया है। स्वतन्त्रतावादी काव्य में नवीन मूल्यों की खोज और उनकी अभिव्यक्ति का प्रयत्न सम्मिलित होता है। जहाँ एवं रूढ़ परम्पराओं से विद्रोह तथा नवीन चेतना की साक्षात् इसका प्रधान स्वर होता है। विवेच्य कालीन स्वतन्त्रतावादी काव्य द्वारा न एक नये सामाजिक मनुष्य की खोज की है। फलतः इस द्वारा के कवियों ने रंग मल्लों से लट कर जन जीवन की विस्तृत रंगस्थली में विचरण किया है। उनकी कविता ने संकीर्णता के घेर को तोड़ दिया है और उसने सामाजिकता एवं राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध हुई है।

विवेच्य युग ( १९०१-१९२० ई० ) में काव्य की तीन धारायें प्रवाहित रही हैं। द्विवेदी मण्डल की नैतिकता वादी काव्य धारा और पाठक जी एवं उनके सहयोगियों की स्वतन्त्रतावादी काव्य-धारा एक दूसरे के समानान्तर प्रवाहित होती रही है। छायावादी काव्य धारा इस काल के मध्य में उभरी और अन्त तक उसका स्वरूप निश्चित हो गया। द्विवेदी जी के पैराट व्यक्तित्व का प्रभाव इस युग के प्रत्येक कवि एवं चेतक पर खोड़ी बहुत माना में रहा है। इसलिए पूरे युग को द्विवेदी युग के नाम से पुकारा जाता है। ऐसा करना वाज्यायी द्विवेदी को सम्मान देने की दृष्टि से तो ठीक है लेकिन तत्कालीन काव्य के मूल्यांकन की दृष्टि से ठीक नहीं है। द्विवेदी मण्डल के नैतिकता वादी कवियों और तत्कालीन स्वतन्त्रतावादी कवियों की काव्य दृष्टि का मां चिन्तन एवं



रचना में बहुत अन्तर रहा है। अतएव इन दोनों पाराखी के कवियों का अस्तित्व भ्रष्ट रहा है। बाबाय राम चन्द्र शुक्ल ने इनका मूल्यांकन अलग अलग किया है।

अंग्रेजी के रोमान्टिसिज़्म और हिन्दी के स्वतन्त्रतावाद में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। यहुवा विद्वानों ने इन दोनों को एक ही समझ लिया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। हिन्दी काव्य में स्वतन्त्रतावादी भाव पारा योरोप से नितान्त भिन्न रही है। अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों में कीट्स, बायरन, शेली, और वर्ल्ड्सवर्थ आदि हिन्दी के बीर माठर, राम नरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डे तथा रूप नारायण पाण्डे आदि से अपने परिवेश, विश्वास एवं आस्था में नितान्त भिन्न रहे हैं। अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों की सामाजिक, धार्मिक राजनीति एवं जातिके परिस्थितियाँ भी हमारे यहाँ की परिस्थितियाँ से अलग रही हैं। अंग्रेजी रोमान्टिक कान्दोलन के कवियों के सम्मुख पराधीन और विदेशी शोषण की समस्या भी नहीं थी। उन्होंने तो केवल सामन्ती कदियों के विरुद्ध विद्रोह किया था। उन्होंने उन जड़ परम्पराओं, नैतिक - धार्मिक अन्य विश्वासों, सामाजिक प्रवृत्तियों आदि के विरोध में आवाज उठाई थी जो प्रगतिशील मानव के पैरों में फँदी के समान थी। यह कवि मानव मन की कौमल एवं सहज भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं चाहते थे। यह नैतिकता के विरोधी थे। धार्मिकता भी उन्हें पसन्द नहीं थी। यह कवि किसी सुधारवादी कान्दोलनों के भी हामी नहीं थे। वह कवि परन्तु इसके विपरीत विवेच्य युग के स्वतन्त्रतावादी कवि मूलतः अपने काव्य में सुधारवादी रहे हैं। वे नैतिकतावादी कान्दोलनों के समर्थक भी रहे हैं। उनके काव्य में स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की व्यापक चेतना रही है। उन्होंने स्वतन्त्रतावाद का नितान्त भिन्न परिवेश में भीगा और ग्रहण किया है। इसलिये विवेच्य युग के स्वतन्त्रतावादी कवियों और उनके काव्य से अंग्रेजी के कवियों की तुलना बहुत दूर तक नहीं की जा सकती।

विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने समय के सामाजिक - राष्ट्रीय सर्वजन का साथ दिया है । जनता में राष्ट्रीय भावों एवं सामाजिक जाग्रति की फैलावट में महत्वपूर्ण योग दिया है । भारतेन्दु मुनीश कवियों की स्थानित विवेच्य युग के कवियों की प्रेरणा का एक प्रौढ़ भारत का अतीत गौरव रहा है । परन्तु वह उनके काव्य के कुछ नये परिवेश में प्रस्तुत किया गया है । विवेच्य युग के कवियों ने महान् पुस्तकों के चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल एवं उदात्त स्वभाव को अंकित तो दिया है परन्तु उन्हें चित्रण में नव युग की कल्पन विद्यमान है । अतीत उनके लिए केवल प्रेरणा रहा है । अणालम्ब नहीं - उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से केवल उपदेश ही नहीं दिये हैं । बल्कि कर्मठता , समाज - सेवा और देश-सेवा के लिए भी प्रोत्साहन दिया है ।

विवेच्य युग में उद्देश्यात्मक एवं उत्सुकतात्मक प्रवृत्तियों के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा में थोड़ा व्यवधान आया । परन्तु बीघर पाठक तथा राम नरेश त्रिपाठी आदि के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य की परम्परा बत निकली । इन कवियों के प्रयत्नों का ही यह परिणाम है कि प्राचीन विषय , भाषा , शब्द तथा अंशकार आदि के स्थान पर नये विषय , नवीन भाषा , नयी भाषा तथा नये शब्दों का प्रयुक्त तत्कालीन काव्य में सम्भव हो सका । इन समस्त प्रयत्नों के मूल में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं । कुछ प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप हिन्दी कविता में एक नये युग का कुमारम्भ हुआ । जिसका पूर्ण विकास आयावादी युग में फैलाई फलता है ।

विवेच्य युग के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रथम प्रमुख प्रवृत्ति बुद्धिवाद है । जिसने तत्कालीन कवियों की काव्य-क्षेत्रता को नये वायाम दिये हैं । इस प्रवृत्ति का प्रभाव उन काव्यों पर भी स्पष्ट

है । जिसकी प्रेरणा धार्मिक पौराणिक रही है । विवेच्य युग के कवियों ने राम और कृष्ण की कथा ली की है परन्तु उनके काव्य में राम और कृष्ण ईश्वर न रह कर एक वादही मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठापित हुए हैं । इन कवियों ने धार्मिक पौराणिक चरित्रों के मानवीय पक्ष पर अधिक दल दिया है । हरिजीव जी तथा मैथिलीशरण गुप्त जी पुनःस्थानवादी हैं । किन्तु इस सन्दर्भ में वे युग की नवीन सामाजिक चेतना से बहुत नहीं रह सके हैं । गुप्त जी का राम पर बहुत विश्वास है । परन्तु उनके काव्य में राम का वादही मानव रूप ही प्रतिष्ठित हुआ है । वह प्रवृत्ति उस वैज्ञानिक व्यापक तार्किक दृष्टि का परिणाम रही है । जिसकी भारतीयों ने अंग्रेजी शिक्षा पश्चात्प सभ्यता के माध्यम से प्राप्त किया ।

विवेच्य युग की कविता में उच्च वर्गीय जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं है । इस काव्य ने साधारण जीवन का प्रतिनिधित्व किया है । सनेही जी द्वारा लिखित " दुलिया किसान ( सरस्वती, जनवरी १९१२ ई० ) अर्ति - कृष्ण सरस्वती , अप्रैल १९१४ ई० ) गुप्त जी द्वारा लिखित " कृष्णकृन्दन " ( १९१६ ई० ) तथा किसान नामक काव्यों की रचना मानवतावादी दृष्टिकोण के आधार पर हुई है । गुप्त जी के दोनों प्रबन्धों के नायक किसान हैं । विवेच्य काल के कवि मानवतावादी वादशी से प्रभावित दिखाई देते हैं । इन कवियों ने अपने काव्य में मानवता की महिमा बताई है । मनुष्य की मनुष्य के रूपमें समुचित सम्मान एवं वाद दिया है । हमारे काव्य में यही है मनुष्य के सहज एवं स्वादूर्ण स्वार्थिता की प्रविष्टा का क्रम आरम्भ होता है । मानवता के प्रति यह उदार दृष्टिकोण विवेच्य युग के स्वतन्त्रतावादी कवियों के काव्य की एक उत्कृष्ट विशेषता है ।

मध्य युगीन सामन्ती मूल्यों के अन्तर्गत नारी समाज में उपेक्षित वर्ग के रूप में गिनी जाती थी । वह केवल पुरुषों के हाथ की कठमुत्तरी मात्र समझी जाती थी । विवेच्य युग के कवियों (रामनरेश त्रिपाठी , हरिजीव , मैथिलीशरण गुप्त ) ने शायद पहली नारी में

असीम शक्ति तथा तथा उत्साह भरा है। इन कवियों के नारी पात्र शक्ति के केन्द्र के रूप में चित्रित हुए हैं। उनमें वायुनिक युग की स्वाधीन चेतना है। यह नारियाँ कठिण नायिकाएँ नहीं हैं। परन्तु नारीत्व के उदात्त गुणों से सम्पन्न हैं। इस प्रकार के चित्रण से विविध युग की हिन्दी कविता की विषय भूमि के बदलने में पर्याप्त सहजता मिली है। विविध युग के काव्य में युगानुसार राष्ट्रीयता की भावना का भी प्रसार दिखलाई पड़ता है। इस काल के कवि स्वतन्त्रता की चेतना से उदीप्त रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रीय शक्ति और एकता के लिए साधना की है। उनका काव्य राष्ट्रीयता की उच्च भावना से परिपूर्ण है।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता की यह साधना हिन्दी काव्य के लिए नई वस्तु रही है। भारत की विभिन्न रूपों में भारतन्तु युगीन कवियों ने भी चित्रित किया है। परन्तु इस एक राष्ट्र का रूप विविध युग के स्वतन्त्रतावादी कवियों ने ही प्रदान किया है। इन कवियों ने भारत भूमि की प्रशस्तियों का गायन मुक्त स्वरों में किया है। 'मामृजान' , 'मातृभूमि' ( रूप नारायण पाण्डेय ) 'हमारा देश' ( लीजन प्रसाद पाण्डे ) 'जन्मभूमि भारत' ( राम नरेश त्रिपाठी ) 'भारत गीत' ( श्रीधर पाठक ) 'मातृभूमि' ( मन्ननद्वैदी गणपुरी ) आदि रचनाएँ इस कोटि के काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। राष्ट्रीय वान्दोलन की मातृभूमि में इस प्रकृति को परिपुष्ट होने का अच्छा अवसर मिला था। विविध युग के काव्य में राष्ट्रीयता के अतिरिक्त देश की राजनीतिक तथा धार्मिक दशा का भी अच्छा वर्णन हुआ है। राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओं का चित्रण सर्वप्रथम श्रीधर पाठक ने प्रकृति के माध्यम से गाया। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीयता जनजीवन तक जा सकती है। प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीयता के इस नये दृष्टिकोण में विविध कालीन काव्य में एक नये अध्याय का सुत्रपात किया। प्रकृति के सौम्य, स्निग्ध और व्यापक रूप के माध्यम से स्वतन्त्रतावादी कवियों ने देश के लिए अनुराग भाव की प्रकृति को जाग्रत और पुष्ट किया। प्रकृति चित्रण से लेकर अलग प्रकार के वर्णनों तक इन कवियों की राष्ट्रीय चेतना सुरुज भाव से व्यक्त हुई है।

विविध युग के काव्य में प्रकृति चित्रण की एक नयी परिपाटी विकसित हुई है । उस समय के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति वर्णन की पद्धति को एक शास्त्रीय परम्परावादी से मुक्त किया है । इन्होंने प्रकृति को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में प्रस्तुत किया है । प्रकृति से इन्होंने रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है । पाठक को जो " काश्मीर-बुलबुल " देहरादून, उसके समीप उपाकरण है । त्रिपाठी जी के " पथिक " में प्रकृति का सुन्दर लचीला रूप साकार हो उठा है । इन कवियों ने प्रकृति चित्रण के नये नये वाचन सीखे हैं । प्रकृति की दृश्यों अथवा श्रियाव्यापारों के मानकीकरण की पद्धति प्रस्तुत; इनकी कवियों से आरम्भ होती है । इन्होंने प्रकृति को उद्दीप्त विभाव तथा व्यक्तिकरण साधनी से ऊपर उठाकर उसे एक लचीला सत्त्व के रूप में देखा और चित्रित किया है । इनके काव्य से प्रकृति के प्रति हमला अनन्य प्रेम प्रकट होता है ।

विविध युग के काव्य में स्वच्छन्दतावाद के अनुरूप " प्रेम " की एक उदात्त मूर्ति प्रकट होती है । रीति कालीन भृंगारी प्रेम की भावना को उस चारा के कवियों ने पीछे छोड़ दिया है । इन कवियों ने सस्ते भृंगारिक प्रेम के स्थान पर उच्च मानकीय प्रेम की प्रतिष्ठा की है । श्रीधर पाठक ने अपने " एकान्तवासी योगी " में प्रेम का एक स्वच्छन्द एवं उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया है । प्रसाद जी के " प्रेम - पथिक ", त्रिपाठी जी के भिन्न एवं " पथिक " तथा पन्त जी की ग्रन्थ में प्रेम का मध्य रोमानी रूप प्रस्तुत हुआ है । रचनावादी में भृंगार और विरह के साथ साथ मानकीय प्रेम की गरिमा भी दिखाई पड़ती है । इन कवियों ने प्रेम और वैदना का स्वरूप एक नये परिवेश में प्रस्तुत किया है । प्रेम की संकीर्णता कम की है । और उसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय रूप देने का प्रयास किया है । इन कवियों की प्रेम साधन प्रकृत: देश-प्रेम तथा विश्व-प्रेम तक भी पहुँची है ।

विविध युग के काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों को भी प्रधानता मिली है । यद्यपि गीत का प्रयोग हिन्दी साहित्य में बहुत पुराना है । लेकिन

गीति काव्य का प्रयोग हमें सर्वप्रथम स्वतन्त्रतावादी कवियों के काव्य में देखने की मिलता है । स्वतन्त्रतावादी कवियों में 'व्यक्ति' की गरिमा और राष्ट्र की महिमा के गुणगान का एक माध्यम गीति काव्य को भी बनाया है। जिसमें उनकी वैयक्तिक अनुभूति का प्रतिफलित हुई है । इन कवियों का गीति काव्य एक और लोक जीवन की भाव भूमि पर विकसित हुआ है और दूसरी ओर इसका आधार कवि की व्यक्तित्व में है विविध काल के कवियों ने गीति काव्य के माध्यम से भारतीय जीवन के प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पन्नता एवं राष्ट्रीय भावनाओं का गायन किया है । छायावादी गीति काव्य में जाकर यह चेतना नितान्त वैयक्तिक हो गई है ।

सम्पादक , पाणिनि राजनीतिक एवं जातिक परिवर्तनों के साथ साथ काव्य के सभी सन्दर्भ बदल जाते हैं । विविध युग में भी काव्य की भाषा-शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । स्वतन्त्रतावादी काव्य बीच के अन्तर्गत हिन्दी कविता की भाषा भी बदली और उसके शिल्प के अन्य उपादानों में भी परिवर्तन हुए । परम्परागत ब्रज भाषा के स्थान पर एक नयी भाषा शैली की स्थापना हुई । विविध युग के यह कवि अनुभव करने लगे थे कि नयी भाव-भूमि और सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति पारम्परिक ब्रज भाषा में सम्भव नहीं है । नयी विषय-वस्तु नयी भाषा में ही व्यक्त की जा सकती है । और नयी भाषा नई विषय वस्तु को ठीक अभिव्यक्ति प्रदान करती है ।। इस सुन्दर वच्य का परिचय विविध युग के स्वतन्त्रतावादी कवियों ने दिया है । उनकी काव्य-कृतियों की रचना लड़ी बोली में हुई है । जिनमें नये विषयों का चयन नयी शैली में हुआ है । इन कृतियों में कवियों की कल्पना का रूप भी नए निरूपण कर सामने आया है । इन रचनाओं में कवियों ने नये वाचन खोजे हैं । इनमें नयी भाषा की उदयनशीलता को नये लोक हिन्दी की बरवा , रोता , कजरी आदि के माध्यम से व्यक्त किया गया है । लड़ी बोली की प्रकृति के अनुसार पड़ने वाले नये मात्रा हिन्दी की लीन भी अधिकतर ने इसी युग में हुई है । ब्रज भाषा के स्थान पर लड़ी बोली की प्रतिष्ठा इस युग के इतिहास की एक क्रान्तिकारी घटना है । इस युग के कवियों ने लड़ी बोली की उत्तम मुहावरा दिया उसके हृदय दिखे और उसे इस दौर का बताया कि वह वास्तविक काव्य के लिए समर्थ माध्यम सिद्ध हो सके।

अप्रस्तुत विधान एवं उत्कर्षण विधान की दृष्टि से भी विविध काल के काव्य में पर्याप्त नवीनता और ताज़गी का समावेश हुआ है। विविध युग के कवियों की शक्ति व्यक्तिकार्य में सामाजिक पैतृक के साक्षात्कार और खड़ी बोली की प्रतिष्ठा में व्यक्त हुई है किन्तु कल्पनाशीलता का बहुत बड़ा उदाहरण प्रस्तुत किया है। मानवीकरण और पारंपार्य का प्रयोग प्रस्तुत इसी काल की कविता के साथ एक हुआ था। प्रस्तुत विषय व्यक्त होकर ही उभारने के लिए उनके स्थान पर अप्रस्तुतों के विधान की परिभाषा भी इस काल की कविता के द्वारा प्रस्तुत हुई है।

सारांश यह है कि विविध युग में हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक ऊर्ध्व शान्ति हुई है काल के लिए तो वायुनिक युग की परिगणना पारम्पर्य युग से होती है लेकिन वायुनिक काव्य की दृष्टि से वायुनिकता का कुमारम्प कीसवीं शताब्दी के साथ मानना चाहिए। सामाजिक, जायिक व्यक्त राजनैतिक कारणों से तत्कालीन कवियों में एक प्रकार की मुक्ति, पैतृक और वायुनिक का साक्षात्कार किया था। पारंपार्य सम्यता और साहित्य के सम्पर्क ने उन्हें एक प्रकार की वायुनिक-तात्त्विक दृष्टि प्रदान की थी। परिणाम यह हुआ कि विविध युग की कविता में सामाजिक व्यक्त साहित्यिक इष्टियों एवं वह परम्पराओं के उत्तर विद्रोह किया। सामाजिक स्तर पर एक नये स्वाधीन, उदार एवं प्रगतिशील युग का दर्शन किया गया। राष्ट्र की स्वाधीनता के स्वप्न संजीरे गए साहित्य के स्तर पर नयी भाषा, नयी मुहावरें नयी ऐसी शिल्प के माध्यम से नवयुग की वाणी देने का प्रयत्न किया गया। अतएव सच्ची अर्थों में हिन्दी कविता के नवयुग का कुमारम्प हुआ जिसे हम स्वतंत्रतावादी पैतृक परिणाम कह सकते हैं। विविध युग की कविता सर्वोपरि में स्वतंत्रतावादी नहीं है बल्कि ऐसे तत्त्व दिखाई पड़ते हैं, जिनके आधार पर ही नैतिकतावादी एवं पुनरुत्थानवादी कहा जा सकता है। किन्तु यह केवल उसका एक पक्ष है। उसका दूसरा पक्ष उसे पूर्ण रूप से स्वतंत्रतावादी सिद्ध करता है। ऐसा कि वारम्प में कहा जा चुका है कि विविध युग को बहुरा द्विवेदी युग कहा जाता है। और काव्य के सम्पर्क

में द्वितीय युग का तात्पर्य नीरस, हतिसूत प्रदान, पुनरुत्थानवादी एवं  
 उपदेश मूलक काव्य समझा जाता है किन्तु विवेच्य युग के सम्बन्ध यह धारणा  
 रूढ़िवादी और तपूनी है। प्रस्तुत प्रसन्न में विवेच्य युग के इस उपेक्षित पक्ष का  
 अध्ययन करना हमारा लक्ष्य रहा है जिसके अन्तर्गत वह काव्य की कलात्मक सृष्टि  
 के सन्दर्भ में अधिक मूल्यवान् और समर्थ है। यह दूसरा पक्ष स्वतन्त्रतावादी  
 काव्य का पक्ष है। पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर युग के अनुकूल पढ़ने वाली  
 नवीन भाव सृष्टि और नवीन पद्धतियों की परम्परा विवेच्य युग से ही  
 निकली। छायावाद द्वितीय युग के हतिसूतात्मक एवं नीरस काव्य  
 की विरोध में नहीं आया। भरी मान्यता है कि वह द्वितीय युग  
 के स्वतन्त्रतावादी कवियों द्वारा दिखाए गए नए नूतन मार्ग का अनुसरण  
 करता हुआ आया।



## परिशिष्ट

### सहायक ग्रन्थों की सूची

- |                                      |   |
|--------------------------------------|---|
| (१) व्योम्यासिह उपाध्याय<br>हरिजीव : | प्रिय प्रवास , रणायन संस्करण , साहित्य<br>कुटीर बनारस, सर्वतु २००६ ।<br>बौध्दास, सन् १९२८ , बांकीपुर , पटना<br>कुमर बापदे, हिन्दी साहित्य कुटीर<br>बनारस<br>बापदे , सर्वतु-२००८, बनारस<br>पारिजात , प्रथम संस्करण , सन् १९४०<br>लहरिया रराय<br>सन्धर्म सर्वस्व, बांकीपुर , पटना<br>वैदिकी बनवास , सर्वतु-२००८, बनारस<br>आधुनिक हिन्दी कविता का संग्रह, जलियाँ, १९६६ |
| (२) डा० ब्रजनाथ मदान                 |   |
| (३) डा० वैद्यरी नारायण<br>कुल :      | आधुनिक काव्य-धारा , सर्वतु २००८, सखनऊ<br>आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक प्रीत<br>सर्वतु २००४, काशी ।   |
| (४) डा० किरण कुमारी<br>मुक्ता :      | हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण,<br>प्रथम संस्करण दिल्ली ।  |
| (५) डा० गोविन्ददास<br>रमा :          | हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य , दिल्ली-६  |
| (६) डा० गिरिनाथ कुल<br>गिरि :        | महाकवि हरिजीव , सर्वतु २००३ , प्रयाग  |
| (७) जयदेव प्रसाद :                   | काव्य और कला तथा काल्य नियन्त्र,<br>तृतीय संस्करण ,   |

- करना, छटा संस्करण, भारती मण्डार  
प्रयाग ।
- कानन-कुसुम, प्रथम संस्करण, प्रयाग  
प्रेम-पथिक, द्वितीय संस्करण, प्रयाग
- (८) डा० त्रिभुवन सिंह: वायुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दवारा,  
द्वितीय संस्करण, १९६१ ।
- (९) डा० देवराज उपाध्याय: रौमान्टिक साहित्य शास्त्र, प्रथम संस्करण
- (१०) मन्य कुतारी पाण्डेयी: वायुनिक साहित्य, प्रथम संस्करण, प्रयाग
- (११) डा० नामवर सिंह: वायुनिक हिन्दी कविता की नई प्रवृत्तियाँ,  
प्रथम संस्करण । <sup>दिल्ली</sup>  
<sup>साधनावाट, बनास, ७२म संस्करण</sup>
- (१२) नाथूराम शर्मा शर्मा: शर्मा सर्वस्य, प्रथम संस्करण, गया प्रसाद  
एण्ड सन्स, बागरा ।
- (१३) डा० नीन्द्र: रीति काव्य की धूमिका, गौतम बुक डिपो,  
दिल्ली १९४६ ।
- सहित एक अध्ययन, प्रथम संस्करण, दिल्ली
- वायुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ  
प्रथम संस्करण ।
- (१४) डा० प्रतिपाल सिंह: बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, प्रथम  
संस्करण ।
- (१५) डा० पट्टाभि सीता  
रमैया: काव्य का इतिहास, प्रथम संस्करण
- (१६) डा० मागीरय मिश्र: साहित्य सन्दर्भ और मूल्य, प्रथम  
संस्करण ।

(१६) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

भारत-पुष्पा, भाग १ नागरी प्रचारिणी  
सभा, काशी ।

भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, नागरी  
प्रचारिणी सभा काशी ।

(१७) डा० मनीहर लाल गौड़ :

चनानन्द और स्वच्छन्द काव्य पारा,  
सं० २००५, काशी ।

(१८) महावीर प्रसाद  
द्विवेदी :

हिन्दी काव्य-माला, प्रथम संस्करण,  
सन् १९४०, प्रयाग  
रसज्ञ-रंजन, नवीनतम संस्करण, सन् १९५८  
बागरा ।

(१९) मम्मट :

हिन्दी काव्य प्रकाश, प्रथम संस्करण,  
काशी ।

(२०) मैथिलीशरण गुप्त :

भारत-भारती, चौथीसर्वा, व्यालीसर्वा  
संस्करण, साहित्य सदन चिरगाँव,  
काशी फाँसी ।

यय-प्रबन्ध, द्वितीय संस्करण, साहित्य सदन  
चिरगाँव फाँसी ।

मंगलघट, प्रथम संस्करण, सर्वशु १९९४,  
फाँसी ।

हिन्दू, तृतीय संस्करण, साहित्य सदन  
चिरगाँव, फाँसी ।

जयद्रथ-यय, व्यालीसर्वा संस्करण, काशी  
साहित्य सदन चिरगाँव, फाँसी ।

- (२१) राम चन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नया संस्करण काशी ।  
चिन्तामणि , भाग १ सन् १९४८ , प्रयाग
- (२२) डा० राम कुमार बस्ती : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक , इतिहास प्रथम संस्करण , प्रयाग ।
- (२३) डा० रामचारी सिंह दिनकर : छायावाद की भूमिका, प्रथम संस्करण, दिल्ली ।
- (२४) डा० रघुवंश : हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, दिल्ली १९५८ ।
- (२५) डा० रवीन्द्र प्रसाद : पञ्चमावत में लोक तत्व, कलाशाखाय १९६२  
हिन्दी के आधुनिक कवि : द्वितीय-युग से नयी कविता तक दिल्ली ।
- (२६) डा० रामेश्वर लण्ठलवाल "लक्षण" : आधुनिक कविता में प्रेम और सौन्दर्य, प्रथम संस्करण, दिल्ली ।
- (२७) डा० रामचन्द्र मिश्र : बीघर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दता-वादी काव्य, दिल्ली ।
- (२८) डा० राम विलास शर्मा : प्रगति और परम्परा, प्रथम संस्करण, किताब मकान, कलाशाखाय ।
- (२९) हल्क फ्रांस : उपन्यास और लोक जीवन (अनुवाद) १९५७, दिल्ली ।
- (३०) राम नरेश त्रिपाठी : पथिक, बीसवाँ संस्करण, हिन्दी मन्दिर प्रयाग, मितन, नवम संस्करण, हिन्दी मन्दिर प्रयाग, मानसी, तृतीय संस्करण, हिन्दी मन्दिर प्रयाग ।
- (३१) रामचरित उपाध्याय : युक्ति पुस्तकाली, प्रथम संस्करण, ग्रन्थमाला काव्य, बाँकीपुर ।
- (३२) डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर खान्द प्रभाव, प्रथम संस्करण कानपुर ।

- (२३) डा० सखीसागर  
वाण्यीय : वायुनिक सहन्दी साहित्य की भूमिका, १९९२  
हलाहाबाद ।
- (२४) लोचन प्रसाद पाण्डेय : कविता, शुभ्र माला, डार्डिंग साधुगैरी, दिल्ली  
नीति-कविता, द्वितीय संस्करण, हरिदास  
रम्य सन्ध, कलकत्ता ।
- (२५) डा० विश्व नाथ प्रसाद  
मिश्र : हिन्दी का सामाजिक साहित्य, प्रथम संस्करण
- (२६) विनय चौधरी : साहित्य, शोध, समीक्षा, भारती मन्दार ।
- (२७) विश्वनाथ, व्याख्याकार : हिन्दी साहित्य वर्षण, संवत् २०१४, चौधरी  
विश्वनाथ, वाराणसी ।
- (२८) डा० श्री कृष्ण साहू : हिन्दी साहित्य का विकास, तृतीय संस्करण,  
१९५९, प्रयाग ।
- (२९) श्रीधर पाठक : भारत-गीत, द्वितीय संस्करण, संवत् १९८५,  
गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ ।  
मनीषिनीय, तृतीय संस्करण, प्रयाग ।  
पैरायुन, प्रथम संस्करण, हलाहाबाद ।  
काशीर-मुग्धना, द्वितीय संस्करण, हलाहाबाद  
मान्त-मधिक, कल्पित, तृतीय संस्करण,  
हलाहाबाद ।  
यनाष्टक, संवत् १९९२, प्रयाग ।  
धन-विनय, हलाहाबाद ।
- (३०) शिल्पिगुण्ड मिश्र : लड़ी बोली का बान्दीतन, प्रथम संस्करण,  
संवत् २०१३, काशी ।
- (३१) डॉ० सिद्धान्त सिंह  
चौहान : हिन्दी साहित्य के बस्ती वर्ण, दिल्ली १९५५
- (३२) डा० शिव कुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, प्रथम  
संस्करण, दिल्ली ।
- (३३) डा० सुरेश चन्द्र गुप्त : वायुनिक कवियों के काव्य सिद्धान्त, प्रथम

- (४५) डा० सत्येन्द्र : संस्करण, १९६०, दिल्ली ।  
गुप्त की कला, चतुर्थ संस्करण, वागडा ।
- (४६) डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, प्रथम संस्करण, दिल्ली ।  
हिन्दी कविता का ज्ञान्ति युग, दिल्ली ।
- (४७) डा० सुरेन्द्र माथुर : वाचनिक हिन्दी काव्य, प्रथम संस्करण, ।
- (४८) सिया राम शरण गुप्त : मीरों विषय, प्रथम संस्करण, काशी ।
- (४९) सुमित्रा नन्वन पन्त : ग्रन्थि, द्वितीय संस्करण, काशी ।  
वीणा, प्रथम संस्करण, काशी ।
- (५०) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : आधावादी कविता की पुस्तकभूमि अवन्तिका  
जनवरी १९५८, पटना ।

प त्रि का रं  
००००००००००

- (१) रन्धु : जुलाई १९१३, १९१५, मार्च सन् १९१५ ई० ।
- (२) काव्य धारा : सम्पादक, डा० शिवदान सिंह जीतान, सन् १९५१ ई० ।
- (३) आधा : दिसम्बर सन् १९२० ई० ।
- (४) माथुरी : फरवरी सन् १९२३, १९२६, अगस्त १९२३ ई० ।
- (५) भी शारदा : सम्पादक, नमोदा प्रसाद मिश्र, जुलाई सन् १९२० ई० ।
- (६) सहस्रित्य सप्तेक : फरवरी १९४९, जनवरी १९४९, १९६५ ई० ।  
फरवरी सन् १९०५, तथा सन् १९९० ई० ।
- (७) सरस्वती : मई १९०५, १९१७, १९१२, १९१५, १९०८ ई० ।
- ( ) जून, १९१३, १९१९, १९१०, १९१७ ई० ।  
जुलाई १९१२, १९०३, १९०६ ई० ।  
अगस्त १९१९, १९१६ ई० ।  
नवम्बर सन् १९०४, १९०६, १९०६ ई० ।  
दिसम्बर सन् १९१४, १९०५ ई० ।

जनवरी सन् १९०४ , १९१३ , १९०८ ,

१९१८ , १९१६ तथा सन् १९१७ ई० ।

फरवरी सन् १९२१ , १९१३ , १९०३ ,

१९१४ ई० ।

मार्च सन् १९११ , १९१७ , १९१४ तथा

१९१८ ई० ।

### विवरण

प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन काशी : १९१०, कार्य विवरण,  
द्वितीय भाग ।

द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग , संवत् १९६८ ,  
कार्य विवरण द्वारा भाग ।

पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन , लखनऊ कार्यक्रम , प्रथम भाग ।

कौष हिन्दी साहित्य कौष , ज्ञान पण्डित , वाराणसी ।

BIBLIOGRAPHY  
(English Books)

- Ayyar, A.V. Contemporary Indian Literature, Bombay, 1960.
- Braiford, H.H. Indian Social Reforms, London, 1943.
- Broote, G.A. Naturalism in English Poetry, 1943.
- Candwell, C. Illusion and Reality (A study of the sources of Poetry) Delhi, 1956.
- Desai, A.R. The Social Background of Indian Nationalism Bombay, 1959.
- Desai, A.R. Crusade Against Caste System, Bombay, 1959.
- Desai, A.R. Rise of the New Social Classes in India, Bombay, 1948.
- Eliot, T.S. Selected Essays, London, 1946.
- Essays & Studies Memoirs of English Association U.P., 1938.
- East, H. Literature & Reality, New York, 1950.
- Fox, R. The Novel & the People, Moscow, 1956.
- Gadgil, Industrial Evolution of India in Recent Times, Bombay, 1954.
- Ghosh, J.C. Bengal Literature, Oxford Press, 1948.
- Gorky, M. On Literature and Language, Moscow, 1957.
- Harris., Nature of English Poetry.





- Sarkar, J.N. India Through the Ages, 1958.
- Sen, P.R. Western Influence in Bengali Literature  
Calcutta University, 1932.
- Sharma, K.K. Introduction to the Poetry of Romantic  
Revival.
- Sharma, R.S. The Influence of English or Modern Hindi  
Poetry and Criticism, Delhi, 1954.
- Smith, G. Traveller, II Ed.
- Smith, . The Principles of English Metres,  
Moscow, III Ed.
- Stodder., An Introduction to Poetry of Romantic  
Revival, New York, 1928.
- Tagore, B.J. Poetry and Dramatist, Oxford, 1928.
- Tennyson, A. King Arthur.
- Wells, H.G. Socialism, London, 1948.
- Willy, E. The Decline and the Fall of Romantic  
Ideal, London, 1932.